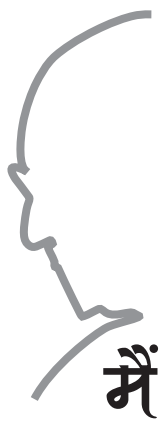

मैं और मेरे गुरु

जैन विश्व भारती प्रकाशन

आत्मकथा-२

मैं और मेरे गुरु

आचार्य महाप्रज्ञ

संपादक

शासनगौरव मुनि धनंजयकुमार

मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा

प्रकाशक
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राज.) 341306
जिला : नागौर (राजस्थान)
फोन : 01581-226030/224671
फैक्स : 01581-227280
e-mail:secretariatldn@jvbharati.org

ISBN 978-81-7195-243-4

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण : जुलाई २०१३ ई. (प्रतियां २२००)

मूल्य : तीन सौ पचास रुपये मात्र

आवरण एवं आकल्पन : अडिग

मुद्रक : सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

MAIN AUR MERE GURU by Acharya Mahapragya Rs. 350.00

पुरोवाक्

जीवन-वृत्त दो प्रकार से लिखा जाता है–

१. किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किसी अन्य व्यक्ति की जीवनी लिखना।

२. स्वयं अपनी जीवनी लिखना।

साहित्य के क्षेत्र में इन दोनों विधाओं का प्रयोग होता रहा है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाए तो दूसरा प्रकार अधिक तथ्यपूर्ण होने की संभावना रहती है। अन्य व्यक्ति किसी के बारे में लिखता है, वह कुछ देखा हुआ, कुछ सुना हुआ, कुछ पढ़ा हुआ हो सकता है। परन्तु जीवनी के पात्र के मनोभाव कब क्या हुए, उसे लिख पाना उसके लिए प्रायः असंभव होता है। दूसरी बात–लिखने वाला श्रद्धातिरेक और द्वेषभाव के कारण अतिशयोक्ति और हीनोक्ति भी कर सकता है।

व्यक्ति स्वयं अपने बारे में तटस्थ भाव से लिखता है तो वह अपने मनोभावों को भी प्रकट कर सकता है और कहीं-कहीं वह अपनी गुप्त घटना को भी उल्लिखित कर सकता है। यह सब स्वयं के द्वारा स्वयं की जीवनी के लेखन से ही संभव है, पर के द्वारा प्रायः नहीं।

महात्मा गांधी आदि अनेक विशिष्ट पुरुषों ने अपनी जीवनी का लेखन स्वयं किया। गुरुदेव तुलसी की आत्मकथा **'मेरा जीवन : मेरा दर्शन'** के रूप में प्रायः सामने आ चुकी है। कुछ अवशिष्ट है। हालांकि यह आत्मकथा अक्षरशः गुरुदेव तुलसी द्वारा लिखित नहीं है परन्तु इस आत्मकथा के लेखन का प्रारंभ गुरुदेव ने स्वयं किया। उसके पश्चात् उसका अधिकांश भाग गुरुदेव तुलसी की हस्तलिखित डायरियां, जैन भारती, विज्ञप्ति, ख्यात आदि के आधार पर साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने तैयार किया है, तैयार किया जा रहा है। इस आत्मकथा के द्वारा गुरुदेव तुलसी को अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

मुझे यह जानकारी मिली कि परमपूज्य गुरुदेव आचार्य महाप्रज्ञजी ने गुरुदेव श्री तुलसी की प्रेरणा से आत्मकथा लिखने का निर्णय किया। उन्होंने आत्मकथा का बहुलांश हिस्सा तो स्वयं अपने मुखारविन्द से डिक्टेशन देकर लिखाया और कुछ हिस्सा अपने ही पूर्व-प्रदत्त प्रवचन आदि से संग्रहण करने का निर्देश फरमाया।

विशेष बात यह है कि सन् २००० में मैंने परमपूज्य आचार्यश्री के आदेश से श्रीगंगानगर अंचल की यात्रा की। लगभग चार मास की उस यात्रा में मेरा परमपूज्यश्री के साथ संवाद-पत्रों का आदान-प्रदान हुआ। पत्रों के उस आदान-प्रदान को भी उन्होंने अपनी आत्मकथा का एक हिस्सा बना लिया और मेरे द्वारा प्रदत्त पत्रों पर टिप्पणियां करके एक सुन्दर मुक्ताहार-सा बना दिया।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने एक अप्रमत्त साधक का जीवन जीया। उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। वे मौलिक चिन्तक, कवि, साहित्य-स्रष्टा और अन्वेषक थे। उन्होंने सामयिक और शाश्वत, दोनों समस्याओं के समाधान के प्रयत्न किए। आगम संपादन का अनुत्तर कार्य परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ की जैन शासन और भारतीय प्राच्य विद्या को अनमोल देन है। अणुव्रत के दार्शनिक पक्ष को प्रस्तुत करने में वे अग्रणी रहे। उन्होंने विलुप्त जैन साधना पद्धति का संधान कर प्रेक्षाध्यान की पद्धति का प्रणयन किया। जीवन विज्ञान, अहिंसा प्रशिक्षण आदि उपक्रम उनके पारदर्शी चिन्तन के स्फुलिंग हैं। एक विनीत और समर्पित शिष्य के रूप में पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी के चिन्तन और कार्यों को मूर्त रूप देने में अपनी मेधा शक्ति और कर्मजा शक्ति का भरपूर उपयोग किया। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी के महाप्रयाण के पश्चात् न केवल तेरापंथ धर्मसंघ एवं जैन शासन की समुन्नति के लिए, अपितु समग्र मानवीय चेतना के समुन्नयन के लिए निरंतर चिंतनशील और क्रियाशील रहे। उन्होंने अहिंसा यात्रा के माध्यम से अहिंसक चेतना के जागरण और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रशस्य प्रयत्न किया। ऐसे महामनीषी की आत्मकथा पाठक के लिए बोध और संबोध का हेतु बन सकती है।

मुख्य-नियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी वर्षों से परमपूज्यश्री की सन्निधि में बैठकर उनके साहित्य का श्रुत-लेखन करती रही हैं। यह उनके विशेष सौभाग्य की बात है। इस आत्मकथा के श्रुतलेखन में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके योग से पाठकों तक यह आत्मकथा पहुंच रही है।

प्रस्तुत आत्मकथा के संयोजन-संपादन में मुनि धनंजयकुमारजी का भी उल्लेख्य योगदान है। वे लम्बे काल से परमपूज्यश्री के साहित्य संपादन में संलग्न रहे हैं। परमपूज्यश्री के साहित्य को जनता तक पहुंचाने में उन्होंने एक सेतु का काम किया है।

काश! यह पुरोवाक् स्वयं परमपूज्य गुरुदेव लिखाते। स्वयं की आत्मकथा का पुरोवाक् स्वयं के द्वारा होता, यह अति शोभनीय होता, परन्तु वैसा संभव नहीं हो सका और यह कार्य करने का अवसर मुझे मिल रहा है। इस प्रकार परमपूज्यश्री की आत्मकथा में मुझे भी सहभागी बनने का मौका मिल रहा है।

इस महनीय आत्मकथा का दूसरा-भाग पाठकों के सामने प्रस्तुत हो रहा है। प्रबुद्ध और बुद्ध सभी लोगों को इससे लाभान्वित होने का मौका मिल सकेगा।

१७.७.२०१३ **—आचार्य महाश्रमण**

लाडनूं

सम्पादकीय

गुरु-शिष्य परम्परा भारतीय संस्कृति का जीवन्त हस्ताक्षर है। शिष्यत्व और गुरुत्व में एक अविच्छिन्न अनुबंध है। जहां शिष्यत्व है वहां गुरुत्व है और जहां गुरुत्व है वहां शिष्यत्व है। अच्छा शिष्य ही अच्छा गुरु बन सकता है, बनता है। प्राकृत भाषा के मार्मिक पद में इसी सचाई का बिम्ब है–

सीसस्स हुंति सीसा, न हुंति सीसा असीसस्स।

शिष्य के शिष्य होते हैं, अशिष्य के शिष्य नहीं होते।

शिष्यत्व के बिना गुरुत्व का आविर्भाव नहीं होता। गुरुत्व की आधार-भूमि है शिष्यत्व। गुरुत्व की उपलब्धि के लिए जरूरी है शिष्यत्व की साधना।

दुर्लभ होता है सुगुरु और सुशिष्य का योग। गुरु है और गुरुत्व नहीं है तो गुरु-पद श्रद्धेय नहीं बनता। शिष्य है और शिष्यत्व नहीं है तो शिष्य-पद आदर्श नहीं बनता।

वे गुरु धन्य होते हैं, जिन्हें योग्य और विनीत शिष्यों का समुदाय मिलता है। वे शिष्य धन्य होते हैं, जो सुगुरु के कार्यों को आगे बढ़ाते हैं, सुगुरु के हृदय में अपना स्थान बनाने में सफल होते हैं।

● परम श्रद्धेय आचार्यश्री तुलसी और परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ–दोनों युगप्रधान आचार्य अच्छे शिष्य भी थे और अच्छे गुरु भी। इन दोनों महापुरुषों ने बीसवीं सदी के द्वितीय दशक में जन्म लिया। अज्ञात जगत् में इनका संबंध कब से है, इसकी व्याख्या करना कठिन है। ज्ञात जगत् में इन दोनों महापुरुषों में पहला संपर्क सन् १९३० में हुआ। प्रथम क्षण में दोनों ने एक-दूसरे को देखा, अपलक निहारा और एक अवाच्य संबंध निर्मित हो गया। इस संबंध की कोई भाषा-परिभाषा नहीं हो सकती।

२९ जनवरी १९३१ को पूज्य कालूगणी ने बालक नथमल को दीक्षित किया और उसी दिन मुनि तुलसी के पास रहने का निर्देश दिया। २९ जनवरी १९३१ (माघ शुक्ला दशमी वि.सं. १९८७) से २३ जून १९९७ (आषाढ़ कृष्णा तृतीया वि.सं. २०५४) तक मुनि नथमल आचार्य तुलसी की निर्मल छत्रछाया में रहे। विद्या गुरु और विद्यार्थी के रूप में प्रारंभ हुई उस यात्रा में अनेक पड़ाव आए और हर पड़ाव उनके आत्मीय संबंधों को प्रगाढ़ बनाता गया।

● एक ओर था अद्‌भुत समर्पण, असीम श्रद्धा और अप्रतिहत विनय, दूसरी ओर था अमित वात्सल्य, अनाविल स्नेह और अतुल विश्वास। विनय और वात्सल्य, श्रद्धा और स्नेह, समर्पण और विश्वास के धागे कभी शिथिल नहीं हुए, टूटे नहीं, उनमें कभी गांठ नहीं लगी। तर्क प्रखर बनता गया, बुद्धि विकसित होती रही, बुद्धि से परे प्रज्ञा की सीमा में प्रवेश हो गया, प्रज्ञा का प्रस्फोट होता रहा, अध्यात्म और धर्मसंघ दोनों क्षेत्रों में शिखर पर आरोहण कर लिया फिर भी श्रद्धा, विनय और समर्पण अविचल ही नहीं रहे, बढ़ते चले गए। इस तथ्य की संवादिता आचार्यश्री तुलसी के इस वक्तव्य में उपलब्ध होती है–

'फूल के साथ जैसे कांटा आता है, मेघ के साथ जैसे आंधी आती है और प्रकाश के साथ जैसे कज्जल आता है वैसे ही ज्ञान के विकास के साथ, प्रतिष्ठा के साथ अहं भी आता है। किन्तु विकास के साथ इनमें किसी भी प्रकार का अहंकार नहीं देखा। यह कोई कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। ये जितने निरहंकारी बचपन में थे, उतने ही विकास के समय रहे। मैं यह भी कह सकता हूं कि ये जैसे-जैसे विकास करते गए, वैसे-वैसे और अधिक विनम्र बनते गए।'

● आचार्यश्री महाप्रज्ञ का कथन भी इसी तथ्य पर हस्ताक्षर करता प्रतीत होता है–

'आप मेरे कर्ता हैं। मैं आपकी कृति हूं। मैं क्या हूं, मैं नहीं जानता। क्या होता है, कैसे होता है, यह भी मैं नहीं जानता। केवल इतना जानता हूं कि कुछ हो रहा है। यह आपका प्रसाद है। आपने मुझे विकास के जितने अवसर दिए हैं, किसी एक गुरु ने अपने शिष्य को इतने अवसर दिए हों, खोज का विषय है।'

● अभेद्य और अकाट्य थी आध्यात्मिक रिश्तों की डोर। प्रायः निरंतर साथ रहना और साथ जीना। व्यक्ति, संघ, समाज, राष्ट्र और विश्व की समस्याओं पर विचार-विमर्श और विश्लेषण। समाधान की तलाश और समाधान का प्रयत्न। विचार की पूरी स्वतंत्रता पर कभी विचार-भेद को अवकाश नहीं मिला। मतभेद और मनभेद का तो प्रश्न ही नहीं। प्रतिक्षण एकात्मकता, तादात्म्य और अभिन्नता की अनुभूति, द्वैत में अद्वैत भाव की प्रतिष्ठा।

● विज्ञान, तर्क और बौद्धिकता के युग में आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ गुरु-शिष्य का आदर्श युगल थे। जितने विलक्षण गुरु और उतने विलक्षण शिष्य। जैन धर्म-दर्शन के उद्‌भट विद्वान् पंडित दलसुख मालवणिया ने गुरु-शिष्य के इन्हीं अनुपमेय संबंधों को देख कर कहा था–आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ में जैसा गुरु-शिष्य का संबंध है वैसा पन्द्रह सौ वर्षों के इतिहास में खोजना होगा।

● 'तुलसी-महाप्रज्ञ का युग बार-बार नहीं आएगा'–आचार्यश्री तुलसी के इन शब्दों में भी यही प्रतिध्वनि सुनाई देती है। गुरुदेव की डायरी का यह पृष्ठ कितना मार्मिक है–

'मेरा और महाप्रज्ञ का इस रूप में योग एक नियति है और वह बहुत शुभ है, ऐसा प्रतीत हो रहा है। उनके बिना मैं और मेरे बिना वे एकाकीपन या अधूरापन अनुभव करते हैं। एक दुर्लभ योग बना है। यह कब

तक बना रहता है, देखना है। जब तक शासन-सेवा का योग है, तब तक बना रहेगा। फिर चिन्ता भी क्या है, होने का काम होता रहेगा। हम दोनों का योग है, यह आत्मतोष का विषय है।

युवाचार्य महाप्रज्ञ के पास दार्शनिक चिन्तन और बुद्धि वैभव अपूर्व है। इनकी तुलना में बहुत कम व्यक्ति आ पाएंगे। इनके पास प्रज्ञा है, प्रतिभा है और नव-नव उन्मेष लानेवाली मेधा है। समझाने का तरीका ऊंचा है। वैज्ञानिक दृष्टि है। वक्तव्य है। साधना है। एक व्यक्ति में अनेक उपलब्धियां हैं। विरल व्यक्तित्व है। ऐसे युवाचार्य को पाकर मैं अपने आपको गौरवशाली मानता हूं। इनके कारण तेरापंथ धर्मसंघ की प्रभावना बहुत वृद्धिंगत हुई है। इन्होंने उच्च कोटि का साहित्य-सृजन किया है। प्रसिद्ध कवि दिनकर आदि ने इनको विवेकानन्द का स्थान ठीक ही दिया है।'

• 'तू कर्ता है, मैं तेरी कृति हूं।' 'आप नियोक्ता हैं, मैं प्रयोक्ता हूं।' 'कल्पना करना आपका काम है और भाष्य करना मेरा काम है'–परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ के इन वाक्यों में जहां समर्पण और शिष्यत्व के अप्रतिम रूप का साक्षात्कार है वहां गुरु-शिष्य के विरल योग का अनुपम चित्रांकन है।

• विकास के अवसर प्रत्येक व्यक्ति को मिलते हैं किन्तु विकास के शिखर को वही छू सकता है, जो विकास के अवसरों का सम्यक् उपयोग करना जानता है। आचार्यश्री तुलसी ने आचार्यश्री महाप्रज्ञ को विकास के बहुत अवसर दिए, आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने उनका सम्यक् उपयोग किया और वे महान् बन गए, विकास के शलाकापुरुष बन गए।

• विकास का बीज मंत्र है उत्कृष्ट गुणानुराग। अतिशय गुणानुराग की मनोवृत्ति ही प्रकृष्ट प्रमोद-भाव को जन्म देती है। आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ अतिशय गुणानुरागी थे इसीलिए उनका प्रमोद-भाव भी प्रकृष्ट था। एक शिष्य अपने गुरु का गुणगान करे, स्तवना और अभ्यर्थना करे–यह स्वाभाविक है किन्तु एक गुरु अपने शिष्य की विशेषताओं का उदात्तभाव से आख्यान करे–यह एक असाधारण घटना है। आचार्यवर के जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग आए, जब गुरुदेव ने आचार्यवर की उन्मुक्त भाव से वर्धापना की।

१ जुलाई १९८९ का घटना-प्रसंग आज भी मेरे स्मृति पटल पर सजीव बना हुआ है। उस दिन आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी थी। प्रातःकालीन प्रवचन के समय प्राग् वक्तव्य के मध्य मैंने कहा–आज युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ सत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं।

पूज्य गुरुदेव ने युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के कर्तृत्व के विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन करते हुए कहा–हमें यह ज्ञात ही नहीं था कि आज महाप्रज्ञजी का जन्म दिन है।

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ ने तत्काल कहा–जन्मदिन अज्ञात रहे, यह अच्छा है।

'यदि ज्ञात हो जाए तो क्या करना चाहिए'–यह कहते हुए गुरुदेव ने एक भावपूर्ण पद्य के साथ शुभकामनाएं दी–

शुभ सत्तरवें वर्ष में, प्रमुदितमना प्रवेश।
आज कर रहे हैं युवा, युवाचार्य अक्लेश॥

इस अवसर पर समूचे संघ ने अभिवादन की मुद्रा में खड़े होकर अपनी श्रद्धा समर्पित की। उस समय का वातावरण बड़ा हृदयग्राही था। इस अनायोजित और अनौपचारिक कार्यक्रम ने सबके दिल को छू लिया।

● सन् १९९६। जैन विश्व भारती में पूज्य गुरुदेव का मंगल प्रवास। आचार्यश्री महाप्रज्ञ प्रवचन से पूर्व पूज्य गुरुदेव को वंदना करने पधारे। उस समय साधु-साध्वियों की परिषद् में व्यवहार-बोध का वाचन चल रहा था। पूज्य गुरुदेव व्यवहार-बोध में आचार्यश्री महाप्रज्ञ के बारे में लिखे गए पद्य का विश्लेषण करा रहे थे। पूज्य गुरुदेव ने आचार्यवर को वह पद्य सुनाया–

महाप्रज्ञ को सम्मुख रख सम, शम, श्रम साधें,
श्रद्धा ज्ञान चरित्र त्रयी को ही आराधें।
मन उत्साही मधुर प्रमित वच काय सजग है,
अंतरंग धर्मानुराग रंजित रग रग है॥

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा–गुरुदेव! व्यवहार-बोध बहुत अच्छी और उपयोगी कृति है। शिक्षाप्रद और प्रेरणाप्रद है। इसमें एक कमी रह गई। आपने अतीत से वर्तमान तक अनेक व्यक्तियों को प्रतीक बना कर संघ को शिक्षा और प्रेरणा दी है पर अपना नाम छोड़ दिया।

गुरुदेव बोले–अपने बारे में मैं कैसे लिखूं?

आचार्यवर ने निवेदन किया–तब इसकी पूर्ति मैं करूंगा। आचार्यवर ने गुरुदेव के संदर्भ में दो पद्य बनाकर निवेदित किए–

नई कल्पना नई योजना, तदनुरूप पुरुषार्थ अशेष।
सूक्ष्मदर्शिता गुरु तुलसी की, जीवन अनबोला संदेश॥
समता क्षमता और संतुलन, जागरूकता का नवनीत।
ग्रहणशीलता आर्यचरण से, पढ़ पाएं हम पाठ पुनीत॥

● एक शिष्य अपने गुरु का प्रवचन सुने, उपदेश और शिक्षा-पद ग्रहण करे–यह एक नैसर्गिक विधि हैं किन्तु एक गुरु अपने शिष्य का प्रवचन सुने, ग्राहक बुद्धि से सुने और उसका वर्धापन करे–यह एक अलौकिक प्रसंग है। इन अलौकिक और असाधारण घटना-प्रसंगों का जन्म अतिशय गुणानुराग और प्रकृष्ट प्रमोद-भाव की उर्वर भूमि में होता है। पूज्य गुरुदेव तुलसी की दैनंदिनी की ये पंक्तियां गुरु की गुरुता का अपूर्व निदर्शन है–

'६ अप्रैल १९८८। रात्रि में विशेष व्याख्यानमाला का आयोजन हुआ। व्याख्यानमाला युवाचार्यजी ने चलाई। अच्छी आकर्षक रही। युवाचार्य महाप्रज्ञ भाषण में नवीनता लाते रहते हैं। इनका व्याख्यान श्रवणीय और मननीय होता है। इस क्षेत्र में इनकी प्रतिभा विलक्षण है। इनका भाषण मैं स्वयं पूरे ध्यान से और ग्राहकबुद्धि से सुनता हूं।'

● प्रत्येक शिष्य गुरु को अपना सहारा मानता है, आलंबन और आधार के रूप में स्वीकार करता है। गुरु हर शिष्य का सहारा बनते हैं किन्तु कोई विरल शिष्य ऐसा होता है, जो अपने गुरु का सहारा बनता है, गुरु जिसे अपना सहारा मानते हैं–

'मुनि नथमलजी का चिन्तन बहुत अच्छा है। वृत्ति योगनिष्ठ है। ध्यान में अभिरुचि है। कायोत्सर्ग के रसिक हैं। श्रद्धालु हैं। संकल्प के दृढ़ हैं। ऋजु हैं। साधनाशील हैं। अतएव इनका मुझे बहुत सहारा है।'

● हर शिष्य के हृदय में गुरु की प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, गुरु के प्रति सहज श्रद्धा और आदर का भाव होता है। वे शिष्य विरल होते हैं, जिनका गुरु के हृदय में स्थान होता है। महाप्रज्ञ उन विरल शिष्यों

में थे, जिनका गुरु के हृदय में अद्वितीय और अप्रतिम स्थान था। एक शिष्य के लिए इससे बड़ी उपलब्धि क्या हो सकती है? जहां अनेक व्यक्तियों के लिए यह प्रसन्नता और उल्लास का कारण बना वहां कुछ व्यक्तियों के लिए ईर्ष्या और आक्रोश का कारण भी बना। जिसके अंतःकरण में गुणानुराग और प्रमोदभाव का विकास नहीं होता, उसके हृदय में ईर्ष्या और विद्वेष की आग सुलगती रहती है। ईर्ष्या की बीमारी का इलाज क्या कोई कर सकता है? गुरुदेव तुलसी के इन आत्मोद्‌गारों में मानवीय दुर्बलता का चित्रण है, यथार्थ की स्वीकृति है और अपने हृदय के असीम उल्लास की अभिव्यक्ति है–

'आचार्य भिक्षु युवाचार्य भारमलजी के लिए अनेक महत्त्वाकांक्षी साधुओं के कोपभाजन बने रहे। जयाचार्य युवाचार्य मघवा के लिए तात्कालिक अनेक साधुओं के कोपभाजन बने। वैसे ही आचार्य तुलसी भी युवाचार्य महाप्रज्ञ के लिए अनेक साधुओं के आक्रोश के निमित्त बने, यह तथ्य है। पर इसमें भारमल, मघवा या महाप्रज्ञ का क्या दोष? यह तो आचार्यों की अपनी-अपनी पसन्द है। धर्मसंघ का बड़ा दायित्व उन पर होता है। वे किसी के आक्रोश या कोप के कारण अपने दायित्व को गौण नहीं कर सकते। कोप/आक्रोश करनेवाले भले अपने जीवन को बरबाद कर दें।

युवाचार्य भारमलजी और युवाचार्य मघराजजी अपने युग के विशिष्ट व्यक्तित्व हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर महाप्रज्ञ इस युग में एक विलक्षण व्यक्तित्व हैं। आज का युग विचित्र है। हर किसी को मान्यता देता ही नहीं। बड़ा जटिल जमाना है। महाप्रज्ञ को इस युग ने मान्य कर लिया, यह असामान्य बात है। मैं इसे संघ का भाग्य मानता हूं। नहीं, अपना भाग्य भी मानता हूं कि मुझे ऐसे शिष्य मिले। असाधारण प्रतिभा। अतीन्द्रिय ज्ञान का अजस्र स्रोत। विनम्र, अनुशासित, प्रेक्षाध्यान के प्रणेता और सूझ-बूझ के धनी। यों तो प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ कमी देखी जा सकती है। पर वैशिष्ट्य में कमी धूमिल हो जाती है।

महाप्रज्ञ कभी-कभी अस्वस्थ हो जाते हैं तब मेरी नींद उचट जाती है। सामने अंधेरा-सा दीखने लगता है। ये ठीक हो जाते हैं तब संतोष मिलता है। मेरा किसी व्यक्ति के प्रति कोई मोह कभी नहीं रहा, भले वह मेरा निकट-से-निकट ज्ञाति भी क्यों न हो। मेरा आकर्षण वैशिष्ट्य के प्रति होता है।'

● आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ के संबंध आंतरिक थे। उनके संबंधों में सहज सरलता थी। आश्वास और विश्वास का स्वर था। निर्मल धर्मानुराग की सरिता संयम और समता के तटों के बीच प्रवाहित होती थी। इसीलिए उनके आत्मीय संबंध निष्कलुष, निःस्वार्थ और श्रेयस्कर बने रहे। **मैत्री परेषां हितचिन्तनम्**–यह सूक्त उनके संबंधों की आधारभूमि था इसीलिए व्यक्ति, समाज, संघ, राष्ट्र और विश्व चेतना की पवित्रता के लिए दोनों महापुरुषों ने अपनी शक्ति, समय और श्रम का जीवन के अंतिम क्षण तक नियोजन किया।

● प्रस्तुत ग्रंथ आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अंतर्संबंधों का जीवन्त दस्तावेज है। इसके प्रथम तेरह अध्यायों का स्रोत है 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' ग्रंथ के तेईस भाग। परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने इस ग्रंथ का संयोजन, नियोजन, आकल्पन एवं प्रस्तुतीकरण नई सोच और नई कल्पना के साथ किया। उसकी महनीय निष्पत्ति है एक अपूर्व और विलक्षण ग्रंथ 'मैं और मेरे गुरु।' यह समर्पित शिष्य के द्वारा महान् गुरु के दर्पण में अपने बिम्ब को निरखने-परखने का प्रयत्न है।

● एक गुरु ने अपने शिष्य को कितनी प्रेरणाएं दी? कितने विकास के अवसर दिए? शिष्य की प्रतिभा को कैसे निखारा? कैसे शिखरों पर चढ़ाया? संघ का सर्वेसर्वा बनाया? गुरु शिष्य में कितना अद्वैत और तादात्म्य-भाव था? एक अबोध शिशु ने कैसे प्रबुद्धता के हिमालय का आरोहण किया? कैसे अध्यात्म-साधना की गहराई में उतरा? दर्शन और चिन्तन के क्षेत्र में मौलिक प्रस्थापनाएं की? कैसे अपने गुरु के सपनों को आकार दिया? युग के लिए कल्याणकारी और वरदायी अवदान प्रस्तुत किए? मन के आकाश में अवकाश पाने वाले इन प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत ग्रंथ में प्राप्त होता है।

● अनेक शिष्य अपने गुरु की जीवन-गाथा लिखते हैं, गुरु के व्यक्तित्व और कर्तृत्व को प्रस्तुत कर धन्यता की अनुभूति करते हैं। परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने भी अपने गुरु आचार्यश्री तुलसी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर अनेक आलेख लिखे। **'धर्मचक्र का प्रवर्तन'** ग्रंथ के रूप में जीवन-गाथा का आलेखन किया। **'तुलसी विचार दर्शन'** के रूप में अपने गुरु के दर्शन और चिन्तन को प्रस्तुत करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रंथ रचा। **'तुलसीयशोविलास'** ग्रंथ में अपने गुरु के जीवन-दर्शन और अवदानों का काव्य की भाषा में हृदयस्पर्शी चित्रण का उपक्रम किया। एक शिष्य का गुरु के प्रति यह अहोभाव और कृतज्ञता की अभिव्यक्ति है। किन्तु एक गुरु अपने शिष्य के संदर्भ में इतना लिखे कि एक विशालकाय ग्रंथ बन जाए–यह इतिहास-विरल घटना है।

अनेक बार अनेक प्रबुद्ध व्यक्तियों ने कहा–आचार्यश्री तुलसी ने आचार्यश्री महाप्रज्ञ के बारे में जितना कहा और जितना लिखा, किसी गुरु ने अपने शिष्य के बारे उतना कहा अथवा लिखा हो–यह अनुसंधान का विषय है। **'मैं और मेरे गुरु'** इस दृष्टि से अनुशीलन का आधार-ग्रंथ बन सकता है।

● परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ अनेक बार इस भाषा में कहते थे—मेरे लिए हजार श्लाघा-वाक्यों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है मेरे गुरु का एक वचन। गुरु-वचन उनके लिए सब कुछ था, अनुल्लंघनीय लक्ष्मण-रेखा थी।

आचार्यवर ने सन् २००९ लाडनूं चातुर्मास में एक दिन मुझे (मुनि धनंजय) और मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी से कहा–पूज्य गुरुदेव ने मेरे संदर्भ में अपनी डायरियों में जो कुछ लिखा है, उसका संकलन करना है। आचार्यवर का निर्देश रहा–'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' में जहां कहीं गुरुदेव ने उल्लेख किया है, उसे यथाशीघ्र लिपिबद्ध करो।' 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' ग्रंथमाला की स्वाध्याय-यात्रा शुरू हो गई। आचार्यवर ने स्वयं अनेक डायरियों का निरीक्षण और अवलोकन किया। मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी प्रतिदिन संकलित सामग्री आचार्यवर को निवेदित करती और आचार्यवर उस पर अपनी टिप्पणी लिखा देते। संकलित सामग्री के आधार पर अध्याय और उसकी विषय-वस्तु का प्रारंभिक रूप में निर्धारण हो गया।

दिसम्बर २००९ से मार्च २०१० तक आचार्यवर का प्रवास श्रीडूंगरगढ़ में रहा। उन दिनों मैं आत्मकथा के प्रथम भाग **'यात्रा : एक अकिञ्चन की'** के संपादन में संलग्न था। आचार्यवर के जन्मदिन पर उस ग्रंथ के लोकार्पण का निश्चय हो चुका था। मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी ने निवेदन किया–'आचार्यवर! आत्मकथा के दूसरे भाग की सामग्री को दिखाने की कृपा कराएं।

आचार्यश्री ने मेरी ओर संकेत करते हुए कहा–'यह फाइल मुनि धनंजयजी को दे दो। अब इसमें जो कुछ करना है, वह इनका काम है।'

उसी दिन आचार्यवर ने इस ग्रंथ का नामकरण भी कर दिया–यह 'आत्मकथा' का दूसरा भाग होगा और इसका नाम रहेगा **'मैं और मेरे गुरु।'**

आचार्यवर ने प्रस्तुत ग्रंथ के संदर्भ में मुझे अनेक यथोचित निर्देश प्रदान किए।

मैंने निवेदन किया–'यात्रा : एक अकिञ्चन की' ग्रंथ के संपादन के बाद यह कार्य करने का भाव है।'

आचार्यवर का ९ मई २०१० को सरदारशहर में महाप्रयाण हो गया। मन का आहत होना स्वाभाविक था फिर भी स्वयं को संभाला, कार्य में प्रवृत्त हुआ और निर्णीत समय पर आत्मकथा का पहला भाग प्रकाश में आ गया।

मैं आत्मकथा के दूसरे भाग का कार्य शुरू करने के बारे में सोचता, उससे पहले ही स्वास्थ्य की समस्या प्रस्तुत हो गई। हाथ में इतनी वेदना की स्थिति बनी कि कलम पकड़ना भी मुश्किल था, कलम चलाने का तो प्रश्न ही कहां? यह समस्या कमोबेश लगभग दस मास तक रहीं। स्वास्थ्य की दृष्टि से सिरियारी में आचार्य भिक्षु समाधि स्थल के परिपार्श्व में मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' की सन्निधि में लगभग तीन मास प्रवास रहा। वहां स्वास्थ्य में अपेक्षित सुधार आया। केलवा चतुर्मास में अन्यान्य कार्यों की प्राथमिकता रही इसलिए यह कार्य स्थगित ही रहा।

आचार्यवर के अनुग्रह से सन् २०१२ में जैन विश्व भारती में दीर्घकालीन प्रवास का अवसर मिला। लक्ष्य बना–परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी के शुभागमन से पूर्व इस कार्य को संपन्न करना है।' तदनुरूप संकल्प और पुरुषार्थ चलता रहा, सफलता प्रत्यक्ष हो गई।

• सन् १९९५ में पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी का जैन विश्व भारती में चतुर्मास था। एक दिन आचार्यवर गुरुदेव की सन्निधि में विराजित थे। प्रसंगवश विज्ञप्ति का लोकप्रिय स्तंभ 'संस्मरणों का वातायन' चर्चा का विषय बन गया। संतों ने कहा–इस बार 'संस्मरणों का वातायन' में आचार्यवर के बारे में गुरुदेव ने बहुत सुन्दर लिखा है।

आचार्यवर ने कहा–'गुरुदेव की आत्मकथा धर्मसंघ के विकास और नवोन्मेष की गाथा है। जिस दिन समग्र आत्मकथा प्रकाश में आएगी, तेरापंथ के इतिहास की अनमोल निधि बन जाएगी।'

संतों ने गुरुदेव से निवेदन किया–'आचार्यश्री को भी अपनी आत्मकथा लिखनी चाहिए।'

गुरुदेव ने संतों के इस कथन पर मुस्कुराते हुए टिप्पणी की–'महाप्रज्ञजी की आत्मकथा तो मेरी डायरियों में अंकित है। मेरे हर कार्य और गतिविधि के साथ ये अभिन्न भाव से जुड़े रहे हैं।'

आचार्यश्री–'मेरी जीवन-पोथी के हर पन्ने पर पूज्य गुरुदेव के हस्ताक्षर हैं।'

गुरुदेव–'प्रत्येक कार्य में उनकी सहमति ही नहीं, सहभागिता रही है। कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जिसमें दोनों का योग नहीं है। हमारे कार्य और विचारों में सदा तादात्म्य रहा है।'

• 'मैं और मेरे गुरु' कृति के संपादन-काल में इस रहस्यपूर्ण कथन की सत्यता का अनुभव होता रहा–तुलसी महाप्रज्ञ हैं और महाप्रज्ञ तुलसी हैं। आचार्य तुलसी को जानने के लिए आचार्य महाप्रज्ञ को समझना जरूरी है और आचार्य महाप्रज्ञ को जानने के लिए आचार्य तुलसी को समझना जरूरी है। 'मैं और मेरे गुरु' ग्रंथ को पढ़ने का अर्थ है आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ को एक साथ पढ़ना। इसमें

गुरु-शिष्य के जीवन का निर्मल बिम्ब ही नहीं है, अपितु धर्मसंघ और मानव जाति के शुभ भविष्य की गाथाएं भी प्रतिबिम्बित हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ का पुरोवाक् परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी ने लिखा है। यह आचार्यवर की अपने गुरु के प्रति विनम्र भावांजलि है। पूज्यवर का मार्गदर्शन और दिशादर्शन हमें सदैव उपलब्ध रहा है। हम उनके अनुग्रह के प्रति अंतःकरण से प्रणत हैं। यही कामना करते हैं–आचार्यवर की कुशल अनुशासना में सृजन और साधना में गतिशील रहते हुए धर्मसंघ की सेवा करते रहें।

हम सादर आभार व्यक्त करते हैं महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी के प्रति, जिनके द्वारा संपादित 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' के तेईस भाग प्रस्तुत ग्रंथ-संरचना के प्रामाणिक स्रोत बने। उनकी सारस्वत साधना अभिनंदनीय और उत्प्रेरक है।

इस ग्रंथ की संकलना में उल्लेखनीय श्रम किया है मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी ने। उनका बार-बार निवेदन, आग्रह और अनुरोध इस आत्मकथा की निष्पत्ति का प्रमुख कारक तत्त्व है। एक महापुरुष की आत्मकथा की प्रस्तुति में श्रेयोभागी बनकर उन्होंने जहां अपने शिष्य-धर्म का निर्वाह किया है वहीं महार्घ्य ज्ञानराशि का संचयन किया है। गुरु-सन्निधि के वे क्षण उनके जीवन की अमूल्य निधि बन गए हैं।

प्रस्तुत प्रसंग में सहवर्ती मुनि अक्षयप्रकाशजी, मुनि आकाशकुमारजी और मुनि सुधांशुकुमारजी का आत्मीय सहयोग और सेवाभाव भी स्मरणीय है जिनके कारण मैं प्रस्तुत कार्य में निश्चिन्तता से संलग्न रह पाया। मैं इनके सर्वतोमुखी विकास की मंगलभावना करता हूं। इस कृति की निष्पत्ति में अनेक लोग प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में सहयोगी बने हैं। हम उनके प्रति मंगल प्रमोदभावना व्यक्त करते हैं।

● परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ की आत्मकथा का दूसरा भाग 'मैं और मेरे गुरु' एक अनुत्तर और अद्वितीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में पद पद पर गुरु की गुरुता और शिष्य के शिष्यत्व का साक्षात्कार होता है। आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ के आध्यात्मिक संबंध, मौलिक चिन्तन, दूरदृष्टि और क्रांतिकारी अवदान–प्रस्तुत ग्रंथ की अंतरात्मा में समाए हुए हैं। इसका अध्ययन, मनन और अनुशीलन करने वाला व्यक्ति उन रहस्य-सूत्रों को उपलब्ध कर सकता है, जिनसे व्यक्ति महान् बनता है।

यह प्रसन्नता का विषय है–प्रस्तुत ग्रंथ पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी की जन्मभूमि में आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष के परिपार्श्व में परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी की मंगल सन्निधि में लोकार्पित हो रहा है।

गुरु-युग की अनुपमेय आत्म-गाथा का गुरु-पूर्णिमा के पावन अवसर पर पूज्य गुरुवर के चरणों में समर्पण मेरे लिए अतिरिक्त आह्लाद और उल्लास का प्रसंग है।

आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा
वि.सं. २०७०
२२ जुलाई २०१३
जैन विश्व भारती

मुनि धनंजयकुमार

अनुक्रम

१.	आशीर्वाद और प्रेरणा	१७-३१
२.	विकास के अभिनव आयाम	३२-४९
३.	प्रेरणा सृजन की	५०-६०
४.	आगम संपादन	६१-७५
५.	वक्तृत्व	७६-१११
६.	अध्यात्म योग की नई दिशाएं	११२-१३८
७.	संघीय व्यवस्था और अनुशासन	१३९-१७०
८.	अंतरंग संघर्ष के क्षण	१७१-१७८
९.	चिन्तन के क्षण	१७९-१९४
१०.	वर्धापना और अभ्यर्थना	१९५-२१६
११.	वार्तालाप और संगोष्ठी	२१७-२३३
१२.	स्वतंत्र विहार और मिलन	२३४-२५३
१३.	स्वास्थ्य	२५४-२५९
१४.	पत्र : परोक्ष का प्रत्यक्षीकरण	२६०-३०४
१५.	आलेख : साक्षात्कार	३०५-३२३
१६.	आशीर्वचन	३२४-३३४
१७.	महान् सौभाग्य-क्षण	३३५-३५८
१८.	परिशिष्ट	३५९-३६८

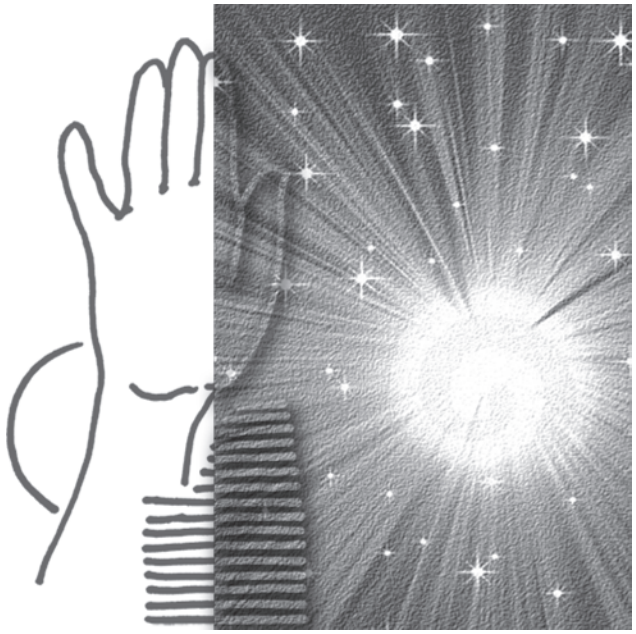

१

आशीर्वाद और प्रेरणा

कुशल लेखक की लेखनी से जो वर्णांकन हुआ है, वह शब्दातीत है। शब्द उसका मूल्यांकन नहीं कर सकते।

कुशल चित्रकार की तूलिका से जो रेखांकन हुआ है, उसकी विचित्रता का अंकन एक कलाकार ही कर सकता है।

मेरे जीवन के बारे में गुरुदेव ने जो शब्दांकन और चित्रांकन किया है वह मेरे लिए आशीर्वाद, प्रेरणा और अपथ का पथ है। उसकी गहराई में जो छिपा हुआ है, उस तक पहुंचने के लिए सूक्ष्म मनीषा की अपेक्षा है।

जैन दर्शन के सुप्रसिद्ध विद्वान् पंडित दलसुखभाई मालवणिया ने कहा–'आचार्य तुलसी और युवाचार्य महाप्रज्ञ में जैसा गुरु शिष्य का संबंध है वैसा १५०० वर्ष के इतिहास में खोजना होगा।'

मैं गुरुदेव के आलेखों को उद्धृत कर रहा हूं और इसलिए कर रहा हूं कि एक अलौकिक दर्पण में अपनी आकृति प्रकृति को देख सकूं और आवरणों की ओट में छिपी हुई सचाई तक पहुंच सकूं।

“मेरे जीवन के बारे में गुरुदेव ने जो शब्दांकन और चित्रांकन किया है वह मेरे लिए आशीर्वाद, प्रेरणा और अपथ का पथ है। उसकी गहराई में जो छिपा हुआ है, उस तक पहुंचने के लिए सूक्ष्म मनीषा की अपेक्षा है।”

प्रथम साक्षात्कार

दस वर्ष की अवस्था में मैंने मुनि तुलसी को पहली बार देखा। विलक्षण था मिलन का पहला क्षण। हम कुछ क्षण अपलक एक-दूसरे को निहारते रहे। उस मिलन में वाच्य कम था, अवाच्य अधिक। वस्तुतः वह केवल दो व्यक्तियों की आंखों का ही नहीं, दो व्यक्तियों के अंतःकरण का मिलन था। मिलन के प्रथम क्षण में आत्मीय संबंध और अनुबंध का जो सूत्र निर्मित हुआ, वह प्रगाढ़, प्रगाढ़तर, प्रगाढ़तम बनता रहा। द्वैत, अद्वैत की भूमिका में प्रतिष्ठित हो गया। आचार्यवर ने प्रथम साक्षात्कार का रेखांकन इन शब्दों में किया है–

उस समय देश रियासतों में बंटा हुआ था। जयपुर रियासत में शेखावाटी नाम से एक इलाका था। शेखावाटी में एक छोटा-सा गांव था टमकोर। वि.सं. १९८७ में वहां मुनि छबीलजी 'सुधरी' का चौमासा था। उनकी प्रेरणा से चोरड़िया परिवार में बालक नथमल और उसकी मां बालूजी के मन में वैराग्य का जागरण हुआ। मुनि छबीलजी के साथ एक सहयोगी संत थे मुनि मूलचंदजी (बीदासर)। वे संघ व संघपति के प्रति सर्वात्मना समर्पित थे। मैं दीक्षित हुआ, तब से ही उनके मन में मेरा अच्छा स्थान बन गया। जब नथमल और उसकी मां पूज्य गुरुदेव के दर्शन करने गंगाशहर आने लगे तो मुनि मूलचंदजी बोले–'नत्थू! तुम गुरुदेव के दर्शन करने जा रहे हो, वहां मुनि तुलसी के दर्शन जरूर करना।'

वि.सं. १९८७ में गुरुदेव का चातुर्मास्य गंगाशहर था। उनका प्रवास भैंरूदान चौपड़ा के पुत्र लूणकरणजी चोपड़ा की हवेली में था। उस हवेली की छत पर एक कमरा था। कमरे के पास ऊपर जाने की सीढ़ियां थीं। मैं उन सीढ़ियों में बैठा था। वहां बालक नथमल आया और बोला–'तुलसीरामजी स्वामी कौन हैं?' मैंने पूछा–'क्यों भाई! उनसे तुम्हें क्या काम है?' वह बोला–'मैं अपनी मां के साथ टमकोर से आया हूं। हम दोनों वैरागी हैं। मुनि मूलचंदजी ने मुझे उनके दर्शन करने के लिए कहा था।' मेरा परिचय पाकर बालक को अपनी मंजिल मिल गई। प्रथम बार हुए साक्षात्कार में मुझे लगा कि बालक भोलाभाला-सा दीखता है पर है होनहार।

चातुर्मास्य सम्पन्न होने पर गुरुदेव गंगाशहर से सरदारशहर पधारे। वहां मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर नथमल और उसकी मां की दीक्षा हुई। दीक्षा का कार्यक्रम आवास-स्थल से बाहर सेठियाजी के बाग में था। गुरुदेव उनको दीक्षा देकर गधैयाजी के नोहरे में आ गए। वहां दक्षिण दिशा में बने कमरे के पीछे नाल में गुरुदेव टहलने लगे। बालक नथमल मुनि नथमल बनकर उनके निकट खड़ा था। गुरुदेव ने मुझे बुलाया और मुनि नथमलजी से कहा–'नत्थू! तुझे तुलसी के पास रहना है, पढ़ना है और यह जैसा कहे वैसा करना है।'

तुलसी पोशाल

मेरे विद्यार्थी जीवन की भूमि समतल नहीं थी। गुरुदेव ने उसका यथार्थ चित्रण किया है–

'मेरी पाठशाला के विद्यार्थियों में मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) और मुनि बुद्धमलजी–दोनों अध्ययनशील थे। उनकी प्रतिभा में विकास की नई संभावनाएं दिखाई दे रही थीं। पर उनमें बाल्यावस्था की चंचलता भी थी। वे पढ़ते-पढ़ते बहुत जल्दी थक जाते। कभी इधर-उधर घूमने लगते, कभी हंसते, कभी बातें करते और कभी असमय में नींद ले लेते। मैं इन पर पूरी नजर रखता था। अपना अध्ययन करते समय भी मेरा ध्यान इनकी ओर रहता। वे गलती करते तो उनके लिए दण्ड का निर्धारण भी मैं करता। गलती का

दण्ड भुगतने के लिए कभी उन्हें खड़ा कर देता, कभी उनकी विगय बंद कर देता और कभी बोलना भी बंद कर देता। विगय बंद करने पर उन्हें कोई खास परेशानी नहीं होती। पर मैं उनसे नहीं बोलता तो उनका मन बेचैन हो जाता। इस बेचैनी को दूर करने के लिए कभी वे घंटों तक मेरे पास बैठकर पैर सहलाते रहते। किन्तु जब तक मैं आश्वस्त नहीं हो जाता, बात नहीं करता था। खड़े रहने की बात भी कठिन थी। मुनि नथमलजी के लिए तो और भी कठिन थी। वे खड़े-खड़े पग पीटते रहते। मैं उन्हें कहता–'कितना ही पगपीटा करो, गल्ती का दण्ड तो भुगतना ही होगा।'

अनुशासन, शिकायत और प्रतिबोध

गुरुदेव तुलसी का अनुशासन कठोर था। उसे सहना सहज-सरल नहीं था। अनेक बार वह अप्रिय भी लगता था। हमने एक बार दुस्साहस किया, पूज्य कालूगणी से शिकायत की। आचार्यवर ने उसका विशद चित्रण किया है–

तुलसी पोशाल की प्रतिष्ठा दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। उसमें पढ़ने वाले विद्यार्थी साधु अपना सौभाग्य मानते थे कि गुरुदेव की कृपा से उन्हें सुनियोजित ढंग से अध्ययन करने का मौका मिला। मैं विद्यार्थियों को पढ़ाता ही नहीं था, पढ़ने के प्रति उनका अनुराग जगाता था। मैं कभी-कभी उनसे कहता– 'तुम लोग मनोयोग से नहीं पढ़ोगे तो तुम्हारा जीवन कैसे बनेगा? अध्ययन की दृष्टि से यह समय सबसे अधिक उपयोगी है। अभी तुम मन लगाकर पढ़ोगे तो कुछ बन जाओगे। यह थोड़े समय की परतंत्रता तुम्हें जीवन भर स्वतंत्र बना देगी। आज ही तुमने स्वतंत्र रहना चाहा तो सदा के लिए किसी न किसी का नियंत्रण बना रहेगा।'

विद्यार्थी साधुओं का मेरे प्रति सहज झुकाव था। उन्हें मेरे द्वारा कही गई बातें अच्छी लगती थीं। पर कड़ा अनुशासन झेलने की मानसिकता निर्मित नहीं हुई थी। एक दिन मेरे कड़े अनुशासन से मुक्ति पाने के लिए मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमलजी ने एक योजना बनाई। वे मौका देखकर गुरुदेव कालूगणी के पास गए। गुरुदेव उस समय अकेले ही विराजमान थे। दोनों संतों को देखकर उन्होंने पूछा–'क्यों आए हो?' यह बात सुन एक बार तो वे सकपका गए। फिर साहस जुटाकर मेरी शिकायत करते हुए कहा–'तुलसीरामजी स्वामी हम पर कड़ाई बहुत करते हैं। हम उनसे तंग आ गए हैं।'

गुरुदेव का दूसरा प्रश्न था–'तुलसी तुम पर कड़ाई क्यों करता है? तुम्हारी पढ़ाई के लिए करता है या कोई कारण है?'

वे डरते-डरते बोले–'और तो कोई कारण नहीं है।'

इस पर गुरुदेव ने न तो उनको डांटा और न ही प्रोत्साहित किया, केवल सीधा-सा निर्देश देते हुए कहा–'पढ़ाई के लिए कड़ाई करेगा ही।'

दोनों संतों ने सोचा कि आज ऊपर तक पहुंच गए हैं तो अब मन की बात साफ-साफ कह देनी चाहिए। गुरुदेव का दृष्टिकोण समझ लेने पर भी उन्होने कहा–'गुरुदेव! उनकी कड़ाई हमसे सहन नहीं होती।'

इस पर गुरुदेव बोले–'तुम सहना सीखो। सहने से ही तुम्हारा जीवन बनेगा।'

दोनों मुनि मौन हो गए। अब उनके पास कहने के लिए कुछ भी शेष नहीं था।

> "मैं गुरुदेव के आलेखों को उद्धृत कर रहा हूं और इसलिए कर रहा हूं कि एक अलौकिक दर्पण में अपनी आकृति प्रकृति को देख सकूं और आवरणों की ओट में छिपी हुई सचाई तक पहुंच सकूं।"

दोनों बाल मुनियों को असमंजस में देखकर गुरुदेव ने कहा–'तुम बैठो, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं।' मन में थोड़ी-सी झिझक के साथ वे वहां बैठ गए। गुरुदेव ने कहानी का प्रारम्भ करते हुए कहा–'एक बादशाह का शाहजादा काजी के पास पढ़ने लगा। वहां गुरुकुल जैसी व्यवस्था थी। विद्यार्थी को वहीं रह कर पढ़ना होता था। काजी अपने विद्यार्थियों का पूरा ध्यान रखता था। उनको पुस्तकीय ज्ञान के साथ व्यावहारिक ज्ञान भी देता था। वहां अध्ययन का काल बारह वर्ष का था। बारह वर्ष पूरे हुए। शाहजादा की पढ़ाई पूरी हो गई। उसने पूरे मनोयोग से अध्ययन किया था। काजी ने भी उसे भरपूर स्नेह दिया। वह खुश था। सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के बाद काजी शाहजादे को साथ लेकर उसके घर पहुंचाने चला। रास्ते में बाजार आ गया। काजी ने दस किलो अनाज की पोटली शाहजादा के सिर पर रखकर उसे चलने का निर्देश दिया।

शाहजादा चला। कुछ कदम चलते ही वह हांफने लगा। उसकी गरदन बोझ से दबने लगी। वह घबरा गया, पर काजी से कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। जैसे-तैसे रास्ता पार कर वह राजमहल में पहुंचा। बादशाह को शाहजादे के आगमन की सूचना मिली। उसे बहुत प्रसन्नता हुई। उसने पुत्र के सिर पर हाथ रखकर कुशलक्षेम पूछा। शाहजादा रुंआसा-सा खड़ा था। बादशाह ने उसकी ओर ध्यान से देखा और चिन्ता के स्वर में पूछा–क्या बात है? स्वास्थ्य तो ठीक है ना?

शाहजादा–सब कुछ ठीक है।

बादशाह–पढ़ाई कैसी हुई?

शाहजादा–बहुत अच्छी।

बादशाह–गुरुकुल में तुम्हें कोई असुविधा तो नहीं रही?

शाहजादा–नहीं, बिल्कुल नहीं।

बादशाह–वहां खाना कैसा मिलता?

शाहजादा–खाने के बारे में मेरी कोई शिकायत नहीं है।

बादशाह–वहां की व्यवस्थाएं कैसी हैं?

शाहजादा–गुरुकुल का व्यवस्था-कौशल देखने जैसा है।

बादशाह–तुम्हारे सहपाठियों का व्यवहार कैसा रहा?

शाहजादा–वे मुझे सर आंखों पर बिठाए रखते थे।

बादशाह–काजी साहब का व्यवहार कैसा रहा?

शाहजादा–गुरुकुल में उन्होंने मेरा बहुत ध्यान रखा। किन्तु.....

बादशाह–किन्तु क्या? जो बात है स्पष्ट कहो।

शाहजादा–उन्होंने बारह वर्ष की कसर एक दिन में निकाल ली। आज बाजार से यहां तक मेरे सिर पर दस किलो अनाज की पोटली रख दी। उसके कारण मुझे बहुत परेशानी हुई।

बादशाह को काजी का यह व्यवहार उचित नहीं लगा। उसने अविलम्ब काजी को हाजिर करने का आदेश दिया। काजी वहीं था। वह आया। बादशाह बोला–'काजी साहब! आपने शाहजादे को पढ़ाया।

आप उसके गुरु हैं। हम आपको इज्जत देते हैं। पर एक बात पूछना चाहते हैं कि आपने शाहजादे के सिर पर अनाज की पोटली क्यों रखी? क्या आपको चार पैसे का मजदूर नहीं मिला?'

काजी बोला–'जहांपनाह! मेरी गुस्ताखी माफ हो। आपकी कृपा से मेरे पास न पैसों की कमी है और न मजदूरों की। यह तो मैंने जानबूझकर किया।'

काजी की बात सुन बादशाह ने नाराजगी प्रकट करते हुए कहा–'लगता है आपको अपनी भूल का अहसास नहीं हो पाया है।'

काजी नम्रता के साथ बोला–'जहांपनाह! मैंने कोई भूल नहीं की। शाहजादा को एक पाठ पढ़ाना बाकी था। उसी के लिए मैंने ऐसा प्रयोग किया।'

बादशाह–'ऐसा कौन-सा पाठ पढ़ाना आवश्यक था?'

काजी–'जहांपनाह! कल हमारा शाहजादा बादशाह बनेगा, तख्त पर बैठेगा और न्याय करेगा। किसी साधारण से अपराधी को देखकर आवेश में कह देगा कि इसके सिर पर बीस किलो की शिला रखकर इसे बाजार में घुमाओ। जब तक यह स्वयं बोझ नहीं उठाएगा, इसको पता कैसे चलेगा कि बीस-बीस किलो बोझ उठाना कितना मुश्किल है। किसी के साथ अन्याय और क्रूर व्यवहार न हो और हमारे शाहजादे की प्रतिष्ठा को आंच न आए, इसीलिए इसे आज एक नया बोधपाठ दिया था।'

काजी की बात सुन कर बादशाह का आक्रोश शान्त हो गया। शाहजादे का भ्रम टूट गया। उसने काजी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की। उसका सत्कार-सम्मान किया और राजसी व्यवस्था के साथ पुनः गुरुकुल तक पहुंचा दिया।

पूज्य गुरुदेव कालूगणी ने उक्त कहानी के माध्यम से बाल साधुओं को गहरी सीख देते हुए कहा– 'तुलसी जो कुछ कर रहा है, ठीक कर रहा है। तुम उसी के पास पढ़ो और वह जैसा कहे, वैसा ही करो।' बाल साधु छब्बेजी बनने गए थे, पर दुब्बेजी होकर लौटे। उनके मन में एक नया भय पैदा हो गया कि उक्त घटना की जानकारी मुझे हो जाएगी तो न जाने उनके साथ क्या होगा? कुछ दिन वे सहमे-सहमे से रहे। मुझे सारी बात का पता भी लग गया, पर मैंने उनसे कुछ नहीं कहा। मैं जानता था कि बचपन में ऐसा हो सकता है। धीरे-धीरे उनकी आशंका दूर हो गई और वे सामान्य होकर रहने लगे।

तुलसी डरे सो ऊबरै

हम विद्यार्थी साधु मुनि तुलसी से डरते थे। एक बार कालूगणी ने हमें एक दोहा सिखाया, उससे भय का भाव पुष्ट हो गया। उसकी हमारे जीवन-निर्माण में प्रशस्त भूमिका रही। गुरुदेव तुलसी ने इस प्रसंग का इन शब्दों में रेखांकन किया है–

एक बार कुछ विद्यार्थी साधु पूज्य कालूगणी के पास बैठे थे। गुरुदेव ने उनको एक दोहा सिखाया–

हर डर गुरु डर गांव डर, डर करणी में सार।
तुलसी डरै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार॥

भगवान से डरो, गुरु से डरो, गांव से डरो। भय निकम्मा नहीं है। भय में बहुत सार है। जो डरता है, वह बच जाता है। जो नहीं डरता है, वह मार खाता है।

मैं और मेरे गुरु

"विद्यार्थी साधुओं ने उक्त पद्य का अर्थ कुछ और ही समझा। परस्पर मंत्रणा के बाद उन्होंने उसका अर्थ निकाला–जो तुलसी स्वामी से डरता है, वह अपना उद्धार करता है। उस समय तक वे गोस्वामी तुलसीदासजी से परिचित नहीं हो पाए थे। इसलिए ऊपर उल्लिखित घटना के परिप्रेक्ष्य में गुरुदेव की शिक्षा को स्वीकार कर वे सदा मुझसे डरते रहे। वह भय उनके जीवन-निर्माण में बहुत काम आया।"

विद्यार्थी साधुओं ने उक्त पद्य का अर्थ कुछ और ही समझा। परस्पर मंत्रणा के बाद उन्होंने उसका अर्थ निकाला–जो तुलसी स्वामी से डरता है, वह अपना उद्धार करता है। उस समय तक वे गोस्वामी तुलसीदासजी से परिचित नहीं हो पाए थे। इसलिए ऊपर उल्लिखित घटना के परिप्रेक्ष्य में गुरुदेव की शिक्षा को स्वीकार कर वे सदा मुझसे डरते रहे। वह भय उनके जीवन-निर्माण में बहुत काम आया।

अनुशासनात्मक प्रयोग

मैं और मुनि बुद्धमल्लजी एक बार हंसी में उलझ गए। तब मुनि तुलसी ने अनुशासनात्मक प्रयोग किया और हमारा अध्यापन बंद कर दिया। इस विषय को गुरुदेव ने लिखा है–

'वि.सं. १९८९ में पूज्य गुरुदेव तारानगर में प्रवास कर रहे थे। मेरे विद्यार्थी साधुओं में मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी उन दिनों अभिधान चिन्तामणि कोश याद कर रहे थे। सीखने से पहले पाठ पढ़ने के लिए वे मेरे पास आए। भावी तीर्थंकरों के नाम जिन श्लोकों में हैं, उनका पाठ करवाया। उनमें एक श्लोक है–

स्वयंप्रभश्च सर्वानुभूतिर्देवश्रुतोदयौ।
पेढालः पोट्टिलश्चापि शतकीर्तिश्च सुव्रतः॥

'पेढालः पोट्टिलश्चापि'–ये अद्‌भुत नाम और इनका विचित्र उच्चारण उनकी हंसी का कारण बन गया। वे खुलकर हंसने लगे। मैंने उनको टोका किन्तु उनकी हंसी रुकी नहीं। वे ज्योंही उस श्लोकांश का उच्चारण करना शुरू करते, उनकी हंसी फूट पड़ती। बहुत समझाने पर भी उनके हास्य का सिलसिला नहीं टूटा तो मैंने अनुशासनात्मक प्रयोग किया और उनका अध्यापन बन्द कर दिया। उनके सामने दोहरी मुसीबत आ गई। बालसुलभ चपलता के कारण हंसी को रोक पाना भी कठिन था और मेरी नाराजगी को सहना उससे भी अधिक कठिन था। दस-पन्द्रह दिनों तक बार-बार अनुरोध करने पर अध्ययन का क्रम तभी चालू हुआ जब उन्होंने भविष्य में अनावश्यक हास्य नहीं करने का संकल्प व्यक्त किया। इस संकल्प के बाद उनकी आदत में काफी परिवर्तन आ गया।

अकारण हंसी की आदत बदलने के लिए मैं समय-समय पर उनको प्रेरणा देता रहता था। उसी संदर्भ में एक दिन मैंने दोनों बाल मुनियों को बुलाकर एक सोरठा सिखाया–

हंसियै ना हुसियार, हंसियां हळकाई हुवै।
हंसियां दोष हजार, गुण जावै गहलो बजै॥

होशियार आदमी हंसता नहीं है। हंसने से व्यक्तित्व में हल्कापन आता है। हंसने में हजारों दोष हैं। उससे आदमी के सारे गुण चले जाते हैं और वह मूर्ख कहलाता है।'

बड़ा बनने का उपाय

प्रारंभ में हमारा बातों में मन अधिक लगता था, अध्ययन में कम। यह विकास में बड़ी बाधा थी। गुरुदेव ने इस मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक तरीके से परिष्कार किया–

विद्यार्थी साधु प्रायः निष्ठा के साथ पढ़ते थे। किन्तु दिन भर सीखने-पढ़ने में उनका मन नहीं लगता था। इसलिए मैं जब कभी कमरे से बाहर जाता और उन्हें यह अनुमान लग जाता कि मुझे कुछ समय लग सकता है तो वे सब एक जगह आकर बैठ जाते और इधर-उधर की बातें करने लगते। उनकी बातों की

अवगति मुझे न होने पाए, इसके लिए वे पूर्णतः जागरूक रहते। उनकी जागरूकता का प्रमाण यह है कि वे दरवाजे के पास एक मुनि को बिठा देते। मेरे आने की आहट पाकर अथवा मुझे दूर से ही देखकर वह मुनि सबको सूचित कर देता। उसकी सूचना के आधार पर सारे मुनि वार्ता-मंडली से उठकर अपने निर्धारित स्थान पर जाकर सीखने लग जाते। मैं कमरे में पहुंचता तो ऐसा प्रतीत होता मानो कुछ हुआ ही न हो।

विद्यार्थी साधुओं की उस बाल सुलभ वृत्ति की किसी तरह मुझे जानकारी मिल गई। मैंने उस प्रसंग में कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं की। क्योंकि मैं न तो उनको भयभीत करना चाहता था और न कुंठित करना चाहता था। मेरा लक्ष्य यह था कि उनकी वृत्ति का परिष्कार हो। इस दृष्टि से एक दिन मैंने कुछ बाल साधुओं से कहा–'क्या तुम बड़ा बनना चाहते हो?' उन्होंने मेरे कथन के साथ सहमति प्रकट की। अवसर देखकर मैंने कहा–'बड़ा बनने का एक उपाय है समय का सदुपयोग करना। तुम लोग इधर-उधर की बातों में समय खोते रहोगे तो कभी बड़े नहीं बन पाओगे।'

बाल मुनियों पर मेरी प्रेरणा का अल्पकालीन प्रभाव होता। कुछ दिन वे अध्ययन के प्रति अत्यधिक जागरूक रहते, पर फिर वही क्रम प्रारंभ हो जाता। उस स्थिति में मैं उनसे कहता–'तुम लोग अभी अध्ययन कम करोगे तो सबसे पीछे रह जाओगे। बात कम और अध्ययन अधिक करोगे तो सबसे आगे निकल जाओगे।' इस प्रकार समझाने से उनका बातों के प्रति आकर्षण कम हो गया और वे गहरी एकाग्रता के साथ पढ़ाई में लग गए।

तुलसी विश्वविद्यालय

मेरे सामने अनेक बार यह प्रश्न आता–आपने अध्ययन कहां से किया? कभी इसका उत्तर देना सरल होता, कभी इसका उत्तर देना कठिन। एक बार मैंने विद्वानों को उलझन में डाल दिया। गुरुदेव ने उस घटना का विस्तार से वर्णन किया है–

'सन् १९५४ का वर्ष। बंबई में हमारा चातुर्मासिक प्रवास। कार्तिक का महीना। भारतीय विद्या भवन में संस्कृत संगोष्ठी का समायोजन। उच्च कोटि के विद्वानों का समागम। गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए हमें भी आमंत्रण मिला। हम वहां गए। मुनि नथमलजी हमारे साथ थे। उन्होंने संस्कृत भाषा में धाराप्रवाह वक्तव्य दिया। आशुकविता भी की। कार्यक्रम सम्पन्न हो गया। हमने वहां से प्रस्थान कर दिया।

मुनि नथमलजी कुछ पीछे रह गए। पांच-सात प्रोफेसर उनके निकट आए और बोले–'मुनिजी! आपने किस विश्वविद्यालय में अध्ययन किया है?'

मुनि नथमलजी ने सहजता के साथ कहा–'तुलसी विश्वविद्यालय में।'

सर्वथा अपरिचित और नया नाम। प्रोफेसर उनकी ओर देखने लगे। उन्होंने अपनी स्मृति पर बहुत जोर डाला, पर कुछ हाथ नहीं लग पाया। देश भर में कहीं भी उक्त नाम से कोई विश्वविद्यालय चलता है, उनके ध्यान में नहीं आया। आखिर उन्होंने पूछा–'मुनिजी! यह विश्वविद्यालय कहां है?' हम मुनि नथमलजी से आगे चल रहे थे। उन्होंने हमारी ओर इंगित करते हुए कहा–'वह आगे चल रहा है। हमने उस चलते-फिरते विश्वविद्यालय में पढ़ाई की है।' प्रोफेसर आश्चर्यचकित हो देखते रह गए।

एक दिन वह था, जब मुनि नथमलजी अपने शिक्षक की शिकायत लेकर गुरुदेव के पास गए। एक दिन वह आया जब उन्हें मेरी पाठशाला में पढ़ने का गौरव हुआ। यद्यपि मेरी पाठशाला छोटी-सी थी। उसमें

"एक दिन वह था, जब मुनि नथमलजी अपने शिक्षक की शिकायत लेकर गुरुदेव के पास गए। एक दिन वह आया जब उन्हें मेरी पाठशाला में पढ़ने का गौरव हुआ। उस समय किसी को कल्पना भी नहीं थी कि हमारे यहां कोई विश्वविद्यालय हो सकता है। पर संयोग की बात है कि आज जैन विश्व भारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय है। मेरा सपना है कि यह विश्वविद्यालय यूनिक बने और इसमें मुनि नथमलजी जैसे विद्यार्थी तैयार हों।"

गिने-चुने विद्यार्थी थे। उस समय किसी को कल्पना भी नहीं थी कि हमारे यहां कोई विश्वविद्यालय हो सकता है। पर संयोग की बात है कि आज जैन विश्व भारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय चल रहा है। मेरा सपना है कि यह विश्वविद्यालय यूनिक बने और इसमें मुनि नथमलजी जैसे विद्यार्थी तैयार हों।'

आश्वस्त किया विद्यार्थी साधुओं को

मुनि तुलसी ने आचार्यपद का दायित्व संभाला। दिनचर्या में परिवर्तन हो गया। अध्यापन का काम स्थगित हो गया। उस समय तुलसी पोशाल के विद्यार्थी साधुओं को बुलाकर गुरुदेव ने आश्वस्त किया। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है–

'एक दिन मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी, मुनि दुलीचंदजी, मुनि जंवरीमलजी आदि को अपने पास बुलाया, पूछा–'तुम लोग आजकल क्या करते हो? स्वाध्याय, अध्ययन आदि का क्रम कैसे चलता है?'

साधु बोले–'हमारा मन नहीं लगता। हम क्या करें?' मैंने उनको आश्वस्त करते हुए कहा–'मेरी बहुत इच्छा है कि मैं अपनी पाठशाला चलाऊं, तुम लोगों को पढ़ाऊं। पर तुम्हीं सोचो, अभी यह कैसे संभव है? अब तक मैं दिन-रात तुम्हारी निगरानी रखता था। अब तो मेरे सामने दूसरे काम भी हैं। मैं चाहता हूं कि अब तुम स्वावलम्बी बनो। अध्ययन का क्रम बंद मत करो। स्वयं पढ़ो। अपेक्षा हो तो मेरे पास आ जाओ। मैं तुम्हें समय दूंगा।' मैंने उन साधुओं की आकृति पढ़ी। उनकी भावना सुनी। थोड़े-से दिनों में वे बहुत अव्यवस्थित हो गए थे। मैंने उनको आश्वासन दिया। उनके उखड़े हुए मन को जमाने का प्रयास किया और उन्हें पुनः अध्ययनरत होने की प्रेरणा दी।'

उदाहरण अप्रतिबद्धता का

स्वामी विद्यारण्य भारती वेदान्त का अनुगमन करनेवाले संन्यासी थे। उनकी अनासक्ति और संयम साधु-संन्यासी जगत के लिए अनुकरणीय था। वे अनेक बार गुरुदेव के साथ लम्बे समय तक रहे। उनकी ज्ञान-पिपासा बेजोड़ थी। एक बार बातचीत के प्रसंग में मैंने उनसे दो प्रश्न पूछे, गुरुदेव की भाषा में वे पठनीय हैं–

जयपुर, विक्रम संवत् २००५। वार्तालाप के मध्य मुनि नथमलजी ने उनसे पूछा–'आपने भगवती सूत्र पढ़ा है क्या?' स्वामीजी बोले–'मैंने अपने इस छोटे से जीवन में कम-से-कम दस-बीस बार यह आगम पढ़ लिया। मेरे अध्ययन का क्रम अपने ढंग का है। मुझे एक पुद्गल शब्द देखना है तो मैं उसके लिए पूरा ग्रंथ पढ़ता हूं। फिर कोई दूसरा शब्द देखना होता है तो दूसरी बार पढ़ लेता हूं।' भगवती जैसे विशाल आगम को अनेक बार पढ़ने की बात सुनकर सुखद आश्चर्य हुआ।

मुनि नथमलजी ने उनसे दूसरा प्रश्न पूछा–'आप भोजन में दूध लेते हैं या नहीं?'

स्वामीजी बोले–'मैं दूध नहीं लेता।'

'दूध क्यों नहीं लेते?'

उसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा–'मैं कभी गांव में रहता हूं, कभी शहर में रहता हूं और कभी जंगल में। यहां तो दूध उपलब्ध हो जाता है, पर जंगल में दूध कहां से आएगा? दूध पीता रहूंगा तो जंगल में दूध की तलब सताएगी। इस दृष्टि से मैंने दूध पीना ही छोड़ दिया।' खान-पान के संदर्भ में साधक की अप्रतिबद्धता का यह एक अच्छा उदाहरण है।

काम करने का तरीका

कुन्दनमलजी सेठिया का नामोल्लेख कर गुरुदेव ने कहा–काम करने की लगन उनसे सीखनी चाहिए। इस विषय में एक साधु ने अपनी भावना व्यक्त की। गुरुदेव ने उसका उत्तर दिया, वह बहुत मननीय है–

जुलाई १९६१। 'एक साधु ने कहा–मुनिश्री नथमलजी एक साथ दस काम शुरू कर देते हैं। इससे ध्यान विकेन्द्रित होता है और एक भी काम पूरा नहीं हो पाता।' मैंने कहा–'सब व्यक्तियों की वृत्ति एक समान नहीं होती। मुनि नथमलजी कितने ही काम प्रारंभ करें, वे काम को भार नहीं मानते। उनका काम करने का अपना तरीका है। वे समय का समुचित विभाजन कर लेते हैं। उनके अध्ययन का क्रम चलता रहता है। वे हर बात को दिमाग में रखते हैं और समय पर उसका उपयोग कर लेते हैं। उनकी अपनी कार्यशैली है।'

सपने का सच

२१ जनवरी १९६२ को मुनिश्री चम्पालालजी 'मीठिया' ने एक स्वप्न की चर्चा की, ३ फरवरी १९७९ को वह एक सचाई बन गया। गुरुदेव ने स्वप्न-वृत्त का उल्लेख किया है–

'मुनि चम्पालालजी 'मीठिया' श्रीडूंगरगढ़-गंगाशहर यात्रा में साथ थे। वे शासनभक्त और संघ के वफादार साधु थे। उनकी वृत्तियां बहुत अच्छी थीं। उनकी गंभीरता और विनम्रता प्रसिद्ध थी। वे आचार्यों के प्रति गहरी निष्ठा रखने वाले इकरंगे साधु थे।

गुसांईसर में (२१ जनवरी १९६२) मुनि चंपालालजी मेरे पास आकर बैठ गए और शासन की पुरानी बातें सुनाने लगे। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए वे बोले–'आचार्यश्री! मुझे स्वप्न बहुत कम आते हैं। जब कोई सपना आता है तो वह सही भी होता है। मैंने वि. सं. २००६ में एक सपना देखा था, पर संकोचवश आपको निवेदन नहीं किया।'

मैंने पूछा–'क्या सपना देखा? बतलाने का हो तो बतलाओ।'

मुनि चम्पालालजी बोले–'मैंने सपने में देखा कि आपने मुनि नथमलजी (टमकोर) को युवराज का पद दिया है।' मैंने उनकी सपने की बात सुन ली। उसे अपनी डायरी में नोट कर लिया, पर किसी के सामने उसकी चर्चा नहीं की। कुछ वर्षों के बाद उस प्रसंग की विस्मृति भी हो गई। पुनः डायरी देखी, तब वे सारी बातें स्मृति में आ गईं।'

मंथन

'१५ अप्रेल १९६३। आज रात्रि में संतों की एक गोष्ठी में आस्था का प्रकरण चल पड़ा। मुनि नथमलजी ने कहा–'आस्था ध्येय के प्रति होती है।' कुछ संत बोले–'उस पर वातावरण का असर होता है।'

मैंने अपने अनुभव के आधार पर कहा–'श्रद्धा वास्तव में आत्मगत होती है। वातावरण का प्रभाव हो सकता है, पर वह गौण तत्त्व है। साधक की साधना श्रद्धा से ही बलवती और फलवती बनती है।'

समर्पण

सन् १९६७ का मर्यादा-महोत्सव। साध्वियों द्वारा प्रदत्त परिपत्रों का अवलोकन करते समय मेरे हाथ में एक पत्र आया। उसमें नोकदार एका लिखकर आंख का रेखांकन किया गया था। उसके नीचे लिखा था–आपकी शुभदृष्टि की आराधिका साध्वी रायकंवर (सरदारशहर)। मैंने उस पत्र को पढ़कर उसका

"'सब व्यक्तियों की वृत्ति एक समान नहीं होती। मुनि नथमलजी कितने ही काम प्रारंभ करें, वे काम को भार नहीं मानते। उनका काम करने का अपना तरीका है। वे समय का समुचित विभाजन कर लेते हैं। उनके अध्ययन का क्रम चलता रहता है। वे हर बात को दिमाग में रखते हैं और समय पर उसका उपयोग कर लेते हैं। उनकी अपनी कार्यशैली है।'"

आशय पकड़ने का प्रयास किया। निकाय-सचिव मुनि नथमलजी मेरे सामने बैठे थे। मैंने वह परिपत्र उन्हें देते हुए कहा–'देखो, इसका क्या तात्पर्य है?'

पत्र देखकर निकायसचिव बोले–'गुरुदेव! इसका आशय है कि मुझे केवल आपकी कृपादृष्टि की अपेक्षा है।'

प्रार्थना का सम्मान

अष्टमी और चतुर्दशी को एकाशन करने का क्रम बहुत वर्षों से चल रहा है। यात्रा में भी उस क्रम को तोड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता। उस दिन (२६ अप्रैल १९६८) खेमचंदजी सेठिया ने विहार में एकाशन न करने के लिए बहुत अनुरोध किया। मुनि नथमलजी आदि संत भी अत्यधिक आग्रह करने लगे। आखिर उसी चट्टान पर उन्होंने यह वचन ले लिया कि मद्रास पहुंचने तक एकाशन नहीं करना है। लम्बे विहारों की स्थिति को देखते हुए उस समय तक साधु-साध्वियों को भी अष्टमी-चतुर्दशी आदि तिथियों को विगय-वर्जन की छूट दे दी।

अनुशासन का एक प्रयोग

यह सौभाग्य था–गुरु का स्नेह और विश्वास मुझे सदा प्राप्त रहा है। मेरे जीवन में उपालम्भ के अवसर बहुत कम आए। आचार्यवर ने इस संदर्भ में एक घटना का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है–

९ मई १९६८। आज चार बजे के आसपास हम कृषिफार्म से विहार कर रहे थे। उस समय खेमचंदजी सेठिया ने पेय पदार्थ 'सिकंजी' लेने का अनुरोध किया। मैंने 'सिकंजी' लेने का निषेध कर दिया। क्योंकि उस दिन उनके घर अच्छी गोचरी हुई थी। संभवतः उन लोगों के पूरी ऊनोदरी रही। मोतीलाल रांका आदि कार्यकर्ता उस समय वहीं थे। मैंने सबकी प्रार्थना अस्वीकार कर वहां से प्रस्थान कर दिया। मुनि नथमलजी वहीं थे। कार्यकर्ताओं ने उनसे बहुत आग्रह किया। अत्यधिक आग्रह के कारण उन्होंने 'सिकंजी' ले ली। कुछ समय बाद वहां से विहार कर वे अगले गांव पहुंच गए। मुनि नथमलजी और खेमचंदजी ने एक साथ उक्त जानकारी मुझे दी। खेमचंदजी बोले–'हमारे अति आग्रह के कारण मुनिश्री को 'सिकंजी' लेनी पड़ी।' यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी। मैंने सबके सामने उनको उपालम्भ दिया।

'सिकंजी' कोई विशिष्ट पेय पदार्थ नहीं है। कल्प के हिसाब से उसे लेने में कोई आपत्ति भी नहीं थी। फिर भी जब मैंने चिन्तनपूर्वक उस पदार्थ को नहीं लिया और लेने का निषेध कर दिया, उस स्थिति में उसको लेने का औचित्य नहीं रहता। हमारा विहार होने के बाद संतों ने गोचरी की। उसमें प्रमुख निमित्त श्रावकों का आग्रह ही रहा, पर इस प्रकार आग्रह करके निषिद्ध काम करवाने से कोई कुछ भी करवा सकता है।

मुनि नथमलजी की प्रकृति मुझसे छिपी हुई नहीं है। वे कितने विनीत और समर्पित हैं, मैं स्वयं समझता हूं। फिर भी उनके माध्यम से मैं सबको शिक्षा देना चाहता था। इस दृष्टि से मैंने उनसे कहा–'किसी के आग्रह पर निषिद्ध काम करना क्या दुर्बलता नहीं है? इससे तुम्हारे पास रहने वाले साधुओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा? मेरी दृष्टि में तुमने और खेमजी ने बहुत बड़ी गलती की है। कोई इसे छोटी बात समझे तो वह उसकी दोहरी भूल है। ऐसी स्थिति में मुझे मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामी बहुत याद आते हैं। वे कभी निषिद्ध काम नहीं करते थे। हो सकता है कि तुम्हें निषेध की जानकारी न हो, (वस्तुतः उन्हें जानकारी नहीं

थी) पर इस विषय में थोड़ा-सा चिन्तन किया जाता तो यह बात समझ में आ जाती कि सिकंजी लेनी होती तो मैं तुमको उसके लिए निर्देश देकर विहार कर सकता था।'

मुनि नथमलजी से उक्त बात कहते समय मैं कुछ उत्तेजित-सा हो गया। अनुशासन करते समय उत्तेजित होना भी एक दुर्बलता है। ऐसे समय में मैं अपने आपको संयत रखने का प्रयास करता हूं, पर कभी-कभार अतिक्रमण हो जाता है। मैंने तत्काल स्वयं को संभाला और कहा–'तुमने जो भूल की है, उसका प्रायश्चित्त मैं करूंगा। प्रायश्चित्त-स्वरूप आज मैं कोई विगय नहीं खाऊंगा।' यह बात मुनि नथमलजी के लिए और भी भारी हो गई। उन्होंने भूल मंजूर की। बहुत विनय किया पर मैंने उस दिन विगय नहीं ली। उन्होंने भी विगय का परिहार किया। इस घटनाक्रम के समय कुछ साधु और श्रावक मेरे पास खड़े थे। उनको भी बोधपाठ मिल गया। मेरा एक ही लक्ष्य था कि अनुशासन के बारे में सबको एक दृष्टि और विशेष प्रशिक्षण मिले।

दूसरे दिन खेमचंदजी सेठिया मेरे पास आए। वे बहुत उदास थे। मैंने पूछा–'ऐसी क्या बात हो गई? खिन्न क्यों हो?' इस पर उनकी आंखें नम हो गईं। वे बोले–'गुरुदेव! कल मैंने बहुत बड़ी गलती की। मुझे दुःख इस बात का है कि मेरी गलती का उपालम्भ मुनिजनों को सहना पड़ा।' उनके उक्त कथन पर मैंने कहा–'तुम्हारी गलती हुई है, यह बात सही है। पर मैं संतों की भूल तुमसे अधिक मानता हूं। उन्होंने स्पष्ट मनाही क्यों नहीं की? मेरे अभिमत से उनको उपालम्भ मिलना ही चाहिए।'

मेरे विचार सुनकर खेमचंदजी बोले–'गुरुदेव! हमने इस उपालम्भ को बहुत अच्छे रूप में लिया है। जीवनभर के लिए हमें शिक्षा प्राप्त हो गई और हमारी एक बहुत बड़ी भ्रांति मिट गई। हम समझते थे कि मुनिश्री नथमलजी को आचार्यश्री कुछ कह नहीं सकते। मेरी क्या, अनेक लोगों की यह धारणा थी, जो आज निर्मूल हो गई। आप निकाय-सचिव को ऐसे उपालम्भ दे सकते हैं, कल्पना ही नहीं थी। इस घटना से हम सबको बड़ा सबक मिला है।'

मुझे कोई बात कहनी होती है, मैं कह देता हूं। उसके बाद मस्तिष्क पर उसका भार नहीं रखता। उक्त प्रसंग में खेमचंदजी के विचार सुनते समय मेरा मन पूरी तरह से निर्भार था। मैंने उनको आश्वस्त करते हुए कहा–'उपालम्भ 'भाजन' को ही मिलता है। अधीर व्यक्ति उपालम्भ को सहन नहीं कर सकते।' इस संदर्भ में प्रस्तुत दोहा मननीय है–

काच कथीर अधीर नर, कस्यां न उपजै प्रेम।
कसणी तो धीरा सहै, कै हीरा कै हेम॥

वातावरण सरसता में परिणत हो गया। मुनि नथमलजी भी आ गए। उनकी विनम्रता ने सबको बहुत प्रभावित किया।

चपाती और समता

जुलाई १९६८। हम राजस्थान में रहें या तमिलनाडु में, विहार करें अथवा स्थिरवास में रहें, हमारा सर्वोपरि लक्ष्य अपनी साधना है। साधनाकाल में उपस्थित अनुकूल और प्रतिकूल प्रसंगों में समत्व का विकास हमें अभीष्ट है। उसके लिए हम जागरूक भी हैं। एक दिन मैं आहार करने बैठा। मुनि नथमलजी भोजन परोस रहे थे। उन्होंने भिक्षा में आई चपातियों को उलट-पुलट कर देखा, एक चपाती पात्र में रखी और तत्काल बोले–'यह तो कच्ची है, दूसरी परोसता हूं।' मैंने कोई आपत्ति नहीं की। उन्होंने पहली चपाती

"मुनि नथमलजी की प्रकृति मुझसे छिपी हुई नहीं है। वे कितने विनीत और समर्पित हैं, मैं स्वयं समझता हूं। फिर भी उनके माध्यम से मैं सबको शिक्षा देना चाहता था।"

निकालकर दूसरी रखी और बोले–'यह जली हुई है।' दूसरी चपाती हटाकर उन्होंने अच्छी तरह देखकर तीसरी चपाती पात्र में परोसी। मैं उसे खाने लगा।

कुछ समय बाद मुनि नथमलजी ने पूछा–'यह तो ठीक है न?' मैं लगभग चपाती खा चुका था। उनके प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा–'ठीक ही है।' मेरे 'ही' शब्द ने उनको संदिग्ध बना दिया। बोले–'चपाती में कुछ कमी है क्या?' मैंने कहा–'मन में समता है तो सब ठीक है। तुमने तीन बार चपातियां बदलीं। फिर भी....।' मेरा वाक्य पूरा होने से पहले ही वे बोले–'परोसी हुई चपाती खराब है क्या?' मैंने कहा–'चपाती खराब नहीं है। न तो यह कच्ची है और न जली हुई है, पर इसमें घी दुर्गन्धयुक्त है।'

इस घटना को प्रस्तुत करने का एक ही उद्देश्य है कि हमारी समता का विकास हो। हम वस्तु और व्यक्ति के गुण-दोष को जानें, समझें पर अपनी समता को खण्डित न करें। आनन्द की उपलब्धि तभी हो सकती है, जब हर स्थिति में समता बनी रहे।

गुरु और शिष्यों की एकात्मकता

योगक्षेम वर्ष का पावन प्रसंग। गुरुदेव अस्वास्थ्य के कारण एक मास तक प्रवचन में नहीं पधार सके। स्वास्थ्य से उपजी प्रसन्नता को आचार्यवर के शब्दों में पढ़ें–

७ अप्रैल १९८९। एक महीने के बाद प्रवचन के समय मैं सुधर्मा सभा में गया। चतुर्विध संघ में प्रसन्नता की नई लहर आ गई। प्रसन्न वातावरण में युवाचार्यजी ने कहा–'प्रत्यक्ष कितना मूल्यवान होता है। आज आचार्यवर की प्रत्यक्ष सन्निधि में सबको जिस प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है, वह अनिर्वचनीय है।' युवाचार्यजी की बात सुनकर मैंने कहा–'सबसे अधिक प्रसन्न मैं हूं। शिष्यों की प्रसन्नता गुरु की प्रसन्नता और गुरु की प्रसन्नता शिष्यों की प्रसन्नता। यह एकात्मक भाव संघ की मजबूती का आधार है।'

प्रमाण कौन?

अप्रैल १९८९। एक दिन प्रातःकालीन प्रवचन के समय युवाचार्यजी बोल रहे थे। उन्होंने आगम के प्रामाण्य की चर्चा करते हुए कहा–'ग्रंथ स्वतः प्रमाण नहीं हैं, केवली स्वतः प्रमाण है।' प्रस्तुत संदर्भ में टिप्पणी करते हुए मैंने कहा–'भगवती (शास्त्र) स्वतः प्रमाण नहीं है।' मैं आगे कुछ कहता, उससे पहले ही युवाचार्यजी साध्वीप्रमुखा की ओर संकेत करके बोले–'भगवती प्रमाण नहीं है, भगवान प्रमाण हैं।' सुधर्मा सभा में उपस्थित हजारों श्रोता इस शास्त्रीय विनोद की भाषा को समझ पाए या नहीं, कहना कठिन है। पर जो साधु-साध्वियां इसे समझ सके, उनके चेहरों पर मुस्कान उतर आई।

बनाया जा सकता है बहुश्रुत

प्रातःकाल प्रवचन का विषय था–बहुश्रुत कौन? युवाचार्यजी ने विषय का विवेचन किया। विषय का उपसंहार करते हुए मैंने कहा–'इस सारी चर्चा के अनन्तर एक ही प्रश्न शेष रहता है कि क्या बहुश्रुत बनाया जा सकता है?' प्रस्तुत प्रश्न के सन्दर्भ में युवाचार्यजी बोले–'यदि नहीं बनाया जा सकता तो मैं नहीं बनता।' उनकी बात सुनकर मैंने कहा–'व्यक्ति में बनने की योग्यता हो और बनानेवाला पूरे मन से सहयोग करे तो आज भी बहुश्रुत बनाया जा सकता है। समुद्र में गहराई होती है, पर ऊंचाई नहीं होती। पर्वत में ऊंचाई होती है, पर गहराई नहीं होती। बहुश्रुत में गहराई भी होती है और ऊंचाई भी होती है। बहुश्रुत की अर्हता केवल शास्त्रीय ज्ञान ही नहीं है, उसमें गुणवत्ता भी जरूरी है।'

गुरु और आत्मा में अभिन्नता

साध्वी राजीमती का चातुर्मास बम्बई था। वह वहां से चलकर लाडनूं पहुंच गई। क्षेत्रीय दूरी होने के कारण रास्ते में काफी समय लग गया। साध्वियों ने दर्शन किए, उस समय हम सुधर्मा सभा में थे। साध्वी राजीमतीजी ने विलम्ब से पहुंचने की चर्चा करते हुए कहा–'गुरुदर्शन भी इतना कठिन है तो आत्मदर्शन न जाने कितना कठिन होगा।' इस कथन पर युवाचार्यजी ने टिप्पणी की–'क्या गुरुदर्शन और आत्मदर्शन भिन्न हैं? गुरुदर्शन ही आत्मदर्शन है और आत्मदर्शन ही गुरुदर्शन है।'

विद्या का तीसरा स्थान

१६ अप्रैल १६८६। युवाचार्य महाप्रज्ञ साध्वी इन्द्रुजी को संथारे में दर्शन देने गए। वहां सहज रूप में काफी साधु-साध्वियों की उपस्थिति हो गई। युवाचार्यजी ने साध्वी इन्द्रूजी से कहा–'देखो, इतने साधु-साध्वियां यहां उपस्थित हैं। इन्हें कुछ कहना हो तो बोलो।' साध्वीजी ने तीन शब्दों का उच्चारण किया–'विनय, विवेक और विद्या।' युवाचार्यजी ने शब्दों की अभिव्यक्ति में पौर्वापर्य का रहस्य प्रकट करते हुए कहा–साध्वी इन्द्रूजी ने विद्या को तीसरा स्थान दिया। इसका तात्पर्य यह है कि सबसे पहले विनय होना चाहिए। विनय से विवेक आता है। विनय और विवेक से शून्य विद्या का कोई मूल्य नहीं होता।'

मुझे तो पढ़ा दिया

अप्रैल १६८६। प्रवचन में भिक्षु वाङ्मय का प्रसंग चल रहा था। मैंने कहा–'आचार्य भिक्षु का साहित्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। पर यहां उपस्थित व्यक्तियों में कितने लोगों ने उस साहित्य को पढ़ा है? गंभीरता से उसका पारायण किया है? महाप्रज्ञजी ने अवश्य पढ़ा है।' महाप्रज्ञजी बोले–'मुझे तो आपने पढ़ा दिया।' मैंने कहा–'क्या मैं और किसी को पढ़ने के लिए नहीं कह सकता? मैंने इन्हीं को क्यों कहा? ये मेरे इंगित या निर्देश को टालते नहीं हैं। यह इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।'

दाएं बाएं लाडनूं

२७ अगस्त १६८६। प्रवचन चल रहा था। लाडनूं का प्रसंग आ गया। मैंने कहा–'लाडनूं के साथ धर्मसंघ की अनगिन घटनाएं जुड़ी हुई हैं। मुझे तो लगता है कि चारों तरफ लाडनूं-ही-लाडनूं है।' अपने दाएं-बाएं बैठे युवाचार्यजी एवं साध्वीप्रमुखा की ओर संकेत करते हुए मैंने अपनी बात की पुष्टि हेतु कहा–'देखो, इधर भी लाडनूं है और इधर भी लाडनूं है।' मेरी बात सुनकर सभा में उपस्थित लोग चौंक उठे। उनका चौंकना स्वाभाविक था। क्योंकि साध्वीप्रमुखा के साथ लाडनूं का संबंध है पर युवाचार्यजी लाडनूं के कैसे हो सकते हैं? जनता की मौन जिज्ञासा को समाहित करते हुए मैंने कहा–'मैं लाडनूं का हूं और युवाचार्यजी लाडनूंवालों के गोद आ गए। इस अपेक्षा से ये भी लाडनूं के हैं।' जिज्ञासा का समाधान पाकर सभा का वातावरण मुखरित हो उठा।

जागरूकता

१४ सितम्बर १६८६। आज मैं सुधर्मा सभा में कुछ विलम्ब से गया। साधु-साध्वियां निर्धारित समय पर पहुंच चुके थे। उनकी ओर इंगित करते हुए मैंने कहा–'कल सैकड़ों साधु-साध्वियों के उपवास थे। मैंने सोचा कि इतने साधु-साध्वियों के उपवास के पारणे हैं। इस स्थिति में सब साढ़े आठ बजे कैसे आ पाएंगे?

"समुद्र में गहराई होती है, पर ऊंचाई नहीं होती। पर्वत में ऊंचाई होती है, पर गहराई नहीं होती। बहुश्रुत में गहराई भी होती है और ऊंचाई भी होती है। बहुश्रुत की अर्हता केवल शास्त्रीय ज्ञान ही नहीं है, उसमें गुणवत्ता भी जरूरी है।"

इसी कारण मैं यहां कुछ विलम्ब से आया। पर मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि सब साधु-साध्वियां ठीक समय पर उपस्थित हैं।'

साधु-साध्वियों के प्रति मेरी भावना को उजागर करते हुए युवाचार्यजी बोले–'आप साधु-साध्वियों के प्रति जागरूक हैं और साधु-साध्वियां आप द्वारा प्रदत्त सूत्र 'जागरूकता' के प्रति जागरूक हैं।'

अतिथि प्रवचनकार

२८ दिसम्बर १९९१। आज युवाचार्यजी ने मुझे अनुरोध किया कि मैं प्रत्येक रविवार को प्रातःकालीन प्रवचन के समय कालूयशोविलास का वाचन करूं। उनके अनुरोध के उत्तर में मैंने कहा–'युवाचार्यजी हमें अतिथि प्रवचनकार के रूप में आमंत्रित कर रहे हैं और हम इनके आमंत्रण को स्वीकार कर रहे हैं।' युवाचार्यजी को प्रसन्नता हुई क्योंकि उनका अनुरोध स्वीकृत हो गया। मुझे प्रसन्नता हुई, उसका कारण यह था कि मैं अपने गुरु के गुणगान कर सकूंगा। इस विषय की सूचना पाकर जनता भी प्रसन्न हो गई। तीन घर बधावणा वाली कहावत चरितार्थ हो गई।

अपना काम स्वयं करो

१२८वें मर्यादा महोत्सव का त्रिदिवसीय कार्यक्रम। प्रथम दिन (९ फरवरी १९९२) सेवाकेन्द्रों के लिए साधु-साध्वियों की नियुक्ति का प्रसंग उपस्थित हुआ तो युवाचार्यजी ने कॉपी मेरी ओर कर दी। मैंने कॉपी हाथ में लेकर कहा–'आज युवाचार्यजी का मन रखने के लिए सेवाकेन्द्रों की नियुक्तियां मैं कर रहा हूं।'

मर्यादा महोत्सव के दिन (११ फरवरी १९९२) चातुर्मासों की घोषणा करने का अवसर आया। युवाचार्यजी ने विनम्रता के साथ कॉपी मुझे सौंपनी चाही। मैंने कहा–'उस दिन तुम्हारा काम मैंने कर दिया। हमेशा-हमेशा मैं क्यों करूं। अब मैं नहीं चाहता कि तुम परावलंबी बनो। इसलिए युवाचार्यजी! आज अपना काम स्वयं करो।'

तैयार हों महाप्रज्ञ जैसे व्यक्ति

११ मई १९९३। अध्यात्म विज्ञान परिसंवाद के समापन सत्र में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'बीसवीं सदी विज्ञान की मानी जाती है। इक्कीसवीं सदी अध्यात्म की होगी। वास्तव में विज्ञान और अध्यात्म में बहुत बड़ा साम्य है। गणित का अध्ययन किए बिना शास्त्रों के रहस्यों को समझना मुश्किल है। मैं तो आचार्यवर से निवेदन करूंगा कि जैन विश्व भारती अपृथक्त्व अनुयोग की शुरुआत करे।'

युवाचार्यजी ने निवेदन पर टिप्पणी करते हुए मैंने कहा–'यह सब तभी संभव है, जब महाप्रज्ञ जैसे कई व्यक्ति तैयार हों।' युवाचार्यजी भी विनोद की मुद्रा में बोले–'इस महाप्रज्ञ को आपने ही तैयार किया है, फिर और क्यों नहीं किए जा सकते?'

इतिहास की पुनरावृत्ति

एक दिन युवाचार्यजी मेरे उपपात में बैठे थे। वे बोले–'इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है। तृतीय आचार्य रायचन्दजी को तेल लगाना बिल्कुल पसन्द नहीं था। यहां तक कि तेल से उन्हें मानसिक अरुचि थी। संवत् १९०३, जयपुर चातुर्मास में घोड़े की टक्कर लग जाने से उनके हाथ की हड्डी उतर गई। उस

समय तेल की मालिश करने की आवश्यकता पड़ी। अतः उन दिनों आचार्य ऋषिरायजी प्रतिदिन तेल मालिश करवाया करते थे। चातुर्मास के पश्चात युवाचार्य जीतमलजी वहां पहुंचे। उन्होंने ऋषिराय को तेल लगवाते हुए देखा। उस प्रसंग में मधुर विनोद करते हुए एक पद्य निवेदन किया–

कोई तेल लगावतो, करता तिण स्यूं तर्क।
इक दिन एसो आवियो, गुरु हुआ तेल में गर्क॥

ठीक इसी प्रकार आचार्यवर को सदा जागृत रहना, अप्रमत्त रहना ही पसन्द है। सोना न स्वयं का पसन्द है और न दूसरों का। ऐसी मानसिकता में सात दिनों तक लगातार विश्राम करना बहुत कठिन है। फिर भी अस्वास्थ्य के कारण करना पड़ा।'

अपने कथन का उपसंहार करते हुए मैंने कहा–'हमारे युवाचार्य भी युवाचार्य जय की तरह कब चूकने वाले हैं। इन्होंने मेरे विश्राम को भी एक ऐतिहासिक प्रसंग बना दिया। मैंने विश्राम किया, पर कोई भी काम रुका नहीं। युवाचार्य महाप्रज्ञ सभी कार्यों को सुव्यवस्थित ढंग से कर रहे हैं। सभी संत अपने-अपने कार्यों में बहुत जागरूक हैं।

"बीसवीं सदी विज्ञान की मानी जाती है। इक्कीसवीं सदी अध्यात्म की होगी। वास्तव में विज्ञान और अध्यात्म में बहुत बड़ा साम्य है।"

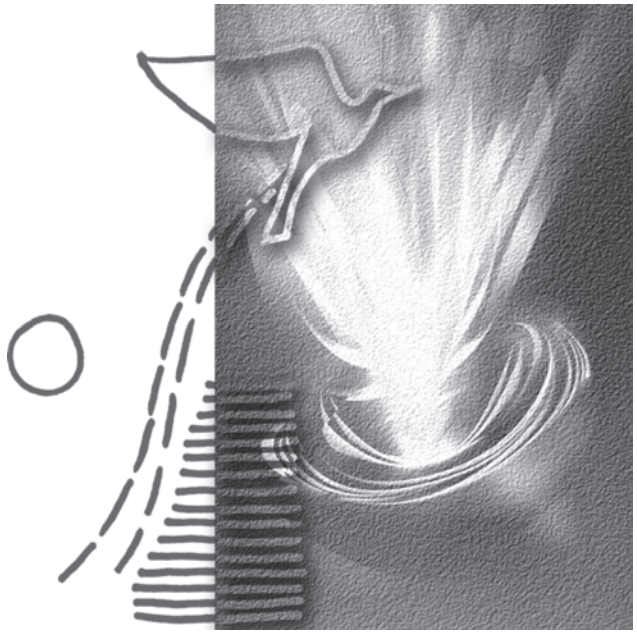

२

विकास के अभिनव आयाम

लिपिकला का विकास

हमारे धर्मसंघ में लिपिकला का बहुत विकास हुआ। अनेक साधुओं की हस्तलिपि बहुत सुंदर थी। पूज्य कालूगणी की लिपि आदर्श थी। मैंने पूज्य कालूगणी द्वारा लिखित पाटी पर अक्षर जमाने का अभ्यास किया था। रेत बिछाकर अक्षर जमाने का अभ्यास भी किया जाता था। गुरुदेव ने लिखा है–

• 'मुनि कुन्दनमलजी मुनि नथमलजी को बालू रेत बिछाकर उसमें अक्षर लिखकर सिखाते। इस क्रम से लिपि में यथेष्ट सुधार आया।'

हिन्दी भाषा का प्रारंभ

आचार्यपद का दायित्व संभालने के बाद गुरुदेव का लगभग ११ वर्ष तक विहार क्षेत्र बीकानेर राज्य रहा। उस समय वहां हिन्दी का वातावरण नहीं था। इसलिए हमारे अध्ययन, लेखन और वक्तृत्व के क्षेत्र में तीन भाषाएं चलती थी–प्राकृत, संस्कृत और राजस्थानी। मैंने वि. सं. २००२ में जीव अजीव नामक पुस्तक हिन्दी भाषा में लिखी। कुछ लेख भी लिखे। मैं संकोचवश गुरुदेव को नहीं बता रहा

था। गुरुदेव को जब इसकी जानकारी मिली तो बहुत प्रसन्न हुए। इस विषय में गुरुदेव का एक विस्तृत आलेख है–

● वि.सं. २००१। सुजानगढ़ में चतुर्मास। उन दिनों तक बीकानेर राज्य में हिन्दी का वातावरण नहीं था। हमारे संघ में भी तुम-हम की भाषा को अच्छा नहीं माना जाता था। पंजाब, हरियाणा आदि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में विहार करने वाले साधु-साध्वियों में हिन्दी सीखने का उत्साह था। किन्तु उचित प्रोत्साहन के अभाव में वह कार्यकारी नहीं हो पा रहा था। फिर भी कुछ साधु प्रच्छन्न रूप में हिन्दी पढ़ने और लिखने का अभ्यास कर रहे थे। यद्यपि उन्हें भय था कि जब कभी यह भेद खुलेगा, उन्हें उपालंभ मिलेगा। उन साधुओं में मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मुझे इस बात की जानकारी मिली तो प्रसन्नता मिश्रित आश्चर्य हुआ। मैंने उनके लिखे हुए निबंध देखे। मुझे संतोष हुआ। मुझे अनुभव हुआ कि हिन्दी भाषा का अभ्यास आवश्यक है। मैंने थोड़ी-सी प्रेरणा दी। उसका प्रभाव हुआ। संस्कृत, प्राकृत और मारवाड़ी के परिवेश में हिन्दी सीखने का मार्ग खुल गया।

संस्कृत भाषा का विकास

संस्कृत-प्राकृत साहित्य में भारतीय संस्कृति की आत्मा का साक्षात् होता है। भारतीय प्राच्य विद्या के अध्ययन के लिए जरूरी है–संस्कृत-प्राकृत भाषा का ज्ञान। तेरापंथ में श्रीमज्जयाचार्य ने संस्कृत भाषा के अध्ययन का बीज बोया। आचार्य मघवा अपने युग में संस्कृत के पंडित कहलाए। पूज्य कालूगणी ने उस बीज को पुष्पित और पल्लवित किया। पूज्य गुरुदेव ने उसे शतशाखी बना दिया। गुरुदेव ने प्रस्तुत संदर्भ में लिखा–

● संस्कृत भाषा मुझे प्रिय है। इसके प्रति मेरे मन में आकर्षण पैदा किया पूज्य गुरुदेव कालूगणी ने। पूज्य कालूगणी की संस्कृत भाषा में विशेष रुचि थी। उनके शासनकाल में संस्कृत के अध्ययन, अध्यापन, लेखन आदि का व्यवस्थित क्रम चला। पूज्य कालूगणी ने अपना उत्तराधिकार मुझे सौंपा, उसके साथ संस्कृत-प्रेम भी सौंप दिया। संस्कृत भाषा को व्यवहार्य बनाने के लिए मैंने साधु-साध्वियों को संस्कृत में निबन्ध लिखने की प्रेरणा दी। अनेक निबन्ध लिखे गए। विकास की नई संभावनाओं के द्वार खुलने लगे।

श्रीडूंगरगढ़ चातुर्मास्य (वि. सं. २००२) में साधु-साध्वियां को संस्कृत में बोलने की प्रेरणा दी। उन्होंने अभ्यास प्रारंभ कर दिया। वहां से प्रस्थान कर हम आडसर पहुंचे। वहां संस्कृत भाषण प्रतियोगिता का शुभारंभ हुआ। एक महीने तक निरंतर भाषण बोलना और एक भी शब्द अशुद्ध नहीं बोलना–प्रतियोगिता के लिए यह मानक निर्धारित हुआ। बीस साधु प्रतियोगी थे। सरदारशहर पहुंचने पर वह क्रम संपन्न हुआ। उसमें एक हजार एक सौ गाथाओं का प्रथम पुरस्कार मुनि नथमलजी (टमकोर) ने प्राप्त किया।

● जयपुर चातुर्मास्य (वि.सं. २००६) के प्रारंभ में संस्कृत जानने वाले और सीखने वाले साधु-साध्वियों की एक विशेष गोष्ठी हुई। उसका उद्देश्य था–संस्कृत भाषा को व्यापक बनाना। बहुमुखी चिंतन के बाद यह निर्णय लिया गया कि संस्कृतज्ञ साधु-साध्वियां एक सप्ताह तक पारस्परिक बोलचाल तथा कार्यक्रम संस्कृत भाषा में करें। यह घटना श्रावण मास के प्रथम सप्ताह की है। उसी सप्ताह महाराजा संस्कृत कॉलेज में एक कार्यक्रम था। वहां मैंने मुनि नथमलजी आदि सात साधुओं को भेजा। संस्कृतविद् अध्यापकों के साथ अनेक विषयों पर अच्छी चर्चा चली। तेरापंथ धर्मसंघ में संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार देखकर उन्होंने प्रसन्नता प्रकट की।

“तेरापंथ में श्रीमज्जयाचार्य ने संस्कृत भाषा के अध्ययन का बीज बोया। आचार्य मघवा अपने युग में संस्कृत के पंडित कहलाए। पूज्य कालूगणी ने उस बीज को पुष्पित और पल्लवित किया। पूज्य गुरुदेव ने उसे शतशाखी बना दिया।”

पाठ्यक्रम का निर्माण

तेरापंथ धर्मसंघ में अध्ययन-अध्यापन का प्रशस्त क्रम रहा। इस क्रम से अनेक साधु-साध्वियों का निर्माण हुआ। अध्ययन की परम्परा पुष्ट थी पर अध्यापन का कोई निश्चित क्रम नहीं रहा। एक पत्रिका में रूस के शिक्षा-क्रम को पढ़कर एक नई स्फुरणा ने जन्म लिया। उसकी निष्पत्ति थी सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम का निर्माण।

● वि.सं. २००५। आश्विन मास का प्रारम्भिक समय। मैं एक पत्रिका देख रहा था। उसमें रूस के शिक्षाक्रम की जानकारी दी गई थी। मेरे मन में एक स्फुरणा हुई–'अपने यहां भी एक शिक्षाक्रम होना चाहिए।' मैंने उसी समय मुनि नथमलजी को बुलाकर अपना चिन्तन बताया और एक पाठ्यक्रम तैयार करने का निर्देश दिया। कुछ साधु और कुछ श्रावक बैठे। पंडित रघुनन्दनजी शर्मा भी उनके साथ थे। एक पाठ्यक्रम तैयार हो गया। उसका नाम रखा गया–'आध्यात्मिक शिक्षाक्रम।' योग्य, योग्यतर और योग्यतम–ये तीन परीक्षाएं निर्धारित की गईं। योग्य में तीन वर्ष, योग्यतर में दो वर्ष और योग्यतम में दो वर्ष–इस प्रकार सात वर्ष का पाठ्यक्रम लागू हो गया। हमारे धर्मसंघ की स्वतंत्र शिक्षा पद्धति और परीक्षा का एक निश्चित स्वरूप सामने आ गया। इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के बाद थीसिस की तरह से 'कल्प' नाम से एक विशेष क्रम निर्धारित किया गया। जिन साधु-साध्वियों में संस्कृत और प्राकृत पढ़ने की क्षमता कम हो, वे भी शिक्षा से वंचित न रहें, इस दृष्टि से एक 'सैद्धान्तिक शिक्षाक्रम' भी तैयार करवा लिया। श्रावक समाज में धार्मिक शिक्षा का क्रम प्रचलित करने के लिए 'धर्मबोध' भाग १,२ और ३ के पाठ लिखाने का काम भी लगभग उसी समय प्रारम्भ करवा दिया।

पाठ्यक्रम का निर्धारण होते ही विद्यार्थी साधु-साध्वियों के नामांकन का काम शुरू हो गया। पहली बार में उत्साहवर्धक नाम आए। प्रथम परीक्षा जयपुर में हुई। लगभग तीस-पैंतीस साधु-साध्वियों ने उसमें भाग लिया। परीक्षा के परिणाम भी संतोषजनक रहे। तीन दशकों से अधिक समय तक वह पाठ्यक्रम प्रभावी रहा। सैकड़ों साधु-साध्वियों ने उसके माध्यम से शिक्षा प्राप्त की।

अध्यापन

भिक्षु न्याय कर्णिका गुरुदेव द्वारा रचित लघु ग्रंथ है। इसके द्वारा प्रमाणशास्त्र में सरलता से प्रवेश किया जा सकता है। मुझे इसके अध्यापन का बहुत अवसर मिला। प्रो. भट्टाचार्य ने इसकी उपयोगिता का सही अंकन किया–

● वि.सं. २००८। पौष मास में सिरसा में प्रवास। प्रो. दुर्गामोहन भट्टाचार्य कलकत्ता से चलकर आए। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत थे। उच्चकोटि के विद्वान थे और संस्कृत के ज्ञाता थे। उन्होंने मुनि नथमलजी के पास श्रीभिक्षुन्यायकर्णिका ग्रंथ पढ़ा। साधुओं के संस्कृत वक्तव्य और आशुकविता सुनकर वे मुग्ध हो गए।

गुरुदेव ने जैन सिद्धांत दीपिका में आचार्य भिक्षु के सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया और तर्कपूर्ण शैली में उनका प्रतिपादन किया। उसमें विद्वानों ने गंभीर चिंतन का अनुभव किया–

● 'भिक्षु विचार दर्शन' की तरह 'जैन सिद्धांत दीपिका' में भी आचार्य भिक्षु की दया-दान-विषयक मान्यताओं का उल्लेख हुआ है। मुनि नथमलजी ने 'जैन सिद्धांत दीपिका' के वे प्रसंग डॉ. सातकौड़ी

मुखर्जी को सुनाए। डॉ. मुखर्जी बहुत बड़े विद्वान थे। न्यायशास्त्र के अधिकृत विद्वान् थे। उनके निर्देशन में अनेक विद्वान काम कर रहे थे। आचार्य भिक्षु के उन गंभीर विचारों को सुनकर वे अवाक् रह गए।

आशु कवित्व का प्रारंभ

संस्कृत में कविता लिखना सरल नहीं है, आशु कविता करना बहुत कठिन है। तत्काल प्रदत्त विषय पर संस्कृत भाषा में श्लोक बनाना कठिन काम है तथा तत्काल प्रदत्त समस्या पर संस्कृत भाषा में श्लोक बनाना और अधिक कठिन काम है। पहली बार जब हमने गुरुदेव के सामने आशुकवित्व का प्रयोग किया तब गुरुदेव ने बहुत प्रसन्नता प्रकट की–

● आशु कविरत्न पंडित रघुनन्दनजी शर्मा संस्कृत के विलक्षण विद्वान थे। पूज्य कालूगणी के युग से ही वे अपनी सेवाएं संघ को दे रहे थे। उनके सहयोग से साधु-साध्वियों ने आशु कवित्व का अभ्यास शुरू किया। मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमलजी ने इस रूप में कुछ श्लोक रचकर सुनाए। मुझे प्रसन्नता हुई। मुनि नथमलजी आदि कई साधुओं ने एकाह्निक शतक बनाए। एक दिन में सौ श्लोकों की रचना आश्चर्य का विषय था।

संस्कृत भाषा में वक्तव्य और आशुकवित्व के प्रसंग

संस्कृत भाषा का विकास गुरुदेव की आंतरिक अभीप्सा थी। इस दृष्टि से उनकी सन्निधि में अनेक उपक्रम हुए। उनकी दैनंदिनी में वे उपक्रम सुरक्षित हो गए। कुछ आलेख इस प्रकार हैं–

● जगराओं (वि.सं. २००८, वैशाख शुक्ला द्वादशी) में प्रवास। वहां के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित प्रज्ञाचक्षु विद्वान श्री जगन्नाथ शास्त्री अपने शिष्यों के साथ सम्पर्क में आए। उनके द्वारा प्रदत्त विषयों पर मुनि नथमलजी ने आशुकविता की। शास्त्रीजी ने विस्मय-विमुग्ध होकर उनके कवित्व की प्रशंसा की।

● कार्तिक शुक्ला एकादशी (वि.सं. २००८)। गुरुदेव राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू के अनुरोध पर राष्ट्रपति भवन पधारे। वहां उनसे शिक्षा के विषय में बातचीत हो रही थी। उसमें आशु कवित्व का प्रसंग उपस्थित हुआ!

राष्ट्रपति ने पूछा–'आचार्यश्री! आपके यहां प्रमुख रूप से कौन-सी भाषाएं पढ़ाई जाती हैं?'

मैं–जैन आगमों की भाषा प्राकृत है। उनकी टीकाएं संस्कृत भाषा में हैं। जैन साधु के लिए उनका अध्ययन जरूरी है। इसलिए विशेष रूप से प्राकृत और संस्कृत का अध्ययन होता है। हमारे कुछ साधुओं को संस्कृत भाषा का इतना अभ्यास है कि वे तत्काल प्रदत्त विषय पर आशुकविता कर सकते हैं।

राष्ट्रपति–'क्या मैं अभी आशुकविता सुन सकता हूं?'

मैं–'क्यों नहीं, आप कोई विषय दें।'

राष्ट्रपति महोदय ने विषय दिया 'शिक्षा'। मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमलजी ने अपने आशुकवित्व से वहां उपस्थित व्यक्तियों को मंत्रमुग्ध कर दिया।'

● १५ अगस्त १९४९। मध्याह्न में कवि सम्मेलन का आयोजन था। कुछ ख्यातनामा विद्वान और कवि भी कार्यक्रम में उपस्थित थे। उनमें पंडित चैनसुखदासजी, मथुराप्रसादजी, हरिश्चन्द्रजी शास्त्री, आशुकविरत्न पंडित रघुनन्दनजी, जयन्तीप्रसादजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इतने विद्वानों की उपस्थिति

"तेरापंथ धर्मसंघ में अध्ययन-अध्यापन का प्रशस्त क्रम रहा। इस क्रम से अनेक साधु-साध्वियों का निर्माण हुआ। अध्ययन की परम्परा पुष्ट थी पर अध्यापन का कोई निश्चित क्रम नहीं रहा। एक पत्रिका में रूस के शिक्षा-क्रम को पढ़कर एक नई स्फुरणा ने जन्म लिया। उसकी निष्पत्ति थी सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम का निर्माण।"

में साधुओं के बोलने का प्रथम अवसर था। फिर भी गीतों और कविताओं का अच्छा समा बंध गया। कवि सम्मेलन के बीच में रघुनन्दनजी और मुनि नथमलजी खड़े हुए। उन्होंने विद्वानों द्वारा तत्काल प्रदत्त विषय पर संस्कृत भाषा में आशु कविताएं रचकर सुनाईं। विद्वान लोग आश्चर्यचकित हो गए।

● २२ अप्रैल १९५०। नई दिल्ली। प्रातः कांग्रेस के अध्यक्ष डॉ. पट्टाभिसीतारमैया ने दर्शन किए। उनके साथ अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी, तीनों भाषाओं में वार्तालाप हुआ। उनके संस्कृत-प्रेम को देख उन्हें संस्कृत में कुछ रचनाएं सुनाईं। मुनि नथमलजी ने संस्कृत में आशुकविता की। आशुकविता के लिए विषय स्वयं डॉक्टर साहब ने दिया। तेरापंथ धर्मसंघ में विकास के खुलते नए क्षितिज देखकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई।

● नई दिल्ली। सन् १९५०। दरियागंज में रामकृष्णजी डालमिया की कोठी। मई महीने के प्रथम सप्ताह में वहां एक विद्वद्-गोष्ठी का आयोजन। विद्वान, विचारक, पत्रकार, लेखक, संवाददाता आदि सैकड़ों प्रबुद्धजनों की उपस्थिति। कुछ साधु-साध्वियों के गीत और वक्तव्य हुए। मुनि नथमलजी 'दार्शनिक का कर्तव्य'–इस विषय पर बोले। तत्काल प्रदत्त विषय 'महाप्रयाण' पर उन्होंने आशुकविता की। उससे विद्वद् जन बहुत प्रभावित हुए।

तिलक संस्कृत विद्यापीठ में

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र तिलक संस्कृत विद्यापीठ में कार्यक्रम का आयोजन। गुरुदेव ने प्राकृत-संस्कृत के अध्ययन और आशुकवित्व की चर्चा की। इस विषय को गुरुदेव ने विस्तार से लिखा–

● २६ फरवरी १९५५। तिलक संस्कृत विद्यापीठ का सभा कक्ष प्रोफेसरों, साहित्यकारों और विद्वानों से भरा था। संस्कृत में आशुकवित्व की बात सुन उन्होंने आशुकविता सुनने की इच्छा व्यक्त की। कविता के दो विषय–'संस्कृत का विरोध' और 'आज की विद्वत्सभा' देते हुए उन्होंने एक विषय पर बोलने का निवेदन किया। उनका निवेदन निम्नलिखित दो श्लोकों में था–

यच्च संस्कृतभाषायाः विरोधो दृश्यते क्वचित्।
तमेवाश्रित्य विषयं काव्यमत्र विरच्यताम्॥
मिलिताः पंडिताः सर्वे, काव्यस्य श्रवणेच्छया।
अतो हि काव्यमाश्रित्य वर्ण्यतां विदुषां सभा॥

मुनि नथमलजी आशुकविता करने खड़े हुए। उन्होंने दोनों विषयों पर उत्कृष्ट कोटि की काव्य-रचना कर विद्वानों को विस्मित कर दिया। प्रथम समस्या की पूर्ति उन्होंने चार श्लोकों में की। उनमें से प्रथम श्लोक यहां उद्धृत किया जा रहा है–

यस्यां महत्तत्त्वमहो विभाति, स्वाध्यायिकी येन गतिः प्रवृद्धा।
विकासमार्गो विशदो यतः स्यात्, तथापि लोकैः क्रियते विरोधः॥

दूसरी समस्या की पूर्ति करते हुए उन्होंने सात श्लोकों की रचना की। सप्तश्लोकी का सातवां श्लोक यहां प्रस्तुत है–

नाज्ञेषु शान्तिः स्थिरताप्रसक्तिः, शान्ताः स्थिराः सन्ति समे यदेते।
विद्वत्सभेयं लसतेऽत्र रम्या, सर्वेऽपि विद्वांस इति ब्रवीमि॥

स्रग्धरा छन्द में

● २७ फरवरी १९५५। आज अपराह्न में गीर्वाण वाग्वर्धिनी सभा ने आनन्दाश्रम में आयोजित कार्यक्रम में हमें आमंत्रित किया। वहां भी आशुकविता का प्रसंग उपस्थित हुआ। एस. पी. कॉलेज के अवकाश प्राप्त संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. के. एन. वाटवे ने स्रग्धरा छन्द में 'घड़ी' विषय पर आशुकविता करने का अनुरोध करते हुए एक श्लोक कहा–

समयज्ञापकं नित्यं, नव्यानां हस्तभूषणम्।
स्रग्धरावृत्तमालम्ब्य, घटीयन्त्रं हि वर्ण्यताम्॥

'स्रग्धरा' छन्द में आशुकविता करना काफी कठिन है। पर मुनि नथमलजी ने तत्काल घड़ी के बारे में चार श्लोक बनाकर सुना दिए। उनमें प्रथम श्लोक अग्रांकित है–

यद्वा ज्ञातं पुराणैर्निखिलऋषिवरैर्व्योम वीक्ष्यापि कालः,
ज्ञाता तज्ज्ञायते वा प्रकृतिविवशता साम्प्रतं वर्धमाना।
स्वातन्त्र्यस्य प्रणादो बहुजनमुखगः किन्तु नो कार्यरूपे,
हस्ते बध्वा घटीस्ता भवति च मनुजाश्चित्रमासामधीनः॥

विद्वत्ता का मूल्य विद्वान ही आंक सकते हैं, इस तथ्य की सत्यता पूना में पूर्ण रूप से उजागर हो गई। वहां के विद्वानों ने मुनि नथमलजी आदि की वैदुष्यपूर्ण रचनाओं को सुनकर उदारता के साथ गुणानुवाद किया।

बंबई और पूना में आयोजित कार्यक्रमों में मुनि नथमलजी का व्यक्तित्व, कर्तृत्व और वैदुष्य खुलकर सामने आ गया। उनकी शिक्षा, दीक्षा, वक्तृत्व और आशुकवित्व के प्रति प्रबुद्धवर्ग में बहुत ऊंची भावना बन गई। उनके कारण तेरापंथ धर्मसंघ की प्रभावना में भी वृद्धि हुई। उस प्रवास की उपलब्धियों को देख मेरे मुंह से अनायास निकल पड़ा–यह पुण्यपत्तन वास्तव में पुण्यपत्तन है।

"बंबई और पूना में आयोजित कार्यक्रमों में मुनि नथमलजी का व्यक्तित्व, कर्तृत्व और वैदुष्य खुलकर सामने आ गया। उनकी शिक्षा, दीक्षा, वक्तृत्व और आशुकवित्व के प्रति प्रबुद्धवर्ग में बहुत ऊंची भावना बन गई। उनके कारण तेरापंथ धर्मसंघ की प्रभावना में भी वृद्धि हुई। उस प्रवास की उपलब्धियों को देख मेरे मुंह से अनायास निकल पड़ा–यह पुण्यपत्तन वास्तव में पुण्यपत्तन है।"

राष्ट्रकवि के घर में

● १ दिसम्बर १९५६, नई दिल्ली। नार्थ एवेन्यु एम.पी. क्लब में उस दिन एक विशेष आयोजन था। कार्यक्रम की सम्पन्नता के बाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुरोध पर हम उनके घर गए। तेरापंथ की साहित्यिक गतिविधियों के संदर्भ में चर्चा के मध्य उन्हें आशुकवि मुनियों का परिचय दिया। वहां उपस्थित सांसद राधाकुमुद मुखर्जी ने एक विषय दिया–तृष्णा-उपशम। मुनि नथमलजी ने आशुकविता कर सबको चमत्कृत कर दिया।

● १ जनवरी १९५७। मध्याह्न में दो बजे कठोतिया-भवन में हमारे अभिनन्दन का कार्यक्रम रखा गया। 'भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' की ओर से वह आयोजन था। उस कार्यक्रम ने आगे चलकर साहित्य गोष्ठी का रूप ले लिया। उसमें मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी, पं. चारुदेव शास्त्री, प्रो. एम. कृष्णमूर्ति, डॉ. सत्यव्रत, कर्णदेव शास्त्री, आचार्य श्यामलाल शास्त्री आदि अनेक वक्ताओं ने संस्कृत में भाषण दिए। सन्तों ने आशुकविता की।

● ३ अप्रैल १९५७। संस्कृत भाषा की दृष्टि से छोटी काशी के रूप में प्रसिद्ध रामगढ़ किसी समय संस्कृत विद्वानों का गढ़ था। ३ अप्रैल को एच.पी. अस्पताल के डॉक्टर रामेश्वर प्रसाद के अनुरोध पर रामगढ़ में संस्कृत संगोष्ठी का आयोजन हुआ। नगर के प्रायः सभी पण्डित उपस्थित थे। पण्डितों और साधुओं के कुछ वक्तव्यों के बाद मुनि नथमलजी ने संस्कृत में आशुकविता की। उसे सुनकर पण्डितजन मंत्रमुग्ध हो गए।

• अप्रैल १९५७। फतेहपुर। संस्कृत गोष्ठी बहुत अच्छी रही। कुछ पण्डित स्याद्वाद को संशयवाद मानते थे। उस सम्बन्ध में भी स्पष्टीकरण किया गया। मुनि नथमलजी का संस्कृत भाषण विशेष रूप से प्रभावकारी रहा। वक्तव्यों के बाद प्रश्नोत्तर चले। इस क्रम से पण्डितों को अपनी जिज्ञासाएं खुलकर रखने का मौका मिल गया।

अविस्मरणीय रात

• २२ दिसम्बर १९५८। वाराणसी में संस्कृत विश्वविद्यालय में 'विद्वत् परिषद्' का आयोजन था। मुनि नथमलजी ने जैन दर्शन में अनेकान्तवाद विषय पर संस्कृत भाषा में वक्तव्य दिया। उन्होंने संस्कृत में आशुकविता की। उस दिन मेरा प्रवचन भी संस्कृत में हुआ। विद्वानों और विद्यार्थियों में प्रसन्नता और विस्मय के भाव देखे गए। लगभग आधा घंटे तक प्रश्नोत्तरों का क्रम चला। कुछ प्रश्नों का सम्बन्ध स्याद्वाद से था। अनेक विद्वानों ने स्याद्वाद की प्रस्तुति संशयवाद के रूप में दी। हमने उसका यथार्थ स्वरूप समझाने का प्रयास किया। गम्भीर चर्चा चली। विद्वान विवाद के मूड में थे। हमारा समय सम्पन्न हो रहा था। वार्ता को बीच में स्थगित कर देते तो वे कह सकते थे कि हम अपना पक्ष सिद्ध नहीं कर सके। इससे भी बड़ी बात यह थी कि स्याद्वाद के बारे में उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो नहीं पाता। मैंने कहा–'नथमलजी! जब तक हम अपना मन्तव्य यौक्तिक ढंग से प्रमाणित न कर दें, तब तक यहां से जाना नहीं है।'

सूर्यास्त होने वाला था। रात्रिकालीन प्रवास की व्यवस्था दूसरे स्थान पर थी। वहां जाने से वार्ता अधूरी रह जाती। विश्वविद्यालय के अधिकारियों से पूछताछ की। उन्होंने कहा–'रात को आप यहां रह सकते हैं।' हमने वहीं रहने का निर्णय कर लिया। एक बार कार्यक्रम सम्पन्न कर दिया। प्रतिक्रमण और प्रार्थना के बाद वहां चर्चा का दूसरा दौर शुरू हुआ। संस्कृत भाषा, गंभीर विषय पर प्रस्तुति का तरीका सरस। लम्बी चर्चा के बाद विद्वानों ने स्याद्वाद के महत्त्व को स्वीकार किया। हमारी चर्चा में जय-पराजय की भावना नहीं थी। तत्त्वबोध का लक्ष्य प्रमुख था। इसलिए सबको आनन्द की अनुभूति हुई।

रात को सोने के लिए हमें बड़े-बड़े कमरे उपलब्ध हुए। सर्दी का मौसम था। शहर से दूर एकान्त स्थान था। रात्रि में सर्दी का परीषह रहा। ठंड को सहन करने पर भी मन में संतोष था। साधु जीवन में अनुकूलताएं और प्रतिकूलताएं आती रहती हैं। यात्रा में कई स्थानों पर सर्दी का कष्ट रहता है पर वाराणसी की वह रात हमें याद रहेगी।

आशुकविता सम्मेद शिखर पर

• १६ जनवरी १९५९। नालन्दा में नवनालन्दा महाविहार पाली इन्स्टीट्यूट की ओर से अभिनन्दन का विशेष कार्यक्रम। इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर डॉ. सातकौड़ी मुखर्जी ने प्रांजल संस्कृत भाषा में लिखा गया विस्तृत अभिनन्दन पत्र पढ़ा। उस अवसर पर मुनि नथमलजी ने संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी–तीनों भाषाओं में धाराप्रवाह बोलते हुए श्रमण संस्कृति के मौलिक सिद्धान्तों का विवेचन किया।

• ५ दिसम्बर १९५९। जैनों का प्रमुख ऐतिहासिक स्थल सम्मेदशिखर। इस अवसर्पिणी काल की चौबीसी में बीस तीर्थंकरों की निर्वाणस्थली सम्मेदशिखर है। सम्मेदशिखर के सर्वोच्च शिखर पर भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर है। एक बजे मन्दिर के बाहरी स्थान में सभा का आयोजन था। वहां स्थान कम था और लोग अधिक थे। सैकड़ों लोग मंदिर की सीढ़ियों पर बैठे। बड़ा मनोहारी दृश्य था। भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति में गीत का सामूहिक संगान हुआ। मुनि नथमलजी ने संस्कृत में आशुकविता की।

• ११ मई १९६४। भारतीय विद्या भवन में प्रवास। रात्रि में विद्या भवन के निदेशक श्री मजूमदार अपने परिवार के साथ आए, कुछ अन्य लोग भी आ गए। अनायोजित कवि गोष्ठी हो गई। मुनि नथमलजी ने आशु कविता की।

• २४ फरवरी १९६८। डेक्कन कॉलेज (पूना) के शोध संस्थान के सभागृह में एक विशेष कार्यक्रम रखा गया। संस्थान में कार्यरत प्रायः सभी विद्वान उपस्थित थे। उनको तेरापंथ धर्मसंघ, अणुव्रत, साहित्य-सृजन, आगम-सम्पादन आदि की व्यवस्थित जानकारी दी। मुनि नथमलजी ने विद्वानों द्वारा प्रदत्त विषय–'सप्तनयम्' पर संस्कृत में आशुकविता कर विद्वद्वर्ग को चमत्कृत कर दिया।

• २८ फरवरी १९६८। पूना में हमारा अगला कार्यक्रम 'महाराष्ट्र तिलक विद्यापीठ संस्कृत महाविद्यालय' में था। कुछ साधुओं के संस्कृत और हिन्दी भाषा में वक्तव्य हुए। मुनि नथमलजी ने विद्वानों द्वारा प्रदत्त विषयों पर तीन बार संस्कृत में आशुकविता की। वहां उपस्थित विद्वान मंत्रमुग्ध-से हो गए। विद्वानों की प्रमोद भावना और आत्मीयता देखकर हमें भी प्रसन्नता हुई।

• २६ सितम्बर १९६८। अडियार। श्रीमती रुक्मिणीदेवी अरुण्डेल द्वारा संचालित कलाक्षेत्र में श्रद्धापूर्वक स्वागत। प्रार्थना-सभा में पहले वैदिक विधि से कुछ पद्यों का संगान किया गया। बौद्ध धर्मगुरु तथा कुछ तिब्बती छात्रों ने बौद्ध विधि से प्रार्थना की। हमने अर्हत् वंदना के कुछ पद्यों का संगान किया। प्रार्थना के बाद वहां उपस्थित जनसमूह को संबोधित किया। मुनि नथमलजी की आशुकविता के पश्चात् कार्यक्रम संपन्न हुआ।

• चिदम्बरम्, २५ जनवरी १९६९ का कार्यक्रम नटराज मंदिर में था। मंदिर के प्रमुख पुजारी और व्यवस्थापक श्री पोधू दीक्षिधर (दीक्षित) ने संस्कृत में लिखा हुआ अभिनन्दन-पत्र पढ़ा। एक अन्य पुजारी ने संस्कृत पद्यों में स्वागत किया। संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष श्री शिवसुब्रह्मण्यम ने अपने अभिभाषण में कहा–'हम आज चिदम्बरम में चिदम्बर आचार्य का अभिनंदन करते हैं। चिदम्बरम शब्द महादेव का वाचक है, इसी प्रकार श्वेताम्बर का भी वाचक है। चित् ज्ञानं शुभ्रं, शुभ्रं श्वेतं–इस व्युत्पत्ति से चिदम्बर का अर्थ श्वेताम्बर है। चिदम्बर मन्दिर में श्वेताम्बर आचार्य का अभिनंदन इतिहास की एक दुर्लभ घटना है।' मुनि नथमलजी की आशुकविता ने उपस्थित जनसमूह को प्रभावित कर लिया।

त्रिवेन्द्रम् राजभवन में

• १८ मार्च १९६९। त्रिवेन्द्रम्। संस्कृत कॉलेज से विहार कर हम महाराजा त्रावणकोर के राजभवन में गए। महाराजा के साथ हमारी लगभग चालीस मिनट बातचीत हुई। अणुव्रत, जैनधर्म, तेरापंथ का संगठन तथा साहित्य एवं कला-साधना के बारे में महारानी ने कई प्रश्न पूछे। साधु-साध्वियों द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुओं को देखकर राजपरिवार मुग्ध हो गया। हमारे पाठ्यक्रम में संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के अध्ययन की बात सुन महारानी ने संस्कृत में कुछ सुनने की इच्छा प्रकट की। मुनि नथमलजी ने संस्कृत में आशुकविता कर उन्हें चमत्कृत कर दिया।

• १५ मई १९६९ को प्रातः हम चतुर्विध धर्मसंघ के साथ इन्द्रगिरि की छह सौ सीढ़ियां चढ़कर बाहुबलि की प्रतिमा के निकट पहुंचे। प्रतिमा की भव्यता और विशालता दर्शनीय है। उसके सारे अंग-प्रत्यंग इतने सुन्दर हैं कि देखते-देखते मन नहीं भरता। हजार वर्ष से वह प्रतिमा ज्यों की त्यों खड़ी है। उसे देखकर किसी दिव्य शक्ति का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रतिमा का निरीक्षण कर हम उसके सामने छत

"प्रतिक्रमण और प्रार्थना के बाद चर्चा का दूसरा दौर शुरू हुआ। संस्कृत भाषा, गंभीर विषय पर प्रस्तुति का तरीका सरस। लम्बी चर्चा के बाद विद्वानों ने स्याद्वाद के महत्त्व को स्वीकार किया। हमारी चर्चा में जय-पराजय की भावना नहीं थी। तत्त्वबोध का लक्ष्य प्रमुख था। इसलिए सबको आनन्द की अनुभूति हुई।"

पर बैठ गए। अर्हत्-वंदना के सामूहिक संगान से कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। भरतमुक्ति के कुछ पद्यों का संगान कर प्रासंगिक प्रवचन किया। मुनि नथमलजी ने संस्कृत में आशुकविता की।

विनोबाजी द्वारा प्रदत्त विषय पर

• ३ अप्रैल १९७०। प्रातः बजाजबाड़ी होते हुए हम पुनः गोपुरी आ गए। उस दिन की संगोष्ठी विनोबाजी की कुटिया में रखी गई थी। हम वहां पहुंचे। ठीक समय पर वार्तालाप शुरू हुआ। अच्छी चर्चाएं चलीं। हमने विनोबाजी को साधु-साध्वियों द्वारा निर्मित कलात्मक चीजें दिखाईं। वार्तालाप की सम्पन्नता पर मुनि नथमलजी ने आशुकविता की। उसके लिए विषय स्वयं विनोबाजी ने दिया था।

• १२ फरवरी १९७४। अहिंसा भवन (दिल्ली) में मुनि नथमलजी ने 'संस्कृत और संस्कृति' विषय पर क्रमशः प्राकृत और संस्कृत भाषा में वक्तव्य दिया तथा मानव एकता के बारे में संस्कृत में आशुकविता की।

• ८ जनवरी १९९२। साध्वी लक्ष्मीवतीजी को दर्शन दिए। आज चौविहार अनशन का छब्बीसवां दिन है। अच्छी सचेतन अवस्था है। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने आशुकविता की।

प्राकृत भाषा में वक्तव्य

संस्कृत के साथ साथ प्राकृत भाषा के विकास का लक्ष्य सदा सामने रहा। पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा से मैंने प्राकृत व्याकरण तुलसी मंजरी का प्रणयन किया। उससे प्राकृत भाषा पर अव्याहत अधिकार हो गया। प्राकृत में वक्तव्य और आशुकवित्व के विरल प्रसंग का गुरुदेव ने हृदयस्पर्शी अंकन किया है–

• १० सितम्बर १९५४। मुंबई में आयोजित संस्कृत संगोष्ठी में पेनसिलवेनिया युनिवर्सिटी के प्रोफेसर तथा एशिया स्टडीज के चैयरमैन डॉ. डब्ल्यू नार्मन ब्राउन उपस्थित थे। मुनि नथमलजी ने प्राकृत व्याकरण तुलसी मंजरी के बारे में बताया। प्राकृत भाषा के प्रति अपनी रुचि प्रकट करते हुए डॉ. ब्राउन ने प्राकृत में भाषण सुनाने का अनुरोध किया। मुनि नथमलजी का धाराप्रवाह प्राकृत भाषण सुनकर वे मुग्ध हो गए। उनके द्वारा प्रदत्त 'कल्पसूत्र का रहस्य' विषय पर मुनि नथमलजी ने इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति और शार्दूलविक्रीडित छन्दों में आशुकविता की। तेरापंथ धर्मसंघ में संस्कृत और प्राकृत भाषा का विकास देख वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। उस दिन मैंने भी अपना वक्तव्य संस्कृत में दिया।

डॉ. ब्राउन ने इस मिलन को अपने जीवन की विशिष्ट उपलब्धि बताते हुए कहा–'तेरापंथ संघ में संस्कृत वाङ्मय का इतना विकास देखकर मैं हर्षविभोर हो रहा हूं। मेरे जीवन का यह पहला प्रसंग है, जब मैंने प्राकृत में धाराप्रवाह भाषण सुना। मुनिजी ने आशुकविता की, वह प्रतिभा के उच्चतम विकास की प्रतीक है। मुझे अंग्रेजी में ऐसा करने के लिए कहा जाए तो मैं नहीं कर सकता। इस अनुकरणीय विद्याराधना से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। यह संघ संस्कृत का घर है। मेरे पूर्वजन्म के पुण्यों का प्रभाव है, जो आज मुझे आचार्यजी के सम्पर्क में आने का यह चिरस्मरणीय मौका मिला।'

प्राकृत भाषा में आशुकविता

डॉ. नार्मन ब्राउन तेरह वर्ष बाद पुनः मिले। उन्होंने आगम-अनुसंधान कार्य पर प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने 'मणिशेखर' चोर की कथा को प्राकृत के आर्या छंद में सुनने की इच्छा व्यक्त की। प्राकृत भाषा में आशुकवित्व का वह पहला अवसर था–

१६ जनवरी १९६८। विश्व के प्रसिद्ध विद्वान अमेरिका की पेनसिलवेनिया यूनिवर्सिटी के संस्कृत के विभागाध्यक्ष एवं अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज के अध्यक्ष डॉ. डब्ल्यू. नार्मन ब्राउन आए। लगभग एक घण्टे तक वार्तालाप हुआ। आगम अनुसंधान कार्य पर विशद चर्चा हुई। उनको तब तक के प्रकाशित आगम ग्रन्थ दिए गए। हमारी साहित्य-साधना से प्रभावित होकर वे बोले–'केवल तीस साधु-साध्वियों द्वारा इतना महान कार्य आप भ्रमण करते हुए भी कर रहे हैं, यह वस्तुतः अभिनन्दनीय है। विदेशों में इस साहित्य का प्रचार किया जाना चाहिए। मैं भी इसमें पूरा सहयोग करूंगा।'

मुनि नथमलजी ने डॉ. ब्राउन से संस्कृत भाषा में बात की। उन्होंने प्राकृत भाषा में एक कथा भी सुनाई। फिर डॉ. ब्राउन के अनुरोध पर उसका सारांश बताने के लिए आर्या छन्द में आशु कविता की। प्राकृत भाषा में आशु कविता करने का संभवतः वह प्रथम अवसर था। उसे सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

अंग्रेजी भाषा का विकास

राजस्थानी, हिन्दी, प्राकृत और संस्कृत भाषा में पढ़ना, लिखना और बोलना मेरे लिए सहज-सुगम था। वर्तमान युग में अंग्रेजी भाषा पर भी अधिकार होना चाहिए। आचार्यवर ने इस अपेक्षा को समझा और मुझे इस विषय में गति करने की प्रेरणा दी। उस प्रेरणा ने अंग्रेजी भाषा के अध्ययन का द्वार उद्घाटित कर दिया। अंग्रेजी मेरे अध्ययन का विषय बन गई। मैं हिन्दी, प्राकृत एवं संस्कृत की तरह अंग्रेजी भाषा में धाराप्रवाह वक्तव्य देने में सक्षम नहीं बन पाया किन्तु अंग्रेजी साहित्य को पढ़ने-समझने तथा अंग्रेजी भाषा में वार्तालाप करने में सफल हो गया। अंग्रेजी भाषा के विकास की पहली प्रेरणा का गुरुदेव ने इन शब्दों में उल्लेख किया है–

● ९ जनवरी १९६८। एक रात गोष्ठी में विचारणीय प्रश्न था–हमारा चिन्तन इतना असाम्प्रदायिक है, विचारधारा स्पष्ट है, फिर भी सभाओं में उच्चस्तर के लोग कम क्यों आते हैं? उक्त संदर्भ में हुए चिन्तन के निष्कर्ष को दो बिन्दुओं में प्रस्तुत किया जा रहा है–

१. सामान्यतः जैन मुनियों के प्रति लोगों में विशेष आकर्षण नहीं है। हमारा दृष्टिकोण कितना ही व्यापक और स्पष्ट हो, जैन मुनि का लेबल तो है ही। इस कारण हम भी सबके साथ एक ही चक्की में पीसे जाते हैं।

२. हमारे यहां सब कुछ ठीक होने पर भी अंग्रेजी भाषा पर अधिकार नहीं है। मेरी दृष्टि में यह एक बड़ी कमी है। आज भी संभवतः उच्चस्तरीय लोग हिन्दी में सुनना कम पसन्द करते हैं। इसलिए हमें इस कमी की पूर्ति के लिए सजग होना चाहिए। केवल लोगों के लिए नहीं, अंग्रेजी भाषा के समृद्ध साहित्य का उपयोग करने के लिए भी इस दिशा में विशेष पुरुषार्थ अपेक्षित है।

गोष्ठी चल रही थी। मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) किसी कार्यवश वहां आए। मैंने उनको सम्बोधित करके कहा–'मैं तो अब अंग्रेजी भाषा में गति नहीं कर सकता, पर तुम्हें इस ओर ध्यान देना चाहिए। मैं इस विषय में तुमको गति कराना चाहूंगा। कुछ अन्य बाल साधुओं को भी तैयार करना होगा। योग साधना जैसी गति करनी होगी।'

दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश

वि. सं. १९९५। सरदारशहर चतुर्मास में पूज्य गुरुदेव प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार की वृत्ति पढ़नी शुरू की। चतुर्मास के पश्चात् इस अध्ययन-क्रम में हमें भी सहभागी बना लिया। गुरुदेव ने कहा–हम

मैं और मेरे गुरु

"मेरे जीवन का यह पहला प्रसंग है, जब मैंने प्राकृत में धाराप्रवाह भाषण सुना। मुनिजी ने आशुकविता की, वह प्रतिभा के उच्चतम विकास की प्रतीक है। मुझे अंग्रेजी में ऐसा करने के लिए कहा जाए तो मैं नहीं कर सकता। इस अनुकरणीय विद्याराधना से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। यह संघ संस्कृत का घर है। मेरे पूर्वजन्म के पुण्यों का प्रभाव है, जो आज मुझे आचार्यजी के सम्पर्क में आने का यह चिरस्मरणीय मौका मिला।"

प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार की व्याख्या रत्नकरावतारिका पढ़ रहे हैं। तुम आओ और सुनो। गुरुदेव ने उस समय की हमारी स्थिति का यथार्थ उल्लेख किया है–

• मुझे रत्नाकरावतारिका ग्रंथ पूरा पढ़ना था। अकेला पढ़ूं तो कैसे पढ़ूं? मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी आदि उस समय तक अध्ययन की दृष्टि से इतने परिपक्व नहीं हुए थे। वे दार्शनिक ग्रंथ समझ सकें, यह स्थिति नहीं थी। मेरे सामने दूसरा कोई विकल्प नहीं था। मैंने उनसे कहा–'मैं जो पढ़ूं, तुम उसे सुना करो।' वे मेरी पाठशाला के विद्यार्थी रह चुके थे। मेरे प्रति प्रारंभ से ही समर्पित थे। विशेष कुछ समझ में न आने पर भी वे बराबर मेरे साथ बैठते और मन लगाकर सुनते। इस अध्ययन से दर्शन के क्षेत्र में अवगाहन का अवसर मिला।

अनेकांत का प्रयोग

मैंने जैन दर्शन को पढ़ा। अनेकांत को मैंने जैन दर्शन के प्राणतत्त्व के रूप में पढ़ा। उसे व्यवहार में उतारने का प्रयोग किया। लेखन, वक्तव्य, विचार की अभिव्यक्ति–इन सबमें परिवर्तन आ गया। गुरुदेव ने इसे एक नई पहल के रूप में स्वीकार किया–

• भगवान महावीर अनेकांत के प्रवक्ता थे। उन्होंने स्थान-स्थान पर अनेकांत का प्रयोग किया। हम उनके अनुगामी हैं। वे जिस पथ से चले, उसी पर चलना हमें अभीष्ट है। हम अनेकांत को समझें और अपनी बात उसी शैली में प्रस्तुत करें। इससे दो लाभ हैं–सत्य का प्रतिपादन किया जा सकता है और कटुता का परिहार हो सकता है। अनेकांत की शैली खण्डनात्मक नहीं, मण्डनात्मक होती है। इसमें आक्षेपात्मक प्रहार नहीं होते, सहज भाव से तत्त्व का निरूपण होता है। इस विषय में मुनि नथमलजी (टमकोर) ने पहल की। उन्होंने अनेकांत शैली को आधार बनाकर साहित्य लिखना शुरू किया। उसका परिणाम भी आया। उनका साहित्य जहां-कहीं पहुंचा, विद्वानों ने उस पर अनुकूल टिप्पणियां कीं। दिगम्बर विद्वान श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री ने मुनि नथमलजी द्वारा लिखित साहित्य पढ़ा। उसके बाद वे मिले तो बोले–'आपने अपनी बात कहने में कहीं कोई कमी नहीं रखी, पर वह इस ढंग से कही है कि हमें उसका एक शब्द भी नहीं अखरा।' 'प्रबुद्ध जीवन' के सम्पादक परमानन्द भाई कापड़िया ने भी इस आशय के विचार व्यक्त किए। हमारी लेखनशैली में परिवर्तन के कारण ही स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रबुद्ध संत उपाध्याय अमरमुनि ने 'अहिंसा दर्शन' नाम की अपनी पुस्तक के कई अंश निकाल दिए। उन स्थलों में तेरापंथ के सिद्धांतों की आक्षेपात्मक आलोचना थी। अपने ही चिन्तन से उन स्थलों को पुस्तक से निकाल देना उपाध्यायजी की उदारता और हमारी समन्वय नीति का प्रतिफल है। लेखन की तरह वक्तृत्व शैली में भी परिवर्तन अपेक्षित था। उस परिवर्तन से हमें लाभ का अनुभव हुआ। अपनी अनुभूति के आधार पर हमने कुछ प्रयोग किए। मेरी दृष्टि में वे प्रयोग सफल भी हुए।

एक अनुकरणीय उदाहरण

सन् १९५०। गुरुदेव का आगरा में पदार्पण। उपाध्याय अमरमुनिजी ने यथार्थ की स्वीकृति और सांप्रदायिक सौहार्द का जो उदाहरण प्रस्तुत किया, वह पूरे जैन समाज के लिए आदर्श बनकर बोल रहा है–

• उपाध्याय अमरमुनिजी के साथ दूसरी उपनिषद लगभग दो घण्टे चली। हम जहां बैठे थे, वहां उनका साहित्य रखा हुआ था। मैंने मुनि नथमलजी को साहित्य देखने के लिए कहा। उनके साहित्य में

तेरापंथ विरोधी बातें लिखी हुई थीं। उनके पृष्ठ हमारे पास नोट किए हुए थे। मुनि नथमलजी ने कई पुस्तकों को उलट-पुलटकर देखा, पर वह विवादास्पद मैटर नहीं मिला। अमर मुनि ने पूछा–'आप क्या देख रहे हैं?' हमने कहा–'आपके साहित्य की कुछ बातें आपको बताने के लिए नोट की थी, पर वे मिल नहीं रही हैं।' अमर मुनि हंसते हुए बोले–'अब आपको वे बातें मिलेंगी नहीं। मैंने जब से आपका साहित्य पढ़ा, अपनी पुस्तकों से वे संदर्भ बदल दिए। ये उन पुस्तकों के द्वितीय संस्करण हैं। इनमें पहले वाले प्रकरण नहीं हैं।' यह बात सुन मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। अपने साहित्य से अपने आप विरोधी कहलाने वाले सम्प्रदाय पर की गई टिप्पणियों को हटा देना बड़ी बात है।

प्रतिवाद का पहला प्रयोग

● सन् १९५४ में बंबई में जहां एक ओर छिछले स्तर का विरोध हो रहा था, वहां उच्च स्तरीय आलोचना का भी सूत्रपात हुआ। वह सूत्रपात करने वाले थे 'प्रबुद्ध जीवन' के सम्पादक परमानन्द कुंवरजी कापड़िया। उन्होंने एक विस्तृत लेख लिखा और उसे अपने पत्र में प्रकाशित कर दिया। एक दिन मैंने 'प्रबुद्ध जीवन' का दिनांक १५/११/१९५४ का अंक देखा। उसमें परमानन्दजी का वह आलोच्य लेख था। लेख का शीर्षक था–'अहिंसा नी अधूरी समजण।' कलकत्ता से प्रकाशित साप्ताहिक 'तरुण जैन' में उस लेख का हिन्दी अनुवाद छपा। उसके अनुवादक थे भंवरमलजी सिंघी। तेरापंथ के कट्टर विरोधियों में वे एक थे। मैंने वह लेख पढ़ा।

उसमें तेरापंथ की अहिंसा संबंधी मान्यताओं की विस्तृत आलोचना की गई थी। शिष्ट भाषा, प्रांजल शैली और यौक्तिक प्रतिपादन। दुराग्रहों की धुंध में आशा की नई किरण जैसा लगा वह लेख। उसी स्तर पर विरोध की प्रतीक्षा थी। उसे पढ़ते ही मेरे मन पर पहली प्रतिक्रिया हुई–'प्रबुद्ध जीवन' गुजराती भाषा का प्रमुख पत्र है। इसे हजारों लोग पढ़ते हैं। इसके पाठकों में सामान्य लोगों की तरह प्रबुद्ध लोग भी हैं। यह लेख पत्र के संपादक परमानन्दजी का है और आलोचनात्मक है। ऐसे लेख ध्यान से पढ़े जाते हैं। पढ़ने वाले तेरापंथ की मान्यताओं के प्रति संदिग्ध होंगे, इसमें संदेह नहीं है। सब लोग हमारे पास आकर सन्देह का निवारण कर लेंगे, यह भी संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में हमें अपनी ओर से अच्छा स्पष्टीकरण देना चाहिए।

चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति में कालक्षेप करना मेरा स्वभाव नहीं है। जब जो बात दिमाग में आती है, उसकी क्रियान्विति में संलग्न हो जाता हूं। मैंने तत्काल मुनि नथमलजी को बुलाया। 'प्रबुद्धजीवन' का समालोच्य लेख उन्हें दिखाते हुए कहा–'नथमलजी! अब मौन खोलो। किसी विरोधी लेख, टिप्पणी, पोस्टर या पैम्पलेट का जवाब नहीं देना, यह हमारी परम्परा रही है। अब इसमें थोड़ा परिवर्तन करना जरूरी है। आज हमें लीक से हटकर सोचना है। हमने विरोध का जबाव नहीं दिया, इसका कारण था उसका छिछला स्तर। विरोधियों की लेखनी पढ़कर लगता था कि उनके मन में द्वेष, आक्रोश और मात्सर्य के भाव हैं। वे तेरापंथ की मान्यताओं को सही रूप में प्रस्तुत कर उनका प्रतिवाद नहीं करते थे। उनका लक्ष्य जनता को भ्रांत करना रहा होगा, इसलिए उन्होंने सिद्धांतों को तोड़-मोड़कर या संदर्भ छोड़कर उनका खण्डन किया। यह काम एक बार नहीं, अनेक बार किया। पिष्ट-पेषण या चर्वित-चर्वण का यह सिलसिला दो सौ वर्षों से चल रहा है। अपनी नीति के अनुसार हमने सदा विरोध के प्रति उपेक्षा का भाव रखा। यह काम कठिन बहुत था। हमारी नसों में भी खून गरम होता था। फिर भी हमने कभी अपना संतुलन नहीं खोया। आज यह पहला दिन है, जब तेरापंथ की मान्यताओं को लेकर उच्च स्तर का विरोध सामने आया है। संयत

"अनेकांत की शैली खण्डनात्मक नहीं, मण्डनात्मक होती है। इसमें आक्षेपात्मक प्रहार नहीं होते, सहज भाव से तत्त्व का निरूपण होता है। इस विषय में मुनि नथमलजी (टमकोर) ने पहल की। उन्होंने अनेकांत शैली को आधार बनाकर साहित्य लिखना शुरू किया। उसका परिणाम भी आया। उनका साहित्य जहां-कहीं पहुंचा, विद्वानों ने उस पर अनुकूल टिप्पणियां कीं।"

और शालीन भाषा में लेखक ने खुलकर लिखा है। इसका प्रतिवाद करना मुझे आवश्यक प्रतीत होता है। अब तुम अपनी लेखनी उठाओ और खुलकर लिखो।'

मेरी बात सुनकर नथमलजी चौंके। यह स्वाभाविक भी था। कोई भी नया काम हो, पहली बार उसमें थोड़ी झिझक होती है। पर मुनि नथमलजी की प्रकृति ऐसी है कि मेरा निर्देश मिलने के बाद वे ननुनच करना जानते ही नहीं हैं। मेरे संकेत को वे हार्दिक भाव से स्वीकार करते हैं और पूरे मन से उस काम में संलग्न हो जाते हैं। इस विश्वास के आधार पर ही मैं उनको कठिन-से-कठिन और नए-से-नया काम सौंपकर निश्चिन्त हो जाता हूं।

कापड़ियाजी का लेख काफी बड़ा था। फुलस्केप में दस-पन्द्रह पृष्ठों के उस लेख को मुनि नथमलजी ने पूरी गंभीरता से पढ़ा। तेरापंथ द्वारा मान्य अहिंसा के सिद्धांत में कापड़ियाजी को जो बातें आपत्तिजनक प्रतीत हुई, उनको उन्होंने नौ बिन्दुओं में प्रस्तुत किया–

१. मनुष्य चाहे तो सम्पूर्ण रूप से अहिंसक जीवन अख्तियार कर सकता है और व्रतधारी साधु वस्तुतः इसी प्रकार का जीवन जीता है।

२. अहिंसा व्रतधारी स्वयं किसी प्रकार की हिंसा नहीं करता तथा जिस कार्य में लेशमात्र भी हिंसा होती है, वैसा कार्य करने के लिए दूसरों को भी आदेश या उपदेश नहीं देता।

३. धर्म का सिर्फ एक ही हेतु होता है–आत्मधर्म या मोक्षधर्म की साधना।

४. व्यक्ति ही वास्तविक होता है, समाज तो सिर्फ उपचार या कल्पना है।

५. सुपात्र यानी संयमी को जीवन-निर्वाह की सामग्री देना ही सच्चा दान है।

६. धर्म अन्य जीव को आत्मिक साता (शान्ति, आराम, प्रसन्नता, स्वास्थ्य) देने में है, शारीरिक साता देने में नहीं।

७. खुद को या दूसरों को संयममार्ग की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया पुण्यजनक होती है, दूसरी प्रक्रिया पापजनक होती है।

८. जीने में छोटे और बड़े का फर्क नहीं हो सकता। किसी भी परिस्थिति में किसी भी जीव की हिंसा धर्म नहीं हो सकती।

९. राग-द्वेष तथा मोह रहित दया, दान, अनुकम्पा–ये आत्मधर्म हैं। जो रागादि से युक्त हैं, वे आत्मधर्म या मोक्षधर्म नहीं।

मुनि नथमलजी ने उक्त तथ्यों को कापड़ियाजी की स्वतंत्र टिप्पणियों के साथ पढ़ा और लगभग उतना ही बड़ा लेख अत्यंत संयत, पर सटीक भाषा में लिखा। उन्होंने अपने प्रतिपाद्य को अठारह उपशीर्षकों में पूरे विस्तार के साथ आलेखबद्ध किया। उनके लेख का शीर्षक था–'अहिंसा की सही समझ।'

मुनि नथमलजी के लेख का सार-संक्षेप निम्नलिखित बिन्दुओं में सन्निहित है–

१. आदर्श तक पहुंचना सरल नहीं होता, फिर भी उसे नीचे नहीं लाना चाहिए।

२. अल्पतम हिंसा अहिंसा नहीं हो सकती।

३. छोटे जीवों की बलि के द्वारा बड़े जीवों को बचाने की बात अहिंसा को मान्य नहीं है।

४. मनुष्य-रक्षा को प्राथमिकता देने में मनुष्य का अपना स्वार्थ है। इसलिए वह समाज-सम्मत भले हो, पर अहिंसा धर्म में ऐसा भेदभाव नहीं होना चाहिए।

५. अहिंसा धर्म का अर्थ मनुष्य को बचाने के लिए दूसरों की हिंसा करना नहीं है।

६. मानव समाज की अनिवार्यता के साथ आध्यात्मिक धर्म का निर्वाह नहीं किया जा सकता।

७. अहिंसक अहिंसा का ही मार्गदर्शन दे सकता है, हिंसा या हिंसोन्मुख प्रवृत्तियों का नहीं।

८. अहिंसा के मूल में प्रेम या मैत्री है। किन्तु प्रेम मात्र अहिंसा नहीं।

९. अहिंसा की उपासना का आधार समाज-व्यवस्था नहीं, किन्तु आत्मशोधन होना चाहिए।

१०. व्रतों की कल्पना केवल समाज-धारण के लिए नहीं है।

११. पुण्य-पाप की व्याख्या तेरापंथ की कोई नई नहीं है।

१२. कर्म के गुण-दोष का आधार केवल मानसिक भावना ही नहीं है। मन की शुद्धि और अशुद्धि की कसौटी एक नहीं, उसकी भिन्न-भिन्न अपेक्षाएं हैं।

१३. अहिंसा सामूहिक जीवन में समूह के प्रति बरती जा सकती है। फिर भी उसकी साधना वैयक्तिक होती है।

१४. भाव अहिंसा बच्चों का खिलौना नहीं है। हर जगह अहिंसा के लिए मनः शुद्धि की दुहाई नहीं दी जा सकती।

१५. शारीरिक साता और आत्मिक साता, लोकधर्म और आत्मधर्म–ये भेद कृत्रिम नहीं हैं। इनके पीछे मौलिक तथ्य हैं।

१६. विरोधी पहेलियां।

१७. अध्यात्म धर्म और लोकधर्म का पृथक्करण आचार्य भिक्षु की एक महान देन।

१८. वस्तुस्थिति की परख के लिए हमारा दृष्टिकोण यथार्थवादी होना चाहिए।

उक्त अठारह बिदुओं के आधार पर लिखा गया लेख 'प्रबुद्धजीवन' में प्रकाशित करने के लिए कापड़ियाजी के पास भेजा गया। उन्होंने लेख पढ़ा और लौटा दिया। उन्होंने पूरी ईमानदारी के साथ कहा–'मैं इस लेख को 'प्रबुद्ध जीवन' में प्रकाशित नहीं कर सकता। इसका प्रकाशन उसी हालत में हो सकता था, जब मैं इसके प्रतिवाद में इससे विशिष्ट कुछ लिख पाता। वैसा लिखना मेरे लिए संभव नहीं है, इसलिए मैं इसका प्रकाशन नहीं करूंगा।'

तेरापंथ समाज की एक प्रमुख पत्रिका है–'जैनभारती।' उस समय वह साप्ताहिक थी। उसके सम्पादक थे श्रीचंदजी रामपुरिया। व्यावसायिक दृष्टि से एडवोकेट होने पर भी धर्म और दर्शन में उनकी गहरी अभिरुचि ने उनको सम्पादक बना दिया। जैनशास्त्रों की तरह गांधीदर्शन का भी उनको अच्छा ज्ञान था। सम्पादन और प्रकाशन की दृष्टि से वे बहुत अनुभवी व्यक्ति हैं। उन्होंने उस प्रसंग को 'जैन भारती' के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाने का निर्णय लिया। इस दृष्टि से उन्होंने अपना विस्तृत सम्पादकीय लिखा। मुनि नथमलजी का लेख–'अहिंसा की सही समझ' उस पत्रिका में प्रकाशित करना ही था। वह लेख कापड़ियाजी के लेख का प्रतिवाद था। उसे सामने रखकर पढ़ने में उसकी प्रासंगिकता अधिक थी। कापड़ियाजी का लेख गुजराती में

"मुनि नथमलजी की प्रकृति ऐसी है कि मेरा निर्देश मिलने के बाद वे ननुनच करना जानते ही नहीं हैं। मेरे संकेत को वे हार्दिक भाव से स्वीकार करते हैं और पूरे मन से उस काम में संलग्न हो जाते हैं। इस विश्वास के आधार पर ही मैं उनको कठिन-से-कठिन और नए-से-नया काम सौंपकर निश्चिन्त हो जाता हूं।"

था। रामपुरियाजी को पता था कि उसका हिन्दी रूपान्तर कलकत्ता से प्रकाशित 'तरुण जैन' में छप चुका है। उन्होंने वहां से उस लेख को लिया और दोनों लेखों की तुलनात्मक समीक्षा करने वालों के लिए उसे भी 'जैन भारती' में प्रकाशित कर दिया। इस प्रकार अहिंसा के संदर्भ में एक विशेष अंक की तरह उन्होंने ३०/१/१९५५ के अंक को प्रकाशित कर पाठकों तक पहुंचा दिया। जिस उदारता के साथ उन्होंने यह काम किया, उतनी ही उदारता से उसका मूल्यांकन किया गया।

'जैन भारती' कापड़ियाजी के पास पहुंची। पक्ष और विपक्ष के दोनों लेखों को सम्पादकीय टिप्पणी के साथ एक अंक में देखकर उनके मन में जो प्रतिक्रिया हुई, उसे उन्होंने १/३/१९५५ के 'प्रबुद्धजीवन' में प्रकाशित कर दिया। उसके कुछ अंश उन्हीं के शब्दों में यहां उद्धृत किए जा रहे हैं–

'प्रबुद्धजीवन ना वाचकों ने याद हशे के गत नवम्बर मास नी १५वीं तारीख ना अंक मां 'अहिंसा नी अधूरी समजण'–अे मथाणा नीचे तेरापंथी सम्प्रदाय नी अहिंसा विषयक मान्यताओं नी एक विस्तृत आलोचना करवा मा आवी हती। अे आलोचना ना उत्तर रूपे तेरापंथी आचार्य श्री तुलसी ना शिष्य मुनि नथमलजी ए कलकत्ता थी नीकलता तेरापंथी सम्प्रदाय ना पत्र 'जैन भारती' ना ३० जन्युआरी ना अंक मां 'अहिंसा की सही समझ'–अे मथाणा नीचे एक लाम्बो विद्वत्तापूर्ण लेख लखीनै तेरापंथी मान्यताओं ना हार्द ने समजाववा प्रयत्न कर्यो छे। आ उपरांत पूर्वपक्ष ना मन्तव्यो नो वाचको ने ख्याल आवे, अे हेतु थी 'अहिंसा नी अधूरी समजण' ना कलकता थी नीकलता 'तरुण जैन' पाक्षिक मां प्रकट थयेल हिन्दी अनुवाद 'जैनभारती' ना एज अंक मां साद्यन्त उद्धृत करवा मां आव्यो छे। 'जैनभारती' ना सम्पादक श्रीचन्द रामपुरियाए पण ए अंक मां आ विषय ऊपर एव सविस्तर अग्रलेख लख्यो छे। आ रीते ए आखो अंक मात्र अहिंसा ना आ प्रकार नी चर्चा ने समर्पित करवा मां आव्यो छे। 'अहिंसा नी अधूरी समझ'–जेवी प्रतिपक्ष नी विस्तृत आलोचना ने पोता ना पत्र मां आटलुं मोटुं स्थान आपी ने जे खेलदिली दर्शावी छे ते बदल श्रीचन्द रामपुरिया ने धन्यवाद घटे छे। पत्रकारों मां आवी उदारता भाग्येज जोवा मां आवे छे।'

मुनि नथमलजीए रजु करेली विचारसरणि स्वीकार्य बनी शके तेम नथी। ए छतां पण तेमणे जे उदात्त शैली मां पोता ना विचारों नी रजुआत करी छे ते माटे तेमने हुं धन्यवाद आप्या बिना रही सकतो नथी। मारी आलोचना मां कोई स्थले नानो सरखो पण कटाक्ष के आक्षेप हशे, तेमनी रजुआत मां आवो कोई कटाक्ष के आक्षेप, आवेश के असमता नजर पड़ता नथी। भाषा में तेमज निरूपण मां एक विद्वान अने प्रसन्नचित्त मुनि ने शोभे तेवुं माधुर्य, संयम, गांभीर्य अनै बहुश्रुतता नजरे पड़े छे। तम लखाण बांची ने मैं ऊंडी प्रसन्नता अनुभवी छे।'[1]

१. प्रबुद्ध जीवन के पाठकों को याद होगा–गत १५ नवम्बर के अंक में 'अहिंसा की अधूरी समझ' इस शीर्षक से तेरापंथ संप्रदाय की अहिंसा-विषयक मान्यताओं की एक विस्तृत आलोचना की गई थी। उस आलोचना के उत्तर में तेरापंथ के आचार्य तुलसी के शिष्य मुनि नथमलजी ने कोलकाता से प्रकाशित तेरापंथी संप्रदाय के पत्र जैन भारती के ३० जनवरी के अंक में 'अहिंसा की सही समझ' इस शीर्षक से एक लंबा विद्वत्तापूर्ण लेख लिखकर तेरापंथ की मान्यताओं के हार्द को समझाने का प्रयत्न किया। इसके साथ पूर्व पक्ष के मंतव्य पाठक के ध्यान में आए, इस दृष्टि से 'अहिंसा की अधूरी समझ' का कोलकाता से निकलने वाले 'तरुण जैन' पाक्षिक में प्रकाशित हिन्दी अनुवाद साद्यन्त उद्धृत किया है। जैन भारती के संपादक श्रीचंद रामपुरिया ने भी इसी अंक में इसी विषय पर विस्तृत संपादकीय लिखा है। इस प्रकार यह पूरा अंक अहिंसा की चर्चा को समर्पित किया है। 'अहिंसा की अधूरी समझ' जैसी प्रतिपक्ष की विस्तृत आलोचना को अपने पत्र में इतना प्रमुख स्थान देकर जो उदारता दिखाई है उसके लिए श्रीचंद रामपुरिया धन्यवाद के पात्र हैं। पत्रकारों में ऐसी उदारता भाग्य से ही देखने को मिलती है। →

जैनभारती में मुनि नथमलजी और परमानंदजी कापड़िया के लेखों को एक साथ प्रकाशित करने पर कापड़ियाजी द्वारा व्यक्त विचारों से दो बातें उजागर हो रही हैं–

१. वैचारिक मतभेद की स्थिति में भी लेखन और संभाषण की शालीनता व्यक्ति को प्रभावित करती है।

२. प्रबुद्ध व्यक्ति किसी भी परम्परा में विश्वास करे, वह सही स्थिति का आकलन करने में उदारता दिखाता है।

आचार्य भिक्षु की मान्यताओं को लेकर विरोध के स्तर में आए परिवर्तन ने तेरापंथ के लिए एक नए अध्याय का प्रारंभ कर दिया। इससे प्रबुद्ध विरोधी व्यक्तियों को सोचने का मौका मिला। यह प्रसंग तेरापंथ के प्रति सद्भावना पैदा करने में प्रबल निमित्त बना, ऐसा माना जा सकता है।

सन् १९५९, कोलकाता। अणुव्रत आंदोलन की आलोचना में भंवरमलजी सिंघी ने 'अणुव्रत : प्रगति या प्रवंचना' पुस्तक लिखी। आचार्यवर ने उसका प्रतिवाद लिखने का निर्देश दिया। प्रस्तुत संदर्भ में आचार्यवर का आलेख है–

● सामान्यतः हम अपने विरोध में लिखे गए छिछले स्तर के संवादों या लेखों के प्रतिवाद में कुछ नहीं लिखते थे। पर जहां भी हमें अनुभव हुआ कि विरोध का स्तर कुछ ठीक है, वहां हमने उसका उत्तर भी दिया। भाई भंवरमलजी सिंघी कई वर्षों से हमारे विरोध में सक्रिय थे। हम मौन रहे। 'अणुव्रतः प्रगति या प्रवंचना' नाम से लिखी गई पुस्तिका में भाषा कुछ स्तर की लगी। मैंने मुनि नथमलजी को उसका उत्तर लिखने की प्रेरणा दी। उन्होंने कलम चलाई और 'अणुव्रत प्रगति है : प्रवंचना नहीं' इस शीर्षक से आलोच्य पुस्तिका में उठाए गए मुद्दों का विस्तृत स्पष्टीकरण लिखा।

जैन विद्या परिषद

विकास का एक नया आयाम बना–जैन विद्या परिषद् की आयोजना। साहित्य सृजन और आगम संपादन के कार्य ने विद्वद् जगत् को आकृष्ट किया। अनेक विद्वान संपर्क में आए। जैन आगमों के महान् तत्त्वों पर शोध की अपेक्षा प्रस्तुत की–जैन आगमों पर गंभीर शोध निबंध एवं शोध-पत्र लिखे जाएं तो जैन आगमों का वैशिष्ट्य उजागर हो सकता है। जैन विद्या परिषद् की आयोजना ने इस अपेक्षा को यत्किंचित् पूरा किया। जैन विद्या परिषद की आयोजना-संयोजना और संचालन का दायित्व मैं निभाता रहा। आचार्यवर ने जैन विद्या परिषदों के कुछ अधिवेशनों का शब्दांकन किया है–

● २६ अक्टूबर १९८५। आमेट में त्रिदिवसीय जैन विद्या परिषद् का उद्घाटन। इस बार की जैन विद्या परिषद जैन आगम भगवती सूत्र को केन्द्र में रखकर आयोजित की गई थी। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने इस

→ मुनि नथमलजी द्वारा प्रस्तुत की हुई विचार-सरणी मुझे स्वीकार नहीं है, फिर भी उन्होंने जिस उदात्त शैली में अपने विचारों को प्रस्तुत किया, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता। मेरी आलोचना में किसी स्थान पर थोड़ा बहुत कटाक्ष या आक्षेप मिल सकता है, पर उनकी प्रत्यालोचना में कोई कटाक्ष, आक्षेप, आवेश या असमता नहीं है। भाषा और निरूपण में एक विद्वान् और प्रसन्नचित्त मुनि को शोभा दे, वैसा माधुर्य, संयम, गाम्भीर्य और बहुश्रुतता दृष्टिगोचर होती है। उनके लेख को पढ़कर मैंने गहरी प्रसन्नता का अनुभव किया है।)

“मुनि नथमलजी ने जिस उदात्त शैली में अपने विचारों को प्रस्तुत किया, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता। मेरी आलोचना में किसी स्थान पर थोड़ा बहुत कटाक्ष या आक्षेप मिल सकता है, पर उनकी प्रत्यालोचना में कोई कटाक्ष, आक्षेप, आवेश या असमता नहीं है। भाषा और निरूपण में एक विद्वान् और प्रसन्नचित्त मुनि को शोभा दे, वैसा माधुर्य, संयम, गाम्भीर्य और बहुश्रुतता दृष्टिगोचर होती है।”

संदर्भ में बोलते हुए कहा–'भगवती सूत्र का मूल नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति है। भगवती इसका विशेष नाम था, पर आज यह मूल की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हो गया है। इसमें श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार लगभग छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर तथा दिगम्बर मान्यता के अनुसार छह हजार प्रश्नोत्तर हैं। यह संवाद शैली का महानतम ग्रंथ है। जीव विद्या तथा तत्त्व विद्या की दृष्टि से भी इसे विश्व का सबसे बड़ा ग्रंथ कहा जा सकता है। दुनिया के ज्ञान-विज्ञान का शायद ही कोई विषय हो, जिसका स्पर्श इस ग्रंथ में न किया गया हो। इसमें अनेक ऐसे विषय हैं, जिनका प्रारूप बनाकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति शोध के क्षेत्र में नया कार्य कर सकते हैं।'

२८ अक्टूबर को प्रातःकाल जैन विद्या परिषद का सातवां सत्र आयोजित हुआ। प्रस्तुत सत्र में अध्यक्षता करने का दायित्व डॉ. नन्दलाल जैन पर था। इस सत्र में सर्वाधिक शोध पत्र पढ़े गए। श्रोताओं की ओर से कतिपय प्रश्न उपस्थित किए गए। अनेक प्रश्नों के समाधान युवाचार्य महाप्रज्ञ ने किए।

तीन दिनों में तेतीस शोध पत्र पढ़े गए। साधु-साध्वियों और समणियों के केवल भगवती सूत्र पर बीस निबंध हो गए। विद्वानों पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव रहा। कुछ लोग तो आश्चर्यचकित रह गए। प्रायः विषयों पर विस्तृत चर्चा हुई। प्रस्तुत उपक्रम के संदर्भ में सब विद्वानों ने सकारात्मक और उत्साहवर्धक विचार खुलकर प्रकट किए। उन्होंने कहा–युवाचार्य महाप्रज्ञ के द्वारा विद्वानों को जिस सहजता से समाधान मिला, यह कहीं नहीं देखा।

● जैन विश्व भारती, लाडनूं का शोध-विभाग, जैन विद्या परिषद् का आयोजन करता है। सन् १९८७ की विद्या परिषद् दिल्ली में आयोजित थी। इस संदर्भ में पहले से यह निर्णीत हो गया कि शोध-पत्र लिखने वाले जैन आगम आचारांग को आधार बनाकर लिखें। ९ अक्टूबर १९८७ को प्रातः अहिंसा समवसरण में उद्घाटन सत्र था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. डी.एस. कोठारी और संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. व्यंकटचलन के भाषण हुए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–आचारांग सूत्र आत्मवाद का प्रतिनिधि आगम है। आत्मा की अनुभूति से ही व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में सत्य और अहिंसा का पालन कर सकता है। आचारांग में प्रतिपादित भगवान महावीर का जीवन एक आदर्श साधक का जीवन है। महावीर ध्यान योग के विशिष्ट साधक थे। उन्होंने उत्कृष्ट ध्यान साधना के द्वारा परिपूर्ण आचार-पालन का उदाहरण प्रस्तुत किया था।

११ अक्टूबर १९८७। समापन-सत्र में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–जैन विश्व भारती की स्थापना का मूल उद्देश्य है–प्राच्य विद्याओं पर शोध कार्य और उनका प्रचार प्रसार। प्रस्तुत सेमिनार इसी क्रम को आगे बढ़ाने का उपक्रम है। आयारो (आचारांग) एक ऐसा गंभीर ग्रंथ है, जिस पर हमने तीन दिनों तक चर्चाएं कीं, फिर भी लग रहा है कि अभी तक बहुत कुछ अवशेष है। उन रहस्यों को हम प्राकृत भाषा के गहन अध्ययन से ही हृदयंगम कर सकते हैं।

● अक्टूबर १९९२ का दूसरा सप्ताह। ११ अक्टूबर, रविवार। शरद पूर्णिमा का दिन। जैन विद्या परिषद का त्रिदिवसीय कार्यक्रम। जैन दर्शन का क्रमिक विकास–इस विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन। डॉ. नथमल टाटिया, डॉ. दयानन्द भार्गव, डॉ. रामकरण शर्मा, डॉ. सागरमल जैन, डॉ. सत्यरंजन बनर्जी, डॉ. भागचन्द जैन, डॉ. गोकुलचन्द जैन आदि विद्वानों की उपस्थिति। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने उद्घाटन सत्र

को संबोधित करते हुए कहा–'जैन दर्शन में विश्वधर्म बनने की क्षमता है पर वह उपेक्षित रहा है। जैन दर्शन तत्त्वविद्या, आचारशास्त्र, दर्शन, नय, प्रमाण आदि को सांगोपांग प्रस्तुति देनेवाला है। इन सबके वैचारिक इतिहास को प्रस्तुति देनेवाला यह सेमिनार है। यहां उपस्थित सभी विद्वान अपनी प्रतिभा व अंतर्दृष्टि से काम लेंगे तथा इस उदात्त अवधारणा के साथ अपनी विचार-यात्रा को आगे बढ़ाएंगे, ऐसा विश्वास है।'

तीन दिन तक लगातार संगोष्ठी का क्रम चला। विद्वानों तथा कुछ साधु-साध्वियों ने अपने शोध निबन्धों का वाचन किया। कतिपय शोधपत्रों पर चर्चा भी हुई। कार्यक्रम का अच्छा प्रभाव रहा। आगन्तुक विद्वान जैन विश्व भारती के वातावरण से अतिशय प्रभावित हुए। शुभ भविष्य के लिए आशावान बने। कतिपय विद्वानों ने विश्वविद्यालय को सफल बनाने का संकल्प व्यक्त किया। इस प्रकार की विद्या परिषदों से विद्वज्जगत से सम्पर्क बढ़ता है और पारस्परिक विचार-विनिमय से विकास की नई दिशाएं खुलती हैं।

मैं और मेरे गुरु

"तीन दिनों में तेतीस शोध पत्र पढ़े गए। साधु-साध्वियों और समणियों के केवल भगवती सूत्र पर बीस निबंध हो गए। विद्वानों पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव रहा। कुछ लोग तो आश्चर्यचकित रह गए। प्रायः विषयों पर विस्तृत चर्चा हुई। प्रस्तुत उपक्रम के संदर्भ में सब विद्वानों ने सकारात्मक और उत्साहवर्धक विचार खुलकर प्रकट किए। उन्होंने कहा– युवाचार्य महाप्रज्ञ के द्वारा विद्वानों को जिस सहजता से समाधान मिला, यह कहीं नहीं देखा।"

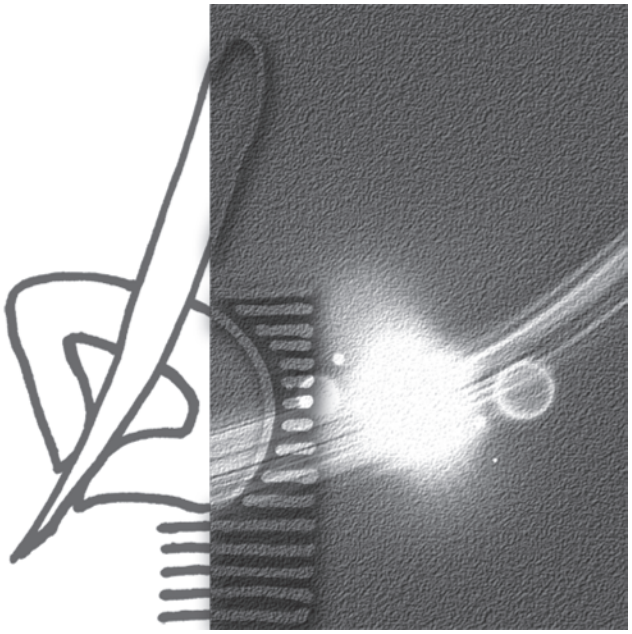

३

प्रेरणा सृजन की

कालूयशोविलास : परिष्कार में सहभागिता

पूज्य गुरुदेव महान् साहित्यकार और विलक्षण कवि थे। कालूयशोविलास ग्रंथ गुरुदेव की काव्य-प्रतिभा का जीवन्त प्रमाण है। प्रस्तुत कृति के साथ जुड़ने का अवसर मेरे जीवन के उत्क्रमण का क्षण बना।

● सन् १९४४। 'कालूयशोविलास' के निर्माण और वाचन के बाद मैंने एक बार इसका पूरा पारायण किया। लक्ष्य एक ही था कि प्रस्तुत कृति में कहीं भी कोई आक्षेपात्मक शब्द और विवादास्पद प्रसंग न रहे। लक्ष्य के अनुरूप अनेक स्थानों पर आवश्यक परिवर्तन और संशोधन किया गया। इस काम में मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) की निरन्तर सहभागिता रही।

लेखन की प्रेरणा

हिन्दी भाषा में मेरी पहली पुस्तक है 'जीव अजीव' और दूसरी पुस्तक है 'अहिंसा'। मैंने जो पुस्तकें लिखी हैं वे गुरुदेव की प्रेरणा से लिखी हैं। लेखन की प्रेरणा का पहला पल्लव है अहिंसा।

• सन् १९४५, श्रीडूंगरगढ़ में चातुर्मास में मुनि नथमलजी ने हिन्दी भाषा में पचीस बोल की व्याख्या लिखी थी। श्रीडूंगरगढ़ के कुछ युवकों और कुछ तत्त्वरसिक प्रौढ़ व्यक्तियों ने उसका अध्ययन प्रारंभ किया। उनमें डॉ. जेठमल भंसाली, हीरालाल भंसाली, तोलाराम डागा, पूनमचंद भादानी, सम्पतमल भादानी, भंवरलाल पुगलिया, धनराज डागा, प्रेमसुखजी तोसनीवाल आदि नाम उल्लेखनीय हैं। अध्ययन क्रम में संशोधन और परिवर्धन के साथ पूरी पुस्तक तैयार हो गई। उसका नाम रखा गया–'जीव-अजीव'। डॉ. जेठमल भंसाली ने उसका सम्पादन किया और अपने तीन चार साथियों के सहयोग से उसकी पाण्डुलिपि बना ली। श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, श्रीडूंगरगढ़ ने उसका प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। जैन सिद्धांतों का प्राथमिक ज्ञान करने वालों के लिए वह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। 'जैन विद्या' परीक्षा के पाठ्यक्रम में जुड़ने से हजारों विद्यार्थी उससे लाभान्वित हो रहे हैं।

• सन् १९४५। श्रीडूंगरगढ़ में चातुर्मासिक प्रवास। उन दिनों प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापड़िया अहिंसा के बारे में एक ग्रंथ का संकलन कर रहे थे। उन्होंने आचार्य भिक्षु के अहिंसा संबंधी विचारों को भी उस ग्रंथ में देना चाहा। उनकी ओर से मांग आई। मैंने मुनि नथमलजी को लिखने के लिए निर्देश दिया। उन्होंने एक निबंध लिखा। वह 'अहिंसा' शीर्षक से एक लघु पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हो गया। 'अशांत विश्व को शांति का संदेश' और 'अहिंसा'–दोनों पुस्तिकाएं महात्मा गांधी के पास पहुंचीं। उन्होंने दोनों पुस्तिकाओं में अनेक स्थानों पर टिप्पणियां कीं।

जैन सिद्धांत दीपिका

जैन दर्शन के संदर्भ में पूज्य गुरुदेव की एक महत्त्वपूर्ण कृति है जैन सिद्धांत दीपिका। उसके अनुवाद और संपादन का अवसर मिला। मैंने उस ग्रंथ की विस्तृत भूमिका भी लिखी।

• सन् १९४७। रतनगढ़ क्षेत्र अनेक दृष्टियों से इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। यात्रा का प्रस्थान बिन्दु होने से उसका महत्त्व हो गया। 'जैनसिद्धान्तदीपिका' का हिन्दी अनुवाद वहीं किया गया। अनुवाद कार्य में मुनि नथमलजी (टमकोर) आदि साधुओं के साथ शुभकरण दसानी की अच्छी भागीदारी रही।

• १९ सितम्बर १९६१। प्रातःकालीन कार्यक्रम में साहित्य और साहित्यकारों की प्रमुखता थी। मुनि नथमलजी ने मेरे नाम से लिखित जीवन और दर्शन पुस्तक भेंट की।

आचार्य भिक्षु का गंभीर तत्त्व चिंतन

गुरुदेव ने आचार्य भिक्षु के विचारों को आधुनिक विचार-सरणि और आधुनिक भाषा में रखने का कार्य शुरू किया। उन विचारों और उस शैली का मैंने अनुसरण किया। फलस्वरूप 'भिक्षु विचार दर्शन' विद्वानों के लिए आकर्षण का विषय बन गया। उसका एक उदाहरण गुरुदेव की भाषा में प्रस्तुत है–

• २३ सितम्बर १९६१। बीदासर में चातुर्मास। भिक्षु-चरमोत्सव का अवशिष्ट कार्यक्रम चल रहा था। उस समय मुझे एक पत्र मिला। प्रेमसागर जैन का पत्र था। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत में एम.ए. करने के बाद पीएच.डी. की थी। उस समय वे दिगम्बर जैन कॉलेज, बड़ौत (मेरठ) में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होंने मुनि नथमलजी की पुस्तक 'भिक्षु विचार दर्शन' पढ़ी। पुस्तक पढ़कर वे प्रभावित हुए। उसी कारण उन्होंने एक लम्बा और भावपूर्ण पत्र लिखा। उनके अनुसार आचार्य भिक्षु युगपुरुष, भारतीय-संत परम्परा के रत्न और महान संत थे। उन्होंने आचार्य भिक्षु के प्रति प्रगाढ़ आस्था व्यक्त की। पत्र पढ़कर मुझे बड़ी

> "मेरे विचारों और कार्यों के साथ मुनि नथमलजी का इतना अद्वैत था कि कौन लिखता है और कौन लिखाता है, यह भेदरेखा कहीं दिखती ही नहीं।"

प्रसन्नता हुई। मैंने अनुभव किया कि आचार्य भिक्षु और उनके विचारों को युगीन भाषा में प्रस्तुत करने का ही यह परिणाम है कि उनसे विद्वान लोग प्रभावित हो रहे हैं। वैसे मुनि नथमलजी की लेखनी इतनी सधी हुई है कि वह विद्वानों को सहज ही आकृष्ट कर लेती है।

योग के क्षेत्र में नया प्रस्थान

जनवरी १९६२। श्रीडूंगरगढ़ में अठारह दिवसीय प्रवास। उस प्रवास में मनोनुशासनम् ग्रंथ का निर्माण हुआ। आचार्यवर ने उसका उल्लेख इन शब्दों में किया है–

● पूज्य गुरुदेव कालूगणी ने विकास की अनेक नई संभावनाओं के साथ धर्मसंघ का दायित्व मुझे सौंपा। मैं अपनी ओर से पूरी ईमानदारी से उस दायित्व का वहन कर रहा था। साधु-साध्वियों की शिक्षा के स्तर को उन्नत बनाने का काम चालू था। उनकी बौद्धिक क्षमता बढ़ रही थी। साधना के क्षेत्र में समय-समय पर नए प्रयोग किए जा रहे थे। विहारक्षेत्र का विकास हो रहा था। साहित्य-निर्माण की दृष्टि से भी गति हो रही थी। कुछ समय से मैं अनुभव कर रहा था कि योग के विषय में एक ग्रंथ तैयार होना चाहिए। इस विषय में मुनि नथमलजी के सामने चर्चा की। उन्होंने मेरे विचारों से सहमति प्रकट की। ग्रंथ-निर्माण का काम शुरू हुआ और सम्पन्नता के बिन्दु तक पहुंच गया।

मेरे विचारों और कार्यों के साथ मुनि नथमलजी का इतना अद्वैत था कि कौन लिखता है और कौन लिखाता है, यह भेदरेखा कहीं दिखती ही नहीं। ग्रंथ का नाम रखा गया–मनोनुशासनम्। योग के प्राचीन तथ्यों को आधुनिक शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। योग के क्षेत्र में अध्ययन और प्रयोग–दोनों दृष्टियों से उपयोगी ग्रंथ-निर्माण का मेरा सपना फलवान बना। 'धवल समारोह' के अवसर पर प्रकाश्यमान साहित्य की योजना एक निमित्त बनी। मनोनुशासनम् तैयार हो गया। मन के बारे में व्यवस्थित और विस्तृत विवेचन देने वाला वह ग्रंथ मेरे आत्मतोष में निमित्त बना। साधु-साध्वियों की एक अंतरंग गोष्ठी में मुनि नथमलजी ने योग-साधना पर विशेष वक्तव्य दिया। सबको अच्छा लगा। संघ में योग साधना का विकास मुझे अभीष्ट था। क्योंकि मेरे मन में यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि हमारा संघ इस प्रक्रिया से और अधिक चमकेगा।

● जुलाई १९६२। 'अग्निपरीक्षा' को लेकर हुए आन्दोलन के कारण पुस्तक को व्यापक प्रचार मिला। प्रबुद्ध लोगों में उसके प्रति जिज्ञासा बढ़ी। पुस्तक का प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। दूसरा संस्करण मुद्रित करने का प्रसंग आया।

'अग्निपरीक्षा' पुस्तक का दूसरा संस्करण शीघ्रता से तैयार हो, इस दृष्टि से मुनि नथमलजी, मुनि रूपचंद और कमलेश चतुर्वेदी ने बहुत प्रयास किया। कन्हैयालालजी सेठिया ने भी प्रयत्न किया। पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ लिया और औचित्य के साथ काफी परिवर्तन कर दिया। अच्छा संस्करण बन जाएगा, ऐसा प्रतीत होता है। हर दृष्टि से सुंदर काम हुआ है।

एक नया प्रयोग

'अतीत का अनावरण' पुस्तक तैयार की गई। लेखक के रूप में आचार्य तुलसी और मुनि नथमल दो नाम सामने आए। आचार्य के साथ मुनि का नाम लेखक के रूप में हो, यह कम संभव है फिर भी गुरुदेव ने इसे संभव बना दिया–

• ८ सितम्बर १९६२। भाद्रपद शुक्ला नवमी का दिन। रचनात्मक उपहार के रूप में साधु-साध्वियों की हस्तलिखित त्रैमासिक शोध पत्रिका एषणा (वर्ष २ अंक १) समर्पित की गई। लगभग २५० पृष्ठ की पत्रिका को अच्छे ढंग से सजाया गया था। उसे देखकर यह आशा जागी कि साधु-साध्वियों का शोधलेख लिखने का अभ्यास बढ़ेगा। पत्रिका में दो लेख मेरे और मुनि नथमलजी के संयुक्त नाम से थे–(१) भगवान महावीर ज्ञातपुत्र थे या नागपुत्र? २. पार्श्वस्थ कौन? मुनि नथमलजी की इच्छा है कि एक ऐसी पुस्तक हो, जो गुरु-शिष्य (आचार्य तुलसी, मुनि नथमल) के संयुक्त नाम से हो। उनकी इच्छा को मैंने रोका नहीं।

संबोधि

संस्कृत में लिखना निसर्ग जैसा बन गया। सहज ही स्फुरणा हुई कि संवाद की शैली में पुस्तक लिखूं, उसमें वर्तमान समस्या के संदर्भ में समाधान प्रस्तुत करूं। गुरुदेव का प्रोत्साहन मिला और स्वप्न फलित हो गया।

• २७ दिसम्बर १९६२। 'मुनि नथमलजी द्वारा लिखित पुस्तक 'संबोधि' देखी। बहुत पसन्द आई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो संबोधि साक्षात गीता है। सहज, सरल, सुगम और सरस। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते मन नहीं भरा। पुस्तक का आदिवचन मैंने लिखा है।'

• ३० नवम्बर १९८७ का दिन। आजकल रात्रि में संबोधि ग्रंथ का स्वाध्याय चल रहा है। प्रस्तुत ग्रंथ का धर्म-अधर्म का प्रकरण पढ़ा। एकदम नया लगा। शायद किसी भी आधुनिक ग्रंथ में इस रूप में नहीं लिखा गया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है। उसमें शाब्दिक उलझन हो सकती है। पर सिद्धांत का निरूपण नए तरीके से किया गया है। धर्म का उद्देश्य है सुख-दुःख के संवेदन का अवरोध और क्षय। सुख की स्थिति में प्रीति का संवेदन और दुःख की स्थिति में कष्ट का संवेदन धर्म का फल नहीं है। धर्म-अधर्म के इस प्रकरण को पढ़कर प्रसन्नता हुई।

• १८ दिसम्बर १९९२। इन दिनों संबोधि का पारायण चालू कर दिया। पारायण क्या, एक तरह का परिष्कार ही हो रहा है। प्रतिदिन पचीस-तीस श्लोक चल रहे हैं। एक अच्छा ग्रंथ तैयार हो जाएगा, ऐसा लगता है। उधर गाथा ग्रन्थ भी सम्पादित होकर तैयार हो रहा है। आयारो भाष्य, भगवती भाष्य, मनोनुशासनम्, पञ्चसूत्रम् आदि सभी ग्रन्थ धर्मसंघ की निधि बन जाएंगे। अभ्युदय का समय है।

प्रयोग

• २१ अगस्त १९६७। अहमदाबाद। साहित्य में रुचि रखनेवाली कुछ साध्वियों का साहित्य-लेखन में विकास हो, इस दृष्टि से प्रत्येक रविवार को एक गोष्ठी करने का निर्देश दिया। उस गोष्ठी में साध्वियां अपने लेखों का वाचन करें और मुनि नथमलजी उनकी समीक्षा करें, यह निर्णीत किया गया। इस क्रम से कुछ साध्वियों की लेखनशैली में अच्छा परिष्कार हो गया।

जयाचार्य और कालूगणी का जीवनवृत्त

आचार्यवर के निर्देश से सन् १९५९ में भिक्षु विचार दर्शन लिखा। उसी वर्ष आचार्यवर ने जयाचार्य और पूज्य कालूगणी की जीवनी लिखने का दायित्व सौंपा। आचार्यवर इस संदर्भ में मुझे बार-बार उत्प्रेरित करते रहे। कालूगणी जन्म शताब्दी पर कालूगणी और जयाचार्य निर्वाण शताब्दी पर जयाचार्य की जीवनी का आलेखन संभव हो गया।

"संबोधि साक्षात् गीता है। सहज, सरल, सुगम और सरस। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते मन नहीं भरा। पुस्तक का आदिवचन मैंने लिखा है।"

• नवम्बर १९५९। कोलकाता से राजस्थान की ओर विहार। रात्रि के समय जब-तब हमारी गोष्ठियां होती रहती थीं। उनमें कभी साधु-साध्वियों के अध्ययन-अध्यापन की चर्चा होती और कभी साहित्यिक गतिविधियों की। हमारे सामने एक बड़ा काम था आचार्य भिक्षु और जयाचार्य के साहित्य-सम्पादन का। जयाचार्य और कालूगणी की जीवनी लिखना भी आवश्यक था। उसका दायित्व मैंने मुनि नथमलजी को सौंपा।

• १ अप्रैल १९६९। अलवैनगर (केरल) के राजकीय हाईस्कूल में प्रवास। प्रतिक्रमण करने के बाद वर्षा शुरू हो गई। रात को वर्षा बंद हुई, उसके साथ ही हवा भी बंद हो गई। मच्छरों को मुक्तता से उत्पात मचाने का मौका मिल गया। सोने का समय हो चुका था। सोने का प्रयास किया, पर मच्छरों ने नींद नहीं लेने दी। मैं अपने शयन-स्थान पर बैठकर स्वाध्याय करने लगा। कुछ साधु भी अपने आपको मच्छरों से बचाने का प्रयत्न कर रहे थे। उनको मैंने अपने पास बुलाया। मुनि नथमलजी, मुनि दुलीचंदजी, मुनि चम्पालालजी, मुनि बालचंद, मुनि हीरालाल, मुनि सुमेरमल, मुनि मधुकर, मुनि रूपचंद और मुनि किशनलाल–ये नौ साधु आए। अनायोजित गोष्ठी हो गई। अनेक गंभीर विषयों पर चिन्तन चला। धर्मशासन के विकास की चर्चा हुई। बचपन के संस्मरण सुनाए। पूज्य गुरुदेव कालूगणी के जीवन-प्रसंग मुखरित हुए। उस संदर्भ में मैंने मुनि नथमलजी से कहा कि गुरुदेव की सर्वांगीण जीवनी हमें प्रस्तुत करनी है।

• ३० अक्टूबर १९७२। संघ में समय-समय पर काफी उतार-चढ़ाव आए हैं और आज भी आ रहे हैं। अंतरंग और बहिरंग–दोनों स्थितियों में समय-समय पर उतार-चढ़ाव आए हैं। इसीलिए एक दिन मैंने मुनि नथमलजी से कहा कि पूज्य जयाचार्य और कालूगणी की प्रामाणिक जीवनी जब तक नहीं आती है, तब तक तेरापंथ का इतिहास अधूरा रह जाता है। यह काम कोई साधु ही कर सकता है।

समण सुत्तं

भगवान् महावीर निर्वाण की पच्चीसवीं शताब्दी। आचार्य बिनोवा भावे द्वारा जैन धर्म की एक सर्वसम्मत पुस्तक के निर्माण का आह्वान। समण सुत्तं का प्रारूप जिनेन्द्र वर्णीजी ने प्रस्तुत किया। उसके परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन के लिए मैं और जिनेन्द्र वर्णी बैठे और उसको अंतिम रूप दिया। पूज्य गुरुदेव की डायरी में उसका आलेख है–

• नवम्बर १९७४। द्विदिवसीय संगीति में पुस्तक के प्रारूप को सामने रखकर मुक्त चर्चा की गई। अनेक सुझाव आए, फिर भी उसे अंतिम रूप दिया जा सके, वैसी स्थिति नहीं बन पाई। अंतिम सुझाव के रूप में मैंने कहा–'अब तक पण्डितों ने प्रस्तुत पुस्तक को तैयार करने में श्रम किया है। अब एक सप्ताह तक हम इसे देखें, इसकी समीक्षा करें और इसे अंतिम स्वरूप प्रदान करें।' इस सुझाव को सबने स्वीकार कर लिया। आखिर वह मुनियों के हाथ में आ गई। मुनि नथमलजी ने दो दिनों तक वर्णीजी के साथ बैठकर उसमें परिवर्तन एवं परिमार्जन किया। उसके बाद हम सबके बीच उसका वाचन हुआ। अपेक्षित संशोधन के साथ 'समणसुत्तं' नाम निर्धारित किया।

• २९ जून १९७५। भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर विनोबाजी की प्रेरणा से जैन धर्म का एक सर्वमान्य ग्रन्थ 'समणसुत्तं' तैयार किया गया। उसके लिए प्राथमिक रूप में पूरा प्रयास जिनेन्द्रवर्णीजी द्वारा किया गया। फिर दिल्ली में समवेत जैनाचार्यों, मुनियों, साध्वियों तथा विद्वानों

की संगीति में उसे प्रमाणित किया गया। उसमें जैन आगमों व विशिष्ट ग्रन्थों का नवनीत है। सर्वसेवासंघ के द्वारा उसका प्रकाशन हुआ। आजकल उसका वाचन, विवेचन, परिमार्जन एवं संशोधन का कार्य चल रहा है। प्रतिदिन लगभग डेढ़ घण्टा समय लगता है। मुनि नथमलजी और मुनि महेन्द्र–दोनों मेरे सान्निध्य में उसका पारायण कर रहे हैं। आधे से अधिक ग्रन्थ पढ़ लिया, अवशेष कार्य शीघ्र ही पूरा हो जाएगा, ऐसा विश्वास है।

जय अनुशासन

जयाचार्य निर्वाण शताब्दी पर जयाचार्य के विशाल वाङ्मय से एक ग्रंथ के निर्माण की योजना बनी। वह ग्रंथ जय अनुशासन के रूप में सामने आया। प्रस्तुत संदर्भ में आचार्यवर ने लिखा–

● २२ नवम्बर १९८०। इन दिनों जयाचार्य के साहित्य से चयन करके एक ग्रन्थ तैयार कर रहे हैं। उसका नाम सोचा गया है–जय अनुशासन। इस कार्य के लिए मुनि नवरतन, मुनि मधुकर, मुनि किशन और मुनि महेन्द्र को बिठाते हैं। युवाचार्य महाप्रज्ञ इस कार्य में साथ ही बैठते हैं। राजस्थानी भाषा के पद्यों का चयन और उनके हिन्दी अनुवाद का काम साथ-साथ हो रहा है। एक हजार पद्यों का संकलन कर ग्रन्थ बनाना चाहते हैं। यह भी चाहते हैं कि मृगसर पूर्णिमा तक कार्य संपन्न हो जाए।

● दिसम्बर १९८०। जय अनुशासन ग्रन्थ की पूर्ति। उसका काम लाडनूं में कार्तिक कृष्णा एकम को प्रारम्भ किया था। प्रतिदिन रात्रि के समय काम चला। जयाचार्य के साहित्य से विशेष पद्यों का चयन करना था। कुल एक हजार तेरह (१११३) पद्यों का चयन किया गया। प्रस्तुत कार्य में लगभग दो महीने का समय लगा।

● 'जय अनुशासन' जयाचार्य की कृति है। इसमें जय-साहित्य का सार है। जय-साहित्य से चयनित एक हजार गाथाएं हिन्दी अनुवाद के साथ इस ग्रन्थ में हैं। यह ग्रन्थ विविध कोणों से आत्मानुशासन की प्रेरणा देनेवाला है। अपेक्षा है, इसका सलक्ष्य अध्ययन किया जाए। इसमें जयाचार्य का सुलझा हुआ चिन्तन है, हमारी प्रेरणा है और महाप्रज्ञजी का परिश्रम है।

श्रमण प्रतिक्रमण

● अक्टूबर १९८३। श्रमण प्रतिक्रमण के अतिचारों को परिष्कृत करने का काम चल रहा है। हिन्दी भाषा, नई शैली और गद्यात्मक रचना। रात्रि में प्रतिक्रमण करके बैठते हैं। युवाचार्यजी साथ रहते ही हैं। कुछ साधु भी आते हैं। प्रतिक्रमण के बाद 'पंच पद वन्दना' के परिष्कार का लक्ष्य है। 'श्रावक प्रतिक्रमण' के अतिचार पद्यबद्ध हैं। उन्हें भी गद्य में प्रस्तुत करने का विचार है।

● मेरे मन में कुछ-न-कुछ नया करने का चिन्तन उभरता रहता है। मुझे नया सृजन अच्छा लगता है। मैं अपना चिन्तन युवाचार्य महाप्रज्ञ के सामने रख देता हूं। महाप्रज्ञ का क्षयोपशम विलक्षण है, असाधारण है। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी है। वे हर बात को नया रूप दे देते हैं। मौलिकता को सुरक्षित रखकर नए रूप में प्रस्तुति देना वास्तव में एक विशिष्ट कला है।

पुरुषार्थ के पचास वर्ष

● २४ अगस्त १९८५। धर्मशासना के पचास वर्षों के पचास प्रतीकों की कल्पना की गई है। यह भी चिन्तन किया गया है कि इस उपलक्ष्य में पचास प्रतीकात्मक चित्रों का निर्माण किया जाए तथा पचास

"'जय अनुशासन' जयाचार्य की कृति है। इसमें जय-साहित्य का सार है। जय-साहित्य से चयनित एक हजार गाथाएं हिन्दी अनुवाद के साथ इस ग्रन्थ में हैं। यह ग्रन्थ विविध कोणों से आत्मानुशासन की प्रेरणा देनेवाला है। अपेक्षा है, इसका सलक्ष्य अध्ययन किया जाए। इसमें जयाचार्य का सुलझा हुआ चिन्तन है, हमारी प्रेरणा है और महाप्रज्ञजी का परिश्रम है।"

कविताएं लिखी जाएं। यह दायित्व युवाचार्यजी पर है। कविताओं की रचना वे स्वयं करेंगे और चित्र बनवाए जाएंगे। प्रस्तुत चिन्तन सबको पसन्द आया।

● २२ सितम्बर १९८५। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपना नवीन काव्य संकलन 'पुरुषार्थ के पचास वर्ष' भेंट किया। इस हस्तलिखित कृति का चित्रांकन मुनि राजेन्द्र द्वारा किया गया।

● ३ फरवरी १९८७। मर्यादा महोत्सव का त्रिदिवसीय कार्यक्रम। अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'धर्मचक्र का प्रवर्तन' का लोकार्पण हुआ। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक युवाचार्य महाप्रज्ञ हैं।

'गाथा' ग्रंथ का प्रणयन

● ४ अगस्त १९८३। नए सृजन के संदर्भ में विचार-विमर्श। आचार्यवर ने इस संदर्भ में लिखा–'युवाचार्य महाप्रज्ञ के साथ कुछ विशेष विचार-विमर्श करना है, संघ के संबंध में गहरा चिंतन करना है। मेरा अभिमत है कि यह एक ऐसा समय है, जिसका जितना लाभ उठाया जाए, अच्छा है। ऐसा सुयोग बार-बार मिलना मुश्किल है। मैंने महाप्रज्ञ को सुझाव दिया है कि 'गीता' की तरह 'संबोधि' बन गई। अब उपनिषदों की तरह कुछ बनना चाहिए। आगमों के अनेक उदाहरणों को लेकर ऐसा ग्रंथ बनाया जा सकता है। उसमें आधुनिक समस्याओं के समाधान का लक्ष्य भी रखा जा सकता है। यह सुझाव उन्हें भी पसंद आया है। पर अभी तो वे 'आयारो भाष्य' के निर्माण में लगे हुए हैं। उसके बाद या कभी बीच में यह काम आरंभ हो जाएगा, ऐसा विश्वास है।

● १२ फरवरी १९८८। रात्रि में हमने चिन्तन किया। एक ग्रंथ की समायोजना की। उसका नाम अर्हत्-प्रवचन या और कुछ होगा। उत्तराध्ययन को मूल आधार बनाकर भगवान महावीर का जीवन और दर्शन संकलित करना है। मूल स्पर्शी प्राकृत भाषा में बाइबिल की तरह ग्रंथ तैयार किया जाएगा। ग्रंथ में रोचकता बनी रहे, यह लक्ष्य रखा गया है। विशाल ग्रंथ बनेगा। एक ही ग्रंथ में पूरा जैनधर्म सरसता के साथ पढ़ाया जा सकेगा। ग्रंथ-संकलन का निर्णय हो गया। संकलन के लिए संतों के पांच वर्ग बना दिए गए। काम शीघ्र ही चालू हो जाएगा, ऐसी आशा है।

● २८ मई १९८८। एक नए आगम ग्रंथ की संकलना की जा रही है। इस संकलना की पृष्ठभूमि का लक्ष्य यह है कि ग्रन्थ सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक हो। पर उसकी रोचकता बनी रहे। रात्रि में अर्हत्-वन्दना के बाद ग्रन्थ के संकलन का काम चलता है। अच्छा ग्रन्थ तैयार हो जाएगा, ऐसी आशा है।

● ५ अगस्त १९८८। प्रज्ञा परिषद की गोष्ठी में नव निर्मीयमाण ग्रन्थ के नामकरण के बारे में चिन्तन चला। अनेक सुझाव आए। आखिर एक नाम सामने आया 'गाथा'। जैसे गीता एक छोटा-सा नाम है, वैसे ही गाथा भी दो अक्षरों का नाम है। अर्थ भी दोनों का एक जैसा है। आगे चलकर जैसे भगवद्गीता प्रतिष्ठित हो गई, वैसे ही अर्हत् गाथा भी प्रचलित और प्रतिष्ठित हो सकेगी। चिन्तन कर नाम निर्णीत कर दिया। वह घोषित भी हो गया। अब गाथा का सम्पादन हो रहा है।

ऋषभायण

एक कल्पना प्रसूत हुई–भगवान ऋषभ का युग मानवीय सभ्यता और संस्कृति का आदि-युग है। भगवान ऋषभ के जीवन और व्यक्तित्व को आधार बना कर एक महाकाव्य का निर्माण होना चाहिए। आचार्यवर ने चाहा–मैं ऋषभायण महाकाव्य की रचना करूं। आचार्यवर की चाह मेरा संकल्प बन गया

और ऋषभायण महाकाव्य का निर्माण हो गया। आचार्यवर ने उसे एक अपूर्व महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया–

● १२ जुलाई १९९०। मध्याह्न में डेढ़ बजे शुभ मुहूर्त्त में ऋषभायण काव्य की संरचना प्रारंभ की गई। हम तीनों (महाप्रज्ञ, महाश्रमण और मैं) बैठे। प्राकृत भाषा में एक पद्य की रचना कर काव्य की शुरुआत की। उसी समय खेमचंदजी सेठिया आ गए। उन्हें संघीय दृष्टि से बात करने के लिए हमारे समय की जरूरत थी। समय दिया। उनकी सब बातें सुनीं। ऋषभायण का प्रारंभ तो हो गया, पर आज आगे नहीं बढ़ा। कल से इसे पुनः चालू किया जाएगा। वैसे यह काम महाप्रज्ञजी ही कर रहे हैं।

● ३० अक्टूबर १९९० को साधु-साध्वियों की परिषद जुड़ी। वाचन के लिए पुस्तकें खुलीं। पर चालू क्रम को बदलने की दृष्टि से मैंने युवाचार्यजी से कहा–'आज ऋषभायण का वाचन करो।' ऋषभायण का नाम सुनकर कुछ साधु-साध्वियों का चौंकना स्वाभाविक था, क्योंकि उन्होंने यह नाम पहली बार सुना। उनकी जिज्ञासा समाहित करते हुए मैंने कहा–'ऋषभायण वह ग्रंथ होगा, जिसकी कल्पना वर्षों पहले की गई थी। मेरी उस कल्पना को आकार देने का काम युवाचार्य महाप्रज्ञ कर रहे हैं। रामायण की तरह भगवान ऋषभ के जीवन एवं दर्शन को सांगोपांग प्रस्तुति देने वाला एक काव्य है ऋषभायण। हिन्दी भाषा और पद्यात्मक शैली में लिखे जा रहे इस काव्य के एक खंड की रचना हो चुकी है। अब इसका वाचन करना है।' ऋषभायण का वाचन प्रारंभ हुआ। सबको रुचिकर लगा।

● ३० मार्च १९९२, सोमवार। महाप्रज्ञजी आजकल ऋषभायण महाकाव्य की संरचना कर रहे हैं। यह अपूर्व महाकाव्य बने, जैनों में पहला हिन्दी काव्य बने, ऐसी कल्पना है।

● ९ नवम्बर १९९६। आज आचार्य महाप्रज्ञजी ने 'ऋषभायण' हिन्दी १८ सर्ग का महाकाव्य सम्पन्न कर लिया है। नया कार्य हुआ है। मेरा विश्वास है अब तक जितने हिन्दी के प्रसिद्ध काव्य है, उन सबसे पीछे तो रहेगा ही नहीं, आगे जा सकता है।

एक आवश्यकता की पूर्ति हो गई।

जैन जीवन शैली पर निबंध

● १४ जून १९९३। आज मध्याह्न में जैन जीवन शैली पर एक निबंध प्रस्तुत किया गया। इस निबंध का लेखन युवाचार्य महाप्रज्ञ द्वारा किया गया। समूह के मध्य वाचन हुआ। अच्छा लगा। अब इसका प्रयोग किया जाएगा।

विभिन्न भाषाओं में अनुवाद

साहित्य-सृजन और प्रकाशन के साथ उसके विभिन्न भाषाओं में अनुवाद की अपेक्षा सामने आई। अपेक्षा की संपूर्ति के प्रयत्न हुए। अंग्रेजी, बांग्ला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में अनेक पुस्तकें अनूदित और प्रकाशित हुई। आचार्यवर ने यत्र तत्र इस संदर्भ में कुछ उल्लेख किए हैं–

विजय यात्रा

● ईस्वी सन् १९५६। सरदारशहर में चतुर्मास। उन दिनों दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ विशेष कार्यक्रमों की चर्चा थी। वहां के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों ने उस अवसर पर दिल्ली में हमारी उपस्थिति को

"आज आचार्य महाप्रज्ञजी ने 'ऋषभायण' हिन्दी १८ सर्ग का महाकाव्य सम्पन्न कर लिया है। नया कार्य हुआ है। मेरा विश्वास है अब तक जितने हिन्दी के प्रसिद्ध काव्य हैं, उन सबसे पीछे तो रहेगा ही नहीं, आगे जा सकता है। एक आवश्यकता की पूर्ति हो गई।"

आवश्यक बताया। यूनेस्को की एक महत्त्वपूर्ण मीटिंग को लक्ष्य में रखकर हमें चिन्तन करना था। हमने इस आशय की एक गोष्ठी की। उसमें कुछ साधुओं के साथ प्रो. कृष्णमूर्ति, भंवरलालजी दूगड़, जयचंदलालजी दफ्तरी, शुभकरण दसानी आदि श्रावक भी थे। चिन्तन के अनेक बिन्दुओं पर चर्चा हुई। मुनि नथमलजी (टमकोर) की पुस्तक 'विजय यात्रा' का अंग्रेजी अनुवाद करने का दायित्व प्रो. कृष्णमूर्ति को सौंपा गया।

अणुव्रत दर्शन

२२ नवम्बर १९६९। अणुव्रत दिवस के कार्यक्रम में मैसूर के उपशिक्षा मंत्री श्री एम.बी. सोगी, सर्वोदयी कार्यकर्त्री महादेवी ताई, प्रो. दिनेशचंद्र शर्मा आदि विशेष रूप से उपस्थित थे। प्रोफेसर दिनेशचन्द्र शर्मा मुनि नथमलजी द्वारा लिखित पुस्तक 'अणुव्रत-दर्शन' का अंग्रेजी में अनुवाद कर सहज रूप से अणुव्रत के साथ जुड़ गए। उपशिक्षामंत्री श्री सोगी ने पुस्तक का लोकार्पण किया।

बांग्ला भाषा में अनुवाद

● २३ सितम्बर १९८४। प्रातः युवाचार्य महाप्रज्ञ की चार पुस्तकों का विमोचन हुआ। विमोचित होनेवाली पुस्तकें हैं–मन के जीते जीत, आभामंडल, चेतना का ऊर्ध्वारोहण और जीवन विज्ञान। चारों ही पुस्तकें पुरानी होकर भी नई हैं। क्योंकि विमोचन इनके बांग्ला संस्करण का हुआ। बांग्ला भाषा में अनुवाद का दायित्व चम्पा बाबू आंचलिया (देशनोक) ने लिया। आंचलियाजी कलकत्ता में रहते हैं। बहुत विनम्र और सेवाभावी हैं। अंग्रेजी एवं बांग्ला भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने दो पुस्तकों का अनुवाद स्वयं किया और दो पुस्तकों का करवाया।

गुजराती साहित्य का लोकार्पण

१६ अक्टूबर १९८८। प्रेक्षाध्यान एकेडमी, अहमदाबाद की एक मीटिंग थी। उसमें नौ सदस्य उपस्थित थे–एकेडमी के अध्यक्ष श्री नवनीत भाई शाह, श्री दलसुख भाई मालवणिया, गिरीश भाई पटेल, श्री मनोहर भाई शाह, शुभकरण सुराणा तथा ज्योति बहन आदि बहनें। प्रवचन के समय दलसुख भाई बोले। उन्होंने 'कैसे सोचें?' पुस्तक के गुजराती अनुवाद की 'केम विचारिवूं?' पुस्तक भेंट की। नवनीत भाई ने गुजराती अनुवाद की पांच पुस्तकें भेंट की। सहज ही गुजराती साहित्य के लोकार्पण का कार्यक्रम हो गया। अच्छा वातावरण रहा।

लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज

३० अक्टूबर १९९४। अध्यात्म साधना केन्द्र, नई दिल्ली। आज मध्याह्न में महाप्रज्ञजी द्वारा लोकतंत्र पर लिखी गई पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद–'डेमोक्रेसी सोशियल रेवोल्यूशन थ्रू इन्डिविजुअल ट्रांसफोरमेशन' का लोकार्पण कार्यक्रम था। श्री अटलबिहारी वाजपेयी, श्री टी.एन. शेषन तथा आबिद हुसैन कार्यक्रम में विशेष रूप से उपस्थित थे। पुस्तक का लोकार्पण श्री वाजपेयी ने किया। उनका वक्तव्य आकर्षक होता ही है। श्री आबिद हुसैन और श्री शेषन के वक्तव्य भी अच्छे और सामयिक हुए। जनता की उपस्थिति अच्छी थी। आयोजन प्रभावकारी रहा।

महाप्रज्ञजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'मैंने अनेकान्त का जीवन जीया है। इस शैली के मंत्रदाता हैं पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी। मैंने कभी कुछ पढ़ा नहीं। इन्होंने जो सिखाया, वही सीख लिया। पढ़ाई सदा

बाहर से होती है। सीखना भीतर से होता है। समस्या उलझती है केवल पढ़ने पर निर्भर बनने से और वह सुलझती है भीतरी प्रज्ञा से। लोकतंत्र की प्रणाली हो या अन्य तंत्र की, उसके पीछे स्व-तंत्र नहीं, सेवा-तंत्र की भावना आवश्यक है। लोकतंत्र को थामनेवाले हाथ अहिंसायुक्त हों, उनकी चिन्तनशैली अनेकांतमयी हो और उसका आदर्श देश का भला तथा लोकतंत्र की प्रतिष्ठा हो, तभी भारत विश्व को एक मूल्यवान दिशा दे सकेगा।'

मैंने अपने उद्‌बोधन में कहा–'अभी जिस पुस्तक का लोकार्पण हुआ है, वह अचिन्तन से निकला चिन्तन है। आपके जीवन के लिए यह पुस्तक तभी महत्त्वपूर्ण बनेगी, जब आप इसे पढ़कर जीवन की धरती पर इसको प्रायोगिक बनाएंगे।'

मूल्यांकन

पूज्य गुरुदेव ने सृजन की प्रेरणाएं ही नहीं दी, सृजन को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया, मूल्यांकन भी किया। आचार्यवर ने अपनी दैनंदिनी में अनेक स्थानों पर मेरे साहित्यिक प्रतिभा के प्रति प्रमोद भाव व्यक्त किया और उसे संघ के सौभाग्य के साथ अपनी महान् उपलब्धि माना। इतना ही नहीं, विद्वानों ने जिस उदात्त-भाव से मेरे साहित्य-सृजन की प्रासंगिकता और महत्ता का अंकन किया, उसका भी यत्र-तत्र मुक्त-भाव से उल्लेख किया है। गुरु की गुरुता का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

सन् १९६२ में पूज्य गुरुदेव का उदयपुर में चतुर्मास था। डॉ. महेन्द्र भानावत ने मेरे साहित्य पर एक आलेख लिखा। तेरापंथ धर्मसंघ में किसी मुनि के व्यक्तित्व पर आलेख-लेखन का वह विरल प्रसंग आचार्यवर की डायरी में इस शब्दों में अंकित है–

● २१ अगस्त १९६२, उदयपुर। महेन्द्र भानावत मूलतः कानोड़ निवासी है और तेरापंथी श्रावक है। उसकी माता गहरी धर्मनिष्ठा रखने वाली भक्त श्राविका थी। कार्यक्षेत्र बदल जाने से महेन्द्र आदि भाइयों का सम्पर्क कुछ कम हो गया। महेन्द्र एम. ए. करने के बाद उस समय डॉक्टरेट कर रहा था। लेखन के क्षेत्र में भी अच्छा विकास कर लिया। उसने हिन्दुस्तान पत्र के लिए मुनि नथमलजी के बारे में एक लेख लिखा, मुझे दिखाया था, अच्छा लगा।

गुरुदेव अहमदाबाद चातुर्मास से पूर्व वाव तथा कच्छ की यात्रा कर रहे थे। यात्रा में सहवर्ती साधुओं का अंकन किया। उस प्रसंग में निकायसचिव के बारे में भी लिखा–

● निकाय-सचिव मुनि नथमलजी आगम-संपादन और ध्यान-साधना में निरत रहने के साथ मेरे द्वारा निर्दिष्ट प्रत्येक काम के लिए तैयार रहते थे। बौद्धिक लोगों में प्रायः उनके वक्तव्य करवाए ही जाते।

● ३० नवम्बर १९६५। दिल्ली में साहू शांतिप्रसादजी जैन की कोठी में प्रवास। 'प्रख्यात लेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' साहूजी की कोठी पर आए हुए थे। उनसे प्रत्यक्ष सम्पर्क का वह प्रथम अवसर था। वैसे हमारे कार्यक्रमों और साहित्यिक गतिविधियों से वे परिचित थे। श्री प्रभाकर के साथ हमारी काफी बातें हुईं। मुनि नथमलजी के बारे में उन्होंने कहा–'आचार्यजी! आपने एक नया विवेकानन्द खड़ा कर दिया। मैंने इनको पढ़ा है। इनका साहित्य गंभीर और चिन्तनपूर्वक लिखा हुआ होता है।'

● १९ सितम्बर १९८७ को ज्ञानपीठ से पंडित लक्ष्मीचंदजी आए, युवाचार्य महाप्रज्ञ से मिले और बोले–इस बार का ज्ञानपीठ पुरस्कार आपके साहित्य पर देना चाहते हैं। इसके लिए आपकी स्वीकृति

"पढ़ाई सदा बाहर से होती है। सीखना भीतर से होता है। समस्या उलझती है केवल पढ़ने पर निर्भर बनने से और वह सुलझती है भीतरी प्रज्ञा से।"

चाहिए। महाप्रज्ञजी ने कहा–इस विषय में आचार्यश्री से चर्चा करेंगे। उनकी जैसी अनुज्ञा होगी, वैसा ही होगा। युवाचार्यजी और लक्ष्मीचंदजी मेरे पास आए। उनकी बात सुनकर मैंने कहा–हम जैन साधु हैं। जैन साधुओं की अपनी विधि होती है। यह संभव कैसे होगा? लक्ष्मीचंदजी बोले–वह तो विधि के अनुसार ही होगा। हमें तो साहित्य का अंकन करना है। मैंने कहा–हम सोचकर कल तक बताएंगे। प्रस्तुत संदर्भ में चिंतन करने के लिए हम (मैं, युवाचार्य महाप्रज्ञ और मुनि महेन्द्र) बैठे। श्रावकों में शुभकरण दसानी, मांगीलाल सेठिया और सूरजमल गोठी उपस्थित थे। कमलेश चतुर्वेदी सहज ही वहां आ गया। हमने निर्णय लिया कि अर्थ तो लेना नहीं है। साहित्य का सम्मान कोई भी करे, इसमें हमें क्या आपत्ति हो सकती है। पहले उनसे पूरी जानकारी लेंगे, उसके बाद स्वीकृति देंगे।

दो दिन बाद जानकारी मिली कि ज्ञानपीठ पुरस्कार अब मूर्तिदेवी पुरस्कार के रूप में परिणत हो गया। अशोकजी जैन आए। चर्चा की। हमने सारी बात सुनी। पुरस्कार स्वीकार करने की बात जंची नहीं। चिन्तनपूर्वक उसे अस्वीकार करने का तय किया। हमारे लिए यह कोई महत्त्व की बात नहीं है, साधारण-सी बात है। इस विषय में कोई भी पूछेगा तो हम अपनी ओर से निषेध कर देंगे।

आचार्यवर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित मेरे आलेख प्रायः पढ़ते थे, उनकी समीक्षा भी करते थे और साधु-साध्वियों को पढ़ने की प्रेरणा भी देते थे। उनकी मूल्यांकन-दृष्टि का यह प्रशस्त निदर्शन है–

● १६ दिसम्बर १९९०। आज प्रेक्षाध्यान पत्रिका का नया अंक प्राप्त हुआ। अंक देखा, पढ़ा और साधुओं को स्वाध्याय की विशेष प्रेरणा देते हुए कहा–'हमारे धर्मसंघ की पत्रिकाओं में अच्छे चिन्तनपरक और ज्ञानवर्धक लेख प्रकाशित होते हैं। उनमें युवाचार्य महाप्रज्ञ के जो लेख आते हैं, वे साधु-साध्वियों को मननपूर्वक पढ़ने चाहिए। उन लेखों में गंभीरता होती है, नए तथ्य और नया चिन्तन होता है। अभी प्रेक्षाध्यान का नया अंक आया है। उसमें एक लेख है- 'प्रेक्षाध्यान और विपश्यना।' इस लेख में प्रेक्षाध्यान और विपश्यना के अन्तर को बड़ी सूक्ष्मता से स्पष्ट किया गया है। उसे सब साधु-साध्वियों के लिए जानना आवश्यक है।' अपनी बात रखने के बाद मैंने पूछा-'इसे कौन-कौन पढ़ेगा? पढ़ने के बाद इसका विधिवत परीक्षण लिया जाएगा।' कई संतों ने अपने नाम दिए। आगामी २१ तारीख को परीक्षा हो सकेगी।

● ५ दिसम्बर १९९१। पश्चिम बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री विमलमित्र के स्वर्गवास का संवाद प्राप्त हुआ। उनके संबंध में उद्‌गार प्रकट करते हुए मैंने कहा–'विमलमित्र के अचानक चले जाने से साहित्य जगत की बहुत बड़ी क्षति हुई है। वे बंगाली थे। उनके अनेक उपन्यास बंगला से हिन्दी में अनूदित हुए और वे काफी लोकप्रिय भी हुए। विमल बाबू अपने आपको हिन्दी का लेखक कहलाने में गौरव का अनुभव करते थे। हम उनसे अपरिचित थे। वे हमारे साहित्य को पढ़कर परिचित हुए। महाप्रज्ञ के साहित्य को पढ़कर उन्होंने कहा–यदि मैं इस साहित्य को पहले पढ़ लेता तो मेरे उपन्यास-लेखन की दिशा बदल जाती।'

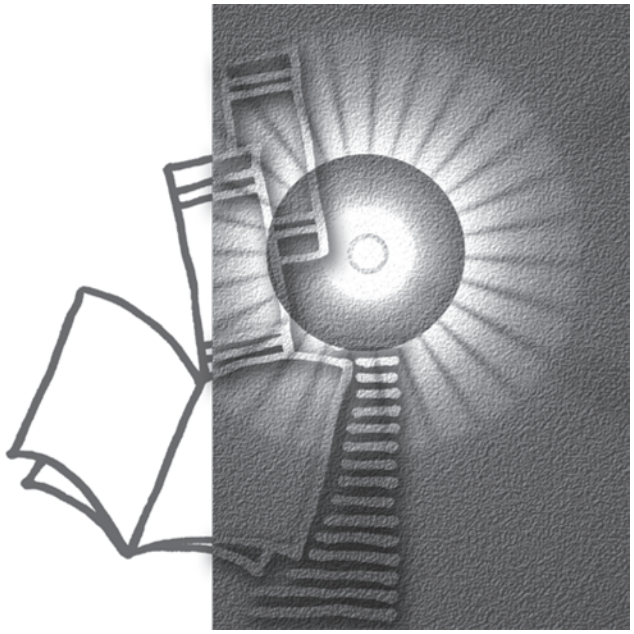

आगम संपादन

> “इसमें सोचने की क्या अपेक्षा है आपका जो भी संकल्प होगा, वह अवश्य फलवान बनेगा। मैंने कहा–‘नथमलजी! यह चिंतन कोरा उपचार नहीं है। इसे गंभीरता से लो। एक बार फिर गहराई से सोच लो। हमें वही काम हाथ में लेना है, जिसे हम कर सकें।’ मेरे बार-बार कहने पर भी मुनि नथमलजी विचलित नहीं हुए। उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा–‘आप जो चाहेंगे, वह होगा।’”

आगम संपादन का संकल्प

महाराष्ट्र की यात्रा। ७ मार्च १९५५, मञ्चर गांव में प्रवास। आचार्यवर ने ‘धर्मदूत’ पत्रिका पढ़ी। पढ़ने के साथ जो मानसिक आंदोलन हुआ, उसका उल्लेख आचार्यवर ने विस्तार से किया है–

● मेरे मस्तिष्क में एक ऐसी उथलपुथल मच गई, जिसे मैं शान्त नहीं कर सका। कुछ करने के लिए मन बेचैन हो उठा। मैंने तत्काल मुनि नथमलजी को बुलाया। वे आए। मैंने ‘धर्मदूत’ पत्र उनके हाथ में थमाते हुए कहा–‘पढ़ो, क्या लिखा है?’ मुनि नथमलजी पूरा संवाद पढ़कर बोले–‘बौद्ध पिटकों के सम्पादन और प्रकाशन की बात है।’ मैंने कहा–‘क्या हम भी जैन आगमों के सम्पादन का काम हाथ में लें?’ बिना एक क्षण सोचे मुनि नथमलजी बोल उठे–‘अवश्य लें। चिन्तन बहुत सुन्दर है।’

किसी भी कार्य की पृष्ठभूमि में चिन्तन आवश्यक होता है। वह सुन्दर और उपयोगी हो सकता है, पर उसकी क्रियान्विति न हो तो उसका मूल्य कम हो जाता है। इस बात को ध्यान में रखकर मैंने एक बार फिर मुनि नथमलजी से कहा–‘क्या यह काम हो सकेगा? तुमने पूरा सोच तो लिया है?’ वे बोले–‘इसमें सोचने

की क्या अपेक्षा है आपका जो भी संकल्प होगा, वह अवश्य फलवान बनेगा।' मैंने कहा–'नथमलजी! यह चिंतन कोरा उपचार नहीं है। इसे गंभीरता से लो। एक बार फिर गहराई से सोच लो। हमें वही काम हाथ में लेना है, जिसे हम कर सकें।' मेरे बार-बार कहने पर भी मुनि नथमलजी विचलित नहीं हुए। उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा–'आप जो चाहेंगे, वह होगा।'

आगम संपादन बहुत बड़ी साधना है। तब तक हमने किसी छोटी पुस्तक का भी संपादन नहीं किया था। फिर भी मन में एक ललक पैदा हो गई। मुनि नथमलजी का भी इस क्षेत्र में कोई अनुभव नहीं था। फिर भी उन्होंने निर्विकल्प चित्त से अपनी सहमति दे दी। उसी दिन रात्रि में प्रतिक्रमण-प्रार्थना के समय सहज रूप में सब साधु एकत्रित हुए। मैंने अपने मन की तड़प बताते हुए संध्याकालीन प्रसंग की अवगति दी और कहा–'आज मैंने मनोमना एक बड़ा निर्णय लिया है। उसकी क्रियान्विति के लिए कौन तैयार है?' साधुओं ने निर्णय के बारे में जिज्ञासा की तो मैं बोला–जैन आगमों के सम्पादन का काम हमें करना है।

मेरी बात सुन साधु झूम उठे। उन्होंने हार्दिक भाव से काम करने की इच्छा व्यक्त की। मैंने कहा– अनौपचारिक रूप में हमने आज ही तय कर लिया है कि हमें आगम-सम्पादन का काम करना है। इसकी विधिवत् घोषणा 'महावीर जयन्ती' के अवसर पर करने का विचार है। प्रसन्न और उत्साहपूर्ण वातावरण में एक नई योजना की कल्पना स्थिर हुई। उसके बाद समय-समय पर इस संदर्भ में चर्चा चलती रही।

● ५ अप्रैल १९५५। औरंगाबाद में महावीर जयंती के दिन मैंने घोषणा की–जैन आगमों का आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से संपादन करना है। मूल पाठ का संशोधन, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, समीक्षात्मक टिप्पण आदि संपादन के जितने अंग हैं, समग्र रूप से काम करना है।

● ६ जुलाई १९५५, उज्जैन चातुर्मास्य का निर्णय करते समय मेरे सामने एक बड़ा काम था आगम संपादन का। इस दृष्टि से चातुर्मास्य के प्रारम्भ में ही साधु-साध्वियों की एक गोष्ठी बुलाई गई। आगम कार्य के संपादन का समग्र दायित्व मुनि नथमलजी (टमकोर) को सौंपा गया, उनके साथ कुछ सहयोगी साधुओं की नियुक्ति कर दी गई। प्राथमिक रूप से दो काम प्रारंभ करने का संकल्प किया–(१) आगमों का हिन्दी अनुवाद और (२) शब्दसूची का निर्माण। हिन्दी अनुवाद का काम जितना उपयोगी था, उतना ही कठिन था। वह काम मुनि नथमलजी के जिम्मे था। उन्होंने निर्देश मिलते ही आयारचूला का अनुवाद प्रारंभ कर दिया। शब्दसूची का काम बहुत बड़ा था। उसमें पचासों साधु-साध्वियों को नियोजित कर दिया। नियोजन के साथ ही सब काम में जुट गए।

जैन संस्कृति समारोह

राजगृह में प्रवास। जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा द्वारा जैन संस्कृति समारोह की आयोजना।

● १७ जनवरी १९५९। मगध सांस्कृतिक संघ, राजगृह की ओर से आगन्तुक अभ्यागतों का स्वागत। संगोष्ठी का विषय था–'आगम साहित्य की परम्परा एवं इतिहास तथा जैन वाङ्मय का आधुनिकीकरण।' मुनि नथमलजी और दलसुखभाई मालवणिया ने प्रस्तुत विषय पर विस्तार से विचार रखे। अपने उपसंहारात्मक प्रवचन में मैंने जैन आगमों को जनभोग्य बनाने की प्रेरणा दी।

आश्वास और विश्वास

सन् १९६१ बीदासर में चातुर्मासिक प्रवास। प्रति सप्ताह गोष्ठी का आयोजन। आश्विन मास की

प्रथम साप्ताहिक गोष्ठी आचार्यवर के सान्निध्य में हुई। आगम के विषय में चर्चा हो रही थी। उस प्रसंग में गुरुदेव ने मेरे प्रति जो विश्वास व्यक्त किया, वह बहुआयामी प्रगति की संप्रेरणा है–

● आगम सम्पादन यात्रा के कुछ पड़ाव हमने पार कर दिए। इस यात्रा में सर्वाधिक सहयोगी हैं साधु-साध्वियां। प्रथम पड़ाव में साधु और साध्वियां दोनों ने काम किया। उसके बाद धीरे-धीरे साध्वियों की संभागिता कम होती गई। साधु बराबर संलग्न रहे। कारण वह काम हमारे सान्निध्य में होता था। उसका सम्पूर्ण दायित्व मुनि नथमलजी पर था। उनके निर्देशन में साधुओं को काम करने की सुविधा थी। मैं भी समय-समय पर उन्हें प्रेरणा और प्रोत्साहन देता रहता था।

मुनि नथमलजी को जो निर्देश मिलता है, ये उसके प्रति समर्पित हो जाते हैं। इनको ज्ञान का स्रोत माना जा सकता है। आगम कार्य में इनकी दृष्टि खुल रही है। ये स्थिरता और सूक्ष्मता से काम करते हैं और नए-नए तथ्य खोजते रहते हैं। इनकी मेधा विलक्षण है और स्मृति तेज है। इनकी प्रतिभा अस्खलित रूप से निखार पा रही है।

● २५ अप्रैल १९६२। लाडनूं। हमने जब से आगम का कार्य हाथ में लिया है, आगम साहित्य के प्रति हमारी आस्था प्रगाढ़ होती जा रही है। आगम सम्पादन का काम भी अच्छी स्थिति में चल रहा है। मुनि नथमलजी ने अपना जीवन इस काम में लगा रखा है। यद्यपि वे ध्यान-साधना में अधिक समय लगाना चाहते थे, किन्तु मेरे द्वारा स्वीकृत काम को छोड़ना भी उनके लिए संभव नहीं था। इसलिए वे व्यक्तिगत अभिरुचि और संघीय अपेक्षा – दोनों के बीच में सामंजस्य बिठाकर काम करने लगे। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि आगमों के सम्पादन का पूरा काम हो चुका था। वे प्रकाशन के लिए दिए जा चुके थे। उनके बारे में यह व्यवस्था सोची गई कि प्रवाचक और सम्पादक में मेरा नाम रहे। सह-संपादक में मुनि नथमलजी का नाम रहे। अनुवाद आदि कार्यों में जो-जो साधु-साध्वियां सहयोगी हों, उनका भी उल्लेख किया जाए। पूरा काम शृंखलाबद्ध रूप में हो, यह निर्णय लिया गया। सिद्धान्ततः वह निर्णय सबको मान्य हो गया। शाब्दिक दृष्टि से प्रवाचक और सम्पादक के स्थान पर वाचना-प्रमुख तथा सह-सम्पादक के स्थान पर सम्पादक और विवेचक शब्द मान्य किए गए। तब से अब तक यह काम इसी रूप में चल रहा है।

● १५ अगस्त १९६२, उदयपुर। प्रातःकाल मुनि नथमलजी आदि सन्तों के साथ आगम कार्य के बारे में चर्चा हुई। उस प्रसंग में मैंने कहा–'निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य आदि को सुरक्षित नहीं रखने से जैन आगम साहित्य बौद्ध साहित्य की तुलना में छोटा पड़ गया। अब भी हमें प्रयत्न करना चाहिए। प्राकृत कथाओं का अलग संकलन करके जातक अट्ठकथा की तरह बनाया जा सकता है। आज का किया गया प्रयास शताब्दियों के बाद बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।' उक्त विचार पर सबका ध्यान केन्द्रित हुआ।

● २५ जनवरी १९६३। वैशाली जैन विद्यापीठ के डाइरेक्टर डॉ. नथमल टांटिया एक विशेष दल के साथ केलवा आए। मध्याह्न में साधु-साध्वियों की एक विशेष गोष्ठी में बोलते हुए डॉ. टांटिया ने तेरापंथ श्रमण संघ के बारे में बहुत अच्छे विचार व्यक्त किये। मुनि नथमलजी ने आगम-सम्पादन का इतिहास तथा तब तक हुए कार्य की व्यवस्थित जानकारी दी। मैंने भी अपने वक्तव्य में पूर्वाचार्यों द्वारा की गई साहित्य-सेवा के बारे में विस्तार से बताया और वर्तमान में चल रहे कार्य में साधु-साध्वियों के योगदान का उल्लेख करते हुए उन्हें प्रोत्साहित किया। टांटियाजी के साथ हुए चिन्तन से आगम कार्य में एक नया मोड़ आ गया।

"मुनि नथमलजी को जो निर्देश मिलता है, ये उसके प्रति समर्पित हो जाते हैं। इनको ज्ञान का स्रोत माना जा सकता है। आगम कार्य में इनकी दृष्टि खुल रही है। ये स्थिरता और सूक्ष्मता से काम करते हैं और नए-नए तथ्य खोजते रहते हैं। इनकी मेधा विलक्षण है और स्मृति तेज है। इनकी प्रतिभा अस्खलित रूप से निखार पा रही है।"

आगम साहित्य का प्रकाशन कहां से हो? कैसे हो? कितने भागों में हो? आदि प्रश्नों की पूर्वभूमिका बन गई।

उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन

● २६ जुलाई १९६३, लाडनूं। आज तीन बजे मुनि नथमलजी ने 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन' लिखना प्रारंभ किया। प्रस्तुत प्रसंग में लेखक मुनि को प्रेरणा देते हुए मैंने कहा–'मैं चाहता हूं कि यह एक ऐसा ग्रंथ बने, जो समग्र जैन दर्शन का प्रतिनिधित्व करे, जैन बाइबिल बन जाए। आशा है, सफलता मिलेगी।'

● १५ अगस्त १९६३। आज 'रात्रि में मुनि नथमलजी से आगम कार्य के संबंध में लम्बी चर्चा हुई। उत्तराध्ययन का समीक्षात्मक अध्ययन नए तरीके से लिखा जा रहा था। मेरा चिन्तन था कि उस ग्रंथ को जैनधर्म का प्रतिनिधि ग्रंथ बनाया जाए। जैसे ईसाइयों की बाइबिल, इस्लाम का कुरान, वैसे ही जैनों का उत्तराध्ययन। वस्तुतः यह उस रूप में बनने जैसा ग्रंथ है। कुछ साहित्य अंग्रेजी भाषा में हो, यह बहुत जरूरी है। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, जैनधर्म के मौलिक तत्त्व, भिक्षु विचार दर्शन, अणुव्रत दर्शन, अहिंसा तत्त्व दर्शन आदि कुछ पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद हो जाए तो एक बड़ी अपेक्षा की संपूर्ति संभव है। जब तक आगम कार्य चालू है, तब तक मुनि नथमलजी को औषधि तथा समुच्चय के आहार की विगय से मुक्त कर दिया। इन्होंने हमारे धर्मसंघ में साहित्य के क्षेत्र में नई सृष्टि कर दी। इनके मस्तिष्क को सुरक्षित रखना मैंने बहुत आवश्यक समझा।'

● २५ अगस्त १९६५। अन्यान्य व्यस्तताओं के बावजूद आज प्रातः आगमपाठ-संशोधन का कार्य पुनः प्रारंभ किया गया। जैन आगमों में आचारांग सूत्र का विशिष्ट स्थान है। आगम-सम्पादन की प्रक्रिया में पाठ-संशोधन का काम सबसे अधिक जटिल है। भिन्न-भिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पाठ उपलब्ध हैं। पाठ भेद की स्थिति में कौन-सा पाठ मूल में रखा जाए? यह निर्णय करने में कभी-कभी बहुत समय लग जाता है। लगभग डेढ़ घंटे में केवल एक-दो पंक्तियों का काम हो पाता है। इस काम में मुनि नथमलजी मुख्य रूप से हमारे साथ रहते हैं।

● जुलाई १९६६, बीदासर। इन दिनों आगम-सम्पादन कार्य में निशीथ सूत्र का काम अच्छी गति से चलता है। तीन से पांच बजे तक दो घण्टे नियमित रूप से काम करते हैं। निशीथ के साथ भगवती सूत्र के पाठ-संशोधन का काम श्रावण कृष्णा त्रयोदशी से ही चालू कर दिया।

● अप्रैल १९६७। बाव में हमारा साप्ताहिक प्रवास सुखद रहा। साताकारी स्थान मिला। सब तरह की सुविधा मिली। सबका मन प्रसन्न रहा। आगम-कार्य बहुत तेजी से चला। मुनि नथमलजी बोले–'यहां एक महीना रहना हो जाए तो चार महीनों का काम हो सकता है।'

● २२ जुलाई १९६७, अहमदाबाद। श्रावणी प्रतिपदा का दिन था। जैन दृष्टि से यह नववर्ष का प्रथम दिन है। मध्याह्न में अणुव्रत गोष्ठी हुई। उसके बाद आगम गोष्ठी आयोजित थी। आगम-कार्य में संलग्न साधु-साध्वियों के अतिरिक्त श्री दलसुखभाई मालवणिया, श्री ऋषभचन्द्र जैन, अम्बालाल शास्त्री, रूपेन्द्रभाई, श्रीचंदजी रामपुरिया आदि भी उपस्थित थे। सर्वप्रथम रामपुरियाजी ने आगम-सम्पादन और प्रकाशन-कार्य के बारे में जानकारी दी। निकाय-सचिव मुनि नथमलजी ने आगम-शोध के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में बताया। विद्वानों के प्रश्नों को मैंने समाहित किया।

• २७ जुलाई १९६७। मुनि नथमलजी आदि कुछ साधु मुनि पुण्यविजयजी के आगम-शोधकेन्द्र में गए। वे पचीस वर्षों से आगम-कार्य में संलग्न हैं। आगम-अनुसंधान के विभिन्न पक्षों पर चर्चा चली। विचारों का आदान-प्रदान हुआ। उन्होंने अपने केन्द्र में चलने वाली गतिविधियों की जानकारी दी। मुनि नथमलजी ने यहां चल रहे आगम-संपादन कार्य की अवगति दी। सद्भावनापूर्ण वातावरण रहा।

• २ अगस्त १९६७। मुनि नथमलजी आदि कुछ साधु 'लालभाई-दलपतभाई प्राच्य विद्या मन्दिर', आगम-मन्दिर, गांधी आश्रम आदि संस्थानों में गए। विद्या-विहार में दलसुखभाई मालवणिया के निर्देशन में जैन दर्शन एवं आगम-साहित्य से संबंधित अनेक अनुसंधानात्मक प्रवृत्तियां चल रही हैं। पण्डित बेचरदासजी दोसी वहीं काम करते हैं। प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी से भी संतों का मिलन हुआ। उनके साथ अच्छी बातें हुईं। वार्तालाप के समय बहुत मधुरता और स्फूर्ति रही। पण्डितजी की दृष्टि में तेरापंथ धर्मसंघ का विशेष स्थान है। वे हमारे संघ में और अधिक विकास देखने के इच्छुक हैं। पण्डितजी से अब तक जो दूरी थी, वह सहज रूप से सिमट गई। बातचीत का रास्ता खुल गया।

• १२ जुलाई १९६९। मायसकंदरा गांव में आगम-सम्पादन के क्रम में हमने अनुयोगद्वार के पाठ-संशोधन का कार्य प्रारम्भ किया। मुनि नथमलजी, मुनि सुमेर, मुनि हीरालाल और मुनि बालचन्द ये सब साथ बैठते हैं। समय का पूरा उपयोग होता है। आगम-कार्य में मन बहुत प्रसन्न रहता है।

जैन आगमों पर भाष्य की कल्पना

आचार्यवर ने अप्रैल १९७० आचारांग पर भाष्य लिखने की कल्पना की। उस कल्पना को साकार करने का सौभाग्य मुझे मिला। यह आचार्यवर के लिए महान आत्म-तोष और मेरे लिए अपूर्व आह्लाद का क्षण बना।

• २२ अप्रैल १९७०। बागनदी मध्यप्रदेश। इन दिनों हमारे सान्निध्य में छांदोग्य उपनिषद का शांकरभाष्य के साथ वाचन चलता है। मुनि नथमलजी वाचन करते हैं, शेष सब सुनते हैं। सुनने वालों में साधु और साध्वियां दोनों हैं। ग्रंथ काफी गम्भीर है, फिर भी सब अच्छा रस लेते हैं।

एक दिन अध्ययन के समय चर्चा चली कि उपनिषदों की तरह जैन आगमों पर भी संस्कृत भाष्य लिखे जाने चाहिए। सबसे पहले आचारांग सूत्र को हाथ में लिया जाए। उस पर शांकरभाष्य की तरह सरस भाष्य लिखा जाए तो अच्छा रहे। यह सुझाव सबको पसन्द आया। समस्या एक ही थी कि भाष्य लिखे कौन? हर कोई व्यक्ति ऐसा काम कर नहीं सकता। मेरी नजर में एक-दो व्यक्ति ऐसे हैं, किन्तु उनके सामने और भी अनेक काम हैं। इस स्थिति में भी मेरा यह विश्वास है कि मन में जो विचार आया है, उसे साकार होना ही है।

• अक्टूबर १९७६, सरदारशहर। आगम अनुसंधान कार्य में इन दिनों व्यवहारसूत्र का काम संपन्न कर दिया। 'व्यवहार' एक छोटा-सा आगम है, पर उसके सम्पादन में समय अधिक लगा, क्योंकि इसके पाठान्तर अधिक हैं। संभवतः कुछ प्रतियां वाचना-भेद की हैं। हमारे सान्निध्य में जितने आगमों पर काम हुआ है, शायद इतने पाठभेद किसी आगम में नहीं हैं। खैर, अब तो काम सम्पन्न हो ही गया। इसके बाद 'जीवाजीवाभिगम' सूत्र का काम हाथ में लिया है। इसकी दो टीकाएं हैं। एक आचार्य मलयगिरि की है और दूसरी प्राचीन टीका आचार्य हरिभद्र की है। पाठ-संशोधन में दोनों ही टीकाओं का उपयोग किया जा रहा है। आगमों के हिन्दी अनुवाद का कार्य भी चल रहा है।

> "जब तक आगम कार्य चालू है, तब तक मुनि नथमलजी को औषधि तथा समुच्चय के आहार की विगय से मुक्त कर दिया। इन्होंने हमारे धर्मसंघ में साहित्य के क्षेत्र में नई सृष्टि कर दी। इनके मस्तिष्क को सुरक्षित रखना मैंने बहुत आवश्यक समझा।"

• ६ जुलाई १९७७, लाडनूं। आजकल मध्याह्न में एक बजे से चार बजे तक आगम-अनुसंधान का कार्य चल रहा है। जीवाजीवाभिगम का पाठ संशोधन, सूत्रकृतांग का हिन्दी अनुवाद, व्यवहार सूत्र का पुनर्निरीक्षण आदि अनेक रूपों में काम होता है। यह सब कुछ मेरे सान्निध्य में चल रहा है। इस कार्य श्रृंखला के सम्पादन में मुनि नथमलजी बराबर उपस्थित रहते हैं।

जैन आगम कोश

• १५ मई १९८०, लाडनूं। कुछ साध्वियों को शोध विभाग में काम करने का निर्देश दिया है। साध्वी कनकश्री, साध्वी यशोधरा, साध्वी जिनप्रभा, साध्वी कल्पलता, साध्वी चित्रलेखा, साध्वी विभाश्री आदि साध्वियां तथा पारमार्थिक शिक्षण संस्था की स्नातकोत्तर बहनें छेद सूत्रों तथा कुछ अन्य आगमों का शब्दकोश तैयार कर रही हैं। 'जैन आगम कोश' का निर्माण एक आवश्यक कार्य है। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने साध्वियों और बहनों से शुरू करवा दिया, यह एक शुभारंभ है। समय लगेगा, श्रम लगेगा, पर बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जाएगी। जैन आगमों पर शोध करने वालों के लिए एक स्रोत खुल जाएगा। युवाचार्यजी की सूझबूझ से अच्छा क्रम बना है। इससे साध्वियों और बहनों का नॉलेज भी बढ़ रहा है, ऐसा प्रतीत होता है।

आयारो भाष्य

• १२ सितम्बर १९८३, बालोतरा। 'आयारो' का संस्कृत भाष्य तैयार हो रहा है। मेरे सामने ही काम हो रहा है। युवाचार्य महाप्रज्ञ बोलते हैं और मुनि महेन्द्र लिखते हैं। समय तो लगेगा, पर अपूर्व ग्रंथ तैयार हो जाएगा। रात्रि में आवश्यक सूत्र के निरीक्षण का काम चल रहा है। दिन हो या रात, जब भी समय मिलता है, आगम कार्य चलता रहता है। इस कार्य में मुझे आनन्द की अनुभूति होती है। यद्यपि समय अपेक्षाकृत कम मिलता है। पर जितना मिलता है, उसका उपयोग अच्छा होता है।

• २६ जून १९८६। इस बार मेवाड़ को छोड़कर लाडनूं आने का प्रमुख लक्ष्य आगम संपादन तथा अन्य साहित्यिक गतिविधियों को बल देना है। हमारे लाडनूं पहुंचते ही नियमित चर्या के साथ बहुमुखी प्रवृत्तियां व्यवस्थित रूप में प्रारंभ हो गई। अनेक साधु-साध्वियां कार्य में संलग्न हैं। युवाचार्य महाप्रज्ञ से संबंधित प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं–

१. सप्ताह में दो बार (सोमवार और बृहस्पतिवार) रात्रि में विशेष प्रवचन।

२. 'धर्मचक्र का प्रवर्तन' पुस्तक का लेखन।

३. भगवती सूत्र के अनुवाद का पुनर्निरीक्षण।

४. आयारो के भाष्य का लेखन।

५. उपांग सूत्रों में पन्नवणा के मूलपाठ का पुनर्निरीक्षण।

६. व्यक्तिगत रूप में ध्यान के विविध प्रयोग।

• ३० अक्टूबर १९८६, लाडनूं। अर्हत् वंदना के बाद हमारे सान्निध्य में एक चिन्तन गोष्ठी हुई। युवाचार्य महाप्रज्ञ तो गोष्ठी में थे ही, कुछ अन्य व्यक्ति भी थे। उनमें मुनि मधुकर, मुनि मुदित, डॉ. नथमल टाटिया, डॉ. दयानन्द भार्गव, डॉ. विमलप्रकाश, श्रीचन्दजी रामपुरिया, श्रीचन्दजी बैंगानी, सूरजमलजी गोठी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। गोष्ठी में आगम-अध्ययन के विषय, आगम-अध्ययन की उपयोगिता, तेरापंथ धर्मसंघ के आगमपरक दृष्टिकोण आदि अनेक बिन्दुओं पर चर्चा हुई।

• १० जुलाई १९८७, नई दिल्ली। महाप्रज्ञजी ने आयारो भाष्य पूरा कर लिया। बहुत बड़ी बात हुई है। संस्कृत भाषा में आगम का भाष्य, वह भी आधुनिक शैली में। भाष्य का काम निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। मेरा एक सपना पूरा हो गया। महाप्रज्ञ निश्चित ही महाप्रज्ञ हैं। इस क्षेत्र में तो वे असाधारण मेधा के धनी बन रहे हैं।

भगवई भाष्य

• ११ जुलाई १९८७। आज का दिन बहुत शुभ है। शुभ दिन में किसी विशेष कार्य का प्रारंभ किया जाए, इस चिंतन के साथ 'भगवती सूत्र के टिप्पण लिखने का काम शुरू किया। यह काम मेरे मन की विशिष्ट भावना के अनुरूप है। युवाचार्य महाप्रज्ञ इसे सम्पन्न करने वाले हैं। विशेष स्थिति को छोड़कर यह काम अनवरत चलता रहे, ऐसा लक्ष्य है।

• १८ नवम्बर १९८७। अणुव्रत भवन पहुंचने के बाद मैंने युवाचार्य महाप्रज्ञ से कहा–'आगम का काम मन्थर गति से चल रहा है। मुझे अनुभव होता है कि हम चींटी की चाल चल रहे हैं। इस स्थिति में भगवती का काम कब और कैसे होगा? ऐसा न हो कि बेचरदासजी की तरह तथा अभयदेवसूरि की तरह एक रूप से काम न हो सके और हमारे काम में द्विरूपता आ जाए।' मेरी बात सुनकर महाप्रज्ञजी बोले–'हमारी परम्परा ऐसी नहीं है। जयाचार्य ने भगवती की जोड़ एक रूप में पूरी की थी।' युवाचार्यजी का आत्मविश्वास देखकर मैंने कहा–'उत्साह अच्छा है। अब मध्याह्न में पौने दो बजे से तीन बजे तक मेरे पास आओ और सामूहिक रूप से काम करो।' मेरा निर्देश मिलते ही उसी रूप में काम शुरू कर दिया गया।

• २३ नवम्बर १९८७। आगम संपादन के क्रम में सिज्झइ-बुज्झइ आदि पांच क्रियाओं का अनुवाद नए रूप में किया गया है। अच्छा लगा। युवाचार्य महाप्रज्ञ की प्रज्ञा पैनी है, असाधारण है, सूक्ष्म तक पहुंचती है।

कितना गंभीर, श्रमसाध्य तथा कठिन

• १८ दिसम्बर १९८७। आगम-सम्पादन का काम अपनी गति से चल रहा है। इन दिनों भगवती सूत्र के हिन्दी अनुवाद, संस्कृत छाया और समीक्षात्मक टिप्पण लिखने का क्रम चालू है। इसमें गाढ़ बन्धन का प्रसंग आया। उस प्रसंग के अनुसार संवृत अनगार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष गाढ़ बन्धन वाली सात कर्म प्रकृतियों को शिथिल बन्धन वाली कर लेता है, दीर्घकालीन स्थिति वाली प्रकृतियों को अल्पकालीन स्थिति वाला बना लेता है और बहुत प्रदेश परिमाण वाले बन्ध को अल्पप्रदेश परिमाण में बदल लेता है। यहां प्रश्न उपस्थित हुआ कि गाढ़ बन्धन किसे कहा जाता है?

वृत्तिकार ने निकाचन की अवस्था को गाढ़ बन्धन माना है। कुछ आचार्य निकाचित बन्धन में परिवर्तन का सिद्धांत स्वीकार करते हैं। किन्तु इसमें सब आचार्यों की अवधारणा एक समान नहीं है। कई आचार्यों के मतानुसार निकाचित बन्ध में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। ऐसी स्थिति में 'गाढ़' शब्द का अर्थ निकाचित करने से विसंगति पैदा हो जाती है। प्रस्तुत संदर्भ में भगवती, स्थानांग आदि अनेक आगमों के पाठ का अवलोकन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गाढ़ शब्द का अर्थ बद्ध, पुष्ट और निधत्त है। इस अर्थ को स्वीकार करने से निकाचित बन्धन की बात अपने आप छूट जाती है। एक 'गाढ़' शब्द की अर्थ मीमांसा में एक घंटे का समय लगा। इस आधार पर समझा जा सकता है कि आगम कार्य कितना गंभीर, श्रमसाध्य तथा कठिन है। हम अपना सौभाग्य मानते हैं कि इस कार्य के माध्यम से हमें जिनशासन की सेवा करने का अवसर मिला।

"महाप्रज्ञजी ने आयारो भाष्य पूरा कर लिया। बहुत बड़ी बात हुई है। संस्कृत भाषा में आगम का भाष्य, वह भी आधुनिक शैली में। भाष्य का काम निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। मेरा एक सपना पूरा हो गया। महाप्रज्ञ निश्चित ही महाप्रज्ञ हैं। इस क्षेत्र में तो वे असाधारण मेधा के धनी बन रहे हैं।"

• ६ फरवरी १९८९, लाडनूं। प्रवचन के समय महोत्सव के साप्ताहिक कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। प्रायः सभी साधु-साध्वियों की उपस्थिति अनिवार्य कर दी गई। प्रथम दिन 'आगम अनुसन्धान' विषय पर विशेष प्रवचन हुआ। युवाचार्यजी ने हमारे सान्निध्य में चल रहे आगम कार्य की विस्तार से जानकारी दी।

• ३० दिसम्बर १९८९। मध्याह्न में व्यवहार सूत्र का वाचन चलता था, वह सम्पन्न हो गया। अब फुटकर प्रकरण चल रहे हैं। आज आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व के बारे में चिन्तन चला। डॉ. सत्यरंजन बनर्जी (कलकत्ता) के सान्निध्य में आगमकोश का निर्माण होने वाला है। उसका स्वरूप क्या हो? इस बिन्दु पर दो दिन से चिन्तन चल रहा है। प्रायः निर्णय हो चुका है। पारिभाषिक शब्दकोश बनेगा, जो नया होगा। इससे पहले जो काम हुआ था, उसे एक बार छोड़ दिया गया है।

• ३० मार्च १९९२। आगम साहित्य में भगवती का भाष्य चालू है। काम की गति मंथर है। मैं चाहता हूं कि उसमें प्रगति हो। क्योंकि आगम का काम ऐसा अन्यत्र हो, संभव नहीं लगता। अंतर्दृष्टि के बिना यह संभव नहीं है। हमारे यहां इनके बाद भी चलता रहे, ऐसा प्रयत्न है। साफल्यं लभे।

आगम स्वाध्याय का उपक्रम

• २३ अगस्त १९६५। नई दिल्ली। मध्याह्न में हमने आचार्य कुन्दकुन्द विरचित 'समयसार' का सामूहिक स्वाध्याय प्रारम्भ किया। निश्चय नय पर अवलम्बित 'समयसार' बहुत गंभीर ग्रंथ है। उसकी टीका भी गंभीर है। पाठ का वाचन मुनि नथमलजी ने किया।

• ६ जून १९६६। सरदारशहर। मेरी आस्था के अनेक केन्द्र हैं। उनमें एक पुष्ट केन्द्र है जैन आगम। जैसे-जैसे आगमों की गहराई में उतरने का अवसर मिल रहा है, वैसे-वैसे आस्था घनीभूत होती जा रही है। जैन-आगमों में आचारांग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विदेशी विद्वानों का अभिमत है कि भाषा और शैली की दृष्टि से आचारांग सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध सबसे प्राचीन है। इस सूत्र का अनेक बार पारायण किया और परिषद में भी वाचन किया। जितनी बार इसमें अवगाहन किया, कुछ-न-कुछ नया तत्त्व अधिगत हुआ। मैं उसका गंभीर अध्ययन करना चाहता था और साधु-साध्वियों को भी उसकी गहराई तक पहुंचाना चाहता था। मैंने मुनि नथमलजी को अपने चिन्तन की अवगति दी। ठोस साहित्य के पाठक और लेखक साधु-साध्वियों की संख्या में वृद्धि के लिए विशेष उपक्रम चलाने की अपेक्षा उन्होंने भी स्वीकार की। गीता का पाठ पूरा हो चुका था। उस समय आचारांग सूत्र का वाचन करने की बात निर्णीत हो गई। इस निर्णय के अनुसार ६ जून १९६६ को स्वाध्याय का नया प्रयोग शुरू किया। प्रथम बार में पांच साधु और छह साध्वियों को उसमें संभागी बनाया गया–

साधु–मुनि नथमलजी, मुनि मधुकर, मुनि श्रीचंद, मुनि दुलहराज, मुनि रूपचंद।

साध्वियां–साध्वी कानकुमारी (सरदारशहर), साध्वी संघमित्रा, साध्वी जतनकुमारी (सरदारशहर), साध्वी मंजुला, साध्वी यशोधरा, साध्वी कनकप्रभा।

आचारांग का अध्ययन करने वाले साधु-साध्वियों को मेरा सान्निध्य सहज रूप में उपलब्ध रहता है। अध्ययन मूल पाठ के आधार पर चलता है। पाठ की व्याख्या विस्तार से की जाती है। आगम-अध्ययन में चूर्णि, वृत्ति आदि व्याख्या-ग्रंथों की भी उपयोगिता है, पर आचारांग के सामूहिक अध्ययन में मैंने विशेष निर्देश दिया कि केवल मूल पाठ के आधार पर अर्थ की अनुप्रेक्षा की जाए इससे चिंतन में नई स्फुरणा को अवकाश रहता है। यत्र-तत्र अध्ययनशील साधु-साध्वियों की जिज्ञासाओं और तर्कों से अध्ययन में

गंभीरता आ जाती है। सूत्र का वाचन और व्याख्या मुनि नथमलजी करते हैं। शेष सब जागरूक श्रोता की भूमिका निभाते हैं। आह्लाद और विकास–दोनों दृष्टियों से यह उपक्रम उपयोगी है।

● १० जून १९६६, सरदारशहर। प्रातः आचारांग का पाठ चल रहा था। अच्छा आध्यात्मिक प्रकरण चला। सबको प्रशिक्षण मिला। उस प्रसंग में मुनि नथमलजी ने अपने कुछ असाधारण अनुभव और सत्य को पाने की गहरी निष्ठामूलक बातें सुनाईं। प्रसन्नता हुई। मैंने उसी समय उनको निकाय-सचिव अवस्था तक समुच्चय के कार्य और भार से मुक्त कर दिया। वैसा करना मुझे सर्वथा उपयुक्त लगा। बिना किसी उपचार के सहजभाव से काम हो गया।

● अगस्त १९६६, बीदासर। आचारांग का स्वाध्याय बहुत रोचक ढंग से चल रहा है। सूत्रों का ऐसा स्वाध्याय दीर्घकाल तक चलता रहे तो कई व्यक्तियों का जीवन रूपान्तरित हो सकता है। आचारांग अध्यात्म दृष्टि से जैनत्व का प्रतिनिधि सूत्र है। इतनी गहरी अनुभूतियां और दृष्टियां इसमें भरी पड़ी हैं, ऐसी मुझे भी कल्पना नहीं थी। मुनि नथमलजी की विचारशक्ति बहुत पैनी है। वे जिस तरह व्याख्या कर रहे हैं, विरल है। किसी रोचक आख्यान से कम रुचिकर नहीं लगती। प्रभात का स्वाध्याय और तीन से पांच बजे तक भगवती का अनुसंधान–ये दोनों विषय मेरे लिए विशेष रुचिकर और आह्लाददायक हैं।

● ८ जनवरी १९६७। आगम-साहित्य का स्वाध्याय और ठोस अध्ययन मेरी रुचि का विषय है। गुरुकुलवास में जब भी समय मिलता है, आगम-स्वाध्याय का क्रम चलता रहता है। बहिर्विहारी साधु-साध्वियों को उसमें सहभागी बनने का मौका नहीं मिल पाता। उनकी ओर से प्रार्थना आई कि महोत्सव के अवसर पर आगम का एक विशेष अध्ययन चलना चाहिए। प्रार्थना समयोचित थी। उसे स्वीकार कर सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध का स्वाध्याय प्रारंभ किया। लगभग सौ-सवा सौ साधु-साध्वियों के बीच आगम-वाचना का वह नया ही प्रयोग था। वाचन करने का जिम्मा मुनि नथमलजी पर है। बहुत सरस प्रसंग और सारपूर्ण विवेचन चल रहा है। उनकी प्रतिभा अच्छी उपयोगी सिद्ध हो रही है।

आगम-स्वाध्याय के क्रम में एक पाठ आया–'एए गंथे विउक्कम्म'। टीकाकार ने ग्रन्थ का अर्थ शास्त्र किया है। हमारे स्वाध्याय में यह बात स्पष्ट हुई कि प्रस्तुत सन्दर्भ में ग्रन्थ शब्द का प्रयोग आरम्भ-परिग्रह रूप ग्रन्थि के अर्थ में होना चाहिए।

एक दूसरा प्रसंग भूत या महाभूत का है। उसका अर्थ भौतिकता या भूतवाद किया जाता है। हमारे सामने एक नया दृष्टिकोण आया। उसके अनुसार भूत का अर्थ है–तत्त्व। पांच महान् तत्त्वों को महाभूत कहते हैं। मूलतः इसी अर्थ में भूत शब्द का प्रयोग हुआ था। बाद में वह जड़ शब्द का पर्याय बन गया। क्योंकि पांचों भूत जड़ हैं। इस सन्दर्भ में यह स्वीकार किया जा सकता है कि भूत शब्द का अपकर्ष होने के कारण वह भूतवाद अर्थात् जड़वाद के रूप में प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार हमारी आगम-वाचना में साधु-साध्वियों को नया अर्थबोध मिल रहा है।

● १ जून १९८०, लाडनूं। मेरे सान्निध्य में साधु-साध्वियों की उपस्थिति में युवाचार्य महाप्रज्ञ निशीथ चूर्णि के ग्यारहवें उद्देशक का वाचन करते हैं।

सपना पचास वर्ष पूर्व का

● २० मई १९८५, गंगापुर। लगभग पचास वर्ष पहले वि. सं. १९९२ में पूज्य गुरुदेव कालूगणी का चातुर्मास उदयपुर था। मैं गुरुदेव की सेवा में था। उस समय मैंने एक स्वप्न संजोया था कि गुरुदेव की

"आचारांग अध्यात्म दृष्टि से जैनत्व का प्रतिनिधि सूत्र है। इतनी गहरी अनुभूतियां और दृष्टियां इसमें भरी पड़ी हैं, ऐसी मुझे भी कल्पना नहीं थी। मुनि नथमलजी की विचारशक्ति बहुत पैनी है। वे जिस तरह व्याख्या कर रहे हैं, विरल है। किसी रोचक आख्यान से कम रुचिकर नहीं लगती। प्रभात का स्वाध्याय और तीन से पांच बजे तक भगवती का अनुसंधान–ये दोनों विषय मेरे लिए विशेष रुचिकर और आह्लाददायक हैं।"

सन्निधि में भगवती सूत्र का वाचन हो। प्रबल इच्छा होने पर भी मेरा वह सपना साकार नहीं हो पाया। इस बार गंगापुर में अक्षय तृतीया के दिन एक विशेष उद्देश्य के साथ सामूहिक रूप में भगवती सूत्र का वाचन शुरू हुआ। उसमें लगभग पचीस साधु-साध्वियों और समणियों की संभागिता है। एक नए तरीके से वाचन चलता है। एक गंभीर सूत्र के स्वाध्याय में भी उपन्यास पढ़ने या काव्य पाठ सुनने जैसी रसानुभूति हो रही है। भीलवाड़ा पहुंचने के बाद भगवती का वाचन स्थगित हो गया। क्योंकि युवाचार्य महाप्रज्ञ शिविर की दृष्टि से ग्राम भारती में हैं।

• २३ जुलाई १९८५, आमेट। भगवती सूत्र के स्वाध्याय में स्कन्दक संन्यासी का प्रकरण चला। महावीर-दर्शन से प्रभावित होकर स्कन्दक अनगार बन गया। इस प्रसंग में वहां अनगार का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, वह बिल्कुल सीधा, सरल और सहज गम्य है। एक जैन मुनि का रूप वैसा ही होना चाहिए, पर आज वह विस्मृत-सा हो गया है। मुझे वह वर्णन बहुत अच्छा और हृदयग्राही लगा। वाचन में कुछ ही साधु-साध्वियों की संभागिता है। मैंने सब साधु-साध्वियों की गोष्ठी में उसे प्रस्तुत करने की भावना व्यक्त की। मेरी बात सुनकर युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'एक बार पढ़ने या सुनने में वह वर्णन अच्छा तो लगेगा, पर संस्कारगत नहीं होगा। बार-बार पाठ करने से ही वह संस्कारगत हो पाता है, इसीलिए पाठ करने की पद्धति चली है।

मार्मिक अर्थ : वैज्ञानिक दृष्टान्त

• १२ नवम्बर १९८५, आमेट। वीर निर्वाण दिवस का प्रातः चार बजे सामूहिक ध्यान नए ढंग से किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने करवाया। ध्यान के बाद कुछ समय स्वाध्याय का क्रम चलता है। आज स्वाध्याय का विषय था–'भावसच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? भावसच्चेणं भावविसोही जणयइ'–इस आर्षवाणी पर विमर्श हुआ। एक नया अर्थ सामने आया। भाव सत्य का अर्थ है क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव। भाव विशोधि से औदयिक भाव का विवर्जन किया जा सकता है। महाप्रज्ञजी ने बहुत मार्मिक अर्थ प्रस्तुत किया।

रात्रि में ध्यान के बाद 'करणसच्चे' शब्द पर स्वाध्याय चला। उसकी नई व्याख्या की गई, जो सबको अच्छी लगी। विजातीय तत्त्वों को निकालने के लिए एक बहुत अच्छा वैज्ञानिक दृष्टान्त सामने आया। वह दृष्टान्त इस रूप में प्रस्तुत किया गया–अन्तरिक्ष यान में जिस धातु का उपयोग होता है, वह बिल्कुल शुद्ध होनी चाहिए। इसके लिए एक शुद्ध निखालिस धातु का डंडा उस पर रखा जाता है। वह डंडा धातु पर घूमता है। उससे उस धातु के विजातीय तत्त्व अपने आप निकलते रहते हैं।

अध्यापन आयारो भाष्य का

• २६ फरवरी १९८७ से हमारे सान्निध्य में स्वाध्याय योग का सामूहिक उपक्रम प्रारम्भ हो गया। यात्रा में लम्बे विहार के बावजूद भी यह क्रम निरंतर चल रहा है। युवाचार्य महाप्रज्ञ उत्तराध्ययन सूत्र की विश्लेषणात्मक व्याख्या कर रहे हैं। साधु-साध्वियों को अध्ययन की नई-नई दृष्टियां उपलब्ध हो रही हैं। प्रतिपादित विषय में गहराई में पैठने के लिए लेखक साधु-साध्वियों से निबंध भी लिखवाए जा रहे हैं। इस बार उत्तराध्ययन के प्रथम अध्ययन को केन्द्र में रखकर तीस लघु निबन्ध पढ़े गए।

• २ दिसम्बर १९९१, मध्याह्न में हमारे सान्निध्य में समणियां आयारो का अध्ययन कर रही हैं। आज से आयारो भाष्य पढ़ाना शुरू कर दिया है। इससे दो लाभ की संभावना है। पहला लाभ है सुगमता से

अर्थ का बोध। दूसरा लाभ है भाष्य का निरीक्षण तथा गहरी समालोचना। इसमें कहीं कोई कमी न रह जाए, इसलिए सूक्ष्मता से पर्यवेक्षण जरूरी है।

● ५ दिसम्बर १९९१ पाठ का उच्चारण, अर्थ, व्याकरण, शब्दकोश, विषयवस्तु आदि विभिन्न बिन्दुओं के आधार पर व्यापक अध्ययन चलता है। भाष्य बहुत अच्छा बना है। एक बार पढ़ना बहुत जरूरी है। पढ़नेवाली साध्वियां व समणियां जिज्ञासुभाव से पढ़ रही हैं।

आगम-अध्यापन का अभिक्रम

● १९ नवम्बर १९९३, राजलदेसर, गुरुवार। मिगसर कृष्णा दशमी। भगवान महावीर का दीक्षा दिवस। आज मध्याह्न में डेढ़ बजे तीन साधुओं, तीन साध्वियों और तीन समणियों को आगम के विशेष अध्ययन में नियुक्त किया है।

आगम साहित्य में सबसे पहले आचारांग सूत्र का अध्ययन प्रारंभ किया। उसके प्रथम सूत्र–सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं–इहमेगेसिं नो सण्णा भवइ, तं जहा.....का उच्चारण मैंने करवाया और कहा–'ये युवाचार्यजी नई-नई कल्पनाएं करते हैं। इनको उपाध्याय का काम करना है।' विद्यार्थी साधु-साध्वियों ने तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक विधिवत् वन्दना की।

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा–'बहुत वर्षों से एक कल्पना थी। भिक्षु चेतना वर्ष में यह शुभारंभ हो रहा है।' मैंने इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा–'श्रुतसम्पन्न और शीलसम्पन्न व्यक्ति-निर्माण का यह शुभारम्भ है। हमारे विद्यार्थी श्रुतसम्पन्न और शीलसम्पन्न बनें, पर कहीं भी अहंकार न आए। स्वाभिमान और आत्मविश्वास रहे, परन्तु अभिमान न हो। आशा है, इस उपक्रम से एक बड़ी कमी की पूर्ति हो जाएगी। महत्त्वाकांक्षी योजना है। पंचवर्षीय योजना है। सन् १९९३ से १९९७ तक की यह योजना है। मन में अत्यन्त हर्ष है।'

● २१ अगस्त १९९५, लाडनूं। अभी विशेषावश्यक भाष्य का वाचन चालू किया है। आकर ग्रन्थ है। आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण का ग्रन्थ है। प्राकृत भाषा में है। स्वोपज्ञ संस्कृत टीका भी है। महाप्रज्ञजी पढ़ते हैं। काफी साधु-साध्वियां सुनते हैं। अच्छा रस आता है। बहुत दिनों से ऐसे ग्रन्थों का स्वाध्याय करने की इच्छा थी। महाश्रमणी कनकप्रभाजी भी चाहती थी। अच्छा हुआ। लगभग सौ पद्य पढ़ लिए गए हैं। समय कम लगा पाते हैं। अन्य आवश्यक काम भी करने होते हैं। महाप्रज्ञ का प्रज्ञा-बल जागृत है। क्षयोपशम तीव्र-से-तीव्र हो रहा है। अच्छा है। शासन की शोभा है।

● १३ दिसम्बर १९९५। आज से प्रातः पांच बजकर चालीस मिनट पर एक बृहद् क्लास शुरू हो गई। महाप्रज्ञजी प्रशिक्षण दे रहे हैं। **सज्झायसज्झाणरयस्स ताइणो**–इस पद्य की विवेचना कर रहे हैं। हृदयग्राही और शिक्षाप्रद गोष्ठियां चालू हो गई हैं।

● २७ दिसम्बर १९९५, लाडनूं। दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में दशवैकालिक सूत्र की एक गाथा को आधार बनाकर प्रशिक्षण या परिचर्चा का जो उपक्रम शुरू हुआ, वह अठारह दिनों तक चला। महाप्रज्ञजी ने विविध दृष्टिकोणों से उसकी व्याख्या प्रस्तुत की। वर्तमान में 'मनोनुशासनम्' को केन्द्र में रखकर चिन्तन-मन्थन चल रहा है।

"आज स्वाध्याय का विषय था–'भावसच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? भावसच्चेणं भावविसोही जणयइ'–इस आर्षवाणी पर विमर्श हुआ। एक नया अर्थ सामने आया। भाव सत्य का अर्थ है क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव। भाव विशोधि से औदयिक भाव का विवर्जन किया जा सकता है। महाप्रज्ञजी ने बहुत मार्मिक अर्थ प्रस्तुत किया।"

आगम साहित्य : समर्पण और लोकार्पण

३० मई १९६१ का प्रभात। जोधपुर शहर में आगमन। स्वागत का कार्यक्रम। उस समय मैंने आगम संपादन की चर्चा की और आगम-कार्य उपहृत किया। गुरुदेव ने उसका संक्षिप्त उल्लेख किया है–

● 'मुनि नथमलजी ने स्थानांग सूत्र का हिन्दी अनुवाद और तुलनात्मक टिप्पण आदि आगम कार्य भेंट किया।'

● २६ जनवरी १९६८। 'जैन दर्शन एवं संस्कृति परिषद' का कार्यक्रम त्रिदिवसीय था। उसके मध्य दिन 'श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा' द्वारा प्रकाशित आगम ग्रन्थों के लोकार्पण का आयोजन था। उस प्रसंग में अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के सन्देश प्राप्त हुए। महासभा के मंत्री श्रीचंदजी रामपुरिया ने कुछ सन्देश पढ़कर सुनाए। उनमें मुनि पुण्यविजयजी, उपाध्याय अमरमुनिजी, श्री कस्तूरभाई-लालभाई आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराष्ट्र विधानसभा के अध्यक्ष श्री पागे ने स्वागत-भाषण किया।

केन्द्रीय परिवहन एवं जहाजरानी मंत्री डॉ. वी. के. आर. वी. राव ने एक साथ नौ आगम ग्रन्थों का लोकार्पण करते हुए कहा–'पिछले एक हजार वर्षों के इतिहास में ऐसा कार्य कहीं नहीं हुआ, यह मेरा विश्वास है।' डॉ. राव ने यह भी कहा कि आचार्य तुलसी पदयात्रा, प्रवचन, जनसम्पर्क, अध्ययन, अध्यापन, साहित्य सृजन आदि अनेक कार्य एक साथ कर रहे हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि तीर्थंकरों की तरह इनकी भी देवता सेवा करते होंगे।

मूर्तिपूजक सम्प्रदाय की प्रमुख साध्वी मृगावतीजी, डॉ. ए. एन. उपाध्ये, आगम ग्रन्थों के सम्पादक और विवेचक मुनि नथमलजी आदि के वक्तव्य आगम साहित्य के महत्त्व को उजागर करने वाले थे। इस तरह के कार्यक्रमों को अपूर्व या अभूतपूर्व कहा जा सकता है। हमारे साहित्य और कार्यक्रमों के बारे में विद्वानों ने जो राय प्रकट की, वह आश्चर्यजनक प्रतीत हुई। श्री पागेजी, डॉ. राव, श्री धर्मवीर भारती, श्री ए. एन. उपाध्ये आदि ने जो उद्‌गार व्यक्त किए, वे बड़े मार्मिक व रुचिवर्धक हैं। देश के प्रमुख व्यक्तियों ने जो विचार व्यक्त किए, वे आगम-साहित्य के महत्त्व को उजागर करने वाले हैं। उन्हें सुनकर ऐसा लगा कि हमारे ऊपर और अधिक गुरुतर भार आ गया। आगमों के आधुनिकतम सम्पादन और सुन्दर प्रकाशन से धर्मशासन की बहुत प्रभावना हुई। उससे पूरे समाज का हृदय उत्फुल्ल हो गया। आगम-साहित्य पर हुई चर्चा ने वहां उपस्थित कुछ व्यक्तियों में दायित्व-बोध जगाया। उसी समय सौ व्यक्ति ग्राहक बने। उन्होंने नौ-नौ पुस्तकों के एक सौ सेट खरीदकर विद्वानों को भेंट करने का संकल्प व्यक्त किया।

● १० नवम्बर १९७४। आगम ग्रन्थ तथा अन्य साहित्य के लोकार्पण का एक भव्य आयोजन था। भारत के उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती उस कार्यक्रम में विशेष रूप से आमंत्रित थे। उनके साथ श्री कमलापति त्रिपाठी भी आए। भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित साहित्य की सूची इस प्रकार है–

- अंगसुत्ताणि भाग-१
- अंगसुत्ताणि भाग-२
- अंगसुत्ताणि भाग-३
- आयारो (हिन्दी अनुवाद और टिप्पण)
- भगवान महावीर
- श्रमण महावीर

- दसवेआलियं (हिन्दी अनुवाद और टिप्पण)
- भरतबाहुबली (महाकाव्य)
- दशवैकालिक और उत्तराध्ययन (हिन्दी)

उपर्युक्त सभी ग्रंथ बहुत सुन्दर रूप में प्रकाशित हुए हैं। सन्तों ने ग्रन्थों के सम्पादन में बहुत प्रयास किया।

महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय ने साहित्य का लोकार्पण करके आगम साहित्य के बारे में बोलते हुए कहा–'एक महान तत्त्ववेत्ता एवं तपस्वी महापुरुष की वाणी को जन-जन तक पहुंचाने के विचार से आगम ग्रंथों के प्रकाशन का जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है, उसका श्रेय आचार्य तुलसी और मुनि नथमलजी को है। उनके अनथक परिश्रम और अनुसंधानिक प्रतिभा के फलस्वरूप इतना बड़ा कार्य संपन्न हुआ है। इस सफलता के लिए मैं आप सबको बधाई देता हूं। इस ऐतिहासिक कार्य में आपने मुझे भी भागीदार बनाया, उसके लिए मैं हृदय से आभारी हूं।'

'आगम ग्रंथ विमोचन समारोह में मुनि नथमलजी, भारत के जहाजरानी मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी, नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन, श्रीचंदजी रामपुरिया आदि अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के वक्तव्य हुए।

श्रुतोत्सव

• १४ दिसम्बर १९८७। दिल्ली विश्वविद्यालय के विशेष सभागार में श्रुतोत्सव का एक विशिष्ट कार्यक्रम समायोजित था। हमारे सान्निध्य में सम्पादित और जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित बत्तीस जैन आगम दिल्ली विश्वविद्यालय को भेंट करने के उद्देश्य से प्रस्तुत आयोजन रखा गया। विश्वविद्यालय के कार्यवाहक उपकुलपति डॉ. गंगराडे, यूजीसी के उपाध्यक्ष श्री सच्चिदान्द मूर्ति और नेहरू विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. डी.एस. कोठारी विशेष रूप से उपस्थित थे।

आगम-समर्पण कार्यक्रम में मैंने जो वक्तव्य दिया, उसका सार-संक्षेप इस प्रकार है–'ब्राह्मण धर्म में वेदों का और बौद्ध धर्म में पिटकों को जो स्थान है, वही स्थान जैन धर्म में आगमों का है। आगम की मुख्य तीन धाराएं हैं–सूत्र, अर्थ और तदुभय। जैनागम भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति की अनमोल धरोहर है। ये प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। आज से बत्तीस वर्ष पूर्व मैं महाराष्ट्र की यात्रा पर था। एक दिन हम मंचर गांव में पहुंचे। वहां सन्ध्या के समय मैंने एक पत्रिका में पढ़ा कि बौद्ध पिटकों के पुनः सम्पादन की तैयारी हो रही है। उसी समय मेरे मस्तिष्क में एक विचार कौंधा कि क्या हम जैनागमों को सम्पादित नहीं कर सकते?'

आगम सम्पादन के विचार को आगे बढ़ाने के लिए मैंने मुनि नथमलजी को बुलाया और इस विषय में उनकी राय चाही। वे तत्काल बोले–'आपका आशीर्वाद हो तो फिर हमारे लिए कोई कार्य असंभव नहीं है।' उसी दिन से हम इस कार्य की प्रक्रिया में जुट गए। लगातार बत्तीस वर्ष तक हमने जो काम किया, उसका सुफल सबके सामने है।

> "आचार्य तुलसी पदयात्रा, प्रवचन, जनसम्पर्क, अध्ययन, अध्यापन, साहित्य सृजन आदि अनेक कार्य एक साथ कर रहे हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि तीर्थंकरों की तरह इनकी भी देवता सेवा करते होंगे।"

फलश्रुति अप्रमत्त साधना की

• ६ अक्टूबर १९९६, लाडनूं। आज तीन आगम ग्रन्थों–अनुयोगद्वार, व्यवहारभाष्य और श्री भिक्षु आगम विषय कोश का लोकार्पण हुआ। राजस्थान पत्रिका के संस्थापक-सम्पादक श्री कर्पूरचन्द 'कुलिश'

ने तीनों ग्रन्थ हमें समर्पित किए। जैन विश्व भारती के कुलपति मोहनसिंहजी भंडारी ने कहा–'इस बहुमूल्य साहित्य के प्रकाशन से हमारे विश्वविद्यालय का महत्त्व बढ़ा है। आनेवाली शताब्दियों में यह साहित्य महत्त्वपूर्ण योगदान के रूप में स्वीकार किया जाएगा।'

महाप्रज्ञजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'मनुष्य का मस्तिष्क समुद्र जैसा है। उसमें विचारों की अनेक तरंगें उठती हैं। उनमें एक तरंग है–अल्फा तरंग। लगता है कि अभी सबमें अल्फा तरंगें बह रही हैं। चारों ओर आनन्द का वातावरण है। विकास के तीन घटक हैं–आशा, पुरुषार्थ और जागरूकता। भगवान महावीर ने अप्रमाद का सूत्र दिया है। इस महान सूत्र ने ही तेरापंथ संघ को विकास की ऊंचाई तक पहुंचाया है। आज का साहित्य इसी अप्रमत्त साधना की फलश्रुति है।'

मैंने अपने प्रवचन में कहा–'आज तीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हमारे सामने आए हैं। आगम-सम्पादन कार्य में हमारा (मेरा और महाप्रज्ञजी), महाश्रमण-महाश्रमणी का और कुछ सन्तों का योगदान रहता ही है। विशेष बात यह है कि इन ग्रन्थों के सम्पादन में हमारी छोटी-छोटी साध्वियों और समणियों ने श्रमपूर्वक काम किया है। मुझे इसकी अत्यधिक प्रसन्नता है।

प्राकृत-भाषा का अध्ययन

● ४ नवम्बर १९९६, लाडनूं। वर्तमान युग हिन्दी और अंग्रेजी का है। पर हमारा अभिमत यह है कि संस्कृत और प्राकृत भाषा में जो अमूल्य साहित्य है, उससे परिचित रहने के लिए इन भाषाओं का ज्ञान भी नितान्त आवश्यक है। इसी चिन्तन के आधार पर हमने योगक्षेम वर्ष में सलक्ष्य प्राकृत कार्यशाला का आयोजन किया। उससे साधु-साध्वियों में कुछ नई स्फुरणा भी हुई। इसी शृंखला में सन् १९९६ के चातुर्मास में भी चिन्तन हुआ और इस विषय में एक गोष्ठी आयोजित की गई। उस गोष्ठी में मैंने कहा–'प्राकृत भाषा का अध्ययन बहुत आवश्यक है। यदि उसका अभाव रहता है तो जैन दर्शन और जैन संस्कृति को समझना मुश्किल है। हमारे आगम प्राकृत भाषा में हैं। उन्हें समझने के लिए भी प्राकृत का अध्ययन जरूरी है।'

साधु-साध्वियों की अच्छी उपस्थिति में मैंने महाप्रज्ञजी को निर्देश दिया कि वे अध्ययन की प्रक्रिया प्रस्तुत करें। उन्होंने अध्ययन-प्रक्रिया प्रस्तुत करते हुए कहा–'शुद्ध उच्चारण, पद-संख्या, पद का अर्थ और सामान्य व्याकरण की जानकारी के साथ अध्ययन करने से भाषा का सम्यक अवबोध हो जाता है। इस क्रम से यदि व्याकरण न जानने वाला व्यक्ति भी पढ़ेगा तो वह प्राकृत भाषा का अभ्यासी बन जाएगा।'

सितम्बर महीने के अन्तिम सप्ताह हुई इस चर्चा की क्रियान्विति भी उसी सप्ताह में हो गई। उपर्युक्त निर्धारित क्रम से साधु-साध्वियों एव समणियों को प्राकृत भाषा का अध्ययन शुरू करा दिया। अध्ययन का माध्यम दशवैकालिक सूत्र है। आज ४ नवम्बर १९९६, सोमवार तक अध्ययन का क्रम व्यवस्थित रूप से चालू है। दशवैकालिक के प्रथम दो अध्ययन मूल पाठ, संहिता, पद-गणना, पदार्थ और व्याकरण-बोध के साथ चले। आज से उत्तराध्ययन सूत्र का चौतीसवां लेश्या अध्ययन चालू किया है। अध्ययन नहीं, अध्यापन हो रहा है।

१८ दिसम्बर १९९६, बुधवार। लाडनूं। प्राकृत का पाठ पुनः शुरू कर दिया है। उत्तराध्ययन का चौतीसवां अध्ययन 'लेसज्झयणं' चल रहा है। प्राकृत पढ़ाने का क्रम भी प्रारंभ करना है। प्राकृत के कम-

से-कम सौ साधु-साध्वियां और समणियां विद्यार्थी बनें, यह आवश्यक है। प्रस्तुत संख्या प्रारंभिक रूप से सोची गई है। श्रावक-श्राविकाएं भी इस क्रम के साथ जुड़ जाएं तो अच्छा रहेगा।

महाप्रज्ञजी का कमाल

श्रीडूंगरगढ़ में मर्यादा महोत्सव, पश्चिम रात्रि का समय, साधुओं की परिषद। गुरुदेव ने निर्देश दिया– आगम के पद्यों की व्याख्या करो। मैंने उत्तराध्ययन आदि आगमों के कुछ पद्यों का गुरुदेव की सन्निधि में विवेचन किया। उसे सुनकर आगम अध्येता पुराने-पुराने साधुओं को नया-नया लगा और सुखद अनुभूति हुई। गुरुदेव ने प्रस्तुत आलेख में उसकी चर्चा की है–

● १८ दिसम्बर १९९६। जैनागमों के प्रति अभिरुचि बढ़ रही है। बढ़ गई है। इसमें कारणभूत महाप्रज्ञजी का कमाल है। ऐसे-ऐसे रहस्योद्घाटन किए हैं जिनको सुन, पढ़ कर हर एक के मन में अभिरुचि पैदा हो जाती है।

वास्तव में ही आगम सम्पादन का ऐसा काम हमारे हाथ में आया है जिसकी कोई शानी नहीं। यह आगम की महान सेवा है। जिनशासन की बड़ी सेवा है। जनता की गहरी सेवा है। यह आगम कार्य हमारे संघ में चलता रहे, ऐसा सुखद विश्वास है।

कल रात पुरानी चर्चा चलाई। हमारे पुराने साधु जब नथमलजी के मुंह से आगम पद्य सुनते, मुग्ध हो जाते। क्या क्या बताऊं? अहोभाग्य है हमारे हाथ में आगम का कार्य आया।

“मनुष्य का मस्तिष्क समुद्र जैसा है। उसमें विचारों की अनेक तरंगें उठती हैं। उनमें एक तरंग है–अल्फा तरंग। लगता है कि अभी सबमें अल्फा तरंगें बह रही हैं। चारों ओर आनन्द का वातावरण है। विकास के तीन घटक हैं–आशा, पुरुषार्थ और जागरूकता। भगवान महावीर ने अप्रमाद का सूत्र दिया है। इस महान सूत्र ने ही तेरापंथ संघ को विकास की ऊंचाई तक पहुंचाया है। आज का साहित्य इसी अप्रमत्त साधना की फलश्रुति है।”

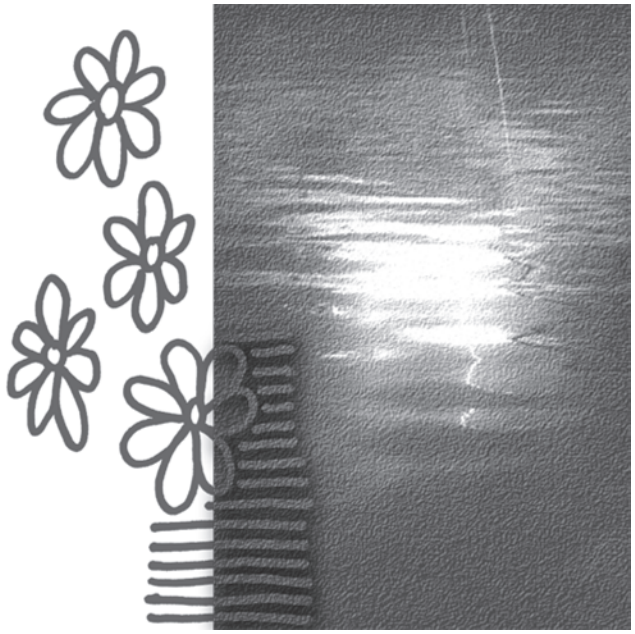

५

वक्तृत्व

गुरुदेव की यात्रा में हमारा व्यापक सम्पर्क होता था। दर्शन, तत्त्व चिन्तन, साहित्य, कला, साधना, अध्यात्म, नैतिक मूल्य, जीवन मूल्य आदि अनेक विषयों पर चर्चा और वक्तव्य होते थे। गुरुदेव ने मेरे विकास के लिए अनेक क्षेत्र खोले। मुझे अनेक अवसर दिए। मैं उनका मूल्यांकन करता गया और विकास की यात्रा आगे बढ़ती गई। विकास का एक माध्यम बना–उच्चस्तरीय संगोष्ठियों, सेमिनारों और प्रबुद्धजनों के बीच वक्तव्य। गुरुदेव ने अपनी डायरी में समय-समय पर होने वाले वक्तव्यों और उसके प्रभावों का उल्लेख किया है–

संदर्भ अणुव्रत का

● वि. संवत् २००८, जगराओ। वैशाख कृष्णा अमावस्या को मध्याह्न में तिल मंडी में अणुव्रती संघ के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन था। अणुव्रती कार्यकर्ताओं, अणुव्रती भाई-बहनों, पंजाब के पत्रकारों, राज्याधिकारियों, व्यापारियों और प्रबुद्धजनों में अणुव्रत को लेकर सकारात्मक चिन्तन था। आम जनता में अणुव्रत को समझने की उत्सुकता थी। मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी, जयचन्दलालजी दफ्तरी आदि के वक्तव्यों से श्रोताओं को बहुत कुछ जानने को मिला।

• ३० अप्रैल १९५० का मध्याह्न। वैशाख शुक्ला त्रयोदशी। रविवार का दिन। एक बजे का समय। चांदनी चौक का टाउन हॉल। उसके पीछेवाले मैदान में निर्मित भव्य पण्डाल। एक ओर देशभर से समागत अणुव्रती भाई, दूसरी ओर अणुव्रती बहनें। देश के प्रसिद्ध साहित्यकारों और पत्रकारों में श्री जैनेन्द्रकुमारजी, यशपालजी, अक्षयकुमारजी, सत्यदेव विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सभासदों में जैन-जैनेतर सभी प्रकार के लोग थे। भारतीय विद्वानों के साथ विदेशी राजदूत फिनलैण्ड दम्पती आदि भी उपस्थित थे। लगभग छह हजार लोगों की उपस्थिति में नमस्कार महामंत्र के उच्चारण से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मुनि नथमलजी ने अणुव्रती संघ की स्थापना और उसके उद्देश्य के बारे में विस्तार से जानकारी दी।

• १७ अक्टूबर से २० अक्टूबर १९५१ तक चार दिनों में प्रातः, मध्याह्न और रात्रि में कभी अंतरंग अधिवेशन और कभी खुली विचार-परिषदों के रूप में अणुव्रत को केन्द्र में रखकर चर्चाएं हुईं। मुनि नथमलजी, श्री यशपाल जैन, श्री रामकृष्ण भारती (दिल्ली), नागपुर विश्वविद्यालय के प्रो. हीरालाल जैन, सुप्रसिद्ध विचारक प्रो. कृष्णमूर्ति (मद्रास), फादर एच. विलियम्स, डॉ. खूबचन्द बघेल, पण्डित शान्तानन्दजी (के. जी. एफ.) आदि अनेक वक्ताओं ने अपने विचार रखे।

• २४ अगस्त १९५४। मुंबई में हिन्दुस्तान कल्चरल सोसायटी की ओर से जे. के. स्कूल ऑफ आर्ट्स में प्रवचन कार्यक्रम। मुनि नथमलजी ने 'मानसिक एकाग्रता में कला की उपयोगिता' विषय पर विशेष वक्तव्य दिया।

• ६ जुलाई १९५५ को श्रावण कृष्णा प्रतिपदा का दिन था। दिगम्बर परम्परा के अनुसार वीर-शासन की जयंती का दिन था। उस दिन भगवान महावीर ने प्रथम देशना दी थी, ऐसा माना जाता है। दिगम्बर समाज के कुछ प्रमुख भाई आए। उन्होंने उस कार्यक्रम में हमारे सान्निध्य के लिए अनुरोध किया। तेला होने के कारण मैं वहां नहीं गया। मुनि नथमलजी को भेजा। उनके वक्तव्य को लोगों ने पसन्द किया।

• ३ दिसम्बर १९५६। अणुव्रत संगोष्ठी का दूसरा दिन। उस दिन के वक्ता थे–मुनि नथमलजी, सुप्रसिद्ध कवि और सांसद श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', समाजवादी विचारक आचार्य कृपलानी, बम्बई की पूर्व मेयर श्रीमती सुलोचना मोदी, जीवन साहित्य के संपादक श्री यशपाल जैन और अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन। सभी वक्ताओं ने अणुव्रत के बारे में मंजे हुए विचार रखे।

• ३ मार्च १९६२। प्रातःकाल दर्शन एवं साहित्य संगोष्ठी का आयोजन। मुनि नथमलजी का अभिभाषण बहुत उच्च स्तर का था।

• ६ अक्टूबर १९६२। मध्याह्न में दो बजे अणुव्रत सेमिनार रखा गया। उसमें मुनि नथमलजी, श्री बांकेविहारी भटनागर, रामचन्द्रजी जैन एवं श्री यशपाल जैन आदि ने अपने-अपने निबन्धों का वाचन किया। मुनि नथमलजी का निबन्ध विशेष प्रभावोत्पादक रहा। निबन्ध-वाचन एवं वक्तव्यों के बाद प्रश्नोत्तर हुए तथा खुली चर्चा चली। बहुत मधुर प्रसंग रहा।

दर्शन परिषद् का आयोजन

• ३ फरवरी १९६३। दर्शन परिषद का आयोजन। चीन द्वारा भारत पर किए गए आक्रमण से उपजी हिंसक परिस्थितियों में अहिंसा को केन्द्र में रखकर की जाने वाली वह विचार-यात्रा अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण मानी गई। सेमिनार में प्रमुख रूप से तीन अभिभाषण हुए। मुनि नथमलजी ने अहिंसा के

> "गुरुदेव ने मेरे विकास के लिए अनेक क्षेत्र खोले। मुझे अनेक अवसर दिए। मैं उनका मूल्यांकन करता गया और विकास की यात्रा आगे बढ़ती गई। विकास का एक माध्यम बना–उच्चस्तरीय संगोष्ठियों, सेमिनारों और प्रबुद्धजनों के बीच वक्तव्य।"

जीवदयात्मक स्वरूप की तुलना में उसकी प्रतिरोधात्मक शक्ति के उपयोग पर विशेष बल दिया। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने शस्त्रबल की अपेक्षा सत्य को पुष्ट करने की बात कही। जबलपुर युनिवर्सिटी में दर्शन विभाग के अध्यक्ष प्रो. रजनीश ने अहिंसा और सत्य को साधने के लिए आत्मा को साधने व आत्मद्रष्टा बनने की बात कही।

न्याय और अध्यात्म

● २७ फरवरी १९६३ को बाल निकेतन में एक विशेष कार्यक्रम आयोजित था। उसका विषय था–न्याय और अध्यात्म। मुख्य वक्ता थे–'मुनि नथमलजी और भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री बी. पी. सिन्हा। मुनि नथमलजी ने न्याय और अध्यात्म का संगम करते हुए कहा–'एक बार बिड़ला मंदिर में विचार गोष्ठी चल रही थी। वहां हमने श्री सिन्हा को सुना। हमें ऐसा लगा कि इनका मस्तिष्क न्यायमूर्ति का भले ही हो, आत्मा अध्यात्म की है। अध्यात्म न्याय से आगे का तत्त्व है।'

हृदय की आवाज

● ५ अगस्त १९६३। आज रात्रिकालीन प्रवचन का विषय था–'जीवन और दर्शन'। उस विषय पर मुनि नथमलजी का विवेचनपूर्ण वक्तव्य इतना सारगर्भित और हृदयग्राही था कि श्रोताओं पर उसका विशेष प्रभाव हुआ। मैंने उनका वैसा भाषण पहले कभी नहीं सुना था। भाषण क्या था, हृदय की आवाज बोल रही थी। उनका चिंतन बड़ा गहरा बन रहा है। इस क्षेत्र में और भी अच्छा विकास करेंगे, ऐसा विश्वास है। मैं चाहता हूं कि उनके माध्यम से योग एवं अध्यात्म का अच्छा विकास हो। आशा है, श्रद्धा है, गुरुकृपा से मेरा विश्वास सफल होगा।

● २० अक्टूबर १९६३। प्रातःकाल 'अहिंसा दिवस' का विराट आयोजन था। राजस्थान के उद्योगमन्त्री चन्दनमलजी बैद, चौधरी कुंभाराम आर्य, काजी अब्दुल लतीफ, मुनि नथमलजी के वक्तव्य हुए।

शोध पत्र

● ३ नवम्बर १९६३। मध्याह्न में 'जैन दर्शन परिषद' का अन्तरंग अधिवेशन चला। उसमें कुछ शोधपत्र पढ़े गए। मुनि नथमलजी का शोध पत्र–'जैन धर्म के पूर्वज' कुछ नई अवधारणाओं के साथ प्रस्तुत हुआ। होल्कर कॉलेज इन्दौर के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष देवेन्द्रकुमारजी ने अपभ्रंश साहित्य शीर्षक से अपना शोधपत्र पढ़ा। दोनों पत्रों पर अच्छी चर्चा हुई।

● १८ अप्रैल १९६४। दरियागंज में त्रिदिवसीय 'अणुव्रत कार्यकर्ता शिविर' का शुभारम्भ हुआ। पुराने कार्यकर्ताओं के साथ कुछ नए कार्यकर्ता भी थे। सबमें उल्लेखनीय उत्साह था। शिविर के अध्यक्ष अमनजी थे। शिविर में मुनि नथमलजी, मुनि नगराजजी, मुनि सुखलाल, डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, सेठ गोविन्ददास (एम. पी.), ब्रजमोहनजी, रामचन्द्र जैन आदि के वक्तव्य हुए। चिन्तन-मनन का अच्छा क्रम चला।

● ३ मई १९६४। नई दिल्ली में आकाशवाणी भवन के ऑडिटोरियम हॉल में 'अणुव्रत-विचार-परिषद्' का विराट आयोजन था। मुनि नथमलजी ने अणुव्रत-विहार की बहुमुखी प्रवृत्तियों के बारे में चर्चा की।

● ५ मई १९६४। नई दिल्ली में सदाचार समिति की संगोष्ठी हुई। गृहमंत्री श्री गुलजारी लाल नंदा

भी उसमें उपस्थित थे। श्री गोपीनाथ 'अमन' ने 'सदाचार-समिति' के कार्यक्रम की रूपरेखा पर व्यवस्थित प्रकाश डाला। मुनि नथमलजी का वक्तव्य हुआ।

• १९ जून १९६४। कठोतिया भवन (दिल्ली) में विदाई समारोह का आयोजन। केन्द्रीय सांस्कृतिक मंत्री श्री नित्यानन्द कानूनगो, स्वराष्ट्रमंत्री श्री जयसुखलाल हाथी, अणुव्रत के सम्पादक देवेन्द्रकुमार कर्णावट, सुप्रसिद्ध विचारक जैनेन्द्रकुमार, महापौर बाबा विचित्तरसिंह, श्रीमती कमला जैन और मुनि नथमलजी ने भी उस अवसर पर भावपूर्ण विचार व्यक्त किए। मुनि नथमलजी ने कहा–'आपका गमन सद्यः पुनरागमनाय भवतु।' इस बात से दिल्ली के कार्यकर्ताओं को आश्वासन मिला।

• २६ जून १९६५। ग्रीन पार्क में एक विशेष कार्यक्रम था। उसका सम्बन्ध 'अणुव्रत-विहार' की नैतिक-शिक्षा-योजना के साथ था। मुनि नथमलजी ने अभिभावकों के लिए संयत, शान्त और मधुर जीवन जीने की आवश्यकता बताई।

• ११ जुलाई १९६५। विश्व शांति और अणु अस्त्र विषय पर दूसरी संगोष्ठी हुई। उसका समायोजन 'विट्ठल भाई पटेल हाउस' में कान्स्टीट्यूशन क्लब के नव-निर्मित भवन में हुआ। उस दिन के प्रमुख वक्ता थे भारत के पूर्व रक्षामंत्री श्री बी.के. कृष्णमेनन। मुनि नथमलजी, श्री बसंतराव ओक, श्री गोपीनाथ अमन, मोहनलालजी कठोतिया आदि के वक्तव्यों के बाद मैंने प्रवचन किया।

• १५ अगस्त १९६५। रात्रि के समय स्वतंत्रता-दिवस के उपलक्ष्य में हंसराज कॉलेज के हॉल में कुछ विशेष कार्यक्रम रखा गया। उस दिन के प्रमुख वक्ता थे–मुनि नथमलजी, श्री एल. ओ. जोशी तथा श्रम उपमंत्री श्री आर. के. मालवीय। जनतंत्र और नैतिकता विषय पर अच्छी चर्चा हुई।

लेखक की आस्था

• २९ अगस्त १९६५। राजधानी के प्रमुख लेखकों और साहित्यकारों की एक विशेष गोष्ठी थी। गोष्ठी में चिन्तन के लिए विषय था–लेखक की आस्था। जाने-माने साहित्यकारों की उपस्थिति थी। श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', डॉ. प्रभाकर माचवे, श्री जैनेन्द्रकुमार जैसे दिग्गज साहित्यकारों के साथ कुछ नए लेखक भी गोष्ठी में संभागी थे। श्री हरिदत्त शर्मा, श्रीकान्त वर्मा, रघुवीर सहाय, ओमप्रकाश 'दीपक', रामानन्द दोषी, श्री इलाचन्द्र शास्त्री, डॉ. प्रभाकर, अज्ञेय आदि साहित्यकारों ने विभिन्न संदर्भों में लेखक की आस्था को व्याख्यायित किया। मुनि नथमलजी ने सत्य के साथ आस्था की प्रतिबद्धता पर प्रकाश डाला।

• १० अक्टूबर १९६५। अणुव्रत विहार (दिल्ली) द्वारा द्विदिवसीय सेमिनार का आयोजन। चर्चा का विषय था–एशिया में जनतंत्र का भविष्य। सेमिनार की दूसरी बैठक ११ अक्टूबर को रात्रि के समय कम्यूनिटी हॉल के प्रांगण में रही। योजना-आयोग के उपाध्यक्ष श्री अशोक मेहता ने उसकी अध्यक्षता की। डॉ. एल. एम. सिंघवी, भारत के भूतपूर्व महान्यायवादी श्री एम. सी. सीतलवाड, अखिल भारतीय साम्यवादी दल के मुख्य सचिव श्री राजेश्वर राव, शिक्षाशास्त्री श्री के. जी. सैय्यदन, मुनि नथमलजी आदि के वक्तव्य हुए।

• १४ नवम्बर १९६५। रात्रि के समय दिल्ली के प्रमुख विचारकों व साहित्यकारों की एक विचार-गोष्ठी रखी गई। उसका विषय था–'नैतिकता, अश्लील पोस्टर और फिल्म उद्योग'। डॉ. प्रभाकर माचवे,

मैं और मेरे गुरु

"मुनि नथमलजी का विवेचनपूर्ण वक्तव्य इतना सारगर्भित और हृदयग्राही था कि श्रोताओं पर उसका विशेष प्रभाव हुआ। मैंने उनका वैसा भाषण पहले कभी नहीं सुना था। भाषण क्या था, हृदय की आवाज बोल रही थी। उनका चिंतन बड़ा गहरा बन रहा है। इस क्षेत्र में और भी अच्छा विकास करेंगे, ऐसा विश्वास है। मैं चाहता हूं कि उनके माध्यम से योग एवं अध्यात्म का अच्छा विकास हो। आशा है, श्रद्धा है, गुरुकृपा से मेरा विश्वास सफल होगा।"

डॉ. इन्द्रचंद शास्त्री, श्री एल. ओ. जोशी, श्री यशपाल जैन, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री विश्वेश्वरप्रसाद, श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार, श्री ऋषभदास रांका और मुनि नथमलजी के वक्तव्य हुए।

• २१ नवम्बर १९६५ को प्रातः 'किराना मर्चेण्ट एसोसिएशन', सब्जीमंडी ने 'मिलावट विरोधी दिवस' का आयोजन किया। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ. सुशीला नैयर उस कार्यक्रम में विशेष रूप से उपस्थित थीं। एसोशिएशन के अध्यक्ष श्री ज्ञानचन्द्र, मंत्री श्री प्रह्लादराय, श्री रामेश्वर अग्रवाल, निगम-पार्षद श्री रामलाल, डॉ. विमलकुमार जैन, डॉ. सुशीला नैयर, मुनि नथमलजी के वक्तव्य हुए।

राष्ट्रीय समस्याएं और लोक चेतना

• २८ नवम्बर १९६५। सायं तीन बजे 'कॉन्स्टिट्यूशन क्लब' में एक विशेष संगोष्ठी आयोजित थी। संगोष्ठी का आयोजन अणुव्रत विहार के लोकतन्त्र-कक्ष की ओर से किया गया था। उसमें मुख्य रूप से संसद-सदस्यों को आमंत्रित किया गया। संगोष्ठी का विषय था–'राष्ट्रीय समस्याएं और लोकचेतना'। श्रीमती सावित्री निगम, श्री खंडूभाई देसाई, सेठ गोविन्ददासजी, श्री एम.एस. अणे, श्री अब्दुल गनी, श्री तुलसीदास यादव आदि अनेक वक्ताओं ने अपने विचार रखे। मुनि नथमलजी ने बताया कि समस्या का मूल कारण है आस्था की दुर्बलता। उन्होंने कहा–'आज सुविधावाद की मनोवृत्ति बढ़ रही है। आत्म-नियंत्रण का भाव घट रहा है। दूसरों की आलोचना करने का मनोभाव पुष्ट हो रहा है। व्यापारियों की अर्थलोलुपता पर गहरा आक्रोश व्यक्त किया जाता है, किन्तु उनका नेतृत्व करने वालों की आकांक्षाओं पर अंगुलि-निर्देश नहीं होता। इन सब बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करके ही समस्याओं को समाहित किया जा सकेगा।'

उस कार्यक्रम में उच्च-स्तर के काफी लोग उपस्थित थे। परिसंवाद के संभागियों ने पूरी गंभीरता के साथ अपने विचार प्रस्तुत किए। श्रोताओं में सांसद, पत्रकार, साहित्यकार और विचारक उपस्थित थे। सबने लोक-चेतना को जगाने की आवश्यकता अनुभव की।

• २७ मई १९६६। प्रवचन के समय 'अणुव्रत विचार परिषद' का कार्यक्रम था। श्री गोपीनाथ 'अमन', श्री जैनेन्द्रकुमार (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष) और मुनि नथमलजी के वक्तव्यों के बाद मैंने प्रवचन किया। अणुव्रत पर अच्छी चर्चा हुई।

धर्म क्या है?

• ३ जुलाई १९६६। रविवार को एक गोष्ठी रखी गई। उसमें विशेष रूप से बीदासर के बौद्धिक लोग उपस्थित थे। विचार-यात्रा के लिए विषय रखा गया–'धर्म क्या है?' धर्म के आत्मगत और संस्थागत–इन दोनों रूपों पर चर्चा चली। आत्मगत धर्म ही वास्तव में धर्म है। संस्थागत धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अनिष्ट हुए हैं, यह विचार गोष्ठी का निष्कर्ष था। निर्धारित विषय पर बहुत गहरे और आधुनिक विचार सामने आए। मुनि नथमलजी ने सहज एवं सरल तरीके से विषय को प्रस्तुत किया। अच्छा प्रभाव रहा। इस गोष्ठी के अतिरिक्त पूरे चातुर्मास काल में प्रबुद्ध-गोष्ठियों की एक शृंखला चलती रही। कुल मिलाकर ग्यारह गोष्ठियां हुईं। इन गोष्ठियों में लगभग पचपन गांवों के हजारों बुद्धिजीवी व्यक्तियों ने धर्म, दर्शन, अध्यात्म और अणुव्रत की चर्चा में भाग लिया। प्रतिदिन तीन गोष्ठियां चलीं। मेरे प्रवचन सभी गोष्ठियों में हुए। मुनि नथमलजी के वक्तव्य अच्छे रहे। प्रवचन के बाद प्रश्नोत्तर का क्रम पूरी गंभीरता के साथ चला।

• १० सितम्बर १९६६। प्रातः सेमिनार का प्रारम्भ हुआ। चर्चा का विषय था–'अश्लील साहित्य, चलचित्र, पोस्टर और नैतिक मूल्य।' सेमिनार का उद्घाटन काका कालेलकर ने किया। मुनि नथमलजी ने श्लीलता और अश्लीलता की चर्चा में बताया कि वर्तमान मानस नग्न सत्य और असत्य–दोनों को अस्वीकार करता है, इसलिए पाक्षिक सत्य के विषय में चिन्तन जरूरी है।

• २३ अक्टूबर १९६६। चुनाव शुद्धि परिषद् का आयोजन। गुजरात के सुप्रसिद्ध जननेता श्री रविशंकर महाराज ने उस कार्यक्रम का उद्घाटन किया। नव निर्माण संघ के अध्यक्ष श्री भूरेलाल बया, श्री जी. आर. साहनी, श्री गोपीनाथ 'अमन', श्री शोभालाल गुप्त, मुनि नथमलजी आदि के वक्तव्यों के बाद मैंने उद्बोधन दिया।

• १० अगस्त १९६७ को रात्रि के समय आयोजित विचार-गोष्ठी का विषय था–'क्या धर्म बुद्धिगम्य है?' प्रस्तुत विषय पर मुनि नथमलजी का वक्तव्य कुछ नवीनता लिए हुए था। बहुत हृदयग्राही लगा। प्रवचन के बाद प्रश्नोत्तरों का क्रम भी आकर्षक था।

स्वर वेदना के

गुरुदेव बहुत ग्रहणशील थे। वे चाहते थे कि नई और उपयोगी बात सब ध्यान से सुने और उसे ग्रहण करे। जहां ग्रहणशीलता की कमी देखी, वहां उनके स्वर वेदना के स्वरों में बदल गए–

• ३१ अगस्त १९६७। रात्रि के समय एक विशेष गोष्ठी आयोजित थी। उसका विषय था–'मनोविकास की भूमिकाएं'। अच्छे वक्तव्य हुए। श्रोताओं में संतों की संख्या बहुत कम थी, जबकि विषय उनके लिए उपयोगी था। संगोष्ठी में संतों का न आना मुझे बहुत अखरा। गोष्ठी की सम्पन्नता के बाद मैं ऊपर गया। तत्काल संतों को बुलाकर उपालंभ की भाषा में मैंने कहा–'तुम लोग ग्राहक नहीं हो। इसीलिए विकास नहीं कर पा रहे हो। बड़े-बड़े विद्वान जिस विषय को सुनना चाहते हैं, उसके प्रति तुम उपेक्षा बरतते हो। तुम्हारी उदासीनता देखकर मुझे आगम का वाक्य याद आ रहा है–'अयहारव्व झूरह'। जो व्यक्ति प्राप्त अवसर का उपयोग नहीं करता, उसे लोहवणिक् की तरह अनुताप करना पड़ता है। मुझे अनुभव होता है कि मुनि नथमलजी का जितना उपयोग होना चाहिए, उतना नहीं हो रहा है।

• १० सितम्बर १९६७ को आयोजित 'अणुव्रत विचार परिषद' का विषय था–'शिक्षा और नैतिक विकास'। गुजरात के शिक्षामंत्री श्री गोरधनदास चोखावाला का वक्तव्य हुआ। शिक्षा के बारे में मुनि नथमलजी ने बहुत प्रभावशाली विचार रखे।

• १५ अक्टूबर १९६७। अणुव्रत अधिवेशन का दूसरा दिन। प्रातःकालीन कार्यक्रम 'अणुव्रत विचार परिषद' के रूप में आयोजित था। चर्चा का विषय था–'अणुव्रत और समाज-उत्थान'। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री एल. ओ. जोशी, नवभारत टाइम्स के समाचार सम्पादक श्री हरिदत्त शर्मा, एल. टी. आर्ट्स कॉलेज के प्राचार्य श्री पुरुषोत्तम मावलंकर, मुनि नथमलजी आदि अनेक वक्ताओं की सामयिक प्रस्तुतियों के बाद मेरा प्रवचन हुआ।

• २ जनवरी १९६८। कुर्ला (मुंबई) में रात्रिकालीन प्रवचन के समय जनता की बहुत बड़ी उपस्थिति थी। हजारों व्यक्ति प्रवचन सुनने आए। अच्छा कार्यक्रम चला। मुनि नथमलजी का वक्तव्य मुझे बहुत अच्छा व मार्मिक लगा।

"विचार-यात्रा के लिए विषय रखा गया–'धर्म क्या है?' धर्म के आत्मगत और संस्थागत–इन दोनों रूपों पर चर्चा चली। आत्मगत धर्म ही वास्तव में धर्म है। संस्थागत धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अनिष्ट हुए हैं, यह विचार गोष्ठी का निष्कर्ष था। निर्धारित विषय पर बहुत गहरे और आधुनिक विचार सामने आए। मुनि नथमलजी ने सहज एवं सरल तरीके से विषय को प्रस्तुत किया। अच्छा प्रभाव रहा।"

• १४ जनवरी १९६८। रात्रिकालीन गोष्ठी में आलोच्य विषय था–'जैन दर्शन की देन'। कई वक्तव्य हुए। मुनि नथमलजी का वक्तव्य काफी प्रभावपूर्ण रहा।

• २७ जनवरी १९६८। 'जैनदर्शन एवं संस्कृत परिषद' का तीसरा अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। अठारह जैन विद्वान बाहर से आए। कुछ स्थानीय विद्वान भी उपस्थित थे। डॉ. ए. एन. उपाध्ये 'जैन एकता परिषद' के माध्यम से वहां पहुंचे। मुनि नथमलजी ने प्राणायाम के बारे में अपना शोधपत्र पढ़ा।

• ११ अप्रैल १९६८। महावीर जयंती का पावन दिन। वीरशैव धर्म के अनुयायी प्रसिद्ध कन्नड़ साहित्यकार श्री मल्लावादि वीर भद्रापा ने भगवान महावीर के अवदानों की चर्चा करते हुए जैन संस्कृति एवं साहित्य की धरोहर के लिए जैन मुनियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। मुनि नथमलजी ने भगवान महावीर के जीवन और सिद्धांतों का विवेचन किया।

• १८ अगस्त १९६८। रात्रि में युवकों द्वारा गोष्ठी रखी गई। उसका विषय था–'जैन धर्म का विकास तथा ह्रास'। मुनि नथमलजी का विशेष वक्तव्य हुआ।

• ४ सितम्बर १९६८। आचार्यश्री भिक्षु का एक सौ छासठवां चरमोत्सव दिन। मुनि नथमलजी का वक्तव्य विशेष रूप से हृदयग्राही रहा।

• १३ अक्टूबर १९६८। मध्याह्न में 'साहित्य अनुशीलन समिति' ने तेरापंथ भवन में एक कार्यक्रम आयोजित किया। उसके दो बिन्दु थे–गोस्वामी तुलसीदासजी की जयन्ती एवं समिति का सोलहवां वार्षिकोत्सव। कार्यक्रम में दक्षिण भारत के विभिन्न कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागाध्यक्ष, अन्य विद्वान एवं कवि विशेष रूप से उपस्थित थे। प्रो. के. आर. नजुंडन ने संयोजकीय वक्तव्य दिया। मुनि नथमलजी ने मनोविज्ञान के संदर्भ में गोस्वामीजी के साहित्य पर विश्लेषण किया।

• सन् १९६८, अक्टूबर का दूसरा सप्ताह। अणुव्रत-अधिवेशन। राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष आचार्य निरंजननाथ ने विधानसभा में मान्य हुए 'अणुव्रत प्रस्ताव' की चर्चा करते हुए अणुव्रत आंदोलन के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए। मुनि नथमलजी ने दर्शन और व्यवहार में सामंजस्य स्थापित करने पर बल दिया।

• ४ जून १९६९। रात्रि में लगभग नौ बजे प्रभुदयाल डाबडीवाल का फोन आया। उसके अनुसार जयचंदलालजी दफ्तरी ३ बजे दिवंगत हो गए। मुनि नथमलजी उसी समय मेरे पास आए और बोले–एक ऐसा व्यक्ति चला गया जिसकी पूर्ति होना कठिन है। प्रातःकालीन प्रवचन के समय अनायास ही दफ्तरीजी की स्मृतिसभा-सी हो गई। सेवाभावीजी, मुनि नथमलजी आदि ने उनके कर्तृत्व पर प्रकाश डाला।

• २९ जुलाई १९६९। आषाढ़ी पूर्णिमा को 'तेरापंथ स्थापना दिवस' का आयोजन था। आचार्य भिक्षु के जीवन और दर्शन पर समीक्षात्मक वक्तव्य हुए। मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमल्लजी, मैसूर हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश श्री इकबाल हुसैन, सेन्ट्रल कॉलेज के दर्शन विभाग के अध्यक्ष प्रो. रामचन्द्र राव, मैसूर यूनिवर्सिटी के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो. पाण्डुरंग आदि के विचार श्रोताओं को प्रभावित करने वाले थे।

• ८ सितम्बर १९६९। पर्युषण पर्व का प्रारंभ। आध्यात्मिक साप्ताहिक शिविर का उद्घाटन। 'जनतंत्र और जैनधर्म' विषय पर निकाय-सचिव मुनि नथमलजी का वक्तव्य हुआ।

महात्मा गांधी और विनोबा भावे

● बैंगलोर में विनोबा भावे के आश्रम में चातुर्मासिक प्रवास। ११ सितम्बर १९६९। विनोबा भावे का जन्मदिन। मुनि नथमलजी ने विनोबा को हिन्दू, मुसलमान, जैन, ईसाई आदि सारी परम्पराओं से ऊपर एक सच्चे ज्ञानी और आध्यात्मिक संत के रूप में निरूपित किया।

● २ अक्टूबर १९६९ को महात्मा गांधी का सौवां जन्मदिवस। 'गांधी स्मारक निधि, बैंगलोर' ने हमारे सान्निध्य में कार्यक्रम रखा। प्रसिद्ध सर्वोदयी कार्यकर्ता श्री अन्नाजी, नेशनल कॉलेज के पूर्व प्रिंसिपल प्रो. सम्पतगिरि राव, मैसूर गांधी शताब्दी समारोह के मंत्री श्री बी. बी. नाइक आदि उस दिन के प्रमुख वक्ता थे। मुनि नथमलजी ने अपने वक्तव्य में गांधीजी के तीन रूपों को उजागर किया। महान युगद्रष्टा, मानवता के व्याख्याता और शाश्वत सत्य के उद्‌गाता–इन तीन विशेषणों से उनके आंतरिक व्यक्तित्व को सशक्त अभिव्यक्ति दी गई।

● १६ जनवरी १९७०। रात्रिकालीन प्रवास और प्रवचन छात्रावास में हुआ। मुनि नथमलजी का व्याख्यान सबको रुचिकर लगा।

● १ फरवरी १९७०। ईडन गार्डन हैदराबाद में अणुव्रत सेमिनार की आयोजना प्रभावपूर्ण रही। उसमें अनेक बौद्धिक लोगों की संभागिता थी। सेमिनार के उद्‌घाटन सत्र में मुनि नथमलजी, महबूब कॉलेज के पूर्व प्राचार्य श्री कोटेवरम और उस्मानिया कॉलेज की पूर्व प्रिंसिपल श्रीदेवी के अच्छे वक्तव्य हुए।

सर्वधर्म सद्‌भाव

● २६ अप्रैल १९७०। रात्रिकालीन कार्यक्रम का आयोजन सर्वधर्म-सद्‌भाव के उद्देश्य से किया गया। इसमें डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र, प्रो. शरण गुप्ता (बौद्ध धर्म के प्रतिनिधि), श्री देवव्रत (ईसाई धर्म के प्रतिनिधि), श्री रज्जब अली (इस्लाम धर्म के प्रतिनिधि), मुनि नथमलजी, मुनि राकेश (जैन धर्म के प्रतिनिधि) आदि वक्ताओं ने धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों की चर्चा की। उन्होंने वेदों, उपनिषदों, पिटकों, बाइबिल, कुरान, जैन आगम आदि धर्मशास्त्रों के आधार पर धर्म के महान प्रवक्ताओं के विचारों की जनता को अवगति दी। कार्यक्रम जनता को रुचिकर लगा।

● १५ अगस्त १९७०। रात्रिकालीन कार्यक्रम में अनेक धर्म-सम्प्रदायों के प्रवक्ता उपस्थित थे। इस अवसर पर यहूदी धर्म के प्रवक्ता डॉ. कन्हैयालाल वर्मा, इस्लाम धर्म के प्रवक्ता मौलाना इनायत, सिख धर्म के प्रवक्ता श्री दीदारसिंह, सतनामी धर्म के प्रवक्ता महन्त नामदासजी, ईसाई धर्म के प्रवक्ता फादर श्री सुंदरलाल जेक, हिन्दू धर्म के प्रवक्ता डॉ. नागेन्द्र वर्मा, जैनधर्म के प्रवक्ता मुनि नथमलजी और बौद्ध धर्म के प्रवक्ता श्री मतपहरी के वक्तव्य हुए।

● सन् १९७०। रायपुर चातुर्मास। रात्रिकालीन कार्यक्रम में रविवार को 'मानसिक एकाग्रता' विषय पर विशेष प्रवचन होते हैं। ऐसे विषय को सुनने में लोग पूरा रस ले रहे हैं। प्रवचन-पंडाल भर जाता है। मुनि नथमलजी का विवेचन बड़ा हृदयग्राही होता है। यह उनकी मौलिक विशेषता है। प्रवचन के बाद प्रश्नोत्तरों और प्रयोग का क्रम भी व्यवस्थित रूप में चलता है।

● २ जनवरी १९७१ को युवक-सम्मेलन तथा छात्र-सम्मेलन का आयोजन था। लगभग चार सौ से अधिक छात्र और अध्यापक संभागी थे। रात्रिकालीन अणुव्रत-विचार-परिषद में स्थानीय शासकीय

"तुम लोग ग्राहक नहीं हो। इसीलिए विकास नहीं कर पा रहे हो। बड़े-बड़े विद्वान जिस विषय को सुनना चाहते हैं, उसके प्रति तुम उपेक्षा बरतते हो। तुम्हारी उदासीनता देखकर मुझे आगम का वाक्य याद आ रहा है–'अयहारव्व झूरह'। जो व्यक्ति प्राप्त अवसर का उपयोग नहीं करता, उसे लोहवणिक् की तरह अनुताप करना पड़ता है। मुझे अनुभव होता है कि मुनि नथमलजी का जितना उपयोग होना चाहिए, उतना नहीं हो रहा है।"

विद्यालय में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष सोहनलाल गांधी, श्री जैनेन्द्रकुमार, एडवोकेट श्री वीरेन्द्रकुमार, मुनि नथमलजी आदि के वक्तव्य काफी प्रभावी रहे।

• १ अगस्त १९७१, लाडनूं। रात्रि में अणुव्रत-गोष्ठी का आयोजन था। अध्यापकों की अच्छी उपस्थिति थी। मुनि नथमलजी का विशेष वक्तव्य हुआ। अच्छा प्रभाव रहा। गोष्ठी सफल रही। लाडनूं आने के बाद प्रत्येक रविवार को अच्छा रंग जमता है।

• ३१ मार्च १९७१ को एक सार्वजनिक गोष्ठी रखी गई। उसमें मुनि नगराजजी और मुनि नथमलजी के विशेष वक्तव्य हुए। उन्होंने इन वर्षों में हमारे संघ में हुए कुछ परिवर्तनों की चर्चा की, जैसे–वस्त्रप्रक्षालन, सायंकालीन गोचरी, माइक में बोलना, बिजली सचित्त या अचित्त? आदि। उक्त बिन्दुओं को लेकर समाज के लोगों में कुछ ऊहापोह-सा था। उनके संबंध में लोगों को विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाए, यही इस कार्यक्रम का उद्देश्य था।

रात्रि के समय पुनः अच्छी गोष्ठी चली। मुनि नथमलजी का वक्तव्य बहुत गंभीरतापूर्ण रहा। जनता के मन में उठे काफी प्रश्नों का स्पष्टीकरण हो गया।

• ४ से ६ जुलाई १९७१ तक रात्रि में सार्वजनिक गोष्ठियां रखी गईं। प्रथम गोष्ठी का विषय था–धार्मिक चेतना व रूढ़िवाद। दूसरे और तीसरे दिन की गोष्ठी का विषय रखा गया था–सत्य की साधना व परम्पराएं। तीनों दिन मुनि नथमलजी के विशेष वक्तव्य हुए।

• ९ जुलाई १९७१। रात्रि में अर्हत् वंदना में पश्चात युवकों की गोष्ठी हुई। गोष्ठी में विचारणीय विषय था–तेरापंथ के प्रति युवकों का दायित्व। मुनि नथमलजी का हृदयग्राही भाषण हुआ।

• त्रिदिवसीय अणुव्रत अधिवेशन। २ अक्टूबर १९७१ को प्रातःकालीन कार्यक्रम में मुनि नथमलजी, हरिजन सेवकसंघ के अध्यक्ष श्री वियोगी हरि, मद्रास विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री माणिक्यवेल नायर आदि वक्ताओं के अणुव्रत के संदर्भ में विशेष वक्तव्य हुए।

• ३ अक्टूबर १९७१ को अधिवेशन का समापन था। 'जीवन साहित्य' के सम्पादक श्री यशपाल जैन, आरोग्य के सम्पादक श्री बिट्ठलदास मोदी, राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष श्री निरंजननाथ आचार्य, 'अणुव्रत प्रवक्ता' श्री जैनेन्द्रकुमार और मुनि नथमलजी के वक्तव्य हुए।

• २० फरवरी १९७२। प्रोफेसर महावीरराज गेलड़ा के आने पर जैन विश्व भारती के बारे में अच्छी चर्चा हुई। मध्याह्न और रात्रि की गोष्ठियों में मुनि नथमलजी और डॉ. गेलड़ा के प्रभावपूर्ण वक्तव्य हुए।

• २ मई १९७२। आज शिविर का दूसरा दिन है। मध्याह्न में जैनदर्शन पर मुनि नथमलजी का महत्त्वपूर्ण विशेष वक्तव्य हुआ। वक्तव्य के बाद प्रश्नोत्तर भी चले। रात को 'अर्हं' योग का प्रयोग हुआ।

विशिष्ट शिष्य : विशिष्ट प्रवचनकार

• २३ मई १९७२ को मध्याह्न में मुनि नथमलजी का विशेष वक्तव्य हुआ। वक्तव्य का विषय था–'पदार्थ और ऊर्जा'। विषय नया था, पर उसका प्रतिपादन पूरी गंभीरता के साथ किया गया। युनिवर्सिटी के विशिष्ट छात्रों के बीच जैसा वक्तव्य था। शिविरार्थी उसका कुछ प्रतिशत ही समझ पाए होंगे। साधु-साध्वियां भी संभवतः कम ही समझे होंगे। ऐसे गंभीर विषय पर विशिष्ट प्रवचनकार के रूप में एक विशिष्ट शिष्य को देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

● ३१ अगस्त १९७२। लगभग डेढ़ दो हजार की उपस्थिति में अर्हत्-वन्दना के पश्चात् कार्यक्रम शुरू हुआ। मुनि नथमलजी ने अहिंसा और अभय की युति पर प्रकाश डाला।

● ९ नवम्बर १९७२। साधना-शिविर की गोष्ठी पंडाल में हुई। लगभग डेढ़ घंटे तक चली गोष्ठी में आत्मा और परमात्मा के बारे में नई दृष्टि से विवेचन हुआ। मुनि नथमलजी ऐसे विषयों पर भी गंभीर चिन्तन के साथ विशद विवेचन करते हैं।

● १ मई १९७३। रात्रि में अणुव्रत-गोष्ठी का विशेष कार्यक्रम था। चन्दनमलजी बैद अच्छा बोले। मुनि महेन्द्र और मुनि नथमलजी के वक्तव्य काफी प्रभावी रहे।

● ३ जून १९७३ से हमारे सान्निध्य में जैन विश्व भारती का एक शिविर लगा हुआ है। मध्याह्न में साढ़े तीन बजे से साढ़े चार बजे तक वक्तव्य और प्रश्नोत्तरों का उपक्रम चलता है। मुनि नथमलजी अच्छा, व्यवस्थित एवं गंभीर भाषण करते हैं। ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर वे हर विषय का बहुत सुंदर प्रतिपादन करते हैं।

● सन् १९७३। हिसार में चातुर्मासिक प्रवास। यहां प्रत्येक रविवार को रात्रि में विशेष गोष्ठी का आयोजन होता है। उसमें एक विद्वान वक्ता बोलता है। मुनि नथमलजी का भाषण होता है। अंत में मेरा वक्तव्य होता है। अब तक हुई तीन गोष्ठियों के वक्ता और विषय इस प्रकार हैं–

विषय	**वक्ता**
खाद्य विवेक	कृषि विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार
धर्म और नैतिकता	डी. ए. बी. कॉलेज के प्रिंसिपल
संस्कारों का निर्माण या विघटन	गवर्नमेन्ट कॉलेज के प्रिंसिपल

तीनों ही कार्यक्रमों में अच्छे-से-अच्छे वक्तव्य हुए।

● २८ अक्टूबर १९७३, कार्तिक शुक्ला द्वितीया का कार्यक्रम स्थानीय बिश्नोई मंदिर के विशाल प्रांगण में था। स्थानीय विधायक श्री गुलाबचंद जैन, केन्द्रीय पेट्रोलियम उपमंत्री श्री दलवीरसिंह चौधरी, हरियाणा के विकासमंत्री श्री प्रकाशचंद्र, सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार, मुनि नथमलजी आदि के वक्तव्य बहुत प्रभावी रहे।

● २१ जनवरी १९७४, दिल्ली। 'विज्ञान भवन' के मुख्य हॉल में अणुव्रत सेमिनार का आयोजन था। सेमिनार में अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने अपने विचार रखे। उनमें श्री गुलजारीलाल नंदा, गृहमंत्री श्री उमाशंकर दीक्षित, लोकसभा के अध्यक्ष श्री गुरदयालसिंह ढिल्लो, दैनिक नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन और मुनि नथमलजी के नाम उल्लेखनीय हैं।

● ४ अप्रैल १९७४। महावीर जयंती का आयोजन। रात्रिकालीन कार्यक्रम का उद्घाटन कर्नाटक के राज्यपाल मोहनलाल सुखाड़िया ने किया। उन्होंने जैन संस्कृति की दृष्टि से समृद्ध कर्नाटक प्रदेश का इतिहास बताते हुए भगवान महावीर के प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त की। दिल्ली के महापौर श्री केदारनाथ साहनी ने भगवान महावीर द्वारा निरूपित सिद्धांतों को जीवन में उतारने की बात पर बल दिया। साहू शांतिप्रसादजी जैन और मुनि नथमलजी के वक्तव्य भी काफी अच्छे रहे।

"'पदार्थ और ऊर्जा' विषय नया था, पर उसका प्रतिपादन पूरी गंभीरता के साथ किया गया। यूनिवर्सिटी के विशिष्ट छात्रों के बीच जैसा वक्तव्य था। शिविरार्थी उसका कुछ प्रतिशत ही समझ पाए होंगे। साधु-साध्वियां भी संभवतः कम ही समझे होंगे। ऐसे गंभीर विषय पर विशिष्ट प्रवचनकार के रूप में एक विशिष्ट शिष्य को देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।"

• २० अप्रैल १९७४। अखिल भारतीय अणुव्रत समिति का महा अधिवेशन। अधिवेशन के प्रथम सत्र में स्वागताध्यक्ष डॉ. आत्माराम, केन्द्रीय मंत्री प्रो. शेरसिंह, अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री जयसुखलालभाई हाथी, दिल्ली के भूतपूर्व महापौर लाला हंसराज गुप्ता, समिति के अध्यक्ष श्री देवीलाल सामर और मुनि नथमलजी के वक्तव्य हुए।

• १७ से २० जुलाई (सन् १९७४) तक रात्रि में साढ़े आठ बजे से साढ़े नौ बजे मुनि नथमलजी के चार विशेष वक्तव्य हुए। साहू शांतिप्रसादजी जैन के विशेष निवेदन पर यह उपक्रम किया गया। वक्तव्य के लिए निर्धारित विषय था–'जैन परम्परा में ध्यान।'

• २१ जुलाई १९७४ को रात्रि में एक युवा गोष्ठी का विशेष आयोजन था। देश की युवापीढ़ी को सही मार्गदर्शन देने के लिए दिल्ली प्रदेश अणुव्रत समिति ने संगोष्ठी बुलाई थी। उसमें जनसंघ के नेता श्री अटलबिहारी वाजपेयी, प्रखर वक्ता श्री प्रकाशवीर शास्त्री और मुनि नथमलजी के वक्तव्य हुए।

• १८ अगस्त १९७४। वीरनगर में जैन एकता सम्मेलन में मुनि विद्यानंदजी, मुनि नथमलजी, मुनि सुशीलकुमारजी, साध्वी मृगावतीजी आदि के वक्तव्य हुए।

• २७ अगस्त १९७४। संयम दिवस का दूसरा चरण भारतीय कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष डॉ. शंकरदयाल शर्मा की अध्यक्षता में मनाया गया। डॉ. शर्मा तथा नेपाल के भारत स्थित राजदूत श्री बी. के. भल्ला ने बहुत अच्छे ढंग से अपने विचार रखे। मुनि नथमलजी, मुनि राकेश आदि के वक्तव्य हुए।

• सन् १९७४। सितंबर महीने का प्रारंभ एक विशेष कार्यक्रम के साथ हुआ। उस दिन हमारे सान्निध्य में 'राष्ट्रीय चरित्र सम्मेलन' का उद्घाटन उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती ने किया। नागरिक उड्डयन राज्यमंत्री श्रीमती सरोजिनी महिषी और मुनि नथमलजी के वक्तव्यों के बाद मैंने सम्मेलन को संबोधित किया।

• ८ सितम्बर १९७४। डिफेन्स कॉलोनी के अहिंसा विहार में 'जैन एकता सम्मेलन' को संबोधित करने वालों में मुनि नथमलजी, मुनि सुशीलकुमारजी, मुनि हेमचंद्रजी, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, साध्वी विचक्षणश्रीजी, साध्वी मृगावतीजी, साध्वी प्रीतिसुधाजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

• ३१ अक्टूबर १९७४। मैंने जर्मन विद्वान डॉ. एल्सडोर्फ को जैन विद्या मनीषी के संबोधन से संबोधित किया। जैन विश्व भारती द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया। इस अवसर पर मुनि नथमलजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'महावीर की आज्ञा का आराधन वह करता है, जो श्रुत का आराधन करता है। श्री एल्सडोर्फ ने यही किया है। ये महावीर की आराधना नहीं, उनकी आज्ञा की आराधना कर रहे हैं। सुदूर देश में रहने वाले विद्वान भी महावीर-दर्शन के प्रति इतने समर्पित हैं, यह आश्चर्य की बात है। इनकी काफी पुस्तकें देखने को मिली हैं। साक्षात् मिलना तो इसी बार हुआ है।'

• १३ दिसम्बर १९७४। षष्टिपूर्ति समारोह का आयोजन। कार्यक्रम के अध्यक्ष थे डॉ. शंकरदयाल शर्मा। राष्ट्रपति डॉ. फखरुद्दीन अली अहमद मुख्य अतिथि थे। मुनि नथमलजी, मुनि जनकविजयजी, मुनि सुशीलकुमारजी, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा आदि के भावपूर्ण वक्तव्य हुए।

• १८ दिसम्बर १९७४। साढ़े बारह बजे संसद-भवन में संसद-सदस्यों के बीच एक विशेष कार्यक्रम आयोजित था। उसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष श्री गुरुदयालसिंह ढिल्लो ने की। मुनि नथमलजी ने अणुव्रत के कार्यक्रमों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला। संसद-सदस्य श्री शंकरदेव ने सांसदों की ओर से अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।

• १२ जनवरी १९७५। अपराह्न में हम टमकोर पहुंचे। पांच हजार की आबादी वाला छोटा-सा गांव वर्षों से हमारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। पूरे गांव में अच्छी चहल-पहल हो गई। रात्रि में मुनि नथमलजी का वक्तव्य हुआ। गांव के सभी वर्गों के लोग प्रवचन में उपस्थित थे। उनकी श्रद्धा-भक्ति देखकर हमने वहां दो रात प्रवास किया।

• १३ फरवरी १९७५। षष्टिपूर्ति समारोह का द्वितीय चरण। मध्याह्न में पुनः एक गोष्ठी रखी गई। उसका विषय था–राष्ट्रीय चरित्र के संदर्भ में आर्थिक समस्याएं। मुनि नथमलजी, वित्तमंत्री सुब्रह्मण्यमजी, जैन जगत के सम्पादक ऋषभदासजी रांका आदि के विशेष वक्तव्य हुए।

• १८ मई १९७५। जैन संस्कृति परिषद का आयोजन। केन्द्रीय वित्तमंत्री सी. सुब्रह्मण्यम, राजस्थान के सिंचाई एवं विद्युत मंत्री श्री हीरालाल देवपुरा, राजस्थान के वित्त एवं योजनामंत्री चन्दनमलजी बैद, राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष श्री रामकिशोर व्यास आदि कई व्यक्तियों के भाषण हुए। मुनि नथमलजी ने बताया कि जिस व्यक्ति का जीवन भगवान महावीर की तरह भीतरी आलोक से आलोकित हो उठता है, वह दुःख में भी सुख खोज लेता है।

संघ और श्रावक समाज

• ११ जून १९७५ का मंगल प्रभात। सुराणा फार्म का प्राकृतिक वातावरण। प्रातःकालीन नौ बजे का शान्त समय। अंगूर की लताओं का मण्डप। देश के विभिन्न भागों से समागत लगभग एक हजार लोगों की उपस्थिति। डॉ. मूलचन्द सेठिया ने अपने संयोजकीय वक्तव्य में श्रावक-सम्मेलन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला। मुनि नथमलजी ने अपने अभिभाषण में कहा–'संघ का मतलब है सामंजस्य। समन्वय की भावना विकसित हुई तो संघ बना। हमारे धर्मसंघ की सबसे बड़ी विशेषता है इसका अनुशासन। ऐसा अनुशासित और निष्ठाशील संघ अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। तेरापंथ धर्मसंघ आचार्य केन्द्रित संघ है। हमारी सम्पूर्ण आस्था संघ और संघपति पर केन्द्रित होती है। संघ से संबंधित किसी भी समस्या का समाधान संघपति को गौण करके नहीं किया जा सकता।'

• १३ जून १९७५। जयपुर के सुराणा कृषि फार्म में समायोजित त्रिदिवसीय श्रावक सम्मेलन पूरी गरिमा के साथ संपन्न हुआ। उसके समापन सत्र को संबोधित करते हुए मुनि नथमलजी ने बहुत विस्तार के साथ तेरापंथ धर्मसंघ, उसकी रीति-नीति एवं महासभा की कार्यशैली पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा–'महासभा एक धार्मिक संस्थान है, धार्मिक हितों का प्रतिनिधित्व करनेवाला संस्थान है, इसलिए उसके कार्यकर्ताओं को संयम से काम लेना चाहिए। उत्तेजना जहां कहीं भी आती है, काम को बिगाड़ देती है। पूज्य कालूगणी कहा करते थे कि चर्चा करते समय जो व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है, समझ लो कि वह हार गया। पराजित होने का पहला लक्षण है उत्तेजित हो जाना। उत्तेजना कभी अच्छा फल नहीं लाती। जो व्यक्ति उत्तेजित हो जाते हैं, तत्काल दूसरों पर आक्षेप करना शुरू कर देते हैं, छींटाकशी शुरू कर देते हैं, वे जरा भी धैर्य नहीं रख सकते। इस प्रकार के व्यक्ति कभी भी महासभा का हित नहीं कर सकते। उन्हें धैर्य से, शान्ति से काम लेना चाहिए। धैर्य और शान्ति से जितना काम किया जाएगा, उतना ही भला होगा। अपने सिद्धान्तों पर कायम रहना बहुत आवश्यक है, किन्तु उत्तेजित होना और दूसरों पर आक्षेप लगाना अच्छा कार्य नहीं है।'

"उत्तेजना जहां कहीं भी आती है, काम को बिगाड़ देती है। पूज्य कालूगणी कहा करते थे कि चर्चा करते समय जो व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है, समझ लो कि वह हार गया। पराजित होने का पहला लक्षण है उत्तेजित हो जाना। उत्तेजना कभी अच्छा फल नहीं लाती।"

तेरापंथ के संविधान और आचार्य के अधिकार की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा–'आचार्य को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। उनमें जब हमारा हस्तक्षेप शुरू हो जाता है तब बहुत बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है। प्रश्न हो सकता है कि आचार्य को कौन-से विशेष अधिकार हैं? संघ में किसको दीक्षित करना, किसको कहां रखना, कहां चातुर्मास कराना, किसको संघ से पृथक् करना आदि आचार्य के विशेष अधिकार हैं। आचार्य के अधिकार में किसी साधु को भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। आचार्य भिक्षु ने सबसे पहले इसी बात पर बल दिया कि जो आचार्य के अधिकार हैं, उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं करे। किन्तु आज की स्थिति यह है कि हर कोई हस्तक्षेप करने के लिए तैयार हो जाता है। यदि हम आचार्य भिक्षु के पवित्र संगठन को उसी रूप में रखना चाहते हैं और साधु-संस्था को विशुद्ध, निर्दोष एवं शक्तिशाली रखना चाहते हैं तो इस बात को केवल आचार्य पर छोड़ दें कि आचार्य साधु-साध्वियों के बारे में क्या सोचते हैं, किसको दीक्षित करते हैं, किसे कहां रखते हैं, कैसे रखते हैं और किसको संघ से अलग करते हैं। इस विषय में हमारी कोई पंचायती नहीं होनी चाहिए।'

संघ में आचार्य सर्वेसर्वा होते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी साधु या श्रावक को संघ के बारे में सोचने की जरूरत ही नहीं है। संघ का हर सदस्य उसके संबंध में चिन्तन कर सकता है और औचित्य के साथ आचार्य को निवेदन भी कर सकता है। इस विषय को प्रस्तुति देते हुए मुनि नथमलजी ने आगे कहा–'तेरापंथी श्रावक को यह अधिकार है कि जो भी बात उसके मन में आए, वह आचार्य को निवेदन करे, केवल आचार्य को। किन्तु पचास लोगों को भड़काए और उत्तेजना फैलाए, यह हमारे संगठन के सर्वथा प्रतिकूल है। मैं समझता हूं कि कुछ काम इधर में ऐसे हुए हैं, जो आचार्य भिक्षु की मर्यादाओं और संगठन के प्रतिकूल हैं। उसका परिणाम भी हमें भुगतना पड़ रहा है। मैं नहीं कहता कि सारे काम जानबूझ कर किए गए हैं। शायद ऐसा करने वालों को हमारे संगठन के संविधान, आचार्य भिक्षु के लेखों और उनकी मर्यादाओं के बारे में समुचित जानकारी नहीं है। बहुत सारे कार्य अजानकारी में हो जाते हैं। इसलिए हमारे संविधान की जानकारी सबको होनी चाहिए। हमारे समाज के युवक अपने संघ के संविधान को अच्छी तरह जान लें तो उनके आचरण में काफी अन्तर आ जाएगा। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि सबको संघ की स्थितियों और मर्यादाओं की बातें समझाई जाएं।'

● ३ अगस्त १९७५। प्रातः राजस्थान प्रान्तीय पचीस सौवीं निर्वाण महोत्सव समिति का कार्यक्रम था। राजस्थान के राज्यपाल श्री जोगेन्द्रसिंह उपस्थित थे। निर्वाण समिति के द्वारा राजस्थान के सभी विश्वविद्यालयों तथा जिला पुस्तकालयों में जैन साहित्य भेंट करने की घोषणा की गई। साहित्य रखने के लिए अलमारियां राजस्थान सरकार की ओर से भेंट की गईं। उस अवसर पर मुनि नथमलजी, राज्यपाल महोदय, राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री पाण्डेय, डी. आर. मेहता, राजरूपजी टांक, हीराचन्दजी बैद, कपूरचन्दजी पाटनी, मोहनलालजी काला, भंवरलालजी न्यायतीर्थ, शोभाचन्दजी भारिल्ल, प्रकाशजी आदि अनेक वक्ताओं के प्रासंगिक वक्तव्य हुए।

● २० अक्टूबर १९७५। अणुव्रत का पचासवां वार्षिक अधिवेशन। अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री देवीलाल सामर और मुनि नथमलजी के महत्त्वपूर्ण वक्तव्यों से जनता को अणुव्रत के विविध पहलुओं की जानकारी मिली।

जैन न्याय का विकास पर व्याख्यानमाला

● २० नवम्बर १९७५, जयपुर। आज राजस्थान विश्वविद्यालय में एक विशेष कार्यक्रम था। उसका सम्बन्ध एक व्याख्यानमाला से था। इसी चातुर्मास के सितम्बर महीने में विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. जी. सी. पाण्डेय और कला संकाय के अधिष्ठाता डॉ. दयाकृष्ण ग्रीन हाउस आए थे। उन्होंने कहा–'सरकार के अनुदान तथा समाज के सहयोग से भगवान महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में हम राजस्थान विश्वविद्यालय में जैन अनुशीलन केन्द्र स्थापित करने जा रहे हैं। आपश्री का चातुर्मास इस बार जयपुर में है, अत: हम चाहते हैं कि हमें आपका सान्निध्य मिले। हम जैन अनुशीलन केन्द्र में एक भाषणमाला आयोजित करना चाहते हैं। उसमें 'जैन न्याय' जैसे विषय पर आठ-दस प्रवचन करवाने हैं। इसके लिए हम मुनिश्री नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) को आमंत्रित करना चाहते हैं। आपश्री इसकी अनुमति प्रदान करें।'

कुलपति महोदय के निवेदन पर मैंने स्वीकृति दे दी। दोनों ओर अपेक्षित तैयारी शुरू कर दी गई। विद्वानों तथा जैन न्याय में रुचि रखनेवाले छात्रों को भाषणमाला की सूचना प्राप्त हो गई। यह निश्चित हुआ कि प्रति शुक्रवार ह्यूमेनिटी हॉल के जैन अनुशीलन केन्द्रवाले कक्ष में भाषण होगा। भाषण के बाद प्रश्नोत्तर का क्रम चलेगा। मध्याह्न में तीन बजे से सवा चार बजे तक कार्यक्रम रहेगा। व्याख्यानमाला के लिए नौ विषयों का निर्धारण किया गया–

१. आगम युग का जैन न्याय
२. दर्शन युग का जैन न्याय
३. जैनदर्शन और नयवाद
४. जैनदर्शन और अनेकान्त
५. जैनदर्शन में निक्षेप की चर्चा
६. प्रमाण मीमांसा : प्रत्यक्ष और परोक्ष
७. विविध दर्शनों में प्रमाणों की चर्चा
८. जैन न्याय में अनुमान प्रमाण
९. भारतीय प्रमाणशास्त्र के विकास में जैन परम्परा का योग

पहला व्याख्यान १९ सितम्बर को रखा गया। मुनि नथमलजी आदि चार साधु यूनिवर्सिटी के परिसर में पहुंचे। रिसर्च एसोसिएट डॉ. लाट ने सन्तों का स्वागत किया। कला संकाय के अधिष्ठाता डॉ. दयाकृष्ण के प्राग्वक्तव्य के बाद मुनि नथमलजी का भाषण हुआ। प्रश्नोत्तरों का क्रम बहुत आकर्षक रहा। प्रति शुक्रवार भाषणमाला के निर्धारित विषयों पर भाषण होते रहे। बीच में यूनिवर्सिटी में अवकाश हो जाने के कारण दो-तीन शुक्रवारों को भाषण नहीं हो पाए। २० नवम्बर को भाषणमाला का समापन सत्र था। यूनिवर्सिटी के अधिकारियों के अनुरोध पर हम वहां गए। कुलपति डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, डॉ. दयाकृष्ण आदि अनेक विद्वान सभागार में उपस्थित थे। मुनि नथमलजी ने 'भारतीय प्रमाण शास्त्र के विकास में जैन परम्परा का योग'– इस विषय पर विशद विवेचन किया। डॉ. दयाकृष्ण तथा कुलपति महोदय ने एक सफल व्याख्यानमाला की आयोजना पर संतोष व्यक्त करते हुए आभार ज्ञापन किया।

मैंने अपने उपसंहारात्मक प्रवचन में कहा–'मेरे अनेक स्वप्नों में से एक स्वप्न आज साकार हुआ है। आज से लगभग बीस-पचीस वर्ष पूर्व ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर एवं जैन विद्वान डॉ. हर्मन जेकोबी के कुछ प्रश्न आए थे। प्रश्नों की गहराई को देखकर मुझे अनुभव हुआ कि एक विदेशी विद्वान कितनी गहराई तक पहुंचा हुआ है। उन प्रश्नों के उत्तर भी उतनी ही गहराई से दिए जाएं, यह अपेक्षित था। किन्तु

"आज से लगभग बीस-पचीस वर्ष पूर्व डॉ. हर्मन जेकोबी के कुछ प्रश्न आए थे। प्रश्नों की गहराई को देखकर मुझे अनुभव हुआ कि एक विदेशी विद्वान कितनी गहराई तक पहुंचा हुआ है। उन प्रश्नों के उत्तर भी उतनी ही गहराई से दिए जाएं, यह अपेक्षित था। किन्तु वैसा नहीं हो सका। मैंने मन-ही-मन संकल्प किया, इस दिशा में प्रयत्न हुआ और आज मैं अपने शिष्य मुनि नथमलजी की सफलता पर उस स्वप्न को साकार अनुभव कर रहा हूं।"

वैसा नहीं हो सका। मैंने मन-ही-मन संकल्प किया कि अध्ययन की गहराई तक जाने का मार्ग प्रशस्त किया जाए। इस दिशा में प्रयत्न हुआ और आज मैं अपने शिष्य मुनि नथमलजी की सफलता पर उस स्वप्न को साकार अनुभव कर रहा हूं।'

जैन न्याय और जैनदर्शन के साथ अध्यात्म की चर्चा करते हुए मैंने आगे कहा– 'मैं चाहता था कि मैं प्रत्येक भाषण में उपस्थित रहूं, किन्तु आचार्य होने के कारण मुझे अन्यान्य उत्तदायित्वों को भी निभाना जरूरी था। इसलिए मैं भाषणमाला के समय यहां उपस्थित नहीं रह सकता। आज इसके समापन के अवसर पर मैं आप लोगों के बीच उपस्थित हूं। मुनि नथमलजी के भाषण तथा आपके उद्‌गारों को सुनकर में बहुत ही प्रसन्न हूं। इन प्रवचनों से आपको समाधान मिला, यह और अधिक प्रसन्नता की बात है।'

● १२ जनवरी १९७७। रात्रि में मुनि नथमलजी का एक विशेष वक्तव्य हुआ। विषय था–'तेरापंथ की परम्परा।' अच्छा विश्लेषण किया गया। सबको रुचिकर लगा।

● २० फरवरी १९७७। पूज्य कालूगणी जन्म शताब्दी समारोह। कार्यक्रम में मुनि बुद्धमलजी, मुनि नथमलजी, दैनिक विश्वमित्र कलकत्ता के सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल, राज्यसभा के सदस्य श्री मुहम्मद उस्मान आरिफ आदि प्रबुद्ध वक्ताओं ने पूज्य कालूगणी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डाला।

स्वागत मेहमान का

● २३ मई १९७७। जैन विश्व भारती में मंगल प्रवेश। मुनि नथमलजी लगभग तीन महीनों से जैन विश्व भारती में साधना का विशेष प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने हमारा स्वागत करते हुए कहा–'मैंने तो सोचा था कि मैं नौ महीने तक नहीं बोलूंगा, शायद नहीं ही बोलता। पर आचार्यश्री ने यहां पधारते ही फरमाया–'आज हम तुम्हारे प्रांगण में मेहमान बनकर आए हैं।' आचार्यश्री जैसे मेहमान इस प्रांगण में पधारे हैं तो मेरा भी यह कर्तव्य हो जाता है कि मैं आपका अभिनंदन करूं, क्योंकि जिस स्थान पर मैं पौने तीन महीने से रह रहा हूं, वहां मेरा यह सहज फर्ज बन जाता है।'

मुनि नथमलजी ने प्रेक्षाध्यान, आगम-सम्पादन आदि की चर्चा करते हुए कहा–'जैन विश्व भारती के प्रांगण में अनेक पौधे लगाए गए हैं, पर उनमें से अधिकांश अभी तक विकसित नहीं हुए। कारण बताया जाता है कि पानी की कमी है, बीज की कमी है, कल्पना की कमी है, इत्यादि। मैं नहीं जानता कि ये पौधे कब विकसित होंगे? मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि जैन विश्व भारती के प्रांगण में एक ऐसा कुशल माली आया है, जिसके संरक्षण में अनेकान्त के बोए बीज निश्चित ही इस चातुर्मास की समाप्ति तक हजारों फुट ऊंचे पहुंच जाएंगे। मैं आशा करता हूं कि ये पौधे हिमालय की ऊंचाई को भी लांघ जाएं, जिससे कि सारी दुनिया के लोग इससे लाभान्वित हो सकें।'

आचार्य भिक्षु की अहिंसा

● १० जुलाई १९७७ को जैन विश्व भारती के अनुसंधान विभाग की ओर से एक गोष्ठी हुई। मुनि नथमलजी का विशेष वक्तव्य हुआ। उन्होंने 'आचार्य भिक्षु की अहिंसा' पर गंभीर विवेचन किया। मुनि नथमलजी का क्षयोपशम इतना विशद है कि वे कठिन-से-कठिन विषय पर नया चिंतन प्रस्तुत करते हैं।

उनकी वक्तृत्व शैली भी विशिष्ट है। 'आचार्य भिक्षु की अहिंसा' जैसे दार्शनिक विषय को भी उन्होंने उदाहरणों के माध्यम से बहुत सरलता और सरसता से प्रतिपादित किया।

● २१ सितम्बर १९७७। भाद्रपद शुक्ला नवमी का दिन। दायित्वप्राप्ति का दिन। पट्टोत्सव के कार्यक्रम में यात्रियों की उपस्थिति धारणा से अधिक थी। वक्तव्य भी प्रभावशाली हुए। राजस्थान के पूर्व वित्तमंत्री चन्दनमलजी बैद का भाषण अत्यन्त आकर्षण का विषय रहा। अन्य वक्ताओं में मुनि नथमलजी का वक्तव्य विशिष्ट रहा।

● ३ अक्टूबर १९७७। अणुव्रत और सर्वोदय का संयुक्त कार्यक्रम। विषय था–महावीर और गांधी। मुनि नथमलजी का विशेष वक्तव्य हुआ।

● १२ नवम्बर १९७७। मेरा जन्मदिन तीन दिन तक अध्यात्म जागृति दिवस के रूप में मनाया गया। मुनि नथमलजी ने न्याय, अध्यात्म और नैतिकता के संदर्भ में लम्बा वक्तव्य दिया। उन्होंने न्याय का संबंध न्यायमूर्ति गोस्वामी के साथ जोड़ा, अध्यात्म के रूप में मुझे उपस्थित किया और नैतिकता को समाज से संबद्ध बताया।

● ११ सितम्बर १९७८। तैयालीसवें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष्य में समायोजित पट्टोत्सव का कार्यक्रम नमस्कार महामंत्र के उच्चारण से प्रारंभ हुआ। मेरे अध्यापन और प्रशासन को विषय बनाकर वक्तव्य दिए गए। मुनि नथमलजी के वक्तव्य का विषय था–'इक्कीसवीं शताब्दी में तेरापंथ का स्वरूप।' उन्होंने वर्तमान के दर्पण को निर्मल बनाकर उसमें प्रतिबिम्बित संघ के भविष्य को देखने और समझने का संकेत दिया।

● २ अप्रैल १९७९। मध्याह्न में दो बजे मेडिकल एसोसिएशन हॉल में कार्यक्रम था। यह कार्यक्रम अहिंसा इन्टरनेशनल के द्वारा समायोजित था। दिल्ली के प्रबुद्ध विचारक और साहित्यकार विशेष रूप से उपस्थित थे। योग और ध्यान पद्धति विषय पर युवाचार्य महाप्रज्ञ का वक्तव्य हुआ। वक्तव्य के बाद प्रश्नोत्तरों का ऐसा सिलसिला शुरू हुआ, जो लम्बे समय तक चलता रहा। प्रबुद्ध श्रोताओं के साथ हमारे संवाद का वह उपक्रम बहुत ही रोचक और उपयोगी रहा।

राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में सांसदों की भूमिका

● ४ अप्रैल १९७९। मध्याह्न में संसदीय अणुव्रत मंच के द्वारा सांसदों की एक संगोष्ठी बुलाई गई। पार्लियामेन्ट सौध के कक्ष नं. १३९ में समायोजित संगोष्ठी का विषय था–राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में सांसदों की भूमिका। उस कार्यक्रम में विदेश मंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी, स्वास्थ्य मंत्री श्री रविराय, संचारमंत्री श्री बृजलाल वर्मा, आवास एवं निर्माणमंत्री श्री सिकन्दर बख्त, लोकसभा अध्यक्ष श्री के. एस. हेगड़े, गृहराज्यमंत्री श्री धनिकलाल मण्डल, दिल्ली के मुख्यकार्यकारी पार्षद श्री केदारनाथ साहनी, भूतपूर्व वित्तमंत्री श्री सी. सुब्रह्मण्यम, वरिष्ठ सांसद डॉ. कर्णसिंह आदि विशेष रूप से उपस्थित थे। अणुव्रत संसदीय मंच के अध्यक्ष केन्द्रीय राज्यमंत्री श्री आरिफ बेग और मंत्री श्री श्यामाचरण गुप्ता का उत्साह उल्लेखनीय था। अनेक वक्ताओं ने राष्ट्रीय समस्यओं के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार प्रस्तुत किए। चिन्तन के अनेक बिन्दु सामने आए। राष्ट्र के स्थापित प्रतिनिधियों ने समग्र राष्ट्र को केन्द्र में रखकर कुछ ज्वलन्त समस्याओं पर चर्चा की। युवाचार्य महाप्रज्ञ के अभिभाषण से सांसदों को समाधान की नई दिशा उपलब्ध हुई।

" मुनि नथमलजी ने 'आचार्य भिक्षु की अहिंसा' पर गंभीर विवेचन किया। मुनि नथमलजी का क्षयोपशम इतना विशद है कि वे कठिन-से-कठिन विषय पर नया चिंतन प्रस्तुत करते हैं। उनकी वक्तृत्व शैली भी विशिष्ट है। 'आचार्य भिक्षु की अहिंसा' जैसे दार्शनिक विषय को भी उन्होंने उदाहरणों के माध्यम से बहुत सरलता और सरसता से प्रतिपादित किया। "

• १० अगस्त १९८०। प्रत्येक रविवार को रात्रि में अर्हत्-वंदना के बाद युवाचार्य महाप्रज्ञ का प्रवचन हो, ऐसा चिन्तन किया गया। उसकी क्रियान्विति भी हो गई। प्रथम प्रवचन का विषय था–'जीवन विज्ञान में जीवन क्या?' विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया। इस उपक्रम से युवापीढ़ी और प्रबुद्ध वर्ग को अच्छा लाभ मिल सकेगा।

• १४ सितम्बर १९८०। संवत्सरी का दिन था। रविवार था। सुधर्मा सभा का पंडाल दोनों ओर शामियाने तानकर बढ़ा दिया गया। युवाचार्यजी लगभग एक घंटा बोले। बहुत जोश में बोले। और अधिक बोलना चाहते थे, पर मैंने रोक दिया। क्योंकि ज्यादा बोलने से उनको श्रम अधिक होता। कुल मिलाकर अच्छा और बहुत अच्छा रहा। अत्यंत उत्साह के साथ संवत्सरी महापर्व मनाया गया।

जयाचार्य : विशिष्ट प्रतिमा

• ९ फरवरी १९८१। मर्यादा महोत्सव का त्रिदिवसीय कार्यक्रम। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में कार्ल मार्क्स और जयाचार्य पर तुलनात्मक विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने यह भी बताया कि हृदय-परिवर्तन और व्यवस्था-परिवर्तन का योग हो जाए तो अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान हो सकता है।

• ११ फरवरी १९८१, सरदारशहर। मैंने विधिवत् अनुशासन वर्ष की घोषणा की। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपना समर्पण व्यक्त करते हुए कहा–'इस पवित्र अवसर पर आचार्यप्रवर ने 'अनुशासन वर्ष' की घोषणा की और संघ के प्रति, पूरी मानव जाति के प्रति, सदाचार के मूल्यों को प्रस्थापित करने के लिए समर्पण की घोषणा की। मैं आचार्यवर के पदचिह्नों का अनुसरण करता हुआ सबसे पहले अपने आराध्य गुरुदेव के प्रति अपने आपको समर्पित करता हूं। उनके समर्पण में अपने स्वर मिलाते हुए संघ और पूरी मानव जाति के कल्याण के लिए अपनी सारी शक्ति को समर्पित करता हूं।'

• २२ जुलाई १९८१। जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के सन्दर्भ में एक विशेष गोष्ठी। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने जयाचार्य के असीम व्यक्तित्व को उनके कर्तृत्व के आलोक में प्रस्तुत करते हुए बताया कि वर्तमान समस्याओं के समाधान में वे आज भी हमारे सामने विद्यमान हैं। क्योंकि उन्होंने जो विचार दिए और जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा की, वे आज भी बहुत उपयोगी हैं। युवाचार्यजी ने अपने वक्तव्य में जयाचार्य द्वारा की गई असाम्प्रदायिक धर्म की व्याख्या, अनुशासन के प्रयोग, समविभाग के प्रयोग, अहिंसा के बारे में उनके विचार आदि कई बिन्दुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला।

• १८ अक्टूबर १९८१, नई दिल्ली। जयाचार्य निर्वाण शताब्दी पर अनुशासन यात्रा और अनुशासन सभा। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने जयाचार्य की एक विशिष्ट प्रतिमा को शब्द देते हुए कहा– 'जयाचार्य के व्यक्तित्व में एक नई प्राण-प्रतिष्ठा हुई है। वे जीवित थे तो सर्वथा अज्ञात थे। महान व्यक्तियों की नियति है कि वे अपने जीवनकाल में प्रायः अज्ञात रहते हैं। कोई भक्त मिलता है तो उन्हें विख्यात कर देता है। आज से एक वर्ष पूर्व जयाचार्य से केवल तेरापंथी समाज ही परिचित था। जैन समाज के कुछ लोग उन्हें जानते होंगे। पर आज जयाचार्य पूरे राष्ट्र के सामने एक प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं। प्रज्ञा अमर है। आदमी मर जाता है, पर प्रज्ञा नहीं मरती। विनम्रता अमर है। अहंकार मर जाता है, पर विनम्रता कभी नहीं मरती। समर्पण अमर है। संदेह मर जाता है, पर आत्मविश्वास कभी

नहीं मरता। सम्प्रदायातीत धर्म अमर है। सम्प्रदाय पैदा होता है और मिट जाता है, पर सम्प्रदायातीत धर्म अमर होता है। आत्मानुशासन अमर है। नियंत्रण आता है और पानी के प्रवाह की तरह चला जाता है, पर आत्मानुशासन कभी नहीं मिटता। इन पांच निष्कर्षों की एक प्रतिमा बनती है। इन पांचों को मिलाने से जो प्रतिमा बनती है, वह प्रतिमा है जयाचार्य।'

रस है आयात में

● १६ दिसम्बर १९८१। अणुव्रत संसदीय मंच के द्वारा हमारी सन्निधि में संसद सदस्यों की एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। हम संसद भवन पहुंचे। राज्यसभा के उपाध्यक्ष श्री श्यामलाल यादव तथा लोकसभा के अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ ने स्वागत किया। गोष्ठी में लगभग पचास सांसद उपस्थित थे। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने गोष्ठी को संबोधित करते हुए कहा–'आज हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम अतीत से कटते जा रहे हैं। हम बहुत समृद्ध हैं, वैभवशाली हैं, पर अपनी सम्पदा से कट गए हैं। कटने का कारण भी है। अतीत से सम्पर्क का सबसे बड़ा माध्यम होता है भाषा। हमने हिन्दुस्तान की भाषाओं के साथ बड़ा अन्याय किया है, उनकी बहुत उपेक्षा की है। कई बार तो मुझे लगता है कि जिन सिद्धान्तों का आज हम आयात कर रहे हैं, वे बहुत पहले से ही हमारे यहां विद्यमान हैं। कठिनाई यह है कि हमारा उनसे सम्पर्क विच्छिन्न हो चुका है। हम आयात करने में ज्यादा रस लेते हैं।'

सम्मान और वर्धापन

● १४ मार्च १९८२ को प्रातः एक भव्य जुलूस के साथ हमने सुजानगढ़ में प्रवेश किया। शहर में उत्साह और उल्लास का वातावरण था। प्रथम कार्यक्रम स्वागत का होता है, किन्तु वह 'शासन स्तम्भ' सम्मान समारोह के रूप में परिणत हो गया। सुजानगढ़ में स्थिरवासी वयोवृद्ध मुनि नथमलजी स्वामी को गंगाशहर में विशेष सम्मान प्रदान किया गया था। उस समय वे वहां उपस्थित नहीं थे। फलतः सम्मान पत्र हमारे पास ही था। मैंने अपने हाथों से वह पत्र उनको दिया। जनता ने प्रसन्नता व्यक्त की।

उस प्रसंग पर युवाचार्य महाप्रज्ञ ने जयाचार्य निर्वाण शताब्दी की उपलब्धियों के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा–'वह समाज ही क्या, जो अपने वरिष्ठ सदस्यों के कर्तृत्व का मूल्यांकन नहीं कर सके। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में 'पूज्यपूजाव्यतिक्रम' को प्रमाद बताया है। जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के अवसर पर इस शताब्दी के जिन विशिष्ट मुनियों को 'शासन स्तम्भ' अलंकरण से अलंकृत किया गया, उनमें मुनि नथमलजी स्वामी एकमात्र विद्यमान मुनि हैं। आप न केवल वयोवृद्ध हैं, अपितु श्रुतवृद्ध भी हैं। व्यवहार में अत्यंत मधुर हैं। आपकी शासननिष्ठा अत्यन्त गहरी है। विवेक के साथ-साथ आपमें अगाध नम्रता भी है। मैं आपकी अनुकरणीय शासन सेवा के लिए इस अवसर पर आपको बधाई देता हूं तथा अभिवादन करता हूं।'

● ३ जुलाई १९८२, कंटालिया। आज हम आचार्य भिक्षु का जन्मदिन मनाने के लिए राणावास से कंटालिया गए। स्वामीजी के जन्मदिन पर उनकी जन्मस्थली में कार्यक्रम आयोजित करने का पहला ही अवसर था। कार्यक्रम में अनेक साधु-साध्वियों के श्रद्धासिक्त गीतों और विचारों की प्रस्तुति हुई। युवाचार्य महाप्रज्ञ, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, राजस्थान के वित्त एवं शिक्षामंत्री चन्दनमलजी बैद और तहसील प्रधान

"प्रज्ञा अमर है। आदमी मर जाता है, पर प्रज्ञा नहीं मरती। विनम्रता अमर है। अहंकार मर जाता है, पर विनम्रता कभी नहीं मरती। समर्पण अमर है। संदेह मर जाता है, पर आत्मविश्वास कभी नहीं मरता। सम्प्रदायातीत धर्म अमर है। सम्प्रदाय पैदा होता है और मिट जाता है, पर सम्प्रदायातीत धर्म अमर होता है। आत्मानुशासन अमर है। नियंत्रण आता है और पानी के प्रवाह की तरह चला जाता है, पर आत्मानुशासन कभी नहीं मिटता।"

चक्रवर्तीसिंह के वक्तव्य बहुत जोशीले हुए। कार्यक्रम इतना भव्य रहा, जिसकी कोई कल्पना तक नहीं कर सकता। वातावरण निखर गया।

यात्रा पंचतीर्थ की

● ५ दिसम्बर १९८२। युवाचार्य महाप्रज्ञ भी जब बोलते हैं, एक गहरा रंग उंडेल देते हैं। सजीव चित्र-सा खिंच जाता है।

● २६ दिसम्बर १९८२। राजनगर में प्रवेश। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने हमारी यात्रा के संदर्भ में उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा–'हम लोग पंचतीर्थ की यात्रा पर निकले हैं। बगड़ी, कंटालिया एवं सिरियारी की यात्रा के बाद हम केलवा गए और वहां से राजनगर आए हैं। ये पांचों क्षेत्र तेरापंथ के ऐतिहासिक क्षेत्र हैं। इसी दृष्टि से ये पंचतीर्थ कहलाते हैं। राजनगर परिवर्तन की भूमि है। सवा दो सौ वर्षों की इस अवधि में समाज में कुछ रूढ़ियों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। कुछ रूढ़ियां पुरानी हैं, कुछ नई जन्म ले रही हैं। यह यात्रा रूढ़िमुक्ति की दिशा में एक नया प्रस्थान साबित हो, ऐसा प्रयास किया जाए।'

तीसरा नेत्र खुले

२७ मार्च १९८३। अहमदाबाद में नागरिक अभिनंदन का कार्यक्रम। प्रसिद्ध उद्योगपति श्री श्रेणिक भाई, प्रमुख साहित्यकार श्री कुमारपाल देसाई और अहमदाबाद के नगरपिता श्री रफीयुद्दीन शेख ने अपने विचार व्यक्त किए। साध्वीप्रमुखा बोली। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में तीसरा नेत्र खोलने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा–'मैं तीसरे नेत्र में विश्वास करता हूं। देखने के लिए दो आंखें हैं। दो आंखों का काम हमारे सामने है। एक आंख का काम है प्रियता का संवेदन और दूसरी आंख का काम है अप्रियता का संवेदन। सारी समस्याएं यहीं से पैदा हो रही हैं। जब हम समस्या के समाधान की बात करें तो हमें इस बात पर भी विचार करना होगा कि हमें तीसरा नेत्र जागृत करना चाहिए। जब तक आदमी का तीसरा नेत्र नहीं खुलेगा, समता की आंख नहीं खुलेगी, तब तक समस्या का समाधान नहीं होगा।

● १ अगस्त १९८३। रात्रि में 'गीता का निष्काम कर्म' इस विषय पर भाषण रखा गया। अच्छा व्यापक विषय था। लोगों ने सुनने में पूरा रस लिया।

● ३ अगस्त १९८३। रात्रि में प्रवचन का विशेष विषय था–उपनिषद् में अध्यात्मवाद। मुख्य प्रवचन युवाचार्य महाप्रज्ञ का हुआ। डिस्ट्रिक्ट जज, एस.डी.ओ. मुन्सिफ आदि बौद्धिक लोग इन कार्यक्रमों में बराबर उपस्थित हो रहे हैं। जनता भी अच्छा लाभ उठा रही है।

● २० अगस्त १९८३। तेरापंथ शिखर सम्मेलन का आयोजन। अखिल भारतीय स्तर पर स्थापित सभी संस्थाओं के अधिकारी सम्मेलन में उपस्थित थे। सम्मेलन का शुभारंभ प्रवचन के समय हुआ। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने तेरापंथ के अनुशासन एवं संगठन के संदर्भ में समाज के कार्यकर्ताओं की अर्हता पर विस्तार से प्रकाश डाला।

● २२ अगस्त १९८३। शिखर सम्मेलन का समापन समारोह। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में कहा–'दो दिन की निष्पत्तियों को देखकर लगता है कि पहले दिन फसल बोई और दूसरे दिन पककर तैयार हो गई। जब कार्य शुरू हुआ, उस समय एक ऊहापोह था कि यह काम कैसे होगा? पर जहां श्रद्धा का बल

होता है, वहां सब कुछ अपने आप ठीक हो जाता है। मुझे लगता है कि कार्यकर्ताओं को आध्यात्मिक होने का जो सूत्र दिया गया, उसी सूत्र ने फसल को पकाने में सहयोग दिया है।'

• ८ फरवरी १९८४। बृहद् श्रावक सम्मेलन। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने विचार-भेद में उलझे बिना धर्मसंघ के विकास में योगभूत बनने की प्रेरणा दी। श्रावक सम्मेलन बहुत शानदार रहा।

• ५ जून १९८४। आयुर्वेदीय सेमिनार का आयोजन। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में कहा– दर्शन और अध्यात्म के साथ आयुर्वेद का गहरा सम्बन्ध है। उन्होंने जैन विश्व भारती द्वारा संचालित कल्याणम् (सेवाभावी कल्याण केन्द्र) में शारीरिक चिकित्सा और अध्यात्म नीडम में मानसिक चिकित्सा की व्यवस्था पर संतोष प्रकट किया।

हृदय को छूने वाली भाषण शैली

• १६ जुलाई १९८४। रात्रिकालीन कार्यक्रम में अच्छी उपस्थिति थी। वक्तव्य के लिए निर्धारित विषय था–तनावमुक्ति। मैं बोला। महाप्रज्ञजी भी बोले। जनता को विचार बहुत पसंद आए। युवाचार्यजी की भाषण शैली उत्तरोत्तर लोकप्रिय होती जा रही है। उनकी बोलने की पद्धति सरल है, मौलिक है, वैज्ञानिक है और जनता के हृदय को छूनेवाली है। मैं स्वयं उनको पूरे मनोयोग से सुनता हूं। केवल भाषण ही नहीं, उनका लेखन भी उत्कृष्ट कोटि का है। यह प्रसन्नता का विषय है। संघ का सौभाग्य है।

• १० सितम्बर १९८४। पर्यावरण शुद्धि दिवस। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा कि भगवान महावीर की अहिंसा को समझने के लिए प्रदूषण ने एक नया अध्याय खोला है।

• १७ सितम्बर १९८४। रात्रि में प्रवचन के लिए निर्धारित विषय था–महावीर का समाजवाद। युवाचार्य महाप्रज्ञ का बहुत मार्मिक भाषण हुआ। व्रतों के नामोल्लेख बिना बारह व्रतों का पूरा विवेचन किया गया। मेरे मन में आया कि इस अवधारणा के अनुरूप समाज बन जाए तो राष्ट्र का कल्याण हो सकता है।

• ३० सितम्बर १९८४। जोधपुर के मेडिकल कॉलेज में युवाचार्य महाप्रज्ञ का भाषण हुआ। डॉक्टर, प्रोफेसर आदि ने पूरा रस लिया। भाषण के बाद उन्होंने अपनी जिज्ञासाएं प्रस्तुत कीं। अच्छा कार्यक्रम रहा।

• ४ नवम्बर १९८४ को इतवार था। युवाचार्य महाप्रज्ञ प्रवचन में उपस्थित थे। प्रवचन का विषय था–'अहिंसा : एक शाश्वत धर्म।' महाप्रज्ञजी ने अच्छा प्रकाश डाला।

समन्वय-प्रवचनमाला

• जोधपुर के नागरिक प्रबुद्ध होने के साथ श्रद्धाशील भी हैं। वे समन्वय एवं सहिष्णुता में विश्वास करते हैं। विभिन्न धर्म-संप्रदायों में एक आंतरिक समता है। वह पुष्ट होती रहे, यह वर्तमान युग की अपेक्षा है। इसे ध्यान में रखकर एक समन्वय प्रवचनमाला ५ अगस्त से ११ अगस्त (सन् १९८४) का आयोजन करने की बात सामने आई। इसके लिए मैंने स्वीकृति दे दी। समय रात्रि में साढ़े आठ बजे से नौ बजे तक रखा गया। मुख्य प्रवचनकार थे युवाचार्य महाप्रज्ञ। शहर में अच्छा प्रचार-प्रसार किया गया। प्रवचनमाला के लिए निर्धारित विषय इस प्रकार थे–

"तनावमुक्ति विषय पर मैं बोला। महाप्रज्ञजी भी बोले। जनता को विचार बहुत पसंद आए। युवाचार्यजी की भाषण शैली उत्तरोत्तर लोकप्रिय होती जा रही है। उनकी बोलने की पद्धति सरल है, मौलिक है, वैज्ञानिक है और जनता के हृदय को छूनेवाली है। मैं स्वयं उनको पूरे मनोयोग से सुनता हूं। केवल भाषण ही नहीं, उनका लेखन भी उत्कृष्ट कोटि का है। यह प्रसन्नता का विषय है। संघ का सौभाग्य है।"

१. भारतीय दर्शन में समन्वय के स्वर २. आचारांग और उपनिषद ३. मार्क्स और भगवान महावीर ४. पातंजल योगदर्शन और मनोनुशासनम् ५. दिगम्बर और श्वेताम्बर ६. लोंकाशाह और आचार्य भिक्षु ७. धर्म की मंजिल।

जैन एवं जैनेतर सभी लोगों ने अच्छी संख्या में उपस्थित होकर प्रवचनमाला का लाभ उठाया। अच्छा वातावरण बना। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने वास्तव में ही महाप्रज्ञत्व का परिचय दिया। इतनी शालीनता और गंभीरता से विषय का प्रतिपादन करना असाधारण बात है। वर्तमान में ऐसा कोई कर सके, कम संभव है। ऐसा लगता है कि इनका अतीन्द्रिय ज्ञान खुल गया है। यह एक विशेष उपलब्धि है। मैं अत्यंत हर्षविभोर हूं और इसे अपनी सफलता मानता हूं।

बहुमुखी चिन्तन : बहुश्रुत प्रतिभा

● बालोतरा (सन् १९८५) में शिविरार्थी साधु-साध्वियों को सघन प्रशिक्षण मिले, इस बात को ध्यान में रखकर एक साप्ताहिक प्रवचनमाला आयोजित की गई। ६ जनवरी से १२ जनवरी तक यह उपक्रम चला। प्रवचनमाला के विषय थे–कैसे चलें? कैसे खड़े रहें? कैसे बैठें? कैसे सोएं? कैसे भोजन करें? कैसे बोलें और कैसे श्वास लें? इन सब प्रश्नों का महावीर वाणी में एक ही उत्तर है–'जयं चरे जयं चिट्ठे जय मासे जयं सए....।' साधक अपने जीवन की उक्त सब क्रियाएं यतना से, संयमपूर्वक करे तो वह पाप कर्म के बंधन से बच सकता है। इस प्रतिपाद्य को बहुत ही सरलता, सरसता और विस्तार के साथ समझाया गया।

प्रवचनमाला के प्रमुख प्रवक्ता युवाचार्य महाप्रज्ञ थे। बहुत शालीन और सुन्दर तरीके से विचार-विनिमय का क्रम चला। महाप्रज्ञ वास्तव में महाप्रज्ञ ही हैं। इनका मति-श्रुत ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान जैसा बन गया। उपज विलक्षण है। समझाने की अच्छी कला है। बहुमुखी चिन्तन है। बहुश्रुत प्रतिभा है। प्रभावशाली तरीका है। सब कुछ अच्छी तरह से चला। ऐसा लगता मानो कोई ऐतिहासिक रूप बन रहा है।

● २८ जनवरी १९८५ का दिन। वि. सं. २०४१ माघ शुक्ला सप्तमी का ऐतिहासिक अवसर। देश के प्रायः सभी भागों से समागत हजारों-हजारों लोगों की उपस्थिति। युवाचार्य महाप्रज्ञ और दैनिक जनसत्ता के सम्पादक प्रभास जोशी के वक्तव्य हुए।

● २ अप्रैल १९८५, आसीन्द। महावीर जयन्ती की पूर्व संध्या में 'भगवान महावीर और भगवान राम' विषय पर युवाचार्यजी का विशेष वक्तव्य हुआ।

● ३ जुलाई १९८५। आज से पंचदिवसीय रात्रिकालीन व्याख्यानमाला आयोजित की गई है। प्रथम दिन का विषय है–'आपने अपना घर बनाया या नहीं?' प्रमुख वक्तव्य युवाचार्य महाप्रज्ञ का रखा गया है।

● ९ जुलाई १९८५। मध्याह्न में एक बजे के बाद अकाली दल के अध्यक्ष श्री हरचन्दसिंह लोंगोवाल तथा श्री सुरजीतसिंह बरनाला आए। रात्रि में साढ़े आठ बजे सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ। लगभग पन्द्रह हजार की उपस्थिति थी। अच्छा प्रभावशाली कार्यक्रम रहा। श्री लोंगोवाल और श्री बरनाला ने पंचसूत्री संकल्पपत्र भरकर अमृत-कलश में डाले तो सब लोग स्तब्ध रह गए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने सिक्खों के त्याग और बलिदान का उल्लेख करते हुए हिन्दुस्तान की उदारतावादी नीति पर विस्तार से प्रकाश डाला।

• २७ जुलाई १९८५। गृहमंत्री श्री शंकरराव चह्वाण की उपस्थिति। युवाचार्यजी ने नए जीवन दर्शन के साथ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने का परामर्श दिया।

• २८ नवम्बर १९८५। रात्रिकालीन प्रवचन गढ़ के विशाल मैदान में रखा गया। मैदान जनता से खचाखच भरा था। 'बदलता युग और राष्ट्रीय चरित्र'–विषय पर प्रवचन हुआ। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अच्छे ढंग से संबोध दिया। उनके वक्तव्य का सार इतना ही था कि धन जीवन का साधन हो, पर वह कभी साध्य नहीं होना चाहिए।

• ३१ दिसम्बर १९८५। रात्रि में युवाचार्य महाप्रज्ञ का भाषण हुआ। जनता की भीड़ कम नहीं थी। लोगों में सुनने की जितनी उत्कंठा रहती है, आचरण में भी उतनी ही जागरूकता रहे तो जीवन की दिशा बदल सकती है।

• १ जनवरी १९८६। मध्याह्न में ठीक दो बजे अखिल भारतीय तेरापंथ श्रावक सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। तीन सौ इकतीस प्रतिनिधि उपस्थित थे। उनमें भाई भी थे और बहनें भी थीं। प्रायः सभी प्रान्तों के लोग थे और सब प्रकार के लोग थे। श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, जैन विश्व भारती, नियोजन मंडल आदि संस्थाओं के पदाधिकारी व्यक्ति भी उपस्थित थे। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा–यह वर्ष तेरापंथ धर्मसंघ के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। आज नव वर्ष के प्रारम्भ में श्रावक सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। इस अवसर पर हमें तीन बातों का विशेष चिन्तन करना है। पहली बात है–परस्पर मैत्री का विशेष विकास हो। दूसरी बात है–जीवन में जो कुछ चल रहा है, वह वर्तमान की चौखट में फिट बैठता है या नहीं? यदि वह फिट नहीं बैठता है तो उसमें परिवर्तन और परिष्कार करना चाहिए। तीसरी बात है–भावी कार्यक्रम के निर्धारण की। भविष्य में गर्भ में अनन्त संभावनाएं छिपी रहती हैं। उन सबको वे ही उजागर कर सकते हैं, जो नए-नए सपने देखते हैं और विकास के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं। इसके साथ हमें यह भी सोचना है कि हमारा श्रावक समाज पूर्ण रूप से संगठित और व्यवस्थित रहे।'

यात्रा हृदय और बुद्धि की

• २५ जनवरी १९८६। मौन शांति यात्रा के साथ उदयपुर में प्रवेश। स्वागत कार्यक्रम में सुखाड़िया विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. नाग ने कहा कि नई शिक्षानीति पर चल रही बहस के समय हमारा यहां आगमन हुआ है। इससे उनको नई दिशा मिलेगी। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने आत्मानुशासन को अमृत बताते हुए उसके विकास की प्रेरणा दी। मेवाड़ के महामंडलेश्वर महंत श्री मुरलीमनोहर शरण ने प्रतीकात्मक शैली में अपनी भावना प्रस्तुत करते हुए कहा–'उदयपुर की सड़कों पर आज मैंने एक यात्रा देखी। उस यात्रा में सड़क पर शरीर नहीं दीख रहा था, हृदय और बुद्धि दिखाई दे रही थी। मैं आचार्यश्री को हृदय के रूप में और युवाचार्यश्री को बुद्धि के रूप में देखता हूं। दोनों का साथ होने से यात्रा पूरी होती है। हृदय और बुद्धि का संयुक्त रूप होने से ही काम बनता है। हृदय और बुद्धि दोनों की आवश्यकता होती है। इस यात्रा को मैं शरीर की नहीं, हृदय और बुद्धि की यात्रा मानता हूं।'

• २७ जनवरी १९८६ से एक विशेष व्याख्यान-माला का उपक्रम प्रारंभ किया। उसका आधार था आवश्यक सूत्र के कुछ स्थल और कुछ शब्द। प्रथम दिन नमस्कार महामंत्र पर प्रवचन हुआ। मेरे प्रवचन

"युवाचार्य महाप्रज्ञ ने वास्तव में ही महाप्रज्ञत्व का परिचय दिया। इतनी शालीनता और गंभीरता से विषय का प्रतिपादन करना असाधारण बात है। वर्तमान में ऐसा कोई कर सके, कम संभव है। ऐसा लगता है कि इनका अतीन्द्रिय ज्ञान खुल गया है। यह एक विशेष उपलब्धि है। मैं अत्यंत हर्षविभोर हूं और इसे अपनी सफलता मानता हूं।"

से पूर्व युवाचार्यजी ने विशद विश्लेषण किया। विषय सरल था। व्याख्या नई होने पर भी सबकी समझ में आनेवाली थी। श्रोताओं को अच्छा अनुभव हुआ।

युवा है जिसका मस्तिष्क

● २८ जनवरी १९८६। आयुर्वेदीय संगोष्ठी में आयुर्वेद के विशेषज्ञ विद्वान उपस्थित थे। गोष्ठी का विषय था–असमय में वृद्धत्व : कारण और निवारण। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपना विशिष्ट चिन्तन प्रस्तुत करते हुए कहा–'यौवन या अमरत्व व्यक्ति की चिर अभिलाषा है। इसके लिए उसने आयुर्वेद, हठयोग, तंत्र आदि न जाने कितनी चिकित्सा-पद्धतियां विकसित की हैं। असमय में वृद्ध होने का सबसे बड़ा कारण है असंयममय आचरण। आयुर्वेद में वृद्धत्व को रोकने के लिए पंच कर्म, पंच प्राण और पंच इन्द्रिय संयम की बात कही गई है। यह बहुत सुन्दर प्रक्रिया है। वस्तुतः युवा वही है, जिसका मस्तिष्क युवा है।'

● ५ फरवरी १९८६ को हमारा कार्यक्रम राजस्थान कृषि महाविद्यालय में था। 'नैतिकता की समस्या और अध्यात्म' विषय पर प्रवचन हुआ। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'हम आर्थिक और राजनैतिक संदर्भों में जिस 'समता' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, उसके भावों का ठीक प्रतिनिधित्व करनेवाला शब्द है नियंत्रण। हम आज संसाधन और परिस्थिति के बदलाव की चर्चा कर रहे हैं। पर इन सबके मूल निमित्त मनुष्य को उपेक्षित कर रहे हैं। भगवान महावीर ने इस क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया है–व्यक्तिगत स्वामित्व और उपभोग की सीमा। इस आदर्श को जीवन-व्यवहार में प्रतिष्ठित करने के लिए व्यवस्थातंत्र और अध्यात्म दोनों की सहभागिता अनिवार्य है।'

● १६ फरवरी १९८६, माघ शुक्ला सप्तमी का दिन। मध्याह्न में ठीक बारह बजे का समय। भंडारी दर्शक मंडप का विशाल मैदान। जनता की विशेष उपस्थिति। युवाचार्य महाप्रज्ञ बहुत सुन्दर बोले।

● ६ सितम्बर १९८६। आचार्य भिक्षु चरमोत्सव। युवाचार्य ने अपने वक्तव्य में आचार्य भिक्षु की अन्तिम शिक्षाओं का उल्लेख करते हुए बताया कि उन्होंने ऐसे जीवन मूल्यों को उद्घोषित किया था, जिनकी नींव पर शताब्दियों बाद भी तेरापंथ का भव्य भवन अविचल खड़ा है।

● ३ नवम्बर १९८६। श्री शुभकरण दसानी ने अपनी विदेश यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया और पोप पॉल द्वारा प्राप्त उपहार जैन विश्व भारती को भेंट किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने दसानी की विदेश यात्रा को एक उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि जैन धर्म को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का मेरा जो स्वप्न था, उसे साकार करने की दिशा खुल रही है। उन्होंने एक अनुरोध भी किया कि दसानी को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र का काम सौंप दिया जाए और 'धर्मदूत' इस संबोधन से संबोधित किया जाए। मैंने उसके लिए इस शब्द का प्रयोग किया।

अद्भुत और प्रभावकारी शैली

● २ जनवरी १९८७। रात्रि में अर्हत्-वंदना के बाद तेरापंथ के बारे में युवाचार्यजी बोले। उनकी बोलने की शैली मुझे बहुत पसंद आती है। नपे तुले शब्दों में संयत प्रक्रिया में जब ये नए तरीके से बोलते हैं तो लगता है कि कोई अतीन्द्रिय चेतना वाला ही बोल रहा है। मैं स्वयं इन्हें सुनने में रस लेता हूं। शायद हमारे संघ के साधुओं में ये पहले साधु हैं, जो ऐसी शैली में बोलते और लिखते हैं।

• १३ जनवरी १९८७। रात्रि में युवाचार्य महाप्रज्ञ का विशेष वक्तव्य था। 'अणुव्रत एवं हमारा योगदान'–इस विषय का बिल्कुल नए तरीके से प्रतिपादन किया गया। विषय प्रतिपादन की शैली को अद्‌भुत एवं प्रभावकारी माना जा सकता है। श्रोताओं में एक मैं भी था। वक्तृत्व का ऐसा सुन्दर ढंग मुश्किल से ही कहीं सुना होगा। साधु श्रोता बहुत कम थे। मुझे लगता है कि उनमें ग्रहणशीलता कम है, इसलिए सुनने में रुचि कम है।

• २० अप्रैल १९८७। मालाबार गेस्ट हाउस, रोहतक में एक विशेष कार्यक्रम। रोटरी क्लब के अध्यक्ष प्रमोदकुमार मारवाह ने संस्थाओं की ओर से स्वागत किया। मानसिक तनाव : कारण और निवारण–इस विषय पर युवाचार्य महाप्रज्ञ का वक्तव्य हुआ। मैंने उपसंहारात्मक प्रवचन किया। शहर में अच्छी प्रतिक्रिया रही।

• २५ जुलाई १९८७। प्रातःकाल अहिंसा समवसरण में अखिल भारतीय अणुव्रत समिति का दो दिवसीय अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। उपस्थिति सन्तोषजनक थी। वक्तव्य अधिक संतोषप्रद थे। उनका प्रभाव अत्यधिक मनभावन रहा। दो दिनों के प्रवक्ता थे–देश के वरिष्ठ चिन्तक एवं भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री डॉ. कर्णसिंह, भट्टारक चारुकीर्ति, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. दौलतसिंह कोठारी, डॉ. प्रभाकर माचवे, दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादक श्री विनोदकुमार मिश्र, महाश्रमणी और महाप्रज्ञ। सभी वक्ता एक-एक से बढ़-चढ़कर थे। कार्यक्रम गरिमा-प्रधान था।

अवधारणा दो हृदय की

• १ अगस्त १९८७। नई दिल्ली में आयोजित आयुर्वेद शोध संगोष्ठी की अध्यक्षता पंडित प्रवर श्री बृहस्पतिदेव त्रिगुणा ने की। भारत के बारह प्रान्तों से सत्तर से अधिक वरिष्ठ वैद्य उपस्थित थे। संगोष्ठी में विमर्शनीय विषय था–अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का शरीर व मन पर प्रभाव। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने प्राचीन और अर्वाचीन विद्याओं के संयुक्त अध्ययन की प्रेरणा देते हुए कहा–'आधुनिक विज्ञान में एक हृदय की चर्चा है। पर हमारे योग के ग्रन्थों में जिस हृदय का वर्णन उपलब्ध है, उसकी कार्य पद्धति इससे सर्वथा भिन्न है। हमने इस विषय में गहराई से अध्ययन किया तो दो हृदयों की बात सामने आई। हमारी भावनाओं को प्रादुर्भूत और नियन्त्रित करनेवाला हृदय है–'हाइपोथेलेमस'। इस अवधारणा का आधार आयुर्वेद के ग्रन्थों में मिला। योग और आयुर्वेद के ग्रन्थों में एक शब्द आता है 'अमृतस्राव।'। इसकी तुलना अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के हारमोन्स से की जा सकती है। इसी प्रकार शिरा, मर्म, स्रोत आदि विविध नामों से आयुर्वेद के ग्रन्थों में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की चर्चा हुई है।'

होम्योपैथी और ध्यान

२० सितम्बर १९८७। मध्याह्न में दो बजे से होमियोपैथी डॉक्टरों का सेमिनार था। लगभग पांच सौ डॉक्टर और पांच सौ अन्य लोग उपस्थित थे। सेमिनार का विषय था–मस्तिष्क और उसका आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक पक्ष। निर्धारित विषय पर साधु-साध्वियों के अतिरिक्त डॉ. पी.सी. जैन (न्यूरोलोजिस्ट), डॉ. त्यागराजन, डॉ. टण्डन, सांसद रामचन्द्र विकल और दीवान हरिश्चन्द्र के वक्तव्य हुए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने होमियोपैथी और ध्यान की तुलना करते हुए बताया कि ये दोनों पद्धतियां सूक्ष्मता की ओर ले जाने वाली हैं। उन्होंने हृदय को ब्रेन का एक हिस्सा बताते हुए कहा कि भावधारा वहीं से पैदा

"अर्हत्-वंदना के बाद तेरापंथ के बारे में युवाचार्यजी बोले। उनकी बोलने की शैली मुझे बहुत पसंद आती है। नपे-तुले शब्दों में संयत प्रक्रिया में जब ये नए तरीके से बोलते हैं तो लगता है कि कोई अतीन्द्रिय चेतना वाला ही बोल रहा है। मैं स्वयं इन्हें सुनने में रस लेता हूं। शायद हमारे संघ के साधुओं में ये पहले साधु हैं, जो ऐसी शैली में बोलते और लिखते हैं।"

होती है। सेमिनार का संचालन जेल आयुक्त श्री एच. पी. कुमार ने किया। सेमिनार का आयोजन प्रेमनाथ जैन ने किया था। सेमिनार अच्छा रहा, खूब अच्छा रहा।

● २२ फरवरी १९८८। तेरापंथ अमृत संसद का द्वितीय अधिवेशन। प्रारम्भिक औपचारिकताओं के बाद युवाचार्यजी ने संगठन और अनुशासन को चिरजीवी बनाने वाले चार बिन्दु प्रस्तुत किए–

१. हर सांसद गण और गणपति के प्रति पूर्ण निष्ठावान रहे।

२. अनेकता में एकता के सूत्र को कभी विस्मृत न करे।

३. नए और पुराने के चक्र में न उलझकर सम्यक् दिशा में प्रयत्नशील रहे।

४. मौलिक समस्याओं पर गहरा विमर्श किया जाए।

● १८ अप्रेल १९८८। मध्याह्न में किसान सम्मेलन आयोजित किया गया। स्थानीय किसानों के साथ आसपास के गांवों से भी बहुत किसान आए। हजारों किसानों की उपस्थिति में कार्यक्रम चला। परिषद देखने योग्य थी। युवाचार्यजी का विशेष वक्तव्य हुआ। किसानों को व्यसन-मुक्त और रूढ़ि-मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा दी गई। सामयिक प्रेरणा से उनके मन आन्दोलित अवश्य हुए। पर अपने आपको पूर्णरूप से व्यसन-मुक्त बनाने का साहस नहीं हो सका। कुछ किसानों ने दारू-मांस का परित्याग किया। कुछ किसान तम्बाकू के व्यसन से मुक्त हुए। सम्मेलन अच्छा रहा।

● ४ मई १९८८। जैन विश्व भारती में भव्य जुलूस के साथ प्रवेश। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने जैन विश्व भारती के बारे में बोलते हुए कहा–'आज का प्रवेश नया प्रवेश है। आज का आगमन पूर्वाभ्यास का आगमन है। दो महीनों के प्रवास में बारह महीनों के कार्यक्रमों का पूर्वाभ्यास होगा। आगामी वर्ष संस्कार-निर्माण का वर्ष होगा। आज की पीढ़ी संस्कारहीन होती जा रही है। बढ़ती हुई हिंसक वारदातों को रोके बिना संस्कारों के बीज अंकुरित नहीं हो सकते। इसके लिए हमें व्यापक स्तर पर सोचना होगा। यह दो महीने का समय शक्ति की उपासना का समय है। सब लोग अपनी-अपनी शक्ति को पहचान कर आगामी वर्ष को सफल बनाने में अपनी शक्ति का नियोजन करें।'

विलक्षण प्रतिभा

● ६ जून १९८८। प्रातःकालीन प्रवचन का विषय था–जैन दर्शन और कम्प्यूटर। नया विषय था। युवाचार्य महाप्रज्ञ का महत्त्वपूर्ण प्रवचन हुआ। उन्होंने प्रभावशाली ढंग से विषय का प्रतिपादन किया।

● ६ अप्रैल १९८८ से रात्रि में विशेष व्याख्यानमाला का आयोजन हुआ। व्याख्यानमाला युवाचार्यजी ने चलाई। अच्छी आकर्षक रही। युवाचार्य महाप्रज्ञ भाषण में नवीनता लाते रहते हैं। इनका व्याख्यान श्रवणीय और मननीय होता है। इस क्षेत्र में इनकी प्रतिभा विलक्षण है। इनका भाषण मैं स्वयं पूरे ध्यान से और ग्राहकबुद्धि से सुनता हूं। सरदारशहर में समायोजित व्याख्यानमाला से यहां के प्रबुद्ध वर्ग ने अच्छा लाभ उठाया।

● ३० जुलाई १९८८। रविवार का दिन। प्रवचन सभा में सदा की अपेक्षा अधिक लोगों की उपस्थिति थी। 'मैं मनुष्य हूं'–इस विषय पर युवाचार्यजी का और मेरा प्रवचन हुआ।

आध्यात्मिक-वैज्ञानिक-व्यक्तित्व

● ५ दिसम्बर १९८८। अहिंसा और विश्व शांति विषयक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन। सम्मेलन में रूस, अमेरिका, बांग्लादेश, आस्ट्रेलिया, जापान, कनाडा, ब्रिटेन, स्वीडन, थाईलैण्ड, हॉलैण्ड आदि अनेक देशों के सौ से अधिक प्रतिनिधि उपस्थित थे। ये सारे प्रतिनिधि अहिंसा और शांति के क्षेत्र में काम करने वाली संस्थाओं से सम्बन्धित थे। युवाचार्यजी ने अपने वक्तव्य में आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण की दृष्टि से तीन बिन्दु प्रस्तुत किए–

१. प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन।

२. अनुकम्पी और परानुकम्पी तंत्र का संतुलन।

३. मस्तिष्क के दाएं और बाएं पटल का संतुलन।

● १९ दिसम्बर १९८८। सुधर्मा सभा में शिक्षा विषयक परिचर्चा। युवाचार्यश्री ने विद्यालयों को अध्यात्मालय बनाने का सुझाव दिया। उन्होंने बताया कि भारतीय परम्परा में ऋषि-मुनियों ने सबसे पहले मन, बुद्धि और हृदय को प्रशिक्षित करने की बात कही। अगर ये प्रशिक्षित हो जाते हैं तो समाज स्वतः प्रशिक्षित हो जाता है।

● १३ जनवरी १९८९। त्रिदिवसीय वर्धमान महोत्सव का शुभारम्भ। मुनि बुद्धमलजी ने वर्धमान महोत्सव के आधार का विवेचन किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'संघ की आत्मा है–सम्यक् दृष्टिकोण, सम्यक् अवधारणा और सम्यक् आस्था। जिसका दृष्टिकोण उदार, धारणा स्पष्ट और आस्था मजबूत नहीं होती, वह संघ कभी उत्सव मनाने का अधिकारी नहीं होता। संघ की आस्था और धारणा को जिनवाणी के अनुरूप बनाए रखना आचार्य का काम है।'

● २६ जनवरी १९८९। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने विदेशी भाई-बहनों को प्रतिबोध देते हुए कहा–'यह विश्व तीन भागों में बंटा हुआ है–विकसित देश, विकासशील देश और अविकसित देश। जापान आदि देश विकसित कहलाते हैं। भारत विकासशील देश है। अफ्रीका को अविकसित देश कहा जाता है। पश्चिमी देशों ने आर्थिक और बौद्धिक दृष्टि से काफी विकास किया है, किन्तु फिर भी वहां शान्ति नहीं है। क्योंकि उनके पास आवेश, निराशा, कुंठा आदि भावनाओं पर नियंत्रण करने की क्षमता नहीं है। उन देशों के लोग प्रेक्षाध्यान के माध्यम से शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं। उनमें प्रेक्षाध्यान के प्रति बहुत आकर्षण पैदा हुआ है। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान आज भारतीय सीमाओं को लांघकर विदेशों में अपना अस्तित्व स्थापित कर रहे हैं। यह एक स्वस्थ परम्परा है।'

● १८ अप्रैल १९८९। महावीर जयंती पर सार्वजनिक कार्यक्रम। अभिव्यक्ति की विविध विधाओं में भगवान महावीर के प्रति श्रद्धा समर्पित की गई। कुछ वक्ताओं ने उनके जीवन और दर्शन पर प्रकाश डाला। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने महावीर के प्रमुख दो उपदेश–संविभाग और मैत्रीपूर्ण व्यवहार को केन्द्र में रखकर वक्तव्य दिया।

● २५ जुलाई १९८९। स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों का दीक्षान्त समारोह आयोजित हुआ। राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा प्रमुख अतिथि के रूप में उपस्थित थे। युवाचार्य महाप्रज्ञ के वक्तव्य का सारांश इस प्रकार है–'आज शिक्षा में चिन्तन का तो विकास हो रहा है,

"रात्रि में विशेष व्याख्यानमाला का आयोजन हुआ। व्याख्यानमाला युवाचार्यजी ने चलाई। अच्छी आकर्षक रही। युवाचार्य महाप्रज्ञ भाषण में नवीनता लाते रहते हैं। इनका व्याख्यान श्रवणीय और मननीय होता है। इस क्षेत्र में इनकी प्रतिभा विलक्षण है। इनका भाषण मैं स्वयं पूरे ध्यान से और ग्राहकबुद्धि से सुनता हूं।"

पर इसके साथ अचिंतन का भी विकास होना चाहिए। तत्त्वबोध के साथ चित्त निरोध की भी आवश्यकता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान है। किन्तु उसकी निष्पत्तियों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।'

• १४ दिसम्बर १९८९। अणुव्रत वर्ष के परिप्रेक्ष्य में संगोष्ठी। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने मेरी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा–'नैतिकता की बात जितनी श्रुतिमधुर है, उतनी कर्मसुकर नहीं है। इस दृष्टि से हमें कर्मशील एवं प्रतिभासम्पन्न कार्यकर्ताओं को ढूंढना होगा। आगामी वर्ष में पर्यावरणशुद्धि, जीवनविज्ञान, अहिंसा सार्वभौम, नशामुक्ति तथा जातीय एवं साम्प्रदायिक सद्भाव–इन पांच सूत्रों पर विशेष काम करना है। इसके लिए पूरे वर्ष का कार्यक्रम अभी से तय करना होगा। नशामुक्ति के संदर्भ में प्रेक्षाध्यान उपयोगी हो सकता है। यह निर्णय भी समय रहते करना होगा कि किस प्रदेश में कितने और कैसे शिविर लगाए जाएं। यदि हमारी पूरी तैयारी हो तो अगले वर्ष एक हलचल पैदा हो सकती है। अभी से विभिन्न विचार गोष्ठियों में अणुव्रत दर्शन एवं कार्यक्रमों के बारे में विशद चिन्तन होना चाहिए।'

बीमारी का कारण है प्रज्ञापराध

• ६ जनवरी १९९०। सेवाभावी कल्याण केन्द्र के द्वारा आयुर्वेदीय शोध संगोष्ठी का आयोजन। संगोष्ठी का विषय था–गैस रोग : कारण और निवारण। अनेक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैद्य गोष्ठी में संभागी बने। समागत विद्वानों में बीकानेर राज्य के पूर्व शिक्षामंत्री आचार्य गौरीशंकर, अ. भा. आयुर्वेद महासभा के अध्यक्ष वैद्य श्री बृहस्पतिदेव त्रिगुणा, अंतर्राष्ट्रीय आयुर्वेद शोध संस्थान के अध्यक्ष वैद्यराज श्री जगदीशप्रसाद शर्मा, अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी के प्राचार्यश्री ताराशंकर मिश्र, एम. के. हॉस्पिटल लाजपतनगर (नई दिल्ली) के निदेशक श्री मुकुन्दीलाल द्विवेदी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष डॉ. ज्योतिमित्र, शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रोफेसर श्री वेणीमाधव शास्त्री, आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर के विभागाध्यक्ष श्री हरिश्चन्द्र जैन आदि प्रमुख थे।

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में बताया कि बीमारियों का सबसे बड़ा कारण है प्रज्ञापराध। इसलिए केवल मेडिकल साइन्स के विकास से ही काम नहीं चल सकता। आवश्यकता है बीमारियों के भावात्मक पहलू पर विचार करने की। जैन विश्व भारती को इस दिशा में विशेष प्रयत्न करना है।

जागृत अतीन्द्रिय ज्ञान

• १५ जनवरी १९९०। युवाचार्य महाप्रज्ञ की प्रवचन शैली में उत्तरोत्तर परिष्कार हो रहा है। वे गंभीर-से-गंभीर विषय को बहुत सहजता और रोचकता से निरूपित करते हैं। विषय की गंभीरता ज्यों की त्यों रहती है, पर सरलता वृद्धिंगत होती जाती है। लगता है कि उनका अतीन्द्रिय ज्ञान जागृत हो गया है। एक-एक शब्द सार्थक होता है और विषय-प्रतिपादन में नवीनता रहती है। इतने गंभीर और हृदयस्पर्शी प्रवक्ता कम मिलेंगे। महाप्रज्ञ की विवेचनशैली में दिन-दिन नया निखार आ रहा है। यह हमारे संघ का गौरव है कि हमें ऐसे युवाचार्य मिले हैं।

• १० फरवरी १९९० को फाल्गुन मास का प्रारंभ हो गया। योगक्षेम वर्ष में प्रातःकालीन प्रवचन के समय मैं बोलता था, पर मुख्य वक्तव्य युवाचार्य महाप्रज्ञ का होता था। योगक्षेम वर्ष की सम्पन्नता के बाद क्रम में थोड़ा परिवर्तन किया है। आज से महाप्रज्ञ को छुट्टी दे दी है। अब प्रवचन मैं स्वयं कर रहा हूं।

• २५ जून १९९०। पाली में चातुर्मासिक प्रवास के लिए मंगल प्रवेश। स्वागत कार्यक्रम में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने उपस्थित जनसमूह को नई दृष्टि दी कि स्वागत करने वाले परिवर्तन का संकल्प लें। व्यक्तिगत स्तर पर बदलने का संकल्प ही सच्चा स्वागत है।

• १४ अगस्त १९९०। अहमदाबाद चतुर्मास की प्रार्थना। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में कहा–'अभी चातुर्मास का एक ही महीना बीता है और आगामी चातुर्मास की प्रार्थना शुरू हो गई। कुछ अजीब-सा लगता है। इस वर्ष की सफल कटी ही नहीं, दूसरी फसल के बीज बोने का प्रयत्न प्रारंभ हो गया। दो दिन पहले मेवाड़वालों ने अर्ज की थी। आज अहमदाबाद के लोग प्रार्थना कर रहे हैं। दोनों प्रसंगों को देखकर दिमाग में एक कल्पना आई–आचार्यवर को सारे कार्य छोड़कर वैक्रिय लब्धि की साधना करनी चाहिए। फिर तो सबकी मांग पूरी हो सकती है। पता नहीं, ये विविध रूप आचार्यप्रवर कब दिखाएंगे।'

दर्पण होता है समीक्षक

• २९ अगस्त १९९०। पचपनवां पट्टोत्सव दिवस। श्रुत अभिवंदना समारोह का आयोजन। कालूयशोविलास, डालिम-चरित्र, माणक-महिमा, मगन-चरित्र और चन्दन की चुटकी भली–मुख्यतः इन पांच पुस्तकों के आधार पर शोध लेख लिखे गए। अच्छे खोजपूर्ण लेख थे। अच्छे-अच्छे विद्वान संगोष्ठी में उपस्थित थे। बड़ा सरस वातावरण रहा। मैं नहीं समझता था कि मेरे साधारण साहित्य पर इतनी अच्छी प्रतिक्रिया हो सकती है। इस संदर्भ में युवाचार्य महाप्रज्ञ का कथन सही प्रतीत हुआ। उन्होंने कहा–'गुणी व्यक्ति भी अपनी पहचान किसी अन्य माध्यम से ही कर सकते हैं। आंखें सबको देखती हैं। पर वे स्वयं को देख सकती हैं? यदि आंखें स्वयं को देखना चाहें तो उन्हें दर्पण की अपेक्षा होगी। समीक्षक सही माने में दर्पण होते हैं। वे अपने मूल्यांकन द्वारा सबको साहित्य के मूल्य का भान करा देते हैं।'

श्रुत-संगोष्ठी में एक बार प्रसंगवश मैंने कहा–'मेरी इन कृतियों को बाहर लाने का श्रेय साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को है। जब इसने यह काम प्रारम्भ किया तब मैंने कहा था कि ऐसे निकम्मे काम में समय क्यों लगाती हो? पर इसने अपने सम्पादन से इन्हें संवारा है। अब तो इन कृतियों को देखकर मुझे भी बहुत आनन्द आता है।' मेरे कथन पर युवाचार्य महाप्रज्ञ ने टिप्पणी की–'कभी-कभी छोटे आदमियों की समझदारी का सबको बहुत बड़ा लाभ मिल जाता है।'

आचार्य भिक्षु : समन्वयवादी धारा के प्रवर्तक

• २३ दिसम्बर १९९०। आचार्य भिक्षु श्रुतोपासना समारोह। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा–'पश्चिमी दर्शन की दो मुख्य धाराएं रही हैं–अनुभववादी और बुद्धिवादी। अनुभववादी धारा का प्रतिनिधित्व जॉन लॉक, बर्कले, ह्यूम आदि कर रहे हैं। बुद्धिवादी धारा के प्रमुख दार्शनिक हैं देकार्त, स्पिनोजा, लाइबनित्स आदि। किन्तु ये दोनों धाराएं एकांगी हैं। काण्ट ने उन दोनों में समन्वय किया। आचार्य भिक्षु की काण्ट से तुलना की जा सकती है। क्योंकि वे समन्वयवादी धारा के प्रवर्तक थे। उन्होंने किसी एकांगी दृष्टिकोण को नहीं पकड़ा, सर्वांगीण दर्शन का आह्वान किया।'

• ११ जनवरी १९९१। मर्यादा महोत्सव के लिए बगड़ी (सुधरी) में प्रवेश। एक भव्य जुलूस के साथ हम समवसरण में पहुंचे। साधु-साध्वियों से समवसरण खिल उठा। लोगों की उपस्थिति बहुत अच्छी थी। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में कहा–'आचार्य भिक्षु का अभिनिष्क्रमण असाम्प्रदायिक धारणा

"युवाचार्य महाप्रज्ञ की प्रवचन शैली में उत्तरोत्तर परिष्कार हो रहा है। वे गंभीर-से-गंभीर विषय को बहुत सहजता और रोचकता से निरूपित करते हैं। विषय की गंभीरता ज्यों की त्यों रहती है, पर सरलता वृद्धिंगत होती जाती है। लगता है कि उनका अतीन्द्रिय ज्ञान जागृत हो गया है। एक-एक शब्द सार्थक होता है और विषय-प्रतिपादन में नवीनता रहती है। इतने गंभीर और हृदयस्पर्शी प्रवक्ता कम मिलेंगे।"

का प्रवर्तन था। असाम्प्रदायिक धर्म के प्रथम प्रवक्ता थे भगवान महावीर। इसके दूसरे प्रवक्ता थे आचार्य भिक्षु। मिथ्यात्वी की क्रिया की स्वीकृति के माध्यम से उन्होंने धर्म को सम्प्रदाय के अभिनिवेश से मुक्त किया। आज के उग्र साम्प्रदायिक वातावरण में मिथ्यात्वी की क्रिया की मान्यता बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है। आज यदि इस सचाई को लोग समझ लें तो अभिनिवेश और सम्प्रदाय के नाम पर मारकाट नहीं होगी। पर धर्म को सम्प्रदाय से प्रमुख माने बिना इस समस्या का समाधान संभव नहीं है।'

• १४ अप्रैल १९९१। प्रातःकालीन कार्यक्रम जैन एकता के संदर्भ में आयोजित था। विधिवेत्ता श्री पानाचन्द जैन, हस्तीमलजी मुणोत, हुकुमचन्दजी भारिल्ल आदि वक्ताओं के प्रासंगिक वक्तव्य हुए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'मैं इस जैन एकता मंच को समन्वय संगीति के रूप में देखता हूं। जैन धर्म के विकास के लिए यह स्वर्णिम युग है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अनेकान्त की केवल बात ही न करें, उसे व्यवहार में लाएं।'

• १२ मई १९९१, जयपुर। सुराणा बन्धुओं के विशेष अनुरोध पर १२ मई के प्रवचन का कार्यक्रम राजमन्दिर में रखा गया। प्रवचन का विषय था–भौतिकवाद और मानसिक तनाव। युवाचार्यजी का विशेष वक्तव्य हुआ।

• ४ जुलाई १९९१। प्रातः भारत के पूर्व प्रधानमंत्री तथा जनता दल के नेता श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह जैन विश्व भारती पहुंचे। वहां एक संगोष्ठी रखी गई। उसका विषय था–अणुव्रत और लोकतंत्र। कई वक्ता बोले। युवाचार्यजी ने शासन पद्धति के तीन अंगों–चलनेवाला, चलानेवाला और संचालन पद्धति पर विस्तार से प्रकाश डाला।

श्रुत संपन्न और आचार संपन्न

• २६ जुलाई १९९१। आज जैनविश्वभारती इन्स्टीट्यूट (मान्य विश्वविद्यालय) का सत्रारम्भ समारोह आयोजित किया गया। राजस्थान के राज्यपाल श्री डी.पी. चट्टोपाध्याय मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। राजस्थान के शिक्षामंत्री श्री हरिकुमार औदिच्य, उच्च शिक्षा राज्यमंत्री डॉ. रतनलाल जाट आदि कई विशिष्ट व्यक्ति समारोह में संभागी थे।

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने शिक्षा के सन्दर्भ में भगवान महावीर के दिशानिर्देश को स्पष्ट करते हुए कहा–'एक व्यक्ति ज्ञान से सम्पन्न होता है, आचार से सम्पन्न नहीं होता, यह अधूरापन है। एक व्यक्ति आचार से सम्पन्न होता है, ज्ञान से सम्पन्न नहीं होता, यह भी अधूरापन है। एक व्यक्ति ऐसा होता है जो ज्ञान और आचार दोनों से ही सम्पन्न नहीं होता। उसे कोई संज्ञा देना मैं पसन्द नहीं करूंगा। किन्तु उस व्यक्ति को मैं परिपूर्ण मानूंगा, जो श्रुतसम्पन्न भी हो और आचारसम्पन्न भी हो। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, कुलपति, प्रोफेसर तथा अधिकारीगण सब इस बात पर ध्यान रखें कि उन्हें इस दिशा में प्रयत्न करना है। यहां से जो भी व्यक्ति निकले, वह ज्ञानसम्पन्न और आचारसम्पन्न होकर निकले। यूजीसी की टीम यहां आई थी तो उसने एक टिप्पणी की थी- 'जैनविश्वभारती विश्वविद्यालय ऐसा बने, जिसका हिन्दुस्तान के सारे विश्वविद्यालय अनुकरण करें।' इस बात को संस्था के अधिकारी हमेशा याद रखें। आज से हो रहा यह सत्रारंभ इस संस्थान को उस चोटी पर ले जाएगा, जहां से विद्यार्थी नहीं, मानव निकलेगा।'

• १८ नवम्बर १९९१। 'पुरुषार्थ की गाथा' ग्रन्थ के सन्दर्भ में कार्यक्रम था। अनेक वक्ताओं ने ग्रन्थ तथा ग्रन्थनायक चौपड़ाजी के बारे में विचार प्रस्तुत किए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'छोगमलजी शूर थे, विद्यानिपुण थे और सेवाभावी थे। सत्य के प्रति उनमें गहरी निष्ठा थी। वे निस्पृह थे, सहज थे और सरल थे। समाज तब शक्तिशाली बनता है, जब उसमें सर्वांगीणता हो। पुरुषार्थ की गाथा का लोकार्पण समाज के लिए प्रेरणा बने, यह कामना करता हूं।'

• १० दिसम्बर १९९१। मध्याह्न में जैनविश्वभारती, मान्य विश्वविद्यालय के सभागार में मानवाधिकार दिवस मनाया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्थापित होने के कारण व्यापक रूप में यह दिवस आयोजित होता है। हम सभी उस कार्यक्रम में उपस्थित थे। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में कहा–'स्वतंत्रता आंदोलन में वकीलों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब शिक्षकों का दायित्व है कि वे मानवाधिकार के बारे में गहराई से चिन्तन करें। मैं अच्छा मानव बनूं, मैं अच्छा शिक्षक बनूं, यह मानवाधिकार की सुरक्षा में पहला कदम है।'

• १९ फरवरी १९९२। प्रातःकाल मन्दिरमार्गी सम्प्रदाय के आचार्यश्री विजयइन्द्रदिन्न सूरि जैन विश्व भारती में आए। संस्था के अधिकारियों ने सुधर्मा सभा में उनका स्वागत किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने जैन एकता के बारे में चार दशक से चल रहे प्रयासों की चर्चा की और जैन सिद्धान्तों को विश्वव्यापी बनाने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने की बात पर बल दिया।

• १६ अगस्त १९९२ को दिल्ली से समागत भाई-बहनों ने एक व्यवस्थित जुलूस निकाला। दोनों हाथ : एक साथ–इस घोष का प्रायोगिक रूप प्रस्तुत करनेवाले जुलूस का मुख्य नारा था–एकता परिषद् बुलाती है : आचार्यश्री दिल्ली पधारो। जुलूस के सुधर्मा सभा में पहुंचने पर दिल्ली की पुरजोर प्रार्थना की गई।

युवाचार्यजी ने प्रार्थना के उत्तर में कहा–'दिल्ली के लोगों ने बड़े ही उत्साह के साथ पुरजोर शब्दों में आचार्यवर से दिल्ली पधारने की प्रार्थना की है। दिल्ली की अपनी उपयोगिता है। वहां जो कुछ होता है, उसका प्रभाव सारे देश पर पड़ता है। कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम भी हैं, जिनका आयोजन आचार्यवर के सान्निध्य में दिल्ली में ही हो सकता है। वैसे आचार्यवर कहीं भी विराजें, आपका प्रखर चिन्तन और प्रभावी विचार सबको दिशा प्रदान करते रहेंगे।'

कार्य विश्वविद्यालय का

• १८ अक्टूबर से २० अक्टूबर १९९२ तक विश्वविद्यालय के प्रांगण में एक सेमिनार आयोजित हुआ। सेमिनार के लिए विषय निर्धारित किया गया था–राजस्थानी भाषा को तेरापंथ का अवदान। प्रस्तुत सेमिनार में राजस्थानी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान, साहित्यसेवी तथा प्रवक्ता अच्छी संख्या में उपस्थित हुए।

युवाचार्यजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'राजस्थानी भाषा के लिए राजस्थानी लोगों को जागना होगा। वे आज तक सोए रहे हैं, तभी इस साहित्य का मूल्यांकन नहीं हो पाया। तेरापंथ संघ के भंडार में अपार राजस्थानी साहित्य है और यहां आज भी सृजन हो रहा है। अपेक्षा है, विश्वविद्यालय अतीत और वर्तमान का संगम बने।'

• २५ नवम्बर १९९२। जैन विश्व भारती, मान्य विश्वविद्यालय के प्रबन्ध मंडल की एक बैठक हमारे सान्निध्य में हुई। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में कहा–'वर्तमान युग में सत्ता और सम्पत्ति

"एक व्यक्ति ज्ञान से सम्पन्न होता है, आचार से सम्पन्न नहीं होता, यह अधूरापन है। एक व्यक्ति आचार से सम्पन्न होता है, ज्ञान से सम्पन्न नहीं होता, यह भी अधूरापन है। एक व्यक्ति ऐसा होता है जो ज्ञान और आचार दोनों से ही सम्पन्न नहीं होता। उसे कोई संज्ञा देना मैं पसन्द नहीं करूंगा। किन्तु उस व्यक्ति को मैं परिपूर्ण मानूंगा, जो श्रुतसम्पन्न भी हो और आचारसम्पन्न भी।"

का महत्त्व है, पर आदरभाव नहीं है। सत्ता और सम्पत्ति के अन्तर्द्वन्द्व से व्यथित मानव अध्यात्म की ओर जाना चाहता है। जैन विश्व भारती, मान्य विश्वविद्यालय प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान का मन्दिर है, जो नैतिकता की ईंटों और शलाकाओं पर खड़ा है। समाज, राष्ट्र और विश्व में यह संस्थान नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य स्थापित कर सका तो इसका अपना महत्त्व होगा।'

● २६ नवम्बर १९९२। सुधर्मा सभा में समायोजित कार्यक्रम में विश्वविद्यालय का लोकार्पण हुआ। श्री दलाईलामा को विश्वविद्यालय की ओर से 'विद्यामनीषी' की उपाधि प्रदान की गई। उन्होंने मधुर वक्तव्य दिया और मधुर वक्तव्य सुना। वातावरण अत्यन्त प्रभावकारी रहा।

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में कहा–'विश्व में जब हिंसक वारदातें, युद्ध और संघर्ष आदि होते हैं, तब सब ओर से चिन्ता व्यक्त की जाती है तथा उसे रोकने के प्रयत्न भी होते हैं। पर संघर्ष के मूल बीज की ओर हमारी दृष्टि नहीं जाती। इसलिए मुख्य गौण और गौण मुख्य हो जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में अहिंसा की उपेक्षा हुई है, अतः हिंसा को बढ़ावा मिल रहा है। आज के संदर्भ में अपेक्षा है कि स्ट्रगल फोर सर्वाइव–जीवन के लिए संघर्ष के स्थान पर महावीर के सूत्र 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' को अमलीजामा पहनाया जाए। समस्या का समाधान इसी से हो सकता है।'

● २५ दिसम्बर १९९२। छापर में वृद्ध सेवा केन्द्र रजत जयंती समारोह। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में कहा–'हर व्यक्ति अजर-अमर बनना चाहता है, पर ऐसा होता नहीं है। अवस्था बदलती है। बचपन, जवानी और बुढ़ापा, यह क्रम चलता रहता है। बुढ़ापे में अक्षमता की स्थिति में सेवा की आवश्यकता होती है। सेवा एक सामाजिक दायित्व है। यह सबको एकसूत्रता में बांधनेवाला तत्त्व है। आचार्य भिक्षु ने सेवा की परम्परा की नींव डाली और वह आज भी सुरक्षित है। आचार्य का प्रथम कर्तव्य होता है कि वे संघ में सेवा की व्यवस्था करें।'

● १० जनवरी १९९३। अणुव्रत शिक्षक संसद के अधिवेशन का दूसरा दिन। प्रथम सत्र के चिन्तनीय बिन्दु थे–राष्ट्रीय एकता, महामारी व अकाल आदि संकटकालीन स्थितियों में शिक्षक का दायित्व और पर्यावरण का विकास। शिक्षाशास्त्री श्री बी.पी. जोशी, दैनिक जनसत्ता के प्रधान सम्पादक श्री प्रभाष जोशी, नियाज बेग मिर्जा, सुप्रसिद्ध सर्वोदयी एवं आचार्य कुल के अध्यक्ष बालविजयजी, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा और युवाचार्य महाप्रज्ञ के वक्तव्यों से विचारणीय मुद्दे काफी स्पष्ट हो गए।

● १३ अप्रैल १९९३। आज के प्रवचन का विषय था उपासक दीक्षा। प्रस्तुत विषय की मीमांसा करते हुए युवाचार्यजी ने कहा–'कैसे जीएं? इस प्रश्न का प्रतिवचन है उपासक दीक्षा। साधना का जीवन जीने, ध्यान के विशेष प्रयोग सीखने, शान्त सहवास के सूत्र हस्तगत करने, एक अवस्था के बाद अपने अधिकारों को सीमित करने, कार्यदक्षता को विकसित करने और संघीय दायित्व का सम्यक निर्वहन करने के लिए उपासक दीक्षा की अपनी उपादेयता है।'

● १८ मई १९९३। प्रवचन के समय एक संगोष्ठी आयोजित थी। उसका विषय था–शिक्षा में सदाचार का प्रयोग। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में कहा–'भारतीय संस्कृति का प्राण तत्त्व है सदाचार। सदाचार की बुनियाद है त्याग, उदारता, करुणा, सहिष्णुता और एकता। इन गुणों के कारण आध्यात्मिक पुरुषों का, गुरुजनों का आसन सदा ऊंचा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में भारत अपने अतीत के गौरव को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न करे, यही अपेक्षा है।'

अपूर्व विवेचन शैली

● १२ जुलाई १९९३। आज इतवार की बहार है। रविवासरीय प्रवचन युवाचार्य महाप्रज्ञ का रखते हैं। उनकी विवेचनशैली अपूर्व है। आज प्रवचन के लिए निर्धारित विषय था–लोहो सव्वविणासणो। इस एक आर्षवाक्य पर महाप्रज्ञजी बोले। उनके बोलने की एक शैली थी। उसमें नवीनता थी। युगीन दृष्टि थी। इनकी प्रज्ञा जगी हुई है। विचारों में नवीन स्फुरणा है। आकर्षण है।

● ३ जनवरी १९९४। आज विश्वविद्यालय में शिक्षकों, छात्रों और अधिकारियों के लिए प्रवचनमाला का प्रारंभ किया गया। महाप्रज्ञजी प्रवक्ता थे। बड़ा हॉल था। श्रोताओं से खचाखच भरा था। हम भी साधन के द्वारा वहां गए। पहले विश्वविद्यालय के प्रांगण में घूमे फिर प्रवचन में बैठे। सवा दो बजे से चार बजे तक यह कार्यक्रम चला। वक्तव्य बहुत गंभीर था, प्रभावक था। ऐसे वक्तव्य विद्वानों में, उच्च स्तर के विद्वानों में होते रहें तो अच्छा रहे।

सम्मान श्रम का

● १७ फरवरी १९९४, गुरुवार। आज लोहिया स्टेडियम में जय तुलसी फाउण्डेशन के द्वारा देवेन्द्र भाई कर्णावट को अणुव्रत पुरस्कार दिया गया। कार्यक्रम का संयोजन कन्हैयालाल फूलफगर ने किया। राजस्थान के पूर्व मुख्यमंत्री हीरालालजी देवपुरा, राजस्थान के विधायक, संघप्रवक्ता चन्दनमलजी बैद, जैन विश्व भारती मान्य विश्वविद्यालय के कुलपति रामजीसिंह आदि अनेक वक्ताओं ने देवेन्द्रभाई एवं अणुव्रत के बारे में अपने विचार व्यक्त किए। पुरस्कार की सारी औपचारिकताएं पूरी करने के बाद फाउण्डेशन के अध्यक्ष गुलाबचंदजी चिण्डालिया ने पुरस्कार प्रदान किया।

युवाचार्यजी ने अपने प्रासंगिक वक्तव्य में कहा–'अणुव्रत का पुरस्कार श्रम की बूंद को मिला है। देवेन्द्र भाई के अनेक रूप मेरे सामने हैं। सब कुछ कहने का न तो समय है और न ही अवसर है। मैं तो केवल इतना ही कहूंगा कि देवेन्द्रजी चरित्रसम्पन्न, चिन्तनशील और योजनाकार होने के साथ-साथ उपयोगी व्यक्ति हैं। श्रम के सम्मान को मैं सबसे बड़ा सम्मान मानता हूं।'

इक्कीस दिवसीय प्रवचनमाला

● २१ जून १९९४ से अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवनविज्ञान के संदर्भ में इक्कीस दिवसीय प्रवचनमाला का शुभारंभ हुआ। प्रवचनमाला के मुख्य प्रवक्ता महाप्रज्ञजी हैं और उपसंहारात्मक प्रवचन का दायित्व मेरा है। शुरुआत अच्छी हो गई। प्रवचनमाला के लिए निधारित कुछ विषय इस प्रकार हैं–

१. मानव और सम्बन्ध
२. पारिवारिक सामंजस्य
३. अणुव्रत दर्शन : नए मानव का जन्म
४. अहिंसा प्रशिक्षण : एक सार्वभौम आयाम
५. शारीरिक स्वास्थ्य
६. मानसिक स्वास्थ्य
७. प्रेक्षाध्यान : एक जीवन दर्शन।

साहित्य तेरापंथ का

● २३ जुलाई १९९४, शनिवार। आज चातुर्मास का पहला दिन है। प्रातःकालीन प्रवचन में हम गए। आज का विषय था–तेरापंथ का साहित्य। साधु-साध्वियों के वक्तव्य हुए। साहित्य का विवरण चला।

"आज विश्वविद्यालय में शिक्षकों, छात्रों और अधिकारियों के लिए प्रवचनमाला का प्रारंभ किया गया। महाप्रज्ञजी प्रवक्ता थे। बड़ा हॉल था। श्रोताओं से खचाखच भरा था। हम भी साधन के द्वारा वहां गए। सवा दो बजे से चार बजे तक यह कार्यक्रम चला। वक्तव्य बहुत गंभीर था, प्रभावक था। ऐसे वक्तव्य विद्वानों में, उच्च स्तर के विद्वानों में होते रहें तो अच्छा रहे।"

अच्छा प्रभाव रहा। महाप्रज्ञजी का वक्तव्य सारपूर्ण था। उन्होंने कहा–'तेरापंथ स्थापना दिवसर पर तेरापंथ साहित्य के बारे में कुछ कहना अनिवार्य-सा लग रहा है। तेरापंथ के उद्‌भव को लोग आचारक्रांति का फलित मानते हैं। पर मैं उसकी विचारक्रांति को भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानता। क्योंकि विचारक्रांति के बिना परिवर्तन घटित नहीं हो सकता। आचार्य भिक्षु में शब्द शक्ति की अपरिमेय क्षमता थी। उनके पास शब्दशक्ति थी, इसलिए उन्होंने समाज को प्रभावित किया, उसे गतिशील बनाया। सौभाग्य से तेरापंथ धर्मसंघ को आचार्य भिक्षु से लेकर आज तक शब्द और विचार का मणिकांचन योग उपलब्ध है।'

साहित्य की दृष्टि से महाप्रज्ञजी ने तेरापंथ के तीन महत्त्वपूर्ण युगों की चर्चा की। वह उन्हीं की भाषा में यहां प्रस्तुत है–

१. भिक्षु युग–आचार्य भिक्षु की धर्मक्रांति में जहां तपस्या और साधना से लोगों में आकर्षण पैदा हुआ, वहां उनकी विचारक्रांति से भी लोग बहुत प्रभावित हुए। उसका माध्यम बना साहित्य। आचार्य भिक्षु की शैली नवीन थी, प्रतीक और उपमान विलक्षण थे। उनके साहित्य की प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी।

२. जयाचार्य युग–जयाचार्य के साहित्य-दर्पण में आचार्य भिक्षु सर्वत्र प्रतिबिम्बित हैं। वे भिक्षु के सफल भाष्यकार थे। जयाचार्य का साहित्य विविधमुखी था। आगम, अनुशासन, मर्यादा आदि अनेक विषयों पर उनकी लेखनी अविराम गति से चली।

३. तुलसी युग–परम पूज्य गुरुदेव के आचार्य काल के प्रारंभ के साथ ही एक नए स्वरूप के साथ संघ में साहित्य की स्रोतस्विनी अपनी अजस्र धारा के साथ प्रवाहित होने लगी। इससे पहले भिक्षु युग और जय युग का साहित्य महावीर युग की परम्परा का अनुसरण करता प्रतीत होता है। संवत् २००० से नई धारा का प्रवर्तन होता है। इसके पीछे गुरुदेव का युगान्तकारी स्वस्थ चिन्तन था। तेरापंथ के मौलिक सिद्धांतों को युगभाषा में प्रस्तुत कर आपने युग को नया दृष्टिकोण दिया। धर्म को नई व्याख्या दी, नया चिन्तन और नया क्षितिज दिया।'

● ७ सितम्बर १९९४। अणुव्रत चेतना दिवस का आयोजन। अणुव्रत की चर्चा करते हुए महाप्रज्ञजी ने कहा–'जिसकी संकल्पशक्ति, इच्छाशक्ति और एकाग्रता की शक्ति जागृत होती है, वह सफल होता है। अणुव्रत मानवीय चेतना को जगाने का महान संकल्प है। अपेक्षा है हमारी श्री–आत्मसम्पदा, ह्री–आत्मानुशासन और धी–बुद्धि–ये तीनों शक्तियां जागृत हों।'

● ११ सितम्बर १९९४। खमतखामणा विशिष्ट उपक्रम। महाप्रज्ञजी ने अपने वक्तव्य में आज के दिन का महत्त्व उजागर किया तथा एक आचार्य के रूप में पहली बार सबसे खमतखामणा किया।

● २३ सितम्बर १९९४। आज अध्यात्म साधना केन्द्र में दिनकर अकादमी की ओर से एक संगोष्ठी आयोजित की गई। राष्ट्रकवि श्री रामधारीसिंह दिनकर की छियासिवीं जन्म जयन्ती का प्रसंग था। अकादमी के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र अवस्थी, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, मुनि सुखलाल और अकादमी के महामंत्री श्री शारदा शैरपुरी के संक्षिप्त वक्तव्यों के बाद आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'श्री दिनकर से हमारा गहरा सम्पर्क था। वे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने पहले थे। यद्यपि अकृतज्ञता के इस युग में किसी व्यक्ति की स्मृति बहुत कठिन है, फिर भी आज कृतज्ञभाव से भरे हुए कुछ लोग यहां एकत्र हुए हैं और दिनकरजी को याद कर रहे हैं।'

साधक-समण श्रेणी

२५ दिसम्बर १९९४। तेरापंथ युवक परिषद् आंचलिक सम्मेलन। मुनि मधुकर और मुनि महेन्द्रकुमार ने युवकों के सामने 'साधक-समण श्रेणी' की विस्तार से चर्चा की। महाप्रज्ञजी ने इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा–'अभी साधक-समण योजना प्रस्तुत की गई, वह महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में दो धाराएं रही हैं–श्रमण और वैदिक। श्रमण परम्परा में किसी समय चालीस सम्प्रदाय थे। आज दो बचे हैं–जैन और बौद्ध। बौद्धों के जीवन में एक बार दीक्षा अनिवार्य मानी जाती है, वह अल्पकालीन भी हो सकती है। इसलिए बौद्ध भिक्षु लाखों की संख्या में हैं। साधक-समण योजना सामयिक होने के साथ युग की मांग भी है। समण-समणियों की मांग को देखते हुए लगता है कि श्रावक समाज को नए उपक्रम से प्रशिक्षण लेना होगा। युवक अपनी कर्मजा शक्ति और प्रबुद्धता का अपने लिए तथा समाज के लिए उपयोग कर सकते हैं। एक परिवार का एक सदस्य यदि साधक-समण श्रेणी में प्रवेश करेगा तो उसका प्रभाव पूरे परिवार पर पड़ेगा, चिन्तन स्वस्थ होगा, जीवनशैली उन्नत होगी। यह न तो आयोजन और न समारोह, केवल त्याग और बलिदान की मांग है। इस प्रक्रिया से निश्चित रूप से स्वयं का, समाज का और राष्ट्र का भला होगा।'

श्रावकोत्तम : अर्थपूर्ण संबोधन

● १ जनवरी १९९५। श्रावक सम्मेलन का आयोजन। महाप्रज्ञजी ने श्रावक के तीन मॉडल–पूणिया, आनन्द और श्रेणिक की चर्चा करते हुए कहा–'आज भी हमारे सामने पूणिया जैसे श्रद्धालु और श्रावकचर्या में जागरूक श्रावक हैं। इस संदर्भ में मैं लाडनूं निवासी सागरमलजी खटेड़ (जो पूज्य गुरुदेव के संसारपक्षीय ज्येष्ठ भ्राता हैं) का उल्लेख करना चाहता हूं। सागरमलजी धनकुबेर व्यक्ति नहीं हैं। उन्होंने पीएच.डी. भी नहीं की है। पर उनमें इतने विरल गुण हैं, जो कम व्यक्तियों में मिलते हैं। वे विनम्र हैं, भद्र हैं, मिलनसार हैं और व्यावहारिक हैं। जो व्यक्ति एक बार लाडनूं जा आता है, उसे उनका स्नेहभरा आतिथ्य सदा याद रहता है। वहां जो भी उनसे मिलने जाता है, उनका आतिथ्य लिए बिना नहीं लौटता होगा। लाडनूं में प्रवासी वृद्ध साध्वियों की संभाल का भी वे पूरा ध्यान रखते हैं। इतना सब कुछ वे अपना आत्मधर्म मानकर करते हैं। उनकी अपनी श्रावकचर्या भी व्यवस्थित है। उपवास, सामायिक, जप, स्वाध्याय, दर्शन, उपासना आदि का क्रम सामान्यतः बराबर चलता है। मेरी दृष्टि में वे पूणिया श्रावक के भाई हैं। अतः आज मैं इस परिषद में सागरमलजी खटेड़ को 'श्रावकोत्तम श्रावक सागरमलजी खटेड़' इस संबोधन से संबोधित करता हूं।'

महाप्रज्ञजी के वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए मैंने कहा–'ये स्वयं नए हैं, इसलिए इन्होंने नए अलंकरण का प्रयोग किया है। उत्तम श्रावक धर्म की आराधना की दृष्टि से इनका यह संबोधन अर्थपूर्ण है। महाप्रज्ञजी ने आज सचमुच ही एक नया काम किया है। मैंने तो सागरमलजी के विषय में कभी सोचा ही नहीं। 'श्रावकोत्तम' शब्द गरिमापूर्ण है। मैं भी इसका अनुमोदन करता हूं।'

उत्कृष्ट कोटि का काव्य

● ९ जून १९९५। कालूयशोविलास का वाचन शुरू हुआ। कुछ समय बाद प्रवचन में जाने से पूर्व वन्दना करने के लिए महाप्रज्ञजी वहां आ गए। उन्होंने साधु-साध्वियों को अध्ययन की विशेष दृष्टि देते हुए कहा–'कालूयशोविलास हमारे धर्मसंघ का उत्कृष्ट कोटि का काव्य है। इस काव्य की रचना करके पूज्य गुरुदेव ने राजस्थानी शब्दकोश के भंडार को अत्यधिक समृद्ध बनाया है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास

"कालूयशोविलास हमारे धर्मसंघ का उत्कृष्ट कोटि का काव्य है। इस काव्य की रचना करके पूज्य गुरुदेव ने राजस्थानी शब्दकोश के भंडार को अत्यधिक समृद्ध बनाया है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्यों में संस्कृत भाषा का, सूरदास ने व्रज भाषा का प्रयोग किया, उसी प्रकार गुरुदेव ने राजस्थानी भाषा में संस्कृत शब्दों का मन खोलकर उपयोग किया है।"

ने अपने काव्यों में संस्कृत भाषा का भरपूर उपयोग किया, सूरदास ने व्रज भाषा का प्रयोग किया, उसी प्रकार गुरुदेव ने राजस्थानी भाषा में संस्कृत शब्दों का मन खोलकर उपयोग किया है। इस काव्य की भाषा संस्कृत-प्रधान राजस्थानी है। इस काव्य के सम्पादन का कार्य तथा इस पर विशेष दृष्टियों से समीक्षात्मक कार्य हमें करना है। पूज्य गुरुदेव जब इतना श्रम करके कालूयशोविलास का वाचन करा रहे हैं तो मैं चाहता हूं कि आप भी गुरुदेव के श्रम को सार्थक करने का प्रयास करें। कालूयशोविलास ऐसा महाकाव्य है, जिस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से काम किया जा सकता है। भाषाशास्त्रीय अध्ययन, समाजशास्त्रीय अध्ययन, मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा काव्य, अलंकार, छन्द, अनुप्रास, तत्त्वविवेचन, दार्शनिक पृष्ठभूमि, संस्कृत शब्दों का राजस्थानीकरण आदि-आदि अनेक बिन्दुओं को सामने रखकर अध्ययन किया जाएगा तो महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी।'

सबसे बड़ा उपहार

● ११ नवम्बर १९९६। लोकार्पित कृतियों के संदर्भ में आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–हमारे सामने दो महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं–अर्हत-वाणी और श्रावक-संबोध। अर्हत्-वाणी को देखकर, पढ़कर मुझे लगता है कि आज महावीर को महावीर के द्वारा याद किया गया है। दूसरी कृति भगवान महावीर द्वारा प्रसारित अगार धर्म का पालन करनेवाले श्रावक समाज से संबंधित है। इसमें श्रावक धर्म पर सांगोपांग विश्लेषण किया गया है। अब तक श्रावकों के लिए बहुत कम लिखा गया है। 'श्रावक-संबोध' कृति श्रावकों के लिए महत्त्वपूर्ण है। आज भगवान महावीर के निर्वाण दिन पर महावीर के चरणों में यह सबसे बड़ा उपहार है।'

लेखक ऋषि बने

● १५ नवम्बर १९९६। त्रिदिवसीय अणुव्रत लेखक अभिमुखीकरण शिविर। कादम्बिनी के सम्पादक श्री राजेन्द्र अवस्थी कार्यक्रम के अध्यक्ष थे। प्रमुख वक्ता के रूप में उपस्थित थे कालचक्र के संपादक श्री विनीत नारायण। प्रधान अतिथि का दायित्व वहन किया, श्री दुर्गाप्रसाद नौटियाल ने। श्रीमती आशा रानी व्होरा भी उपस्थित थी। प्रथम सत्र में चर्चा का विषय था–देश के लेखक अपने पाठकों को नैतिक मूल्यों से प्रभावित कैसे करें?

महाप्रज्ञजी ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा–'पण्डित वह कहलाता है, जो विरत हो, संयत हो और जिसमें तत्त्व-अन्वेषण की बुद्धि हो। अब यह परिभाषा बदल गई है। आज पंडित के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित वह करता है, जो धनाधीशों और सत्ताधीशों की खुशामद करता है। मेरा अपना दृष्टिकोण है कि लेखक पहले ऋषि बने। यद्यपि लेखन कार्य वर्तमान की चिन्ता से जुड़ा होता है। पर लेखक का अपना लक्ष्य महत्त्वपूर्ण होता है। लक्ष्य के बिना लेखक कैसा? लक्ष्य के बिना लिखा गया मात्र लेखनी-विलास होगा। वह दिशादर्शन नहीं दे सकेगा। नैतिक मूल्य समाज का मूल आधार है। यही जीवनी शक्ति है। लेखक समाज की नैतिक चेतना को जागृत करे, यह एक बड़ी अपेक्षा है।'

योग की शक्ति

● २५ नवम्बर १९९६। आज हमारे सान्निध्य में एक संगोष्ठी आयोजित थी। उसका विषय था–भारतीय संस्कृति एवं ध्यान। इस संगोष्ठी में इटली के योग सेन्टर ओकी डो योगा के ग्यारह सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल ने भाग लिया। महाप्रज्ञजी ने अपने उद्बोधन में कहा–'योग का मर्मज्ञ वही बन सकता है,

जिसने शरीर, मन, भाव और उससे भी परे आत्मा की अनुभूति की है। यदि हमारी भावनाएं दूषित हैं तो शरीर एवं मन दोनों स्वस्थ नहीं रह सकते। यदि सर्वेन्द्रिय-संयम मुद्रा का अभ्यास किया जाए तो आत्मा की अनुभूति के स्तर तक पहुंचना संभव है। योग के प्रयोग में इतनी शक्ति है कि व्यक्ति बाहरी जगत और इन्द्रिय चेतना में आनेवाले तनावों से मुक्ति पा सकता है। शरीरप्रेक्षा, अनुप्रेक्षा, कायोत्सर्ग आदि ऐसे प्रयोग हैं, जिनसे जीवन को ऊर्जा मिलती है।'

अनेकांत : सृजन का सूत्र

● २३ दिसम्बर १९९६। जैन विश्व भारती संस्थान मान्य विश्वविद्यालय के द्वितीय दीक्षान्त समारोह का आयोजन। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे श्री जगतसिंह मेहता। आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में कहा–'जैन विश्व भारती मान्य विश्वविद्यालय जैन विद्या का प्रथम विश्वविद्यालय है। इसका उद्देश्य है–जैन दर्शन व जैन तत्त्वज्ञान से मानव जाति को परिचित कराना। अपना अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। इस सामुदायिक चेतना के जागरण का प्रथम सूत्र है–अनेकान्त दृष्टिकोण। यह विश्व की ज्वलन्त समस्याओं का समाधायक दृष्टिकोण है और सृजन का सूत्र है। विरोधी युगल के अस्तित्व को स्वीकार करनेवाले अनेकान्त सिद्धान्त को हमारे विद्यार्थी समझ लें तो बहुत भला हो सकता है।.... गुरुदेव का सपना है कि यह विश्वविद्यालय अपनी महत्त्वपूर्ण पहचान बनाए और आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित करे, जिससे समग्र मानवता का लाभ हो।'

"योग का मर्मज्ञ वही बन सकता है, जिसने शरीर, मन, भाव और उससे भी परे आत्मा की अनुभूति की है।"

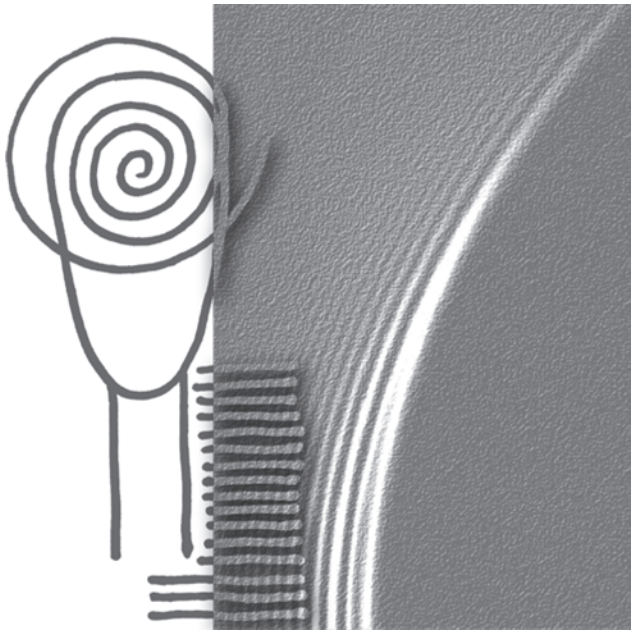

६

अध्यात्म योग की नई दिशाएं

परिवर्तन की रेखा

मेरा सौभाग्य है कि गुरुदेव मेरे स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखते थे। एक बार मैं अस्वस्थ हो गया। वह अस्वास्थ्य नई दिशा और नई दृष्टि का हेतु बना।

● वि.संवत् २००५। चाड़वास प्रवास में मातादीन शर्मा नामक प्राकृतिक चिकित्सक ने दर्शन किए। वह कोई उच्च कोटि का चिकित्सक नहीं था फिर भी कुछ बातों की उसे अच्छी जानकारी थी। उन्हीं दिनों मुनि नथमलजी अस्वस्थ हो गए। लगभग एक महीने से उनको प्रतिश्याय था। ज्वर भी रहने लगा। कई उपचार करने पर भी ठीक नहीं हुए। मिट्टी और पानी से प्राकृतिक चिकित्सा की। तीन दिनों में ठीक हो गए। इससे अन्य साधुओं को प्रेरणा मिली। वे थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करने लगे। उस समय से हमारे खान-पान, रहन-सहन आदि में कुछ-कुछ परिवर्तन आने लगा। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी।

आहार संयम का प्रयोग

● जनवरी १९६२, श्रीडूंगरगढ़। नए प्रयोगों की जानकारी करना और उन्हें अमल में लाना मेरी

रुचि का विषय रहा है। मैं स्वयं प्रायोगिक जीवन जीना चाहता हूं और संघ में वैसा ही देखना चाहता हूं। साधु-साध्वियों का जीवन उदात्त रहे, इस दृष्टि से आध्यात्मिक उपायों के अलावा और भी कोई प्रयोग हो सकते हैं क्या? इस प्रश्न पर हम विचार कर रहे थे। क्योंकि कर्मों के उदय और क्षयोपशम में द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव भी निमित्त बनते हैं। मेरी विचार-यात्रा में मुनि नथमलजी और वैद्य मिश्रीमलजी साथ थे। चिंतन का निष्कर्ष यह आया कि नवदीक्षित साधु-साध्वियों को दही के साथ कत्था दिया जाए और मावे के पदार्थ, उड़द, लाल मिर्च, तली हुई चीजें आदि निषिद्ध रखी जाएं। आहार-शुद्धि का प्रयोग १५ जनवरी १९६२ से प्रारंभ कर दिया गया।

● १७ जनवरी १९६३। मुनि नथमलजी उन दिनों ध्यान-साधना पर विशेष बल दे रहे थे। वे लगातार दो-दो घण्टे ध्यान करते। उन्होंने बताया कि ध्यान से कई नए तथ्य सामने आने की संभावना है। कुछ वर्षों से साधु-साध्वियों में भी अध्यात्म तथा योग-साधना की ओर आकर्षण बढ़ रहा है। अच्छी बात है, बहुत अच्छी बात है, परम प्रसन्नता की बात है।

अपेक्षा प्रशिक्षण की

● १८ जनवरी १९६३। मध्याह्न में मुनि नथमलजी, बुद्धमलजी, जंवरीमलजी आदि कुछ साधु मेरे पास बैठे थे। सिंघाड़ों के प्रशिक्षण की दृष्टि से चिन्तन चला। अध्यात्म, समाज, शिक्षा, राजनीति आदि कोई भी क्षेत्र हो, प्रशिक्षण की अपेक्षा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हम जनता से वृत्तियों के परिष्कार की बात करते हैं। साधु-साध्वियों के लिए भी यह आवश्यक है कि वे पहले अपनी वृत्तियों का परिमार्जन करें। परिमार्जन की प्रक्रिया प्रशिक्षण द्वारा ही व्यावहारिक बन सकती है।

● १३ दिसम्बर १९६३ को मध्याह्न में साधु-साध्वियों की सभा में मुनि नथमलजी ने 'कायोत्सर्ग' का विशद विवेचन करते हुए कहा–'कायोत्सर्ग शिथिलीकरण का प्रयोग है और ध्यान की पूर्व प्रक्रिया है। साधु-साध्वियों को इसका अभ्यास करना चाहिए। कर्मक्षय के संदर्भ में कायोत्सर्ग को काठ पर करोत का प्रयोग माना गया है।'

"अध्यात्म, समाज, शिक्षा, राजनीति आदि कोई भी क्षेत्र हो, प्रशिक्षण की अपेक्षा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हम जनता से वृत्तियों के परिष्कार की बात करते हैं। साधु-साध्वियों के लिए भी यह आवश्यक है कि वे पहले अपनी वृत्तियों का परिमार्जन करें। परिमार्जन की प्रक्रिया प्रशिक्षण द्वारा ही व्यावहारिक बन सकती है।"

अनुष्ठान

● १९ जुलाई १९६३। मदनचन्दजी गोठी ने एक अनुष्ठान शुरू करने का सुझाव दिया। उसके साथ कुछ मंत्रों का जप करना था। अनुष्ठान करने का उद्देश्य विश्वशांति अथवा और भी कुछ हो सकता है, ऐसा उनका कहना था। इस विषय में चिन्तन करने के लिए मुनि नथमलजी को बुलाया और उन्हें अनुष्ठान की रूपरेखा बनाने का निर्देश दे दिया। नथमलजी का चिन्तन बहुत अच्छा है। वृत्ति योगनिष्ठ है। ध्यान में अभिरुचि है। कायोत्सर्ग के रसिक हैं। श्रद्धालु हैं। संकल्प के दृढ़ हैं। ऋजु हैं। साधनाशील हैं। अतएव इनका मुझे बहुत सहारा है।

● २१ जुलाई १९६३ को मध्याह्न में साधुओं की एक विशेष गोष्ठी बुलाई गई। साधुओं को अनुष्ठान के बारे में जानकारी दी। श्रावण शुक्ला प्रतिपदा (२१ जुलाई) से संवत्सरी तक वह अनुष्ठान चलाया। उस अवधि में प्रत्येक साधु ने दो मंत्रों की तीन-तीन माला का जप किया। उसी समय 'ॐ शान्ति ॐ शान्ति' और 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'–इन दो मंत्रों का सामूहिक जप किया गया। अच्छी एकाग्रता रही।

अनुभव और कल्पना

२२ जुलाई १९६३। इन वर्षों में मैं बहुत बार अनुभव करता हूं कि जैनदर्शन की साधना पद्धति बहुत गहरी तथा जीवन को नवजीवन देने वाली है। मूलतः इस बारे में चिन्तन-मन्थन छूट गया। वह क्यों और कब छूटा? कहना कठिन है। जबसे आगम-संशोधन का काम शुरू हुआ तब से इस विषय में चिन्तन चलता है और कुछ नया तत्त्व मिलता भी है। मुनि नथमलजी की पैनी प्रतिभा से जो काम हुआ है और हो रहा है, वह मन को बड़ा सन्तोष दे रहा है। इनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकासोन्मुख हो रही है। मैं चाहता हूं, ऐसे अनेक साधु हमारे गण में हों, जिनसे गण की प्रतिष्ठा को बल मिले। मन में कल्पना बहुत उठती है। देखना यह है कि उसमें सफलता कितनी मिलती है।

सामूहिक योगासन का प्रयोग

● ३ सितम्बर १९६३। विगत कुछ समय से मैं यौगिक क्रियाओं पर अधिक बल दे रहा था। साधु-साध्वियों की प्रशिक्षण गोष्ठियों में भी इस सम्बन्ध में प्रेरणा दी गई। उसका असर भी हुआ, पर वातावरण नहीं बना। वातावरण के अभाव में कोई भी प्रवृत्ति लम्बे समय तक नहीं चल पाती। यह सोचकर कुछ साधुओं की एक विशेष गोष्ठी बुलाई। उसमें मैंने कहा–'साधुओं की साधना के लिए स्वास्थ्य को ठीक रखना अत्यन्त अपेक्षित है। इस दृष्टि से कुछ सरल योगासन काफी उपयोगी हैं। पर उनमें श्रद्धा, सातत्य और लगन की अपेक्षा है। सामूहिक रूप में योगासन का प्रयोग किया जाए तो वह अधिक प्रभावी हो सकता है। इसमें रुचि रखने वाले व्यक्ति तो संभागी बनेंगे ही, औरों को भी रस लेकर अनुभव करना चाहिए। इसके लिए एक स्वतंत्र प्रक्रिया निर्धारित की गई है।' मुनि नथमलजी ने उस प्रक्रिया की संक्षिप्त जानकारी दी। उसमें कुछ व्यायाम, कुछ आसन और कुछ विशेष क्रियाएं रखी गईं, जैसे–

१. सोड्डीयान पद्मासन
२. अग्निसार
३. उदर-कोणासन
४. ऊर्ध्वाकर्षण
५. उदरमर्दन
६. हस्त व्यायाम
७. त्रिबन्ध
८. गल व्यायाम (पार्श्व-नमन, चक्राकार)
९. चक्षु व्यायाम (भृकुटिदर्शन, पार्श्वदर्शन, नासाग्रदृष्टि, नाभिदर्शन आदि)।

● ४ सितम्बर को प्रातः सामूहिक रूप में यौगिक क्रियाओं का अभ्यास शुरू किया। प्रथम दिन उसमें पन्द्रह साधुओं की संभागिता रही।

● जनवरी १९६४। 'अध्यात्म' साधना का मूल आधार है। इसका विकास करने के लिए विशेष प्रयत्न की अपेक्षा है। एक बार की प्रेरणा से सबमें जागृति आ जाए, यह संभव नहीं लगता। हो सकता है, निकट भविष्य हमारे अतीत से अधिक उज्ज्वल रहे। पर ऐसा कहने मात्र से कुछ नहीं होगा। इसके लिए योजनाबद्ध काम करना होगा, खपना होगा, तपना होगा, जपना होगा, तब कहीं सपना सफल होगा। मुनि नथमलजी को इसका विशेष श्रेय मिलना चाहिए। इन कामों में उनकी सहज प्रेरणा रही है। वे स्वयं बहुत अंतर्मुखी बन रहे हैं। ध्यान और प्राणायाम उनके खास रुचि के विषय हैं।

● विक्रम संवत् २०२० के लाडनूं चातुर्मास्य कै दौरान हमने कुछ यौगिक क्रियाओं का अभ्यास प्रारंभ किया। योगासन भी आवश्यक हैं। किन्तु वे सबके लिए अनुकूल नहीं रहते। क्रियाएं बड़ी सहज और सरल हैं।

उन्हें करने में लगभग आधा घण्टा समय लगता। 'अधिकस्य अधिकं फलम्'। आश्विन मास के कृष्णपक्ष में हमने सामूहिक रूप में वह प्रयोग शुरू किया। माघ महीने तक जो परिणाम सामने आया, वह इस प्रकार है–

- शरीर पर किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़ा।
- यौगिक क्रियाएं करने में सहजता रही।
- स्वास्थ्य पर बड़ा सुन्दर प्रभाव रहा।
- पेट इतना हल्का रहा मानो फूल हो।
- पेट इतना मुलायम रहा मानो रेशम का लच्छा हो।

इन सब कारणों से हमारी आस्था में दृढ़ता आती रही। सामूहिक प्रयोग देखने में भी आकर्षक लगा।

यात्रा आदि विशेष कारणों के अतिरिक्त वह क्रम नियमित रूप से चला। स्वाध्याय, ध्यान और जप के प्रयोग भी बराबर चलते रहे। उस उपक्रम को चलते हुए एक वर्ष पूरा होने के उपलक्ष में साधना-गोष्ठी का समायोजन किया गया। वि.सं. २०२१, आश्विन शुक्ला एकम (२२ सितम्बर, १९६४) को मध्याह्न में वह गोष्ठी थी। अनेक साधु-साध्वियों ने अपने रोचक और प्रेरक अनुभव सुनाए।

गोष्ठी में समवेत साधु-साध्वियों को संबोधित करते हुए मैंने कहा–'साधना हमारा प्राण है। प्राण से अधिक हमारे लिए और क्या हो सकता है? वह हमारा सर्वस्व है। उसका संरक्षण व विकास हमारा प्रमुख कर्तव्य है। इसका पालन तभी संभव है, जब हमारे रहन-सहन व जीवन के हर व्यवहार में साधना का प्रतिबिम्ब रहे। मैं उस साधना को विशिष्ट मानता हूं, जो समय-सापेक्ष न रहकर जीवन की सहज वृत्ति बन जाए। हमारी साधना केवल योगासन, ध्यान, स्वाध्याय और जप तक सीमित नहीं है। जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति हमारी साधना है। इसलिए हम जिस समय जो काम करें, उसमें तन्मय बन जाएं, यही योग है। तम्मणे तच्चित्ते तल्लेसे आदि एकाग्रता के सूत्रों से हमारी क्रियाएं अनुस्यूत रहें, यही योग साधना है।' अपने वक्तव्य में साधना के विविध पहलुओं का स्पर्श करते हुए मैंने स्वभाव-परिवर्तन, योगासन और 'भावियप्पा साधनाक्रम' के प्रति गहरी निष्ठा के साथ अभ्यास चालू रखने की प्रेरणा दी। एक वर्ष तक हमारी योगासन-प्रक्रिया पूरी व्यवस्थित रही। योगासन, ध्यान, प्राणायाम आदि प्रयोगों में अच्छा आनन्द आया। इस विषय में आगे और विकास करना है। गत वर्ष मुझे जो आनन्दानुभव हुआ, वह अपूर्व है। इसका श्रेय मुनि नथमलजी को दिया जा सकता है, क्योंकि वे इस काम में रुचि ले रहे हैं। योग-साधना की दृष्टि से द्वितीय वर्ष में प्रवेश के समय साधु-साध्वियों में विशेष उत्साह परिलक्षित हुआ।'

- १६ जून १९६४ को प्रातः योगाभ्यास आश्रम (दिल्ली) के संचालक देवीदयालजी अपने दल के साथ आए। योग के संदर्भ में वार्तालाप हुआ। उन्होंने यौगिक क्रियाओं के प्रयोग प्रस्तुत करते हुए कहा–'सर्वांगासन, वीरासन, शीर्षासन आदि योगासनों से अनेक प्रकार की बीमारियों से छुटकारा पाया जा सकता है।' मुनि नथमलजी ने भी हमारे यहां प्रचलित यौगिक प्रक्रियाओं का दिग्दर्शन कराया। शरीर के प्रत्येक अंगोपांग के लिए उपयोगी, सहज और सरल यौगिक क्रियाओं की प्रस्तुति के साथ उन्होंने स्वाध्याय, ध्यान, मनोनिग्रह और जप के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला।'

- १४ जुलाई १९६४। वयोवृद्ध स्वामी परमानन्दजी आए। वे पूज्य कालूगणी के युग से परिचित थे। बड़े अनुभवी बाबा हैं। उनको मुनि नथमलजी से मिला दिया। उस मिलन से दोनों खुश हुए।

"एक वर्ष तक हमारी योगासन-प्रक्रिया पूरी व्यवस्थित रही। योगासन, ध्यान, प्राणायाम आदि प्रयोगों में अच्छा आनन्द आया। इस विषय में आगे और विकास करना है। गत वर्ष मुझे जो आनन्दानुभव हुआ, वह अपूर्व है। इसका श्रेय मुनि नथमलजी को दिया जा सकता है, क्योंकि वे इस काम में रुचि ले रहे हैं।"

साधना : उत्तरोत्तर विकास

साधना की परम्परा आचार्य भिक्षु से प्रारंभ होकर क्रमशः आगे बढ़ रही थी। जयाचार्य ने उसमें नया मोड़ दिया। परम्परा आगे बढ़ी और आचार्य तुलसी उस साधना को शिखर तक ले जाने में सफल हुए। मेरा सौभाग्य है कि मैं भी उसमें थोड़ा सा निमित्त बना। इस विषय में गुरुदेव की अनुभूति है–

• फरवरी १९६५। 'मुनि नथमलजी का योग-साधना में वर्षों से गहरा विश्वास है। वे प्रतिदिन नियमित रूप से दो-तीन घंटे इसमें लगाते हैं। बैठते, उठते, चलते, हर समय साधना इनके जीवन का अंग बन गई है, ऐसा लगता है। वर्तमान में जिन-जिन साधुओं में योग-साधना के प्रति निष्ठा है, उनमें पहला स्थान इनका है। इससे इनका दिमाग इतना उर्वर बन गया है कि हर विषय में ये नया चिन्तन करते हैं। मुझे इनका बड़ा सहारा है। ये नाम, ख्याति, प्रशंसा, पद, उपाधि आदि की भावना से काफी अलिप्त रहते हैं। इसमें इनको आत्मतोष मिलता है। इन उपाधियों से व्यक्ति संकीर्ण बनता है, ऐसी इनकी मान्यता है। इससे मुझे भी बड़ा आनन्द मिलता है। मर्यादा-महोत्सव-शताब्दी-समारोह की सफलता में भी इनका विशेष सहयोग रहा है।

• १९ जुलाई १९६५। चण्डीगढ़ से प्रिंसिपल डॉ. मोहनसिंह आए। डॉ. मोहनसिंह की बात सुनकर लगा कि योगसाधना में उनकी विशेष रुचि है। वे उस क्षेत्र में कुछ काम करना चाहते हैं। २१ जुलाई को प्रातः लगभग छह बजे वे फिर आए। मुनि नथमलजी आदि कुछ साधु और कुछ साध्वियों के साथ पौन घण्टे तक कुछ प्रयोग किए। सात दिन तक एक ही स्थान पर उसी समय नियमित रूप से प्रयोग करने की बात निश्चित हुई। ऐसा लगा कि उस क्रम से योग की कोई नई कड़ी जुड़ सकेगी।

मौन का प्रयोग

• दिसम्बर १९६५। उन दिनों मुनि नथमलजी मंगलवार को मौन रखते थे। उन्होंने कहा–'मौन से बोलने की आवश्यकताओं का अल्पीकरण होता है तथा यह भी अनुभव हो जाता है कि कहां-कहां अनावश्यक बोला जाता है।' इस प्रकार का कोई भी प्रयोग हो, उससे साधना का क्रम बढ़ता ही है। उन्होंने जैन योग के बारे में एक लेख भी लिखा है। उसमें साधना की क्रमिक पद्धति का निरूपण हुआ है। उस संदर्भ में मैंने कुछ साधुओं से कहा–'पातंजल योग केवल ग्रंथ में ही नहीं है, अनेक व्यक्ति उसके अभ्यासी और प्रयोक्ता भी हैं। मैं चाहता हूं कि जैनयोग के भी साक्षात साधक उपलब्ध हों, इस दिशा में सलक्ष्य अभ्यास और प्रयोग करने की अपेक्षा है।'

प्रणिधान कक्ष

• २० जनवरी १९६६। साधु-साध्वियों की अन्तरंग गोष्ठी में पंचदिवसीय प्रणिधान-कक्ष का प्रारम्भ हुआ। उस वर्ष कक्ष का आयोजन केवल गोष्ठियों के रूप में रखा गया था। मेरे वक्तव्य और सामूहिक ध्यान के बाद 'पञ्चसूत्रम्' के चर्यासूत्र का वाचन हुआ। मध्याह्न की गोष्ठी में 'प्राण विजय' विषय पर मुनि नथमलजी का वक्तव्य काफी प्रभावी रहा। प्रणिधान-कक्ष की अन्य गोष्ठियों में आलम्बन सूत्र, शान्तसहवास सूत्र तथा मर्यादावलि का वाचन हुआ। बीच-बीच में कुछ प्रश्नोत्तर भी चले। ऐसी कक्षाओं की समायोजना से साधना को बल मिलता है। साधना पुष्ट होने के बाद साधक के विकास की दिशाएं प्रशस्त हो जाती हैं।

● १७ से २७ जनवरी १९६७ तक 'प्रणिधान कक्ष' का व्यवस्थित क्रम चला। बीच में विहार के कारण एक दिन का अवकाश रहा। उसकी पूर्ति आगे की गई। प्रातः और रात का समय प्रयोग के लिए था। पश्चिम रात्रि में आचारांग सूत्र का पांचवां अध्ययन चला। मुनि नथमलजी ने ध्यान का समय बदलकर उस समय वाचन का क्रम प्रारम्भ किया। मध्याह्न में निर्धारित विषयों पर गोष्ठियां हुईं। मंगल संगान के साथ गोष्ठी का प्रारम्भ होता। विषय की प्रस्तुति साधु-साध्वियों द्वारा दी जाती। निकाय-सचिव मुनि नथमलजी के वक्तव्य के बाद कुछ समय तक प्रश्नोत्तर का क्रम चलता। मेरा प्रवचन उपसंहारात्मक होता। गोष्ठी का समापन ध्यान के साथ किया जाता। अच्छा आनन्द रहा। बहुत प्रभावोत्पादक वातावरण रहा। मुनि नथमलजी ने कहा–'ऐसा लगता है कि अब आप बौद्धिकता से ऊपर उठ गए, सहजता में आ गए।'

साधना के लिए निर्देश

● १० मार्च १९६९। कन्याकुमारी। तीन समुद्रों की साक्षी से चतुर्विध संघ को संबोधित कर मैंने कहा–मुनि नथमलजी शिक्षा, साधना और साहित्य के क्षेत्र में वर्षों से अपनी सेवाएं दे रहे हैं। साधना उनकी रुचि का विषय है। उन्होंने विशेष साधना के लिए अनेक बार अपने विचार रखे हैं। वे प्रतिदिन तीन घंटे ध्यान करते हैं। उनकी इस तड़प को देखते हुए उन्हें अनुमति देता हूं कि वे उचित समय और क्षेत्र देखकर अपनी साधना प्रारंभ कर दें।

अन्न और नमक का वर्जन

● १६ सितम्बर १९६९। सांवत्सरिक उपवास का पारणा करने के बाद मुनि नथमलजी आए और बोले–'आपकी अनुज्ञा हो तो मैं अब निरन्न रहकर साधना करना चाहता हूं। मैंने जब से नमक छोड़ा है, अच्छी अनुभूति हो रही है। अन्न लेता हूं तो रोटी में नमक खाना पड़ता है। उसे भी छोड़कर देखने की इच्छा है।' मैंने कहा–'अन्न छोड़ने से दुर्बलता नहीं आएगी क्या?' मुनि नथमलजी बोले–'आ सकती है, पर हमें जिस साधना में चलना है, उसके लिए वैसा करना जरूरी है।'

ध्यान योग के लिए मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावना तथा खाद्य-संयम नितान्त अपेक्षित है। अन्यथा ध्यान होगा ही नहीं। साधना के बारे में और भी कई बातें हुईं। मुनि नथमलजी ने उस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा–'गुरुदेव! मुझे जो काम नहीं करना चाहिए, उसका आभास अपने-आप हो जाता है। ऐसा क्यों होता है, मैं नहीं जानता। ब्रह्मचर्य का विवेक से पालन करना एक बात है। साधक के लिए यह काम्य है कि उसके लिए वह सहज सध जाए। अब मैं अपने लिए यही अनुभव कर रहा हूं।' विशेष साधना का लक्ष्य सामने रखकर उन्होंने संवत्सरी से केवल दूध और फलों पर रहना तय किया। इस प्रयोग के लिए मेरा पूरा अनुमोदन है। मैंने भी एक सप्ताह के लिए केवल दूध और फलों पर रहने का लक्ष्य बनाया। मेरा प्रयोग इस समय स्वास्थ्यपरक ही है, ध्यानपरक नहीं।

चिन्तन अध्यात्म की विशिष्ट विधि का

● २१ दिसम्बर १९६९। रात्रि के समय निकाय सचिव मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमल्लजी मेरे उपपात में बैठे थे। अनायास ही एक चिन्तन-गोष्ठी हो गई। उसका संबंध अध्यात्म की विशिष्ट विधियों के साथ था। चिन्तन के कुछ बिन्दु यहां प्रस्तुत हैं–

◈ अध्यात्म की अनेक विधियां अन्यत्र विकीर्ण हैं, उनको प्राप्त करना अपेक्षित प्रतीत होता है।

"मुनि नथमलजी का योग-साधना में वर्षों से गहरा विश्वास है। वे प्रतिदिन नियमित रूप से दो-तीन घंटे इसमें लगाते हैं। बैठते, उठते, चलते, हर समय साधना इनके जीवन का अंग बन गई है, ऐसा लगता है। वर्तमान में जिन-जिन साधुओं में योग-साधना के प्रति निष्ठा है, उनमें पहला स्थान इनका है। इससे इनका दिमाग इतना उर्वर बन गया है कि हर विषय में ये नया चिन्तन करते हैं। मुझे इनका बड़ा सहारा है।"

◈ अध्यात्म का यथेष्ट विकास नहीं होगा तो संघ का गौरव कैसे बढ़ेगा?

◈ अध्यात्म की विशिष्ट विधियों को हस्तगत करने के लिए कोई उपयुक्त साधु गण-व्युत्सर्ग कर सकता है क्या?

◈ गण-व्युत्सर्ग की विधि क्या होनी चाहिए?

◈ गण-व्युत्सर्ग करने वाले का गण से क्या संबंध होगा? गण उसे क्या समझेगा?

◈ उससे गण को कोई विशिष्ट उपलब्धि हो सकती है या नहीं?

उक्त बिन्दुओं पर हमारा चिन्तन चला। गण की भावी नीतियों के सन्दर्भ में भी मंथन किया। लगभग दो घंटे का समय लगा।

● २० अगस्त १९७१। आज संसार का वातावरण भी कुछ ऐसा है। यहां हर आदमी शान्ति पाना चाहता है। जहां कहीं शान्ति मिलने की संभावना हो, व्यक्ति वहां पहुंच जाता है। यदि जैनों के पास मानसिक शान्ति की प्रक्रिया नहीं रहेगी, उसकी साधना-सामग्री अनुपलब्ध होगी तो जैन लोग उसकी खोज में अन्यत्र कहीं भी जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मैंने अपना यह चिन्तन मुनि नथमलजी के सामने रखा। उन्होंने इस बात के लिए संपूर्ण स्वीकृति दी। इसी संदर्भ में हम जैन विश्व भारती पर बल दे रहे हैं, उपासक संघ पर बल दे रहे हैं और साधना केन्द्र पर बल दे रहे हैं।

अध्यात्म की साधना

मैंने अध्यात्म को पढ़ा नहीं, समझने का प्रयत्न भी नहीं किया किन्तु अध्यात्म ने स्वयं मेरा वरण किया–यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं।

मुझे अनुभव होता रहा कि मैं श्वास ले रहा हूं बाह्य जगत में और मेरा प्राण स्पन्दित हो रहा है भीतर के जगत में।

मैं कभी-कभी मेरे प्रयोग और मेरी भावना गुरुदेव के समक्ष प्रस्तुत करता और उसी का प्रतिबिम्ब गुरुदेव की लेखनी में मिल रहा है।

● ७ दिसम्बर १९७२। इन दिनों मुनि नथमलजी के मन में विशेष साधना की तीव्र भावना बलवती हो रही है। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शीघ्र ही कुछ परिणाम सामने आ सकता है। उनमें छटपटाहट और बेचैनी बहुत है। इधर साहित्य आदि कार्य से मैं मुक्ति नहीं दे रहा हूं। यों उनकी शक्तियां बहुत विकसित हो रही हैं। चिन्तन प्रखरता पा रहा है। नए-नए उन्मेष बहुत आ रहे हैं। कोई उचित सहयोगी मिल जाए तो शायद विस्फोट हो सके, ऐसी स्थिति है। वह दिन शीघ्र आए, जब हमारा धर्मसंघ साधना के उच्च शिखर पर आरूढ़ हो।

साधना के लिए अभिनिष्क्रमण

तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास की एक विरल घटना है संघमुक्त साधना का प्रयोग। उस प्रयोग की परिकल्पना और पृष्ठभूमि से मैं सर्वात्मना संपृक्त रहा। आचार्यवर ने उस घटना का विशद चित्रण किया है–

● १ अप्रैल १९७३, लाडनूं। वि.सं. २०२९, चैत्र कृष्णा त्रयोदशी के दिन एक इतिहास रचने की मानसिकता के साथ मैं अपने धर्म-परिवार के साथ प्रवचन-पंडाल में पहुंचा। मैंने अपने प्रवचन को एक

मोड़ देते हुए कहा–'आज का दिन दिशा-सूचक यंत्र बनने जा रहा है। हमारे संघ में एक नई घटना घटित होने जा रही है। यद्यपि यह कोई अनहोनी बात नहीं, होने की ही बात है। साधना का ही एक विशिष्ट अध्याय हमारे सामने आनेवाला है।'

मुनि मीठालाल ने अपने वक्तव्य में संघमुक्त एवं ध्यानयोग की साधना की भूमिका प्रशस्त करते हुए खुलकर अपने विचार प्रस्तुत किए।

मुनि मीठालाल को कसौटी पर कसने और चतुर्विध धर्मसंघ को आश्वस्त करने के बाद मैंने महावीर युग की साधना-पद्धति का विवेचन करते हुए अपने वक्तव्य में कहा–'संघमुक्त साधना की भूमिका में हर कोई साधक नहीं जा सकता। यह ध्यानयोग की विशिष्ट भूमिका है। मैंने मुनि मीठालाल को ध्यानयोग की उक्त भूमिका में जाने तथा ध्यानयोगी होने के योग्य पाया है। ध्यानयोग की विशेष साधना की भावना के प्रति मैं अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करता हूं और आशा करता हूं कि यह ध्यानयोग की आवृत अवस्थाओं को अनावृत करेगा।'

प्रवचन-पंडाल में उपस्थित लोग कुछ-कुछ समझे, पर बहुत कुछ नहीं समझे। आज कोई नई घटना घटित होने वाली है, इतनी बात काफी लोगों की समझ में आ गई। किंतु वह घटना कब और कैसे घटित होगी, यह स्पष्ट नहीं था। मैंने लोगों के चेहरों पर उभरी जिज्ञासा को पढ़ा और मुनि नथमलजी को निर्देश दिया कि वे थोड़े विस्तार के साथ वस्तुस्थिति को स्पष्ट करें।

मेरा निर्देश पाकर मुनि नथमलजी खड़े हुए। उन्होंने बहुत ही रोचक तरीके से अपनी बात को प्रारंभ करते हुए कहा–'इस पवित्र वेला में सबसे पहले मैं आचार्यश्री तुलसी को प्रणाम करता हूं। उसके बाद ध्यानयोगी मुनि मीठालालजी की संकल्पनिष्ठा को प्रणाम करता हूं और उसके बाद आचार्य तुलसी की नियति को प्रणाम करता हूं। कोई ऐसी ही नियति है कि आचार्यश्री चाहें या न चाहें, कुछ नया घटित हो ही जाता है। ऐसा होता रहा है। कोई वर्ष खाली नहीं जाता। महीने चले जाते हैं तो बड़ी बात है, वर्ष कोई खाली नहीं जाता। लोग पहली चर्चा को भूलते नहीं हैं कि दूसरी नई बात सामने आकर खड़ी हो जाती है। बेचारे लोगों का दोष क्या? यह आचार्यश्री की नियति का ही दोष है।'

मुनि नथमलजी ने 'मनोनुशासनम्' के प्रणयन के समय देखे गए मेरे एक स्वप्न की चर्चा करते हुए साधना की विभिन्न भूमिकाओं और प्रयोगों के बारे में जानकारी दी और यह भी बताया कि मुनि मीठालालजी आज ही संघमुक्त होकर ध्यानयोग की विशिष्ट साधना के लिए अभिनिष्क्रमण या प्रस्थान कर देंगे। अपने आधा घंटे के वक्तव्य में उन्होंने बड़ी मृदुता और स्पष्टता के साथ समग्र घटनाक्रम का इतना सटीक विश्लेषण किया कि जनता चित्रवत बन गई। वातावरण इतना सुहावना बना कि उसके बारे में कुछ बताया नहीं जा सकता।

मुनि मीठालाल बोला। उससे स्थिति कुछ स्पष्ट हुई। मुनि नथमलजी बोले। उन्होंने अपनी ओर से प्रायः सभी बातें साफ-साफ कह दीं।

मुनि मीठालाल प्रस्थान करने के लिए कटिबद्ध था। उसने वंदना की। मैंने आशीर्वाद दिया। गण-व्युत्सर्ग का संकल्प लेकर वह चला। साधु दरवाजे तक उसके साथ गए। वहां से वह संघमुक्त हो गया। यह अनोखा गण-व्युत्सर्ग सबको सुखद लगा। प्रायः सबकी प्रतिक्रिया सुखद रही।

> "मैंने अध्यात्म को पढ़ा नहीं, समझने का प्रयत्न भी नहीं किया किन्तु अध्यात्म ने स्वयं मेरा वरण किया–यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं। मुझे अनुभव होता रहा कि मैं श्वास ले रहा हूं बाह्य जगत में और मेरा प्राण स्पन्दित हो रहा है भीतर के जगत में।"

साधना का नवमासिक प्रयोग

मार्च १९७७ में मैंने साधना का नवमासिक प्रयोग किया। आचार्यवर ने साधना की पूर्व संध्या में संदेश संप्रेषित किया, भावपूर्ण शब्दों में मंगल भावना करते हुए लिखा–यह केवल तुम्हारा ही प्रयोग नहीं हैं, मेरा प्रयोग है, संघ का प्रयोग है। आचार्यवर की दैनंदिनी में नवमासिक साधना का उल्लेख है–

● १७ मार्च १९७७। इन दिनों मुनि नथमलजी विशेष साधना में संलग्न हैं। साधना के साथ साहित्य का कार्य भी कर रहे हैं।

● ५ अप्रेल १९७७ को रात्रि में मुनि नथमलजी आदि साधु हमारे पास ही रहे। वैसे इन दिनों में जैन विश्व भारती में रहते हैं और एक नवमासिक प्रयोग कर रहे हैं। दिन में कुछ घंटों का समय वे आगम-संशोधन, अनुवाद तथा साहित्य के कार्य में लगाते हैं। शेष समय साधना के प्रयोग कर रहे हैं। मुनि नथमलजी बौद्धिक हैं। सरस्वती का मानो उन्हें वरदान मिला हुआ हो। साधना के क्षेत्र में उनके द्वारा नए कीर्तिमान स्थापित किए जाने की आशा है। लगता है कि इस बार सब तरह से अच्छा योग है।

धर्मसंघ के लिए वरदान

● अक्टूबर १९७८। प्रेक्षाध्यान साधना पद्धति बल पकड़ रही है। समाज के भूल-भटके युवक सही पथ पर आ रहे हैं। इस विषय में मुनि नथमलजी बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। वह अभिनंदनीय है, अनुकरणीय है। मुनि नथमलजी मेरे प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित हैं, दृष्टिसंपन्न हैं और एकचित्त हैं। यह बड़ी उपलब्धि है। प्रसन्नता का विषय है।

● २३ अक्टूबर १९७८। प्रेक्षाध्यान साधना की अच्छी पद्धति हाथ लग गई। इसने प्रबुद्धजनों और युवकों को भी प्रभावित किया है। यह मनुष्य को स्वस्थ जीवन प्रदान करती है और शांति का रास्ता बताती है। यह एक उदीयमान पद्धति है और हमारे शासन को विशिष्ट ख्याति प्रदान करनेवाली है। इसको आविष्कृत करने का श्रेय मुनि नथमलजी को है। इन्होंने पन्द्रह वर्ष के सतत प्रयत्न से एक नया क्रम उपस्थित किया है। ये बड़े विनम्र एवं समर्पित हैं। इनसे कभी भी कोई खतरा दिखाई नहीं देता। हमारे धर्मसंघ के लिए ये वरदान सिद्ध हो रहे हैं।

अभूतपूर्व अनुभव

साधना-काल में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं, जिन क्षणों में अलौकिक और कल्पनातीत अनुभव होते हैं। वे जीवन के अविस्मरणीय क्षण बन जाते हैं। आचार्यवर के जीवन के एक ऐसे ही प्रसंग का मैं साक्षी बना–

● १७ फरवरी १९८७। मन में इच्छा जगी–सारी रात ऐसे ही बिता दूं। पर पता नहीं क्यों, मैंने ध्यान समाप्त कर दिया और महाप्रज्ञजी को बुलाने का निर्देश दिया। तब तक मुनि मधुकर जाग चुका था। वह महाप्रज्ञजी को बुलाने गया। असमय में नींद से जगाने पर वे घबरा गए। उनका पहला प्रश्न था–आचार्यश्री का स्वास्थ्य कैसा है? स्वास्थ्य ठीक है, यह सुन वे आश्वस्त हो गए। उनके आने पर मैंने पूरा घटनाक्रम उनको सुना दिया। पूरी बात सुन वे बोले–'आपमें अर्जित शक्तियां बहुत हैं। उनका उद्घाटन कभी-कभी ऐसे ही होता है। आप जिस निर्विकल्पता की स्थिति में हैं, वही आनन्द की अवस्था है। अब तो काफी समय हो चुका है। आप थोड़ी देर लेट जाइए।

मैंने कहा–लेटने की इच्छा ही नहीं हो रही है। मैं फिर ध्यान में बैठूंगा। तुम भी साथ-साथ ध्यान करो। मैं पट्ट से नीचे उतरा और बैठ गया। सोचा–मुंह किधर किया जाए? जिस ओर पहले मुंह था, उसी दिशा में यानी उत्तराभिमुख होकर हमने सामूहिक ध्यान किया। डेढ़ से सवा दो-ढाई बजे तक यह क्रम चला। आनन्द की शृंखला अब तक टूटी नहीं थी, फिर भी मैंने ध्यान पूरा किया। महाप्रज्ञ को लेटने का निर्देश देकर भेज दिया। उनके आग्रह पर मैं भी थोड़ी देर सो गया।

इक्कीस दिवसीय अनुष्ठान

• २१ फरवरी १९८८। हांसी में हम दो दिन रहे। दूसरे दिन मध्याह्न में सभा भवन से सात किमी. का विहार कर प्रेमचंद जैन की फैक्ट्री में रहे। युवाचार्य महाप्रज्ञ वहां से सीधे हिसार जाएंगे, मौन व ध्यान की विशेष साधना करेंगे। विशेष साधना में इक्कीस दिनों का एक अनुष्ठान किया जाएगा।

• २२ जुलाई १९९३। आज एक दूसरा क्रम चालू किया है। वह है आहार में द्रव्यों का अल्पीकरण। आज सवेरे सात द्रव्य लिए और सायंकाल पांच। यह क्रम चले तो और अच्छा है। महाप्रज्ञजी भी आजकल ऐसा करते हैं। अच्छा है।

सांगोपांग और सर्वमान्य ध्यान पद्धति

दिसम्बर १९९६। जैन परम्परा में ध्यान की एक विशिष्ट पद्धति थी, जो मध्य काल तक आते-आते विस्मृत-सी हो गई। उसे पुनरुज्जीवित करने का सौभाग्य तेरापंथ को मिला। इसके लिए प्रेरणा मेरी रही और इसमें श्रम लगा महाप्रज्ञजी का। आज प्रेक्षाध्यान का एक सांगोपांग और सर्वमान्य ध्यान-पद्धति बन गई। इसके बारे में मैंने लिखा है–

ध्यान धरम रो प्राणबीज हो पतो नहीं क्यूं छूटग्यो,
अपणो रूप निहारै जिण में जाणक दर्पण टूटग्यो,
हो सन्तां! प्रेक्षा तिण परम्परा रो पुनरुद्धार हो॥

प्रेक्षाध्यान के विषय में संपूर्ण जानकारी देनेवाली पत्रिका 'प्रेक्षाध्यान' है। इसमें प्रेक्षाध्यान विषयक हमारे और महाप्रज्ञजी के लेख रहते ही हैं, उनके साथ व्यक्तित्व-निर्माण की ठोस सामग्री होती है। केन्द्र में होनेवाले शिविरों की जानकारी भी इसमें दी जाती है। ध्यान साधना के सूत्र, अनुभव और दिशादर्शन देनेवाली तेरापंथ समाज की यह एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका है।

साधना-शिविर

आचार्य तुलसी के जीवन का एक लक्ष्य रहा–तेरापंथ धर्मसंघ की शक्ति-संपन्नता, तेजस्विता और अध्यात्म निष्ठा बढ़ती रहे। लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपेक्षित है साधना। धर्मसंघ में साधना के विकास की दृष्टि से उपासक, मुमुक्षु, समण-श्रेणी तथा साधु-साध्वियों के अनेक साधना-शिविर आयोजित हुए।

आचार्यवर के जीवन का दूसरा लक्ष्य रहा–मानवीय समस्याओं के समाधान में धर्मसंघ की शक्ति का समुचित प्रयोग हो। उन्होंने युगीन समस्याओं की जड़ को पकड़ा और उसके समाधान में जीवन के अंतिम क्षण तक क्रियाशील बने रहे।

"प्रेक्षाध्यान साधना की अच्छी पद्धति हाथ लग गई। इसने प्रबुद्धजनों और युवकों को भी प्रभावित किया है। यह मनुष्य को स्वस्थ जीवन प्रदान करती है और शांति का रास्ता बताती है। यह एक उदीयमान पद्धति है और हमारे शासन को विशिष्ट ख्याति प्रदान करनेवाली है। इसको आविष्कृत करने का श्रेय मुनि नथमलजी को है।"

अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान–ये तेरापंथ धर्मसंघ के मानव कल्याणकारी अवदान हैं। ये अवदान युग के लिए वरदान बने हैं। इनके साधना-शिविरों से हजारों-हजारों लोग लाभान्वित और उपकृत हुए हैं। हजारों व्यक्तियों के हृदय में अध्यात्म का दीप जला है, हजारों लोगों ने अपनी जटिल समस्याओं का समाधान पाया है। आचार्यवर के अनुग्रह से मुझे सैकड़ों साधना-शिविरों के संचालन और निर्देशन का अवसर मिला। आचार्यवर की डायरी में अनेक साधना-शिविरों और उसकी निष्पत्तियों का आकलन उपलब्ध होता है–

उपासक संघ शिविर

● बहुत वर्षों से मेरे मन में साधु और श्रावक के बीच एक नई श्रेणी स्थापित करने की कल्पना थी। उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए मैंने अनेक बार अनेक व्यक्तियों के साथ चिंतन किया। उदयपुर चतुर्मास में इस संदर्भ में एक चिन्तन सामने आया कि तीसरी श्रेणी के पूर्वाभ्यास हेतु कुछ व्यक्तियों को विशेष प्रयोग से निकाला जाए। चतुर्मास के बाद भी कई बार चर्चा चली। कुछ व्यक्तियों के नाम आ गए। एक मासिक शिविर में उन व्यक्तियों को विशेष प्रशिक्षण देने का निर्णय लिया गया।

पूर्व निर्णय के अनुसार श्रावण कृष्णा एकम (७ जुलाई १९६३) को प्रातः उपासक संघ शिविर का शुभारम्भ हुआ।

वह शिविर अपने ढंग का पहला शिविर था। प्रारंभ में लोगों के मन में अनेक प्रश्न थे। शिविर की संभागिता में कुछ झिझक भी थी। पर जैसे-जैसे स्पष्टता आती गई, उसके प्रति आकर्षण बढ़ता गया। उसमें खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल आदि अनेक विषयों का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता और तात्त्विक ज्ञान भी सिखाया जाता।

मुनि नथमलजी और मुनि मधुकरजी ने उपासक संघ का एक प्रारूप तैयार किया। उसे संघ के सदस्यों को सुना दिया गया। उसको सबने पसन्द किया। उसमें दो कक्षाएं रखी गईं–संघवासी उपासक और गृहवासी उपासक। संघवासी उपासक ब्रह्मचारी के रूप में रहते हुए साधना करेंगे, यह निश्चित किया गया। गृहवासी उपासक शिविर में संभागी बनेंगे, पर सामान्यतः घर में रहते हुए नियमों के प्रति जागरूक रहेंगे। प्रारूप सुनने के बाद गृहवासी उपासक श्रेणी में दस नाम आ गए। उपासक संघ का प्रारूप बनाने में मुनि नथमलजी की पैनी दृष्टि ने बहुत काम किया।

रात्रि में साधना पद्धति के प्रशिक्षण का क्रम प्रारम्भ हुआ। मुनि नथमलजी ने कषाय-विजय पर अच्छे विचार रखे। विचार नए होने के साथ-साथ रोचक भी थे। उपासकों का उत्साह प्रवर्धमान रहा। उन्होंने आश्विन मास में पुनः एक शिविर लगाना निश्चित किया।

रात्रि के समय साधना एवं जीवन-निर्माण की दृष्टि से विशेष प्रवचनमाला आयोजित की गई। प्रवचनमाला के कुछ विषय थे–जैन साधना पद्धति, कषाय विजय के प्रयोग, वाक्शुद्धि, गमनशुद्धि, व्यावहारिक जीवन में उपासना की उपयोगिता आदि। उक्त विषयों पर मुनि नथमलजी के वक्तव्य लोगों को आकृष्ट करने वाले थे। शिविरार्थियों के अतिरिक्त अनेक भाई-बहनों की शिविर के कार्यक्रमों में बराबर संभागिता रही। बाहर से समागत कुछ विशिष्ट लोगों ने भी शिविर की गतिविधियों का निरीक्षण किया। प्रायः सभी लोग अच्छा प्रभाव लेकर लौटे।

अणुव्रत कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर

अगस्त १९६५। जैन हैप्पी स्कूल, नई दिल्ली में त्रिदिवसीय कार्यकर्ता अणुव्रत प्रशिक्षण शिविर हुआ। २० से २२ अगस्त तक हुए उस शिविर में लगभग चालीस कार्यकर्ताओं की संभागिता रही। शिविर के उद्घाटन सत्र में गृह-मंत्रालय के राज्यमंत्री श्री जयसुखलाल हाथी, श्री हरिवंशराय बच्चन, सांसद श्री रामेश्वर टांटिया आदि विशष रूप से उपस्थित थे। शिविर-काल में प्रतिदिन तीनों समय गोष्ठियों का समायोजन रहा। अणुव्रत के भावी कार्यक्रमों के संदर्भ में विशेष निर्णय लिए गए। समापन-सत्र में राष्ट्रसंत तुकड़ोजी आदि कई विशिष्ट व्यक्ति बोले। शिविरार्थियों में श्री गोपीनाथ 'अमन', डॉ. विमलकुमार जैन, श्री रामेश्वरदास अग्रवाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मुनि नथमलजी और मुनि सुखलाल ने शिविर में अच्छा श्रम किया।

अणुव्रत साधना शिविर

● ५ जून १९६६। साप्ताहिक 'अणुव्रत साधना शिविर' का प्रारम्भ था। बिरधीचंदजी नाहटा का नोहरा शिविर-स्थल था। शिविर का उद्घाटन मैंने किया। उसमें प्रशिक्षण का प्रमुख दायित्व मुनि नथमलजी पर था। अनुशासन, स्वावलम्बन, व्यवस्था-कौशल आदि प्रशिक्षण के विषय थे। शिविर-साधना में लोगों की विशेष अभिरुचि देखकर प्रसन्नता हुई। मुनि नथमलजी की स्फुरणा एवं सहज प्रतिभा ने बौद्धिक लोगों को मुग्ध-सा कर दिया। इनका यह क्षयोपशम निखरता जा रहा है, इसकी प्रसन्नता है।

उपासक शिविर

● सन् १९७२। लाडनूं में १ मई से ३० मई तक मासिक साधना-शिविर का आयोजन एक विशेष उद्देश्य के साथ करने का निर्णय लिया गया। इस आशय की सूचना प्रसारित कर दी गई। लोगों में उत्सुकता और जिज्ञासा उभरी। साधना-शिविर का प्रारूप निर्धारित हो तथा व्यवस्थाओं का समुचित आकलन हो, इस दृष्टि से मुनि नथमलजी को कुछ समय पहले ही लाडनूं भेज दिया गया। हमारा प्रवास कहां हो? शिविरार्थी कहां रहें? प्रशिक्षण का क्रम कहां चले? इत्यादि बिन्दुओं पर निर्णायक चिन्तन हो गया। शिविर में साधना करने वाले कार्यकर्ताओं को उपासक के रूप में तैयार करने का लक्ष्य था, इसलिए शिविर का नाम 'उपासक शिविर' रखा गया। ठीक आठ बजे 'पारमार्थिक शिक्षण संस्था' के भवन में साधना-शिविर का उद्घाटन हुआ। शिविर का विधिवत् प्रारंभ हो गया।

● ७ मई १९७२। साधना-शिविर का प्रायोगिक कार्यक्रम व्यवस्थित चल रहा है। मुनि नथमलजी इसके मूलाधार हैं।

● १८ मई को साधना-सत्र का अठारहवां दिन बीत गया। अब केवल बारह दिन ही शेष रह गए हैं। शिविर का क्रम संतोषजनक चल रहा है। ध्यान का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ रहा है। बहनों में सात-आठ घण्टे ध्यान करने वाली कुछ बहनें तैयार हो गई हैं। शिविरार्थियों में काफी संतोष है। भविष्य अच्छा है।

● २९ मई को रात्रि में शिविरार्थी भाई-बहिनों ने अपने-अपने संस्मरण सुनाए। प्रहर रात्रि से अधिक समय इसी में लग गया। अब मासिक साधना सत्र समाप्ति पर है। एक महीने का समय लगभग एकान्त में बिताया। एकान्तवास का प्रयोग सफल रहा।

"अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान–ये तेरापंथ धर्मसंघ के मानव कल्याणकारी अवदान हैं। ये अवदान युग के लिए वरदान बने हैं। इनके साधना-शिविरों से हजारों-हजारों लोग लाभान्वित और उपकृत हुए हैं। हजारों व्यक्तियों के हृदय में अध्यात्म का दीप जला है, हजारों लोगों ने अपनी जटिल समस्याओं का समाधान पाया है।"

शिविर की गोष्ठियों में मुनि नथमलजी के विविध विषयों पर होनेवाले वक्तव्य बहुत ही विलक्षण रहे। बड़े-छोटे सभी शिविरार्थी बहुत संतुष्ट हैं। भविष्य में होने वाले शिविर और अधिक व्यवस्थित होंगे, ऐसी आशा है।

● ३० मई १९७२। साधना-शिविर में मुख्य योग मुनि नथमलजी का रहा। उन्होंने सब तरह से सुन्दर नीति का संचालन किया। प्रवाह अच्छा चला। धारा बहुमुखी रही। अनेक व्यक्तियों की आस्था स्थिर बनी। मैंने स्वयं एक महीना एकांत में बिताया। अच्छा विश्राम मिला। अब भीड़ से मन उचटने लगा है।

वर्षाकालीन सत्र

● जैन विश्व भारती द्वारा संचालित 'तुलसी अध्यात्म नीडम' प्रतिवर्ष दो साधना सत्रों का समायोजन कर रहा है। इस वर्ष का वर्षाकालीन सत्र हिसार में रखा गया। १ अक्टूबर १९७३ से ९ अक्टूबर तक समायोजित सत्र में ध्यान योग, भावना योग, कायोत्सर्ग योग, अर्हं योग तथा साधना के विविध प्रयोगों से चेतना को भावित करने का प्रशिक्षण दिया गया। प्रथम साधना-सत्र में 'योग द्वात्रिंशिका' के आधार पर आठ पाठ पढ़ाए गए थे। प्रस्तुत सत्र में आगे के आठ पाठों का विवेचन चला। शिविर साधकों ने पूरी जागरूकता के साथ प्रवचन तथा प्रायोगिक साधना का लाभ उठाया। शिविर में पैंसठ भाई-बहनों की संभागिता रही। शिविर के संयोजक डॉ. मन्नालालजी बैद थे। इस बार शिविरार्थियों को मेरा सान्निध्य कम मिला। मुनि नथमलजी, मुनि किशनलाल आदि ने पूरा समय लगाया। समापन कार्यक्रम में मेरा उद्‌बोधन प्रभावी रहा। मैंने साधना की तीन श्रेणियों—साधक, उपासक और समर्पित उपासक की चर्चा के साथ शिविर-साधकों को आह्वान किया कि वे यथासंभव किसी एक श्रेणी में अपना नाम दें। तत्काल बाईस व्यक्ति खड़े हुए। पन्द्रह भाइयों ने साधक, पांच भाइयों ने उपासक और दो व्यक्तियों ने समर्पित उपासक के रूप में नाम दिए। इस उपक्रम से उपासक योजना को भी बल मिलता रहेगा।

नीडम द्वारा समायोजित उक्त शिविर की एक विशेष उल्लेखनीय बात थी—दलित वर्ग के लोगों द्वारा काफी अच्छी संख्या में शिविर-साधना करना। वे साधना में अच्छा रस ले रहे हैं। सभी लोग बहुत प्रसन्न हैं। साधना-सत्र के सब काम उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुए।

● २८ अप्रैल १९७४। 'अध्यात्म साधना केन्द्र' में शिविर का शुभारम्भ हुआ। उसमें मुनि नथमलजी आदि सात साधु, दस साध्वियां, बाईस मुमुक्षु बहनें, छह पुरुष, सात महिलाएं और एक विदेश महिला—कुल मिलाकर तिरपन व्यक्ति संभागी थे। सबमें साधना की अच्छी रुचि है। एक नया अथवा विशेष प्रयोग कराके देखने का लक्ष्य था। आनापानसती और विपश्यना का प्रयोग है। खानपान और यातायात का पूरा संयम है। प्रतिदिन कम-से-कम आठ घंटे का ध्यान करवाया जाता है। यह प्रयोग श्रमणधारा के बहुत निकट है। ८ मई को शिविर संपन्न हुआ। शिविर में साधना करने वाले हमारे साधु-साध्वियों तथा अन्य सभी साधकों को काफी संतोष हुआ। मुनि नथमलजी ने जैन ध्यान परम्परा का बौद्ध परम्परा के साथ तुलनात्मक विश्लेषण करके यह प्रमाणित कर दिया कि श्रमण परम्परा की दो धाराओं में कितना अधिक सामंजस्य है और दोनों ही कितनी समृद्ध हैं। इस उपक्रम से गोयनकाजी को भी बहुत प्रसन्नता हुई। वे सहज श्रद्धालु, विनम्र और निरहंकारी व्यक्ति हैं। अच्छा योग मिला है। ऐसे उपक्रमों से जैन साधना पद्धति का क्रम और अधिक सुदृढ़ हो जाएगा, यह विश्वास है।

• १७ अक्टूबर १९७६। सान्ध्य बेला में सप्तदिवसीय 'अध्यात्म योग साधना शिविर' का समापन हुआ। तुलसी अध्यात्म नीडम के तत्त्वावधान में आयोजित इस शिविर में नौ प्रान्तों के तिरपन साधक-साधिकाओं ने भाग लिया। उनको योग्य प्रशिक्षकों द्वारा आसन, प्राणायाम, योगमुद्रा, कायोत्सर्ग, बन्ध, अनुप्रेक्षा और प्रेक्षाध्यान का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया गया। मुनि नथमलजी ने जैन साधना पद्धति में प्रेक्षाध्यान की महत्ता उजागर करने वाले प्रवचन दिए। उन्होंने त्रिगुप्ति, निर्विचारता, मानसिक ध्यान आदि का भी प्रशिक्षण दिया।

• ३ से ५ जनवरी १९७७। मेरी सन्निधि में साधु-साध्वियों की दो सामूहिक गोष्ठियां हुईं। उनका विषय था–प्रेक्षाध्यान साधना। मुनि नथमलजी के वक्तव्य हुए। प्रश्नोत्तर चले। सभा का स्वरूप बहुत आकर्षक लगा।

• ६ जनवरी १९७७ से तीन दिनों का साधना-शिविर आयोजित हुआ। उसमें लगभग सौ साधु-साध्वियों की संभागिता थी। अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण शिविर में मेरा सान्निध्य नहीं मिल पाया। मुनि नथमलजी की उपस्थिति में दैनिक उपक्रम चले।

प्रेक्षाध्यान शिविर

• २२ मार्च १९७७ से दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन था। शिविर में छियानवें भाई-बहनों ने भाग लिया। प्रातः पांच बजे से शिविर की चर्या का प्रारम्भ हो जाता। प्रेक्षाध्यान, अनुप्रेक्षा, भावना योग, आसन, प्राणायाम आदि के प्रशिक्षण की अच्छी व्यवस्था रही। ध्यान का अभ्यास मुनि नथमलजी एवं मुनि किशनलाल कराते थे। अपराह्न में प्रतिदिन मुनि नथमलजी का विशेष वक्तव्य होता था। उसका विषय था–साधना और कर्मशास्त्र। इस प्रवचन शृंखला से शिविरार्थियों को अच्छा लाभ हुआ। वक्तव्य के बाद चलने वाला जिज्ञासा-समाधान का क्रम विशेष उपयोगी रहा।

३१ मार्च को तुलसी अध्यात्म नीडम द्वारा संचालित दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर सानंद सम्पन्न हो गया। उस दिन हमने चौबीस घंटे शिविर में बिताए। सब गतिविधियों की अवगति ली। साधक-साधिकाओं के संस्मरण सुने तो लगा शिविर काफी सफल रहा है। ऐसा प्रतीत हुआ कि वर्षों से चल रहे इस उपक्रम को एक रास्ता मिल गया। जैन साधना पद्धति अब स्पष्ट होती चली जा रही है।

शिविर समापन के समय मैंने अपने वक्तव्य में योग-अयोग की विस्तृत चर्चा की। शिविरार्थी बड़े प्रसन्न, स्वस्थ और उत्सुक प्रतीत हो रहे थे।

• २४ सितम्बर १९७७। बाहर से आने वाले लोग जैन विश्व भारती की गतिविधियों को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। जनता का दृष्टिकोण सकारात्मक बन रहा है। बिना किसी प्रयत्न के अनेक व्यक्ति इसके साथ जुड़ रहे हैं। दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर भी होनेवाला है। प्रज्ञा प्रदीप का प्रेक्षा प्रांगण सामूहिक साधना से खिल उठेगा। यहां से समूचे विश्व को ऐसा संदेश मिलेगा, जिससे विश्वचेतना जागृत होती रहेगी। मुनि नथमलजी इस प्रेक्षाध्यान शिविर का संचालन करेंगे। देखते हैं कि कौन-कौन व्यक्ति इसमें सम्मिलित होकर लाभान्वित होते हैं। शिविर की सफलता के लिए शुभाशंसा।

• १० अक्टूबर १९७७। तुलसी अध्यात्म नीडम के प्रज्ञाप्रदीप में दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का प्रारम्भ हुआ। शिविर में नए-पुराने गृहस्थ साधकों के साथ अनेक साधु-साध्वियों ने भी भाग लिया। शिविर

"साधना-शिविर में मुख्य योग मुनि नथमलजी का रहा। उन्होंने सब तरह से सुन्दर नीति का संचालन किया। प्रवाह अच्छा चला। धारा बहुमुखी रही। अनेक व्यक्तियों की आस्था स्थिर बनी। मैंने स्वयं एक महीना एकांत में बिताया। अच्छा विश्राम मिला। अब भीड़ से मन उचटने लगा है।"

के निर्देशन का पूर्ण दायित्व मुनि नथमलजी ने संभाला। उन्होंने शिविरार्थियों को प्रेक्षा ध्यान की उपसम्पदा प्रदान की। शिविर में दो प्रकार के साधक सम्मिलित हुए–पूर्णकालिक और अल्पकालिक। उनका विवरण इस प्रकार है–पूर्णकालिक साधक ४५, साधिकाएं २६, पारमार्थिक शिक्षण संस्था की बहनें ४८, साधु १० और साध्वियां ३०। अल्पकालिक साधक २३ और साधिकाएं २५।

साधना की दृष्टि से शिविर में खाद्य-संयम और वाणी-संयम का प्रयोग कराया गया। भोजन मध्याह्न में एक समय दिया गया। प्रातः एवं सायं दूध एवं फल अल्पाहार के रूप में दिए गए। एक-दो दिन पूर्ण मौन के साथ प्रतिदिन कुछ घंटे मौन का अभ्यास किया गया। साधना शिविर का समापन कार्यक्रम मेरे सान्निध्य में भिक्षु विहार में रखा गया। अनेक साधकों ने अपने अनुभव सुनाए। कुछ अच्छे सुझाव भी आए। मैंने अपने संक्षिप्त सम्बोधन में बताया कि साधकों को तीन बातें याद रखनी चाहिए–भीतर प्रवेश करना, भीतर देखना और भीतर रमण करना। मुनि नथमलजी ने साधना काल में उपार्जित समता एवं अप्रमाद की साधना के प्रति जागरूक रहने का आह्वान किया। कुल मिलाकर शिविर अनेक दृष्टियों से प्रभावकारी रहा।

शिविर में चार बार सामूहिक ध्यान होता। शेष समय में साधक व्यक्तिगत साधना करते। शिविर काल में 'आचारांग में प्रेक्षाध्यान' विषय पर मुनि नथमलजी के विशेष प्रवचन हुए। मध्याह्न में विभिन्न विषयों पर वक्तव्य के बाद प्रश्नोत्तरों का अच्छा क्रम चला।

● ४ दिसम्बर से ११ दिसम्बर १९७७ तक अष्टाह्निक प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन नवनिर्मित प्रज्ञा-प्रदीप भवन में हुआ। शिविर में भारत के विभिन्न प्रान्तों–महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, बिहार, दिल्ली, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान आदि से लगभग पैंसठ साधक संभागी थे। उनमें अधिक संख्या प्रबुद्ध व्यक्तियों की थी। ध्यान, प्रवचन आदि शिविर के कुछ उपक्रमों में साधु-साध्वियां और मुमुक्षु बहनें भी भाग लेती थीं। मध्याह्न में ढाई बजे से साढ़े तीन बजे तक विशेष प्रवचन और प्रश्नोत्तरों का क्रम चलता। प्रवचन का विषय था–आध्यात्मिक चेतना द्वारा व्यक्तित्व का रूपान्तरण। प्रवचनकार थे–मुनि नथमलजी। विषय का उपसंहार मेरे संक्षिप्त प्रवचन से होता था।

शान्त और एकान्त स्थान, सात्त्विक भोजन, योगासन, प्राणायाम, ध्यान, आध्यात्मिक प्रवचन, सौहार्दपूर्ण वातावरण और संतुलित जीवनशैली का प्रशिक्षण। कुल मिलाकर शिविर बहुत सफल रहा। समापन समारोह में शिविरार्थियों ने अपने संस्मरण सुनाए। कुछ संस्मरण अत्यधिक रोचक और प्रेरक थे। शिविर साधना के प्रति प्रबुद्ध वर्ग का आकर्षण देखकर मुझे प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

● १० मार्च १९७८। जैन विश्व भारती में प्रेक्षाध्यान शिविर का प्रारम्भ। शिविर में चौबीस स्थानों से चवालीस भाइयों और अड़तालीस बहनों ने भाग लिया। पारमार्थिक शिक्षण संस्था की चालीस बहनों ने भी शिविर में साधना की। बारह साधु और बीस साध्वियों की भी संभागिता रही। कुल मिलाकर एक सौ चौवन शिविरार्थियों ने विशेष लक्ष्य के साथ साधना की। साधना काल में ध्यान, आसन, प्राणायाम, कायोत्सर्ग आदि का व्यक्तिशः एवं सामूहिक अभ्यास किया गया। मध्याह्न में 'शक्ति जागरण के सूत्र' विषय पर मुनि नथमलजी के वक्तव्य हुए। प्रवचन के बाद पन्द्रह मिनट का समय जिज्ञासा-समाधान के लिए रहा। मेरा प्रवचन उपसंहारात्मक होता।

● २५ अगस्त १९७८ से बीकानेर में दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का प्रारंभ हुआ। शिविर में लगभग एक सौ पन्द्रह व्यक्तियों ने भाग लिया। उनमें कुछ परिवारों ने सामूहिक रूप से साधना की। जैन

विश्व भारती का भी अपना एक परिवार शिविर में रहा। संस्था के अध्यक्ष, पूर्व अध्यक्ष, कुलस्थविर और उनका पूरा व्यवस्था तंत्र। इस प्रकार प्रस्तुत शिविर एक नए रूप में समायोजित हुआ। शिविर में 'नमस्कार महामंत्र' के संदर्भ में मुनि नथमलजी के विशेष प्रवचन हुए। प्रेक्षाध्यान शिविर अध्यात्म विकास की दिशा में अच्छी गति कर रहा है और भविष्य में भी तीव्र गति से कार्य कर सकेगा, ऐसी आशा है।

● २३ अक्टूबर १९७८। प्रेक्षाध्यान ध्यान साधना का दस दिवसीय शिविर शुरू हुआ। शिविर का उद्घाटन स्वयं मैंने किया। शिविर का स्थान 'मालू गेस्ट हाउस' है। शिविर में पैंसठ भाई-बहिनें हैं। नौ साध्वियां और चार साधु भी इसमें सम्मिलित हुए हैं। मुनि नथमलजी शिविर के निदेशक हैं। शिविर अच्छा चलेगा, ऐसा विश्वास है।

२९ अक्टूबर। प्रेक्षाध्यान शिविर अच्छी तरह चल रहा है। सब शिविरार्थी प्रसन्न हैं। ऐसा लगता है कि कुछ नया उपलब्ध हो रहा है। हम प्रतिदिन लगभग ढाई बजे शिविर-स्थल पर जाते हैं, शिविर-प्रवचन में सम्मिलित होते हैं और उसका उपसंहार भी करते हैं। इससे सबका उत्साह वृद्धिंगत रहता है। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा भी कुछ साध्वियों के साथ मध्याह्न में बराबर आती है। शिविर में प्रतिदिन कुछ-न-कुछ विशिष्टता नजर आती है।

३१ अक्टूबर को शिविर का नौवां दिन था। उस दिन शिविर सबके लिए खुला था। मध्याह्न में कुछ साधुओं के साथ हम ध्यान कक्ष में पहुंचे। उस समय वहां सैकड़ों लोग उपस्थित थे। देखते-देखते हजारों की उपस्थिति हो गई। सामूहिक ध्यान हुआ। दीवाली के बारे में नए तरीके से प्रवचन हुआ। मुनि नथमलजी ने एक नया प्रवाह बहाया। जैन विधि से दीवाली का पूजन कैसे हो सकता है, यह अच्छी तरह समझाया। मैंने भी इसी सन्दर्भ में प्रवचन किया। जनता में हलचल-सी मची, फिर भी सबने शान्ति के साथ सुना और समझा। रात्रि में लगभग पूरे गंगाशहर में जैन विधि से दीवाली मनाई गई। बड़ा आनन्द आया। हजारों लोग दर्शन करने आए। उन्होंने कहा–'गुरुदेव! हमने आज जैसी दीवाली कभी नहीं मनाई।' सबके मन प्रसन्न हैं।

१ नवम्बर को मध्याह्न में प्रेक्षाध्यान शिविर का समापन था। बहुत उत्साहपूर्ण वातावरण में कार्यक्रम चला। शिविरार्थियों के अनुभव काफी रोचक और प्रेरक रहे। आगामी शिविर का समय निर्णीत हो गया। वह दिसम्बर महीने में जैन विश्व भारती के 'प्रज्ञा प्रदीप' में होगा। मुनि नथमलजी शिविर की दृष्टि से वहां पहुंच जाएंगे।

● १३ जुलाई १९८०। आज प्रेक्षाध्यान के सोलहवें शिविर का समापन हुआ। शिविर में अस्सी भाई-बहन संभागी थे। युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में शिविर चला। वे दस दिनों तक अध्यात्म नीडम में रहे। हम केवल प्रवचन में सम्मिलित हुए। प्रवचन का समय मध्याह्न में चार बजे था। हम प्रतिदिन कुछ साधुओं और साध्वीप्रमुखा सहित कई साध्वियों के साथ वहां जाते। प्रवचन में भाग लेते और उपसंहार भी करते।

● ४ सितम्बर १९८०। आज प्रेक्षाध्यान का सत्रहवां शिविर प्रारम्भ हुआ। लगभग दो सौ व्यक्ति शिविर में संभागी बने हैं। उनमें युवकों की संख्या अधिक है। व्यवस्था पक्ष कुछ कमजोर दिखाई पड़ रहा है। पर आनेवालों में उत्साह अधिक है। जैसे-तैसे सारी व्यवस्था बिठाई जा रही है। प्रेक्षाध्यान हमारी साधना का मूल है। इसे बल देना हमारा पुनीत कर्तव्य है। युवाचार्य महाप्रज्ञ इसे अच्छे तरीके से चला रहे

"
प्रेक्षाध्यान हमारी साधना का मूल है। इसे बल देना हमारा पुनीत कर्तव्य है। युवाचार्य महाप्रज्ञ इसे अच्छे तरीके से चला रहे हैं। उनका ढंग प्रभावशाली है। सुन्दर छाप पड़ रही है। साहित्य व्यापक हो रहा है। धर्मसंघ प्रभावशाली बनता जा रहा है। केवल एक ही कमी है, उसे मैं जानता हूं। भिक्षु कृपा से वह भी मिटेगी, ऐसा विश्वास है।
"

हैं। उनका ढंग प्रभावशाली है। सुन्दर छाप पड़ रही है। साहित्य व्यापक हो रहा है। धर्मसंघ प्रभावशाली बनता जा रहा है। केवल एक ही कमी है, उसे मैं जानता हूं। भिक्षु कृपा से वह भी मिटेगी, ऐसा विश्वास है।

१३ सिम्बर को प्रेक्षाध्यान शिविर सानन्द सम्पन्न हो गया। दो सौ व्यक्तियों का यह विशिष्ट शिविर अनेक नई संभावनाओं के साथ सम्पन्न हुआ। इस शिविर में अपराह्न चार बजे से पांच बजे तक हम भी उपस्थित रहते थे। उपसंहारात्मक प्रवचन भी करते थे। अच्छा आनन्द रहता।

तमिलनाडु का पहला शिविर

• २२ सितम्बर १९८०। सत्तर-अस्सी भाई-बहनों का एक बड़ा समूह प्रेक्षाध्यान शिविर के लिए मद्रास से लाडनूं पहुंचा। इस रूप में केवल तमिलनाडु का यह पहला शिविर आयोजित हुआ है। अध्यात्म नीडम् के प्रज्ञाप्रदीप में शिविर चला, अच्छा चला, व्यवस्थित रूप में चला। तीन दिन मध्याह्न में हम भी वहां गए। युवाचार्य महाप्रज्ञ प्रवचन करने के लिए प्रतिदिन वहां जाते रहे। यह आवश्यक था। अन्यथा लोगों को संतोष नहीं होता। प्रेक्षाध्यान वर्तमान युग की एक बड़ी अपेक्षा है। शिविर में रहनेवाले लोग अनेक दृष्टियों से लाभान्वित होते हैं।

साधु-साध्वियों के लिए

• हमारे बीदासर-प्रवास में सप्तदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का समायोजन हुआ। २७ दिसम्बर १९८० से २ जनवरी १९८१ तक चले इस शिविर में पचहत्तर साधु-साध्वियों की संभागिता रही। प्रस्तुत शिविर मुख्य रूप से साधु-साध्वियों के लिए ही था। पर कुछ जिज्ञासु भाई-बहिनों ने भी इसमें भाग लिया। शिविर के मुख्यतः दो उद्देश्य थे—साधु-साध्वियों को साधना के नए प्रयोग करवाना और प्रेक्षाध्यान का व्यवस्थित प्रशिक्षण देना। प्रशिक्षण का कार्य युवाचार्यजी के जिम्मे था। मध्याह्न में साधना और सिद्धि, कायसिद्धि, उपवास, कायोत्सर्ग, आसन, दसविध श्रमणधर्म आदि विषयों पर युवाचार्यजी के प्रवचन हुए। प्रवचन के पश्चात प्रश्नोत्तरों का क्रम बहुत आकर्षक रहता। अन्त में उपसंहारात्मक प्रवचन मेरा होता। कुल मिलाकर शिविर का उपक्रम बहुत अच्छा रहा।

राजस्थान पुलिस अकादमी में

• २५ मार्च १९८१। अपराह्न में चार बजे राजस्थान पुलिस अकादमी के महानिरीक्षक डॉ. डी.पी. गुप्ता ने दर्शन किए। वार्तालाप के दौरान उन्होंने अपने कार्यक्षेत्र की अहम समस्या प्रस्तुत की और उसके समाधान हेतु पुलिसकर्मियों के बीच कार्यक्रम रखने का अनुरोध किया। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार २६ मार्च से पुलिस अकादमी में प्रेक्षाध्यान का शिविर प्रारम्भ हो गया। यह स्थान शहर से लगभग सात किमी. की दूर पर है। युवाचार्य महाप्रज्ञ आदि कुछ साधुओं का प्रवास पुलिस अकादमी में हुआ। अकादमी के निकट ही हम संजय कॉलोनी में रहे। स्थान साताकारी था, एकान्त था, पर मच्छर बहुत थे। वहां से हम प्रतिदिन अपराह्न में शिविरार्थियों के बीच में जाते और प्रवचन करते। शेष सारा काम युवाचार्यजी और सन्त करते थे। शिविर हर दृष्टि से सफल रहा।

विकलांगों में प्रेक्षाध्यान

• १२ अप्रैल १९८१। विकलांगों, विशेष रूप से नेत्रहीन भाइयों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रेक्षाध्यान

शिविर का प्रारम्भ हुआ। शिविर का उद्घाटन राजमाता गायत्रीदेवी ने किया। उन्होंने कहा–प्रेक्षाध्यान के द्वारा विकलांगों में आत्मविश्वास पैदा होगा तथा उनकी सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन आएगा। प्रख्यात अस्थि विशेषज्ञ डॉ. पी. के. सेठी, नेत्रहीन कल्याण संघ के मंत्री तथा राजस्थान के चुनाव आयुक्त श्री माणिकलाल कानूनगो, चांदमलजी बोहरा आदि ने अपने विचार प्रस्तुत किए। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा और युवाचार्य भी बोले। मैंने अपने प्रवचन में कहा–प्रेक्षाध्यान के द्वारा विकलांग भाइयों को आन्तरिक दृष्टि प्राप्त होगी और उनका मनोबल भी सुदृढ़ होगा।

प्रेक्षाध्यान के गुरु

● २१ जून १९८१। हमने अणुव्रत विहार में प्रवेश किया, उसी दिन युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में प्रेक्षाध्यान का दस दिवसीय शिविर प्रारम्भ हुआ था। शिविर में कुछ प्रबुद्ध जिज्ञासु भी संभागी थे। जुलाई के प्रथम दिन शिविर समापन का कार्यक्रम था। मैंने अपने प्रवचन में प्रेक्षाध्यान के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला। जिन व्यक्तियों पर अपने परिवार, समाज या राष्ट्र का सीधा दायित्व है, उनके लिए प्रेक्षाध्यान को उपयोगी बताया। पर इसके साथ यह भी समझाया कि योग्य गुरु के दिशादर्शन बिना किया गया ध्यान कठिनाई भी पैदा कर सकता है।

एक छोटी-सी कहानी के माध्यम से अपने कथ्य को स्पष्ट करते हुए मैंने आगे कहा–'गीला कपड़ा धूप में सूख सकता है, किन्तु गीला शरीर धूप में नहीं सूख सकता। धूप आर्द्रता सुखाती है तो आर्द्रता पैदा भी करती है। इसी प्रकार ध्यान एकाग्रता पैदा करता है तो व्यग्रता भी पैदा करता है। ध्यान कोमल बनाता है तो क्रूर भी बनाता है। इसलिए ध्यान करनेवालों को हर क्षण जागरूक रहना चाहिए। केवल एकाग्रता काम की नहीं है। उसके पीछे लक्ष्य की स्पष्टता होनी चाहिए। इसके लिए गुरु की अपेक्षा रहती है। गुरु के बिना काम नहीं चल सकता। कुछ पाना है तो गुरु के पास जाना ही होगा। इस दृष्टि से मैंने युवाचार्य महाप्रज्ञ को नियुक्त कर दिया है। ये प्रेक्षाध्यान के गुरु हैं। प्रस्तुत शिविर में अनेक प्रयोग हुए हैं। आगामी शिविरों में भी नए-नए प्रयोग चलते रहेंगे, ऐसा विश्वास है।

● २५ सितम्बर १९८१ को हम गुलाबीबाग गए। रात-दिन वहीं रहे। वहां प्रेक्षाध्यान का शिविर चल रहा है। शिविर का स्थान है गुलाबीबाग स्थित सोहनलाल सुराणा धर्मार्थ ट्रस्ट। लगभग सवा सौ साधक शिविर में संभागी हैं। शिविर युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में चल रहा है। हम केवल एक दिन के लिए शिविरार्थियों को सान्निध्य देने के लिए वहां गए। अनेक संभागियों ने अपने अनुभव सुनाए।

● १० अप्रैल से १९ अप्रैल १९८३। प्रेक्षाध्यान दस दिविसीय शिविर का आयोजन हुआ। लगभग पौने दो सौ व्यक्तियों की शिविर में संभागिता रही। शिविर के लिए स्थान तेरापंथ भवन के नजदीक ही मिल गया। शिविर युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में चला। शिविर-संचालन का दायित्व जेठाभाई जवेरी ने संभाला। अपराह्न में चार बजे मैं भी शिविर-स्थल पर पहुंचता था। शिविर बहुत सफल रहा। समापन कार्यक्रम में अनेक शिविरार्थियों ने अपने अनुभव सुनाए। कुछ अजैन भाइयों ने भी शिविर में अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त किया।

● २८ जुलाई १९८३। प्रेक्षाध्यान का शिविर शुरू हुआ। लगभग पचास व्यक्ति शिविर में साधना कर रहे हैं। संख्या की दृष्टि से शिविर छोटा है, पर अच्छा है। युवक अधिक हैं। उनमें उत्साह और लगन

"ध्यान करने वालों को हर क्षण जागरूक रहना चाहिए। केवल एकाग्रता काम की नहीं है। उसके पीछे लक्ष्य की स्पष्टता होनी चाहिए। इसके लिए गुरु की अपेक्षा रहती है। गुरु के बिना काम नहीं चल सकता। कुछ पाना है तो गुरु के पास जाना ही होगा। इस दृष्टि से मैंने युवाचार्य महाप्रज्ञ को नियुक्त कर दिया है। ये प्रेक्षाध्यान के गुरु हैं।"

है। वे जीने की कला सीख रहे हैं। युवाचार्य के निर्देशन में शिविर चल रहा है। मध्याह्न के समय कभी-कभी मैं भी शिविरार्थियों के बीच चला जाता हूं। इससे उनका उत्साह बढ़ जाता है।

• १२ अगस्त १९८४। प्रवचन के समय अड़तीसवें प्रेक्षाध्यान का विधिवत् उद्घाटन हुआ। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने शिविरार्थियों को उपसम्पदा दी और संकल्प के रूप में पांच सूत्र स्वीकार कराए। शिविर में सौ से अधिक संभागी हैं। कुछ और व्यक्ति भी आ रहे हैं। उसी दिन डॉ. बाफना और डॉ. सत्यरंजन बनर्जी मिले। उनके साथ प्रेक्षाध्यान पद्धति पर अच्छी चर्चा चली। उन्होंने पूरा रस लिया। शिविर में उनका अच्छा उपयोग हो सकता है।

जीवन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर

• २० मई १९८५। भीलवाड़ा में जीवन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन। शिविर का आयोजन हमारे प्रवास-स्थल से तीन किमी. दूर 'ग्राम भारती' में किया गया है। इसे अणु-प्रेक्षा शिविर भी कहा जा सकता है। क्योंकि 'जीवन विज्ञान' अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान का ही नया संस्करण है। शिविर अच्छी तरह चल रहा है। युवाचार्य महाप्रज्ञ वहीं रहते हैं। शिविर में अध्यापकों की बहुलता है। बंगाल, गुजरात एवं राजस्थान से समागत भाई-बहन भी शिविर में संभागी हैं। सब मिलाकर एक सौ पचीस शिविरार्थी हैं। गंभीर विषयों पर अच्छी चर्चा चलती है।

२८ मई १९८५ को हम ग्राम भारती में शिविरार्थियों के बीच गए। कुछ समय वहां रहे। गतिविधियों का आकलन किया। २९ मई १९८५ को शिविर सम्पन्न हो गया। ग्राम भारती से सब आ गए। शिविर का समापन प्रवचन पंडाल में हुआ। कई शिक्षकों ने अपने अनुभव सुनाए। अच्छा कार्यक्रम रहा।

शिविर पारमार्थिक शिक्षण संस्था का

• २५ जून १९८५ से पारमार्थिक शिक्षण संस्था का शिविर प्रारंभ हुआ। सूर्या भवन में शिविर की व्यवस्था की गई है। युवाचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में शिविर चल रहा है। संस्था की मुमुक्षु बहनें, समणियां और संस्था का स्टाफ भी शिविर में संभागी है। सबमें अच्छा उत्साह है। साधना की दृष्टि से प्रायोगिक जीवन का प्रशिक्षण और अभ्यास व्यवस्थित रूप से चल रहा है। ३ जुलाई को पारमार्थिक शिक्षण संस्था का शिविर संपन्न हो गया।

• ८ जुलाई १९८५ को जीवन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर का शुभारम्भ हुआ। यह शिविर राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर तथा तुलसी अध्यात्म नीडम्, लाडनूं के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित किया गया है। दस दिवसीय शिविर में एक सौ आठ शिविरार्थी संभागी हैं। अध्यापकों की संख्या अस्सी है। इनके अतिरिक्त संस्थाओं के प्रधान तथा उपजिला निदेशक भी भाग ले रहे हैं। प्रस्तुत शिविर को अपनी कोटि का एक विशिष्ट शिविर कहा जा सकता है, जिसमें राजस्थान सरकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा जगत में नैतिक एवं चारित्रिक विकास हेतु सरकार ने चालीस स्कूलों का चयन किया। प्रत्येक स्कूल से दो-दो अध्यापकों को आमंत्रित किया गया। यह पहला ही अवसर है, जब सरकारी व्यय से शिविर का आयोजन किया गया है। राजस्थान के शिक्षामंत्री श्री रामपाल उपाध्याय इसमें विशेष अभिरुचि ले रहे हैं। इससे शिक्षा जगत में एक सकारात्मक वातावरण बना है।

१७ जुलाई को शिविर की सम्पन्नता हो गई। शिविरार्थियों ने बड़ा रस लिया। अंतर्मन से काम किया, ऐसा लगता है। नियति अच्छी है। भवितव्यं भवत्येव की दृष्टि से ऐसा हुआ है। भविष्य उज्ज्वल लग रहा है। राजस्थान इसमें पहल करे तो और शुभ है। जीवन विज्ञान की पद्धति और आगे बढ़ेगी, ऐसा विश्वास है। युवाचार्य महाप्रज्ञ की प्रतिभा ने काम किया है।

नवाह्निक प्रेक्षा प्रयोग

• साधु-साध्वियों की आध्यात्मिक चेतना जागृत करने के लिए नई शैली में नवाह्निक प्रेक्षा प्रयोग का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। ३० सितम्बर १९८५ (आश्विन कृष्णा एकम) को उपसम्पदा की स्वीकृति के साथ नवाह्निक प्रयोग का शुभारम्भ हुआ। प्रस्तुत प्रयोग केवल साधु-साध्वियों के लिए है।

सामूहिक प्रयोगों में एक प्रयोग नवपदी जप का है। नमस्कार महामंत्र के पांच पद तथा एसो पंच णमोक्कारो के चार पद, इस प्रकार नौ पदों का उच्चारण करते हुए नौ रंगों के साथ शरीर के नौ केन्द्रों पर सामूहिक जप का अभिनव प्रयोग करवाया गया। मंत्र के लयबद्ध समुच्चारण से पैदा होने वाले विशेष विकिरणों से केवल बाहरी वातावरण ही प्रभावित नहीं होता, साधना करने वालों का मन भी शान्ति एवं पवित्रता से भर जाता है।

सामूहिक प्रयोग का प्रभाव वास्तव में ही अनूठा होता है। योगासन की भांति नियत समय पर ध्यान व कायोत्सर्ग का प्रयोग भी अनिवार्य रूप से चलता है।

एक से साढ़े तीन बजे तक साधु-साध्वियों की सामूहिक गोष्ठी का उपक्रम रखा गया। प्रथम गोष्ठी के प्रारम्भ में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अध्यात्म साधना का सकारात्मक पक्ष प्रस्तुत करके कुछ प्रश्न उपस्थित किए, जैसे–

क्या आपको आध्यात्मिक सुख का अनुभव हुआ है?

क्या कभी अलौकिक आभास के क्षणों में जीने का अवसर मिला?

क्या आन्तरिक शक्तियों के जागरण का अनुभव हुआ?

क्या अनन्त सुख की कल्पना को यथार्थ में जीने का अनुभव हुआ?

क्या निस्पृहता, अनुत्सुकता जैसी वृत्तियों का उदात्तीकरण हुआ?

रात्रिकालीन गोष्ठियों में आध्यात्मिक विषयों पर चिन्तन-मन्थन के बाद अनुप्रेक्षा का अभ्यास करवाया जाता है।

प्रयोग काल में प्रतिदिन दो बार अन्तरंग गोष्ठियों का समायोजन हुआ। गोष्ठियों के कुछ विषय बहुत अन्तरंग थे।

नवाह्निक प्रेक्षा प्रयोग विधिवत सम्पन्न हुआ। साधु-साध्वियों को इससे काफी लाभ मिला। रुचि बढ़ी है। अभ्यास बढ़ा है। विश्वास बढ़ा है। ऐसा होना आवश्यक था।

• १२ अक्टूबर १९८५ से सूर्याभवन, आमेट में प्रेक्षाध्यान शिविर प्रारंभ हो गया। युवाचार्य महाप्रज्ञ शिविर-स्थल पर ही रहेंगे। सर्वोदयी कार्यकर्ता श्री कृष्णराज मेहता भी शिविर में रहेंगे। वे हृदय-परिवर्तन और तनाव-मुक्ति की इस पद्धति से प्रभावित हुए हैं। उन्हें प्रेक्षाध्यान की सैद्धांतिक प्रक्रिया और प्रायोगिक

“
जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर की सम्पन्नता हो गई। शिविरार्थियों ने बड़ा रस लिया। अंतर्मन से काम किया, ऐसा लगता है। नियति अच्छी है। भवितव्यं भवत्येव की दृष्टि से ऐसा हुआ है। भविष्य उज्ज्वल लग रहा है। राजस्थान इसमें पहल करे तो और शुभ है। जीवन-विज्ञान की पद्धति और आगे बढ़ेगी, ऐसा विश्वास है। युवाचार्य महाप्रज्ञ की प्रतिभा ने काम किया है।
”

गतिविधि समझाना जरूरी है इसलिए महाप्रज्ञजी को वहीं रहना होगा। यह कड़ी जुड़ जाए तो अणुव्रत और सर्वोदय पुनः सम्मिलित रूप से कार्य कर सकते हैं। शिविर में और भी अनेक अच्छे युवक-युवतियां हैं। उन सबको संभालना और संतोष देना आवश्यक है। यह एक प्रशस्त उपक्रम है। इसके माध्यम से जीवनशैली में बदलाव हो सकता है।

२१ अक्टूबर को चालीसवां प्रेक्षाध्यान शिविर सम्पन्न हो गया। चालीसवां हम कहते हैं। वैसे पचास से अधिक शिविर हो गए होंगे। कई बड़े-बड़े शिविरों को हमने गिनती में लिया ही नहीं, इसलिए यह चालीसवां है। सभी शिविरार्थी प्रसन्न थे।

नया प्रयोग : अंतरंग शिविर

● राणावास। ५ दिसम्बर १९९० से शिविर का शुभारंभ हुआ। यह एक नया प्रयोग है। इसमें केवल साधु-साध्वियां, समण-समणियां और मुमुक्षु बहनें ही सम्मिलित हैं। यह एक अंतरंग शिविर है। यहां स्थान की सुविधा है। शिविरार्थियों की संख्या डेढ़ सौ से अधिक है। मैं स्वयं प्रशिक्षण देता हूं। महाश्रमणी और महाप्रज्ञजी तो हैं ही। अच्छा वातावरण है। अंतरंग परिषद में इसका विकास नहीं होगा तो इसकी सफलता क्या है? ये प्रश्न विचारणीय बन जाते हैं। प्रायोगिक साधना में ही साधु नाम की सार्थकता हो सकती है। 'जय सभागार' अच्छा प्रवचन हॉल है।

शिविर के उद्घाटन सत्र में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'व्यक्ति के भीतर अक्षय भंडार है। उसमें अच्छाई और बुराई दोनों है। हमारी प्रवृत्तियां अच्छी भी होती हैं और बुरी भी होती हैं। इसके लिए जिम्मेदार हमारे कर्म हैं। बंधे हुए कर्म को कैसे भोगें अथवा उसे निर्वीर्य कैसे बनाएं, इसके लिए कर्म विपाक को समझना जरूरी है। उसको जानने का साधन है धर्म। जीवन को निषेधात्मक भावों से हटाकर विधायक भावों में लगाने के लिए धर्म चार सूत्र प्रस्तुत करता है–जप, तप, स्वाध्याय और ध्यान। चारों में ध्यान सबसे सशक्त माध्यम है। यह भीतर तक पहुंचाता है। प्रेक्षाध्यान सर्वांगीण विकास के द्वार उद्घाटित करता है। इसलिए ज्ञान की उपासना करने वाले और तेज की आराधना करने वाले साधकों के लिए यह शिविर महत्त्वपूर्ण है।'

जीवन विज्ञान सेमिनार

● १२ और १३ फरवरी १९८६ को द्विदिवसीय जीवन विज्ञान सेमिनार आयोजित हुआ। राजस्थान विद्यापीठ (उदयपुर) और अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में सेमिनार की आयोजना की गई। क्षेत्रीय दृष्टि से इसका संबंध राजस्थान प्रदेश से रखा गया। सेमिनार में अनेक विद्वानों ने भाग लिया। उनके वक्तव्य हुए व कई शोध पत्र पढ़े गए। उन पर चर्चा भी हुई। विद्यापीठ के उपकुलपति श्री जनार्दनराय नागर सेमिनार के प्रमुख आयोजक थे। उन्होंने समागत शिक्षाविदों का स्वागत किया। भाई भगवान ने अनौपचारिक शिक्षा पर बल दिया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया कि जीवन विज्ञान की प्रायोगिक पद्धति में वर्तमान के विज्ञान और अतीत के अध्यात्म का समावेश किया गया है।

दो दिनों की गोष्ठियों में राजस्थान के शिक्षामंत्री हीरालालजी देवपुरा, डॉ. सी.एल. तलेसरा, प्रो. एल. के. ओड, प्रो. एम.वी. माथुर आदि विद्वानों के साथ साधु-साध्वियों ने भी विचारों के आदान-प्रदान में भाग लिया। प्रोफेसर भटनागर ने जीवन विज्ञान के संदर्भ में विचार व्यक्त किए। एक गोष्ठी मेडिकल

कॉलेज में युवाचार्यजी के सान्निध्य में हुई। विद्वानों ने जीवन विज्ञान को वर्तमान युग के लिए अत्यंत उपयोगी माना। सेमिनार का क्रम व्यवस्थित रहा।

• १२ जून १९८७। स्वागत कार्यक्रम के साथ ही पारमार्थिक शिक्षण संस्था का शिविर शुरू हो गया। स्थान अच्छा मिला है। शिविर अग्रसेन भवन में और हमारा प्रवास जैन स्थानक में। स्थान खुला-खुला है, साताकारी है।

२१ जून १९८७। मुमुक्षु बहनों का शिविर सम्पन्न हो गया। शिविर में ध्यान, आसन, कायोत्सर्ग आदि का विशेष प्रशिक्षण दिया गया। जैन दर्शन के गंभीर विषयों का बोध कराने की दृष्टि से इस बार मध्याह्न कालीन प्रवचन इसी संदर्भ में हुए। प्रवचनकार युवाचार्य महाप्रज्ञ थे। मुमुक्षु एवं उपासिका बहनों के अतिरिक्त विशेष जिज्ञासु लोग भी प्रवचनों से लाभान्वित हुए।

• २४ जुलाई १९८७। प्रेक्षाध्यान शिविर का समापन था। १७ जुलाई को अशोक विहार में युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में शिविर शुरू हुआ था। शिविर में सत्तर भाई-बहनों की संभागिता थी। वे सब अणुव्रत भवन पहुंच गए। प्रेक्षा गीत के संगान से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। अनेक भाई-बहनों ने अपने अनुभव सुनाए। कुछ शिविरार्थियों ने नियमित रूप से ध्यान करने का संकल्प व्यक्त किया। युवाचार्यजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'गांधीजी ने एक बार कहा था कि यदि उन्हें चालीस व्यक्ति मिल जाएं तो वे सत्याग्रह को समूचे भारत में फैला सकते हैं। मैं कहना चाहता हूं कि प्रेक्षाध्यान व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से सारे देश में आध्यात्मिक क्रान्ति लाई जा सकती है।' मैंने अपने प्रवचन में प्रेक्षाध्यान की गुणवत्ता पर प्रकाश डाला और समाज को आह्वान करते हुए कहा–'तेरापंथ समाज के प्रत्येक भाई-बहन से मैं कहना चाहता हूं कि वह एक बार साधना की दृष्टि से शिविर में अवश्य सम्मिलित हो।'

• अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मंडल का पांच दिवसीय शिविर आयोजित हुआ। शिविर का आयोजन मॉडल टाउन में हुआ था। ७ अगस्त १९८७ को महिला मंडल के शिविर का समापन था। यह शिविर युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में चला था। उन्होंने बताया कि सफलता का श्रेय दो तंत्रों को जाता है–व्यवस्था तंत्र और प्रशिक्षण तंत्र। इस शिविर में दोनों ही तंत्रों ने बड़ी कुशलता से काम किया। शिविर में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाली कई बहनों ने अपने अनुभव सुनाए।

दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा शिविर का आयोजन

• १३ और १४ सितम्बर १९८७ को दो दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित हुआ। विश्वविद्यालय में आयोजित इस शिविर में दोनों दिन आठ-आठ घंटे तक कार्यक्रम चला। शिविर का उद्घाटन युवाचार्य महाप्रज्ञ ने किया। शिक्षकों और विद्यार्थियों ने प्रेक्षाध्यान के सिद्धांतों एवं प्रयोगों को गंभीरता से समझने का प्रयास किया।

• ५ अक्टूबर १९८७। प्रेक्षाध्यान शिविर का समापन समारोह। प्रस्तुत शिविर २६ दिसम्बर को युवाचार्यजी के निर्देशन में शुरू हुआ था। शिविर में पिच्यासी साधक थे, उनमें कुछ व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त थे। समापन कार्यक्रम में अनेक भाई-बहनों ने अपने अनुभव सुनाए। युवाचार्यजी ने उद्बोधन दिया। शिविरार्थियों के अनुभव सुनकर मुझे लगा कि वे लोग कुछ सीखकर आए हैं। मेरा यह अभिमत है कि जिसने प्रेक्षाध्यान को अच्छी तरह सीख लिया, उसने धर्म को जीना सीख लिया।

"गांधीजी ने एक बार कहा था कि यदि उन्हें चालीस व्यक्ति मिल जाएं तो वे सत्याग्रह को समूचे भारत में फैला सकते हैं। मैं कहना चाहता हूं कि प्रेक्षाध्यान व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से सारे देश में आध्यात्मिक क्रान्ति लाई जा सकती है।"

• १३ दिसम्बर १९८७। पैंतीस जापानी व्यक्तियों का एक दल अणुव्रत भवन पहुंचा। इस दल में महिला और पुरुष दोनों हैं। जैनधर्म और प्रेक्षाध्यान का विशेष अभ्यास करने के लिए यह दल भारत आया है। जैन विश्व भारती के प्रांगण में इस दल को पंचदिवसीय प्रशिक्षण दिया जाएगा। यह पहला ही अवसर है, जब विदेशी व्यक्तियों का इतना बड़ा ग्रुप हमारे यहां प्रशिक्षण लेने के लिए आया है।

जैन विश्व भारती, लाडनूं पंचदिवसीय शिविर में प्रशिक्षण पाकर १९ दिसम्बर १९८७ को वह पुनः दिल्ली आ गया।

स्वदेश के लिए प्रस्थान करने से पूर्व वह दल अणुव्रत भवन पहुंचा। दल के हर सदस्य के चेहरे पर कुछ विशेष उपलब्धि का सन्तोष था। दल के प्रायः सभी लोगों की अनुभूति थी कि फाइव स्टार होटलों में उन्हें जो आनन्द नहीं मिलता, वह वहां उपलब्ध हुआ है। उनकी दूसरी टिप्पणी थी कि जब से भगवान बुद्ध जापान गए, जापानी लोगों ने भारत की एक स्वर्गीय धरती के रूप में परिकल्पना की थी। जैनविश्वभारती में वह कल्पना उन्हें यथार्थ प्रतीत हुई।

जापानी दल के नेता श्री मोनोकूनूस ने अपने वक्तव्य में कहा–'जापान में योगाश्रम के संचालक मास्टर ओकी जब से आपके सम्पर्क में आए और यहां की विशेषताओं के बारे में जानकारी दी, तभी से हमारी प्रबल इच्छा थी कि हम आपके सान्निध्य में आकर कुछ सीखें। डॉ. नथमल टाटिया और उनकी धर्मपत्नी की जापानयात्रा ने हमें इस विषय में और अधिक उत्सुक बना दिया। पैंतीस व्यक्तियों का यह दल जैनधर्म और प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण लेने के लिए यहां आया। हमारा यह प्रवास बहुत सुखद रहा। हमें अनेक नए तौर-तरीके सीखने का अवसर मिला। जापान और जैन विश्वभारती के बीच आदान-प्रदान होता रहे, इस दृष्टि से हमारी प्रार्थना है कि आप मास्टर ओकी आश्रम द्वारा संचालित छह सप्ताह के प्रशिक्षण में अपने प्रतिनिधियों को भेजने की कृपा करें।'

जापानी दल को सम्बोधित करते हुए युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'जापानी लोग भारत में उन लोगों से कुछ सीखने के लिए आए हैं, जिनके पास त्याग बहुत अधिक है और पदार्थ कम है। अब जापानी लोग विश्व को अणुबम की विभीषिका से बचाने के लिए अणुव्रत के दूत बनकर सर्वत्र फैल जाएं। आपने हमारे कार्यक्रमों को इतना पसन्द किया है तो मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि आप आचार्यजी को जापान ले जाएंगे या जापान को यहां ले आएंगे?' इस प्रश्न के साथ ही एक जापानी भाई खड़ा होकर बोला–'हम जापान को यहीं ले आएंगे।'

• ८ मई १९८८। तुलसी अध्यात्म नीडम में प्रेक्षाध्यान का दस दिवसीय शिविर प्रारम्भ हुआ। १७ मई १९८८ प्रेक्षाध्यान शिविर का अन्तिम दिन था। नीडम के निदेशक शंकरलालजी मेहता ने शिविर की रिपोर्ट प्रस्तुत की। अनेक शिविरार्थियों ने अपने संस्मरण सुनाए। गुजरात के जाने-माने शिक्षाविद् श्री चीनुभाई नायक और श्री नवनीत भाई ने अपने विचार व्यक्त किए। युवाचार्यजी का वक्तव्य हुआ। सब बातें सुनकर अनुभव हुआ कि इस बार का शिविर बहुत अच्छा था। शिविर में कई प्रबुद्ध व्यक्ति थे। अन्य शिविरार्थियों में नए-पुराने सब प्रकार के साधक थे। शिविर का प्रभाव इतना सुन्दर रहा, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

• १४ अगस्त १९८८। श्रीडूंगरगढ़ में पहला ध्यान शिविर पुगलिया गेस्ट हाउस (जीवन विज्ञान) में शुरू हुआ। अस्सी शिविरार्थी हैं और बीस-पचीस व्यक्ति जैन विश्व भारती के हैं। कुल मिलाकर लगभग सौ

भाई-बहन हैं। दिन और रात्रि में शिविर के व्यवस्थित उपक्रम चल रहे हैं। हम यहां प्रज्ञा समवसरण में सारे कार्यक्रम चला रहे हैं। युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में शिविर चल रहा है। इस बार उनके साथ जो साधु गए हैं, उन्हें निर्देश दिया है कि वे सब प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करें। जाने वाले साधु केवल दर्शक बनकर या वहां रहने के लिए ही न जाएं। कुछ साधुओं को नामोल्लेखपूर्वक अभ्यास करने की प्रेरणा दी है। वैसा ही हो रहा है।

२२ अगस्त १९८८। शिविर के समापन का कार्यक्रम चला। शिविर अच्छा चला। प्रायः बहन-भाई समाज के थे। 'जीवन विज्ञान' स्थान भी रमणीय मिल गया। काफी युवकों ने अच्छा रस लिया। शिविर की सम्पन्नता के बाद भी उनका अभ्यास चल रहा है। योगासन, ध्यान, अनुप्रेक्षा आदि का नियमित अभ्यास चलता रहे तो संस्कारों का परिष्कार हो सकता है।

● सन् १९८८। अक्टूबर महीने में कोथली (महाराष्ट्र) में दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित हुआ। यह शिविर दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रबुद्ध संत आचार्यश्री विद्यानन्दजी महाराज के सान्निध्य में हुआ। इसमें कई दिगम्बर मुनि, आर्यिकाएं और बहन-भाई संभागी थे। शिविर के संचालन में जेठाभाई जवेरी, नगीन भाई शाह, एस.के. जैन एवं श्रीमती सन्तोष जैन का महत्त्वपूर्ण योग रहा। दिगम्बर समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने प्रेक्षाध्यान में अच्छा रस लिया। आचार्य विद्यानन्दजी महाराज ने तो यहां तक कह दिया– 'प्रेक्षाध्यान पद्धति को प्रस्तुत कर आचार्य तुलसी ने अद्भुत काम किया है। अब आचार्यजी अन्य कामों को गौण कर इसे व्यापक बनाएं। क्योंकि इससे जैन धर्म की अधिक प्रभावना हो सकेगी।' कोथली का शिविर सम्पन्न होने के बाद सोलापुर के श्राविका आश्रम में शिविर का आयोजन हुआ। प्रशिक्षकों ने उत्साह के साथ काम किया।

प्रेक्षा प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर

● २० सितम्बर १९८९। दस दिवसीय प्रेक्षा प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर समायोजित हुआ। शिविर में तिरेपन प्रशिक्षक प्रशिक्षणार्थी और छब्बीस प्रवेशार्थी प्रशिक्षक थे। प्रशिक्षु प्रशिक्षकों को प्रातःकाल प्रवचन सुनने का लाभ मिला। शेष समय में उनकी व्यवस्थित कक्षाएं चलीं। युवाचार्यजी ने उनको एकाग्रता के कुछ विशेष प्रयोग कराए।

● ३० सितम्बर १९८९ से दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर के अन्तिम दो दिनों में शिविरार्थियों के संस्मरण सुने। अच्छे उत्साहवर्धक विचार थे। प्रेक्षाध्यान से उनको एक नया जीवन मिला है, ऐसा प्रतीत हुआ। शिविर में एक सौ तैंतीस साधकों ने भाग लिया। पुराने साधकों एवं प्रशिक्षकों को मिलाकर शिविरार्थियों की कुल संख्या एक सौ पचहत्तर हो गई। प्रेक्षाध्यान के प्रति बढ़ते हुए आकर्षण को देखकर अनुभव होता है कि हमारे पास तत्त्व बहुत अच्छे हैं। पर प्रचार-प्रसार के तौर-तरीके व्यवस्थित नहीं हैं। इसलिए वांछित परिणाम नहीं आते। लगता है कि नियति आधारित क्रम चल रहा है। होना है, अतः हो रहा है। पर कोई व्यवस्थित तरीका नहीं है। कब होगा? कौन कह सकता है? जैसा नियति को मंजूर है। यद्यपि मैं एकान्ततः नियतिवादी नहीं हूं, फिर भी कई बार नियति पर आकर रुकना पड़ता है।

> "प्रेक्षाध्यान पद्धति को प्रस्तुत कर आचार्य तुलसी ने अद्भुत काम किया है। अब आचार्यजी अन्य कामों को गौण कर इसे व्यापक बनाएं। क्योंकि इससे जैन धर्म की अधिक प्रभावना हो सकेगी।"

योगक्षेम वर्ष में प्रेक्षा प्रशिक्षण

● १० अक्टूबर १९८९। योगक्षेम वर्ष के अन्तर्गत अन्यान्य प्रशिक्षणों के साथ प्रेक्षा प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया जा रहा है। प्रेक्षा प्रशिक्षण के दो मासिक सत्र सम्पन्न हो गए। उनमें पैंतीस-पैंतीस साधु-

साध्वियों को प्रशिक्षण दिया गया। तीसरा मासिक सत्र आज शुरू हो गया। प्रशिक्षण में प्राप्त बिन्दुओं का गहरा अभ्यास करने के लिए दस-दस दिन के दो भावितात्मा शिविरों का आयोजन किया गया। स्वाध्याय के क्रम में युवाचार्यजी ने 'समयसार' ग्रन्थ का वाचन किया। कायोत्सर्ग, शरीरप्रेक्षा और दर्शन केन्द्र पर ध्यान के विशेष प्रयोग चले। यह भी लक्ष्य रखा गया कि साधक स्वयं ध्यान की गहराई में उतरें। सबने अच्छा रस लिया। अनेक साधु-साध्वियों की अच्छी तैयारी हो गई। परिणाम संतोषजनक हैं।

● १ नवम्बर से १० नवम्बर १९८९। तुलसी अध्यात्म नीडम में अट्ठावनवां प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित हुआ। प्रस्तुत शिविर का आयोजन प्रेक्षाध्यान अकादमी (अहमदाबाद) के विशेष अनुरोध पर किया गया। इसमें एक सौ आठ भाई-बहनों की संभागिता रही। शिक्षा की दृष्टि से यह प्रबुद्ध वर्ग का शिविर था। शिविर में प्रेक्षाध्यान, कायोत्सर्ग, आसन, प्राणायाम आदि के नियमित प्रयोगों के साथ शरीर विज्ञान एवं जीवन विज्ञान की सैद्धान्तिक जानकारी भी दी गई। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने शिविरार्थियों को कुछ विशेष प्रयोग करवाए। उनके वक्तव्यों से सबको नई दृष्टि प्राप्त हुई। शिविर समापन का कार्यक्रम दो चरणों में सम्पन्न हुआ। प्रथम चरण में साधकों ने अपने अनुभव सुनाए। युवाचार्यजी ने शरीर विज्ञान और प्राण विज्ञान का संयुक्त अध्ययन करने की प्रेरणा दी।

प्रेक्षा दीक्षा का उपक्रम

● १ दिसम्बर को प्रातःकालीन प्रवचन के समय जापानी भाई-बहनों की प्रेक्षा दीक्षा हुई। सब लोगों ने पंक्तिबद्ध खड़े होकर संकल्प स्वीकार किए। युवाचार्य महाप्रज्ञ द्वारा रचित गीत–'चैत्यपुरुष जग जाए' का जापानी भाई-बहनों ने अच्छी लय में संगान किया। जापानी लोगों के मुंह से हिन्दी का गीत सुनकर सब श्रोता चकित रह गए। मुमुक्षु बहनों का गणवेश पहनकर एक जापानी कन्या कुमारी तोकामा मंच पर आई तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा–'मैं प्रेक्षाध्यान सीखने के लिए यहां आई और उससे बहुत प्रभावित हुई।'

प्रेक्षा परिवार योजना

● २१ अक्टूबर १९९०। पाली की बांगड़ धर्मशाला में दसदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर प्रारम्भ हुआ। बम्बई, अहमदाबाद और सूरत से समागत गुजराती भाई-बहनों ने इस शिविर में विशेष रूप से भाग लिया। युवाचार्य महाप्रज्ञ एक सप्ताह तक शिविरार्थियों के लिए धर्मशाला में प्रवास करेंगे।

२९ अक्टूबर १९९०। प्रेक्षाध्यान शिविर का समापन कार्यक्रम था। युवाचार्य महाप्रज्ञ बांगड़ धर्मशाला से यहां पहुंच गए। शिविर में संभागी लोगों ने बताया कि शिविर प्रभावशाली रहा। 'प्रेक्षा परिवार' की योजना बनाई जा रही है। विजयसिंह बैद की कल्पना है। उसका कहना है कि इसे एक क्लब की तरह चलाया जाए। इस योजना पर विचार-विमर्श हो रहा है। कोई व्यवस्थित रूप बन जाए तो अच्छा है।

मूलचन्दजी जैन शिविर में कराए गए प्रयोगों से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा–'युवाचार्यजी के साहित्य ने मुझे शिविर में आने की प्रेरणा दी। अन्यथा एक राजनैतिक व्यक्ति का शिविर से क्या सरोकार हो सकता है? मैं चाहता हूं कि वर्तमान राजनीति का स्वरूप बदले। इस कार्य में अणुव्रत तथा प्रेक्षाध्यान बहुत अच्छी भूमिका निभा सकते हैं।'

प्राकृतिक चिकित्सक श्री रतनचन्द पहाड़ी ने अपना अनुभव प्रस्तुत करते हुए कहा–'प्रेक्षाध्यान के प्रयोग से ज्ञानतन्तु सक्रिय होते हैं और एकाग्रता का विकास होता है। मैंने अनेक ध्यान शिविरों में भाग लिया है। प्रेक्षाध्यान पद्धति मुझे अपूर्व लगी।'

● जयपुर, मई १९९१। इस बार जयपुर पहुंचते ही प्रेक्षाध्यान की नियमित कक्षाएं प्रारम्भ हो गईं। प्रातः और सायं दोनों समय ध्यान की कक्षाएं चलती हैं। इन कक्षाओं में आम जनता के साथ बौद्धिक लोग भी बहुत आते हैं। दस-पन्द्रह डॉक्टरों ने काफी दिनों तक नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास किया। सवाई मानसिंह के हॉल में युवाचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में एक संगोष्ठी हुई। उस संगोष्ठी से डॉक्टर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने प्रेक्षाध्यान के बारे में जिज्ञासु भाव से प्रश्न उपस्थित किए।

शिक्षा जगत में प्रेक्षाध्यान की अच्छी चर्चा रही। शास्त्रीनगर में सन्त जयाचार्य महिला महाविद्यालय, प्राइवेट सेक्शन आदि तीन विद्यालयों में सप्तदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित हुआ। पोस्टऑफिस के कर्मचारियों का एक शिविर लगा। बनीपार्क में राजस्थान स्वास्थ्य योग परिषद् के तत्त्वावधान में तेरह दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। इसी संस्थान द्वारा पुनः एक शिविर (५ मई से १३ मई तक) आयोजित हुआ है। जनता कॉलोनी और रामनिवास बाग के म्यूजियम में भी अल्पकालीन शिविर चले। मालवीय इंजीनियरिंग कॉलेज तथा राजस्थान पुलिस अकादमी में भी जीवन विज्ञान के प्रयोग चलाए गए। ओ.टी.एम. ऑफिसर ट्रेनिंग स्कूल (हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान लोक प्रशासन संस्थान) में पन्द्रह दिनों तक प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण का सुव्यवस्थित क्रम चला।

९ मई १९९१ को मध्याह्न में ओ.टी.एम. के अधिकारियों की ट्रेनिंग का समापन सत्र हमारे सान्निध्य में रहा। पाठ्यक्रम निदेशक श्री पुखराज सालेचा आदि अनेक वक्ताओं ने प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान की उपयोगिता को विभिन्न कोणों से अभिव्यक्ति दी। उन्होंने कहा–'हमारे इस एक पक्ष के ट्रेनिंग के सैकड़ों घंटों में प्रेक्षाध्यान प्रयोग के पन्द्रह घंटे अति महत्त्वपूर्ण रहे। प्रशिक्षण के दोनों घटकों की तुलना की जाए तो उपयोगिता की दृष्टि से पन्द्रह घंटे भारी रहेंगे। तनावमुक्ति के लिए प्रेक्षाध्यान एक अमोघ उपाय है। ऐसी प्रयोग-कक्षाओं की ऑफिसर्स लोगों के प्रशिक्षण में विशेष उपयोगिता है।'

● ८ दिसम्बर १९९१ को तेरह सदस्यों का एक दल जापान से जैन विश्व भारती पहुंचा। पिछले कुछ वर्षों से प्रतिवर्ष ओकी योगा सेन्टर के सदस्य प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने के लिए यहां आते हैं। प्रातःकालीन कार्यक्रम में जापानी भाई साकामोतो ने कहा–'मैं जैन विश्व भारती में पांचवीं बार आया हूं। इस बार हम तेरह बहन-भाई यहां आए हैं। हमारे जापान ने आर्थिक दृष्टि से बहुत तरक्की की है, पर उसके साथ मानसिक परेशानियां बहुत बढ़ी हैं। उन्हें मिटाने के लिए हम आपके पास पहुंचते हैं। हिन्दुस्तान में आकर, उसमें भी विश्व भारती, लाडनूं में आकर मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता होती है।'

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'अनेक विद्वान पूछते हैं कि जैनधर्म इतना प्राचीन और वैज्ञानिक है, फिर उसका विस्तार क्यों नहीं हुआ? यह एक सचाई है। इन पांच-सात वर्षों में समण-समणियों की विदेश यात्रा का प्रारंभ हुआ। उसके बाद प्रायः प्रतिवर्ष जापान का एक दल यहां आता है। जापानी लोग बहुत ग्रहणशील हैं। प्रेक्षाध्यान में इनकी रुचि जागृत हुई है। ये 'अर्हम्' नाम की पत्रिका भी निकालते हैं। प्रेक्षाध्यान से संबंधित पुस्तकों का जापानी में अनुवाद कर रहे हैं। अपेक्षा है कि ये औद्योगिक क्षेत्र की तरह अध्यात्म के क्षेत्र में भी आगे बढ़ें।'

"युवाचार्यजी के साहित्य ने मुझे शिविर में आने की प्रेरणा दी। अन्यथा एक राजनैतिक व्यक्ति का शिविर से क्या सरोकार हो सकता है? मैं चाहता हूं कि वर्तमान राजनीति का स्वरूप बदले। इस कार्य में अणुव्रत तथा प्रेक्षाध्यान बहुत अच्छी भूमिका निभा सकते हैं।"

• ६ अक्टूबर १९९२। भिक्षु चेतना वर्ष का शुभारम्भ। प्रातःकालीन प्रवचन में प्रायः सभी साधु-साध्वियों की उपस्थिति थी। नमस्कार महामंत्र का उच्चारण करने के बाद सामूहिक रूप से कायगुप्ति का प्रयोग हुआ। इस प्रयोग का कालमान बीस मिनट का रहा। कायगुप्ति का प्रयोग युवाचार्य महाप्रज्ञ ने करवाया।

• २५ अक्टूबर से २ नवम्बर १९९२ तक आयोजित शिविर में छियासठ व्यक्ति संभागी थे। उनमें सतरह इंजीनियर थे। कुछ व्याख्याता एवं वैज्ञानिक थे। अधिक शिविरार्थी बम्बई के थे। समापन कार्यक्रम में अनेक भाई-बहनों ने अपने अनुभव प्रस्तुत किए। अनेक व्यक्ति प्रथम बार शिविर में आए थे। उनके अनुभव काफी अच्छे रहे। इस शिविर में कुछ बच्चे भी थे। उनको भी प्रयोग करवाए गए।

समापन समारोह में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'इस शिविर में भाग लेने वाले भाई-बहनों ने यहां आकर क्या प्राप्त किया, यह मैं नहीं बताऊंगा। मैं सभी से कहना चाहूंगा कि वे प्रेक्षा परिवार के सदस्य के रूप में अपनी पहचान बनाएं तथा प्रेक्षा डायरी तैयार करके उसके अनुसार अपनी दिनचर्या बनाएं। दिनचर्या के कुछ बिन्दु ये हो सकते हैं–

१. नियमित जागने और सोने के समय का निर्धारण।

२. आसन, प्राणायाम और ध्यान का नियमित समय।

३. भोजन कब किया जाए? और कैसा हो?

४. संवेगों पर नियंत्रण करने के लिए क्या करें?

५. प्रतिदिन सायंकाल अपनी गति-प्रगति का निरीक्षण करने के साथ यह भी सोचें कि मैंने अणुव्रत व प्रेक्षाध्यान के लिए क्या किया?

जो अभिभावक अपनी जीवनशैली में इन बिन्दुओं का समावेश करेंगे, वे निश्चित ही अपनी भावी पीढ़ी को सुसंस्कारी बनाएंगे। इस शिविर में भाग लेनेवाले वैज्ञानिकों में अच्छी प्रेरणा जागी है। आज के इस भौतिक वातावरण में पदार्थ मनुष्य पर हावी हो रहा है। ऐसी स्थिति में यदि अध्यात्म की एक किरण भी प्रस्फुटित होगी तो मानव को अलौकिक सुख का अनुभव होगा।'

कारागार में प्रेक्षाध्यान

१२ अप्रैल १९९४। आज महाप्रज्ञजी जेल में कैदियों को ध्यान कराने गए। लगभग एक हजार कैदी व्यवस्थित रूप में बैठे थे। उधर दिल्ली की तिहाड़ जेल में गोयनकाजी विपश्यना करा रहे हैं और इधर जयपुर की जेल में महाप्रज्ञजी प्रेक्षाध्यान करा रहे हैं। प्रोग्राम अच्छा रहा।

• २१ अक्टूबर से ३१ अक्टूबर १९९६। आज दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित हुआ। इस शिविर में बम्बई से समागत तिरेपन व्यक्तियों ने भाग लिया। संभागी शिविरार्थियों में अधिसंख्य डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, शिक्षाविद जैसे बुद्धिजीवी वर्ग के लोग थे। समापन कार्यक्रम में शिविर की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। अनेक संभागियों ने शिविर के अनुभव सुनाए। महाप्रज्ञजी ने अपने उद्‌बोधन में कहा–'प्रेक्षाध्यान अन्तर्जगत में प्रवेश करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से गुजरने के बाद व्यक्ति अन्तर्जगत के अपार सौन्दर्य से परिचित हो जाता है तथा आनन्द का अनुभव करता है। अपेक्षा है कि शिविर में भाग लेनेवाले बहन-भाई नियमित रूप से प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करते रहें तथा इस संदर्भ में गति-प्रगति के विवरण को सुरक्षित रखें।'

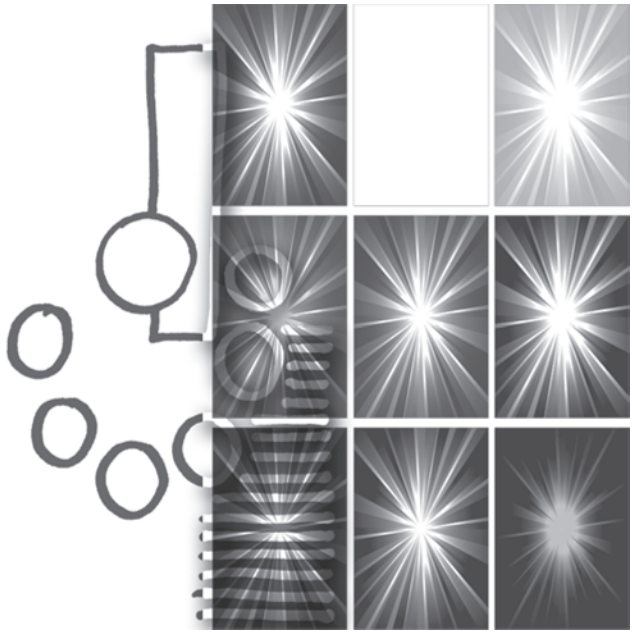

संघीय व्यवस्था और अनुशासन

हाजरी का नवीकरण

वि.सं. २०१७, आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन तेरापंथ ने अपने दो सौ वर्ष पूरे किए। उस उपलक्ष में द्विशताब्दी समारोह का आयोजन हुआ। उस अवसर पर साधना, शिक्षा, व्यवस्था, परम्परा आदि अनेक विषयों में चिन्तन-मन्थन का क्रम चला। साधु-साध्वियों के लिए निर्मित मर्यादाओं में भी सामयिक संशोधन की अपेक्षा का अनुभव हुआ।

राजसमन्द में प्राचीन मर्यादाओं के निरीक्षण का कार्य शुरू करना था, किन्तु अन्यान्य कार्यों की व्यस्तता में वह संभव नहीं हो पाया। वहां से विहार के बाद उस काम को हाथ में लिया। मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमलजी उस कार्य में मेरे साथ बैठते। कुछ दिनों के बाद मुनि बुद्धमलजी पीछे रह गए। तब मुनि दुलहराज बैठने लगा। मर्यादावलि, हाजरी और तेरह बोल–इनके नवीन संस्करण तैयार हो गए।

अनुशासनात्मक कार्यवाही

धर्मसंघ के हित का चिन्तन मैं प्रारंभ से करता रहा। आचार्यवर के साथ इस संदर्भ में निरंतर चिन्तन

> “अनुशासनात्मक कार्यवाही के इस प्रसंग में मैंने एकमात्र मुनि नथमलजी को ही साथ रखा। उनकी गंभीरता भी उल्लेखनीय है। सब बातों की अवगति होने पर भी उनकी ओर से एक भी साधु को किसी प्रकार की भनक नहीं लगी।”

का क्रम रहा। पूज्य गुरुदेव का मुझ पर अमित विश्वास था इसलिए वे सभी संघीय कार्यों में मुझे सहयोगी और सहभागी बना लेते। वि. सं. २०१६ का प्रसंग इसका एक निदर्शन है–

● वि.सं. २०१५ में मैं थली से उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल की यात्रा पर गया। कुछ साधु-साध्वियों की गलतियों को लेकर मेरे पास शिकायतें पहुंचीं। मैं उस समय कलकत्ता में था। फाल्गुन शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ में ही मैं बीदासर पहुंच गया। मैंने सबसे पहले कलकत्ता पहुंची शिकायतों की जांच शुरू की। शिकायतों से संबंधित साधु-साध्वियों को व्यक्तिशः बुलाया। उनसे बातचीत की। वार्तालाप के प्रथम दौर में मैं बहुत सहज और शान्त रहा। शास्त्रों में बताया गया है कि आचार्यों का प्रथम दायित्व है कि वे गलती करने वालों के मुंह से गलती कहलवाएं। इसके लिए मुझे एक सप्ताह का समय लगाना पड़ा। इस काम के लिए मुझे तो बैठना ही होता। मैंने मुनि नथमलजी को भी साथ रखा। मैंने मालवा और मेवाड़ में घटित घटनाओं के संबंध में पूछताछ की। साधुओं ने अपनी-अपनी गलतियां बताईं। मुनि नथमलजी उनको यथावत् नोट करते रहे। कुछ गलतियां साधारण थीं। किन्तु कुछ गलतियां ऐसी थीं, जो सामान्यतः नहीं होनी चाहिए। अनुशासनहीनता और आचारहीनता (खान-पान का असंयम) से संबंधित वे ऐसी बातें थीं, जो धर्मसंघ की प्रभावना को कम करने वाली थीं। उस समय न किसी को उपालम्भ दिया और न प्रायश्चित्त ही दिया। संबंधित साधुओं ने सोचा कि उनका बचाव हो गया। वे अमर हो गए। मैं उस विषय में अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का तरीका सोच रहा था।

फाल्गुन शुक्ला द्वादशी, वि.सं. २०१६ को आचार्यवर ने हजारों की परिषद् के मध्य अनुशासनात्मक कार्यवाही करते हुए दो संतों का संघ से संबंध विच्छेद कर दिया। कुछ संतों को कठोर प्रायश्चित्त दिया। आचार्यवर ने प्रस्तुत संदर्भ में मेरा उल्लेख करते हुए लिखा–

● समग्र कार्यवाही की सम्पन्नता के बाद मुनि नथमलजी ने खड़े होकर कहा–'आचार्यप्रवर ने इन दिनों जो तपस्या की है, वह लाख-लाख चौविहार तपस्या से बढ़कर है। रात्रि में ११-१२ बजे सोना और तीन बजे उठ जाना। स्वप्न में भी चिन्तन करते रहना, संघ को पवित्र व संगठित बनाए रखने के उपाय सोचते रहना–कम तपस्या नहीं है। आज जिन संतों को उपालम्भ और प्रायश्चित्त मिला है, वे परम प्रसन्न हैं। क्योंकि वे अपने आपको हल्का महसूस कर रहे हैं। वे सोचते हैं–'आचार्यश्री ने हमारी भूलों का प्रतिकार कर हमें पवित्र किया है, हमें निभाया है, संयम में सहयोग दिया है। शासन विजयी है, आचार्यश्री विजयी हैं। एक शब्द में कहें तो तेरापंथ संघ-चतुष्टय विजयी है।'

अनुशासनात्मक कार्यवाही के इस प्रसंग में मैंने एकमात्र मुनि नथमलजी को ही साथ रखा। उनकी गंभीरता भी उल्लेखनीय है। सब बातों की अवगति होने पर भी उनकी ओर से एक भी साधु को किसी प्रकार की भनक नहीं लगी। मध्याह्न में साधु-साध्वियों की अंतरंग परिषद में मालवा की घटना का विशद विश्लेषण किया गया।

जो घटनाएं मेरे सामने आई थीं, उन पर विचार करने के बाद मैंने कुछ निर्णय लिए। अपने निर्णयों की समीक्षा के लिए मैंने दो साधुओं–मुनि चन्दनमलजी (संघमुक्त) और मुनि नथमलजी को उनकी घटना सुनने के लिए कहा। उन्होंने घटना सुनने के बाद जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया, वह मेरे निर्णय के समान ही था। इससे मुझे अपनी निर्णायकता के प्रति संतोष हुआ।

अंतरंग व्यवस्था में सहयोग

• १७ जनवरी १९६३। वि.सं. २०१९ तक साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों (वर्गों) की व्यवस्था मैं अकेला ही करता था। शासन-संचालन में मंत्री मुनि मगनलालजी मेरे अनन्य सहयोगी थे। पर अन्तरंग व्यवस्था में उन्होंने कभी रुचि नहीं ली। आतमा गांव में मैंने पहली बार उक्त कार्य में नया सहयोग लिया। कौन साधु किस सिंघाड़े के साथ ठीक बैठ सकता है, इस विषय में मुनि नथमलजी के साथ विचार-विमर्श किया। सहचिन्तन से मुझे कुछ हल्केपन का अनुभव हुआ। यह घटना माघ कृष्णा सप्तमी (१७ जनवरी १९६३) की है।

आश्वासन

• १ अगस्त १९६३। मुनि खूबचंदजी (बीदासर) ने अपने भरे-पूरे परिवार को छोड़कर वृद्धावस्था में दीक्षा ग्रहण की। सावन महीने के चौथे सप्ताह में उनको पेशाब की तकलीफ हो गई। पेशाब में अवरोध आने से बेचैनी इतनी बढ़ी कि उसे सहना मुश्किल हो गया। वेदना की तीव्रता और सहनशीलता की कमी ने मन को प्रभावित किया। विचारों में शिथिलता आ गई। सेवा के लिए साधु रात भर जागते रहे, पर उनका कष्ट दूर नहीं हो सका। उस असह्य वेदना की स्थिति में मन थोड़ा दुर्बल हुआ। मानसिक दुर्बलता में साधुत्व कैसे निभेगा? इस प्रश्न ने उलझन खड़ी कर दी। मैंने अपनी ओर से उनको पूरा आश्वासन दिया। सेवाभावी मुनि चम्पालालजी और मुनि नथमलजी ने पूरी आत्मीयता के साथ उनको समझाने का प्रयास किया। इससे उनकी मनोदशा बदली। विचारों में दृढ़ता आई। रात भर उन्होंने भीषण कष्ट सह लिया।

विकेन्द्रित व्यवस्था का पहला प्रयोग

• २ जनवरी १९६४। साध्वियों की भावी व्यवस्था के सम्बन्ध में मुनिश्री नथमलजी के साथ चिन्तन किया। कुछ साध्वियों के साथ बात हुई। कुछ साध्वियों के नाम भी सामने आए। उनमें से ही चुनाव करने का चिंतन किया। उन साध्वियों का परीक्षण करने के लिए एक प्रश्नावलि तैयार की गई। उसमें नौ प्रश्न थे। प्रत्येक साध्वी के लिए पन्द्रह मिनट का समय निर्धारित था।

• ४ जनवरी १९६४ को मध्याह्न में सात साध्वियों का परीक्षण किया गया—साध्वी कमलूजी (जयपुर), साध्वी कस्तूरांजी (लाडनूं), साध्वी विजयश्रीजी (रतनगढ़), साध्वी कानकुमारीजी (सरदारशहर), साध्वी स्नेहकुमारीजी (संघमित्राजी), साध्वी राजीमतीजी (रतनगढ़) और साध्वी मंजुलाजी (लाडनूं)। मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमल्लजी—दोनों ने अलग-अलग अंक लगाए। परीक्षण का तरीका स्वस्थ रहा।

• ५ जनवरी १९६४। नई व्यवस्था की क्रियान्विति के बाद मेरा मन बहुत प्रसन्न और शांत रहा। चारों साध्वियों को दो दिन तक विशेष प्रशिक्षण दिया। साध्वीप्रमुखा के सामने और अलग से भी उन्हें विविध शिक्षाएं दीं। उन्होंने अपना-अपना कार्य संभालना शुरू कर दिया। उनके लिए विधि-विधान बनाना अपेक्षित लगा। उसके लिए भी एक व्यवस्था कर दी गई। दो दिनों में विधान-पत्र तैयार हो गया। व्यवस्था के सम्यक् संचालन हेतु एक आचार-संहिता भी बनाई गई। विधान और आचार-संहिता को अंतिम रूप देने का दायित्व मुनि नथमलजी व मुनि बुद्धमल्लजी को सौंपा गया।' साध्वी संघ में एक नए युग का प्रवर्तन सा हो गया।

• ९-१० जनवरी १९६४, लाडनूं। कुहासा होने के कारण कार्यक्रम अव्यवस्थित हो गए। साधुओं के सिंघाड़ों का काम मुनि नथमलजी को पास बिठाकर करना शुरू किया।

“आतमा गांव में मैंने पहली बार संघीय कार्य में नया सहयोग लिया। कौन साधु किस सिंघाड़े के साथ ठीक बैठ सकता है, इस विषय में मुनि नथमलजी के साथ विचार-विमर्श किया। सहचिन्तन से मुझे हलकेपन का अनुभव हुआ।”

• नई व्यवस्था के वार्षिक कार्यकाल की सम्पन्नता पर २२ जनवरी, १९६५ को मध्याह्न में साधु-साध्वियों की सामूहिक गोष्ठी आयोजित थी। प्रारंभ में कुछ साधु-साध्वियों के वक्तव्य हुए। उसके बाद चारों विभागों की अग्रणी साध्वियों ने अपने संक्षिप्त वक्तव्यों में कृतज्ञता ज्ञापित की तथा अपने-अपने विभाग-पत्र समर्पित कर दिए।

मुनि नथमलजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'हमारा प्रमुख कार्य है साधना। हमारे पास पद या अधिकार एकमात्र साधुता का होता है। मंत्री मुनि कहा करते थे–'हम अनन्त बार गुठली होकर पैरों तले रौंदे गए हैं, हमें रोटी के लिए भी गृहस्थों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है, फिर हम अहंकार किस बात का करें?' तेरापंथ संघ में नए-नए प्रयोग होते रहते हैं। तेरापंथ की स्थापना की लगभग एक शताब्दी के बाद अनेक प्रकार की व्यवस्थाओं का शुभारंभ हुआ था। उनमें एक व्यवस्था थी–साध्वीप्रमुखा (प्रमुख साध्वी) का मनोनयन। जयाचार्य ने महासती सरदारांजी को साध्वी-संघ की संभाल का दायित्व सौंपकर एक नई परम्परा का सूत्रपात किया। उसके लगभग सौ वर्ष बाद अब उसमें पुनः विकास हो रहा है। इतने वर्षों तक साध्वियों की सार-संभाल का काम एक साध्वी करती थी। अब उसके साथ चार साध्वियों को और जोड़ दिया गया। इसका लक्ष्य है–सबको संतोष मिले और कार्य सुचारू रूप से चले। व्यवस्था के साथ अधिकार की भावना नहीं पनपे। अधिकार के स्थान पर अविकारवृत्ति पनपे और साधुता में निखार आए, यह आवश्यक है।'

व्यक्तिगत संवाद

• २४ दिसम्बर १९६५, भिवानी। साधु-साध्वियों की साधना और संघीय व्यवस्था में निखार लाने के लिए उनसे व्यक्तिगत संवाद करने का सिलसिला चालू किया। इसमें उनकी मानसिक समाधि कैसी है? उनके सामने प्रमुख रूप से क्या समस्याएं हैं? आदि के बारे में पूछताछ की जाती है।इस उपक्रम में मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) मेरे साथ रहते हैं। महोत्सव तक सम्भावित सारे कार्यक्रम निश्चित कर लिए। कुछ प्रसंग ऐसे भी सामने आए, जिन्हें लेकर अनुशासनात्मक कार्यवाही आवश्यक लगी। चालू गतिविधियों में कुछ नवीनता लाने का चिन्तन हुआ। साधुओं से व्यक्तिशः बात करने के लिए रात्री में पर्याप्त समय मिल जाता। दिन में कुछ खींचातान-सी रहती है, फिर भी समय निकालकर साध्वियों से व्यक्तिगत बातचीत की व्यवस्था की। एक प्रकार से अन्तरंग स्थितियों का सर्वे किया जा रहा है। उसके बाद व्यवस्थित रिपोर्ट बनाकर आगे का चिन्तन करना है।

निकाय सचिव की नियुक्ति

• २३ जनवरी १९६६। मध्याह्न में दायित्व-प्रत्यर्पण का कार्यक्रम था। साध्वी समाज के लिए स्थापित विभागों की अग्रणी साध्वियों का दूसरे वर्ष का कार्यकाल समाप्ति पर था। प्रवर्तन विभाग, साधना विभाग और शिक्षा विभाग की अग्रणी साध्वी संघमित्राजी, साध्वी राजीमतीजी और साध्वी मंजुलाजी ने श्रद्धासिक्त भावों की अभिव्यक्ति के साथ अपने-अपने विभाग-पत्र समर्पित किए। उस अवसर पर सेवाभावी मुनि चम्पालालजी और मुनि नथमलजी के प्रासंगिक वक्तव्य हुए।

सारी स्थितियों का आकलन कर मैंने चिन्तन किया कि साध्वियों की पूर्व व्यवस्था को स्थगित करके एक नया प्रयोग किया जाए। वह प्रयोग साध्वियों और साधुओं दोनों के लिए हो। इस विषय में कुछ

साधुओं के साथ चर्चा की और उसकी रूपरेखा तैयार कर ली। उस सुचिन्तित प्रयोग की क्रियान्विति के फलस्वरूप धर्मसंघ में चार निकाय स्थापित किए–साधना निकाय, शिक्षा निकाय, साहित्य निकाय और प्रबन्ध निकाय।

'साधु-साध्वियों की एक विशेष गोष्ठी में निकाय-व्यवस्था की जानकारी देते हुए मैंने कहा–'चारों निकायों का संबंध मूलतः मेरे साथ रहेगा। इसके लिए मैं कुछ ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करूंगा, जो मेरे कार्य को सुगम बना सकें। वे अपने-अपने निकाय के व्यवस्थापक व व्यवस्थापिका कहलाएंगी। चारों निकायों के लिए एक व्यक्ति सचिव का काम करेगा। उसे निकाय-सचिव कहा जाएगा। निकाय-सचिव के रूप में आज मैं मुनि नथमलजी को नियुक्त करता हूं। इस नियुक्ति से पहले भी ये काम करते रहे हैं। मैंने जब कभी और जिस किसी काम को करने का निर्देश दिया, इन्होंने पूरे मनोयोग से उसका पालन किया। अब मैं चाहता हूं कि ये इस नए दायित्व को अपनी जिम्मेदारी समझकर निभाएं। आज एक नियुक्ति मैंने कर दी है। अन्य नियुक्तियां यथासमय कर दी जाएंगी। यह सब कार्य मैंने अपनी अंतर्भावना से किया है। तृतीय आचार्य ऋषिराय के शब्दों में–'औरां नै जस है नहीं।'

• मुनि नथमलजी को निकाय-सचिव बनाने के बाद साधुओं की ओर से काफी प्रतिक्रियाएं सामने आईं, पर धीरे-धीरे सब शान्त हो गईं। 'धवल समारोह' के अवसर पर मुनि बुद्धमलजी को साहित्य-परामर्शक और मुनि नगराजजी को अणुव्रत-परामर्शक के रूप में नियुक्त किया गया था। तब से मुनि नथमलजी को भी कुछ विशिष्टता देने की इच्छा थी, पर इस विषय में इनकी सदा अनिच्छा रही। वैसी स्थिति में इन्हें किसी पद पर स्थापित किए बिना ही मैं इनसे काम लेता रहा। इस बात को लेकर भी कुछ साधुओं में आशंका का वातावरण बराबर बना रहा। पता नहीं इन्हें कब, कौन-सा पद देंगे, इस आशंका के आधार पर कुछ प्रश्न उठते रहे। भय और आतंक की बातें भी सामने आती रहीं। मैं सब-कुछ सुनता रहा। आखिर मैंने सोचा कि कुछ व्यक्ति अकारण ही संदिग्ध रहते हैं तो मुझे कुछ कर देना चाहिए।

कुछ करना है, इस मानसिकता के बाद क्या करना है? चिन्तन का यह सिलसिला शुरू हुआ। एक सुझाव आया कि मुनि नथमलजी को महामंत्री बना दिया जाए। दूसरे सुझाव का संबंध उपाध्याय पद से था। मुझे ये दोनों ही शब्द नहीं जचे। मैं कोई नया शब्द गढ़ना चाहता था। सोचते-सोचते निकाय-व्यवस्था और निकाय-सचिव शब्दों पर ध्यान केन्द्रित हुआ। दो-तीन व्यक्तियों के साथ इस विषय में विचार-विमर्श किया। एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि ऐसा करने से कुछ सन्तों से इसकी तीव्र प्रतिक्रिया नहीं होगी क्या? इस प्रश्न के समाधान में मैंने दो बातें कहीं–

१. अमुक कार्य करने से प्रतिक्रिया होगी, इस भय से वह काम नहीं करना भीरुता है।

२. जो काम करना है, वह येन-केन-प्रकारेण करना ही है, ऐसा सोचना एक प्रकार का व्यामोह है।

उक्त दोनों स्थितियों से ऊपर उठकर सोचा। कुछ करना आवश्यक एवं उपयोगी लगा। इसी आधार पर निर्णय लिया। निर्णय को क्रियान्वित किया। इससे कुछ व्यक्तियों को असंतोष हुआ। उनकी ओर से प्रतिक्रियाएं होनी ही थीं। शेष सब कुछ ठीक रहा। डाबड़ी में चारों निकायों की व्यवस्था होने के बाद प्रायः भ्रांतियां समाप्त हो गईं। कुल मिलाकर वातावरण अच्छा रहा।

• निकाय-सचिव की नियुक्ति के बाद साधुओं में एक ऊहापोह था–'हमारे संघ में सदा से

" मुनि नथमलजी को मैंने जब कभी और जिस किसी काम को करने का निर्देश दिया, इन्होंने पूरे मनोयोग से उसका पालन किया। अब मैं चाहता हूं कि ये इस नए दायित्व को अपनी जिम्मेदारी समझकर निभाएं। आज एक नियुक्ति मैंने कर दी है। अन्य नियुक्तियां यथासमय कर दी जाएंगी। यह सब कार्य मैंने अपनी अंतर्भावना से किया है। तृतीय आचार्य ऋषिराय के शब्दों में—औरां नै जस है नहीं। "

एकमात्र आचार्य ही अधिकारी रहे हैं। इसी में लाभ रहा है। हम अनेकाधिकार नहीं चाहते। निकाय-सचिव के क्या अधिकार हैं, हम नहीं जानते। हमारा अपना मन्तव्य है कि संघ में अधिकृत एक आचार्य ही रहने चाहिए।'

साधुओं की यह भावना मेरे पास पहुंची। मैं जानता था कि मुनि नथमलजी के प्रति प्राय: सबकी अच्छी आस्था है, फिर भी नेतृत्व के सन्दर्भ में वे संघ को आचार्य-केन्द्रित ही चाहते हैं। ऊहापोह की स्थिति को समाप्त करने के लिए मैंने अपनी ओर से एक स्पष्टीकरण देते हुए कहा–'साधु-साध्वियों के मन में एक नेतृत्व की जो भावना है, उसकी मैं कद्र करता हूं और यह विश्वास दिलाता हूं कि आचार्य का नेतृत्व पूर्ण सुरक्षित रहेगा। आप सब लोग निश्चिन्त रहें। केवल कार्याधिक्य को लेकर निकायों की व्यवस्था की गई है। बिना उत्तरदायित्व कार्य व्यवस्थित नहीं होता, अतएव निकाय-सचिव का पद रखा गया है। इनके मुख्य कार्य होंगे–

◈ निकायों का पथदर्शन करना। ◈ योजनाबद्ध कार्य-संचालन करना। ◈ सब निकायों के कार्य का संकलन करना।

मेरे साथ सीधा सम्बन्ध निकाय-सचिव का रहेगा। निकाय-व्यवस्था में व्यवस्थापकों की नियुक्ति व्यापक दृष्टिकोण से की गई है। संघ की मौलिक मर्यादाओं पर इस व्यवस्था का विपरीत प्रभाव नहीं होगा। इसलिए सब साधु-साध्वियां पूर्णरूप से निश्चिन्त रहें।' कुछ समय बाद मुझे ज्ञात हुआ कि निकाय-व्यवस्था को लेकर प्राय: सबके मन सन्तुष्ट हैं।

● १३ नवम्बर १९६६। दीपावली का दिन। चातुर्मास के बाद साधु-साध्वियों के विहार की तालिका मुनि नथमलजी को पास बिठाकर बनाई।

● २६ नवम्बर १९६६। निकाय-व्यवस्था से संपृक्त साध्वियों से बात की। मुझे ऐसा लग रहा है कि साध्वियों की व्यवस्था ठीक से नहीं बैठ सकी है। जैसा सोचा था, वैसा नहीं हो पाया। पांच सौ साध्वियों का संघ है। उनका सही नेतृत्व नहीं हुआ तो बहुत जटिल समस्या हो जाएगी। इस विषय में रात के समय मुनि नथमलजी के साथ काफी देर तक परामर्श किया। लगता है और कोई ऐसा रास्ता निकालना पड़ेगा, जिससे व्यवस्था ठीक बैठ सके।

● १२ फरवरी १९६७। आज मध्याह्न में साधु-साध्वियों की एक विशेष गोष्ठी आयोजित की गई। उसमें निकाय-व्यवस्था का कार्य-विवरण प्रस्तुत किया गया। व्यवस्थापकों और व्यवस्थापिकाओं ने अपने-अपने कार्य का लेखा-जोखा सुनाया। निकाय-सचिव मुनि नथमलजी ने कहा–'हमारे यहां जो पद दिया जाता है, वह कार्यकारी पद है, अलंकरण पद नहीं है। कार्य पहले भी होता था, पर वह ऐच्छिक था। अब उसके साथ दायित्व जुड़ गया है।'

क्रांतिकारी कदम

फरवरी १९६७। मर्यादा-महोत्सव के कार्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और कठिन कार्य है साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों (वर्गों) की व्यवस्था। बीदासर-महोत्सव के अवसर पर साध्वियों की व्यवस्था का काम दो दिन तक साध्वियों के प्रवास-स्थल पर जाकर किया। इससे मातुश्री वदनांजी का उपपात भी सध गया। व्यवस्था बिठाने में समय काफी लगा, पर साध्वियों को संतोष नहीं हुआ।

साध्वियों के मन में उभरी निराशा की अवगति पाकर मेरा मन द्रवित हो गया। मैं यात्रा में जाऊं और साधु-साध्वियों को निराशा में छोड़कर जाऊं, यह मुझे मान्य नहीं हुआ। मैंने मुनि नथमलजी से कहा–'मैं एक नए तरीके से काम करना चाहता हूं। जिन सिंघाड़ों में कई साध्वियां अस्वस्थ हैं, जिन सिंघाड़ों में व्याख्यान देने वाली और सेवा करने वाली एक भी साध्वी नहीं है, उन सिंघाड़ों की अपेक्षा को प्राथमिकता देकर नए सिरे से व्यवस्था की जाए।' इस प्रसंग में चिन्तनपूर्वक एक रूपरेखा बनाई गई। सब सिंघाड़ों की अग्रगण्य साध्वियों से कहा गया कि वे अपनी ओर से एक दिन में लिखित परिपत्र प्रस्तुत करें। उसमें वे अपनी अपेक्षाओं को अंकित करें तथा यहां से दिए जा रहे पांच-सात प्रश्नों के उत्तर भी दें।

एक दिन की अवधि में प्रायः सभी अग्रगण्य साध्वियों के परिपत्र प्राप्त हो गए। साध्वीप्रमुखा लाडांजी, निकाय सचिव मुनि नथमलजी और चारों निकाय-व्यवस्थापिकाओं को निकट बिठाकर उन सब परिपत्रों का वर्गीकरण कराया गया। उसके आधार पर स्पष्ट हो गया कि किसकी क्या आवश्यकता है और किसे प्राथमिकता देनी है।

नई व्यवस्था के बारे में दो दिन तक गहरा चिन्तन-मंथन किया। उसके बाद साध्वियों की आम सभा बुलाई गई। उस सभा में पहले दी गई व्यवस्था को निरस्त करके नए सिरे से साध्वियों को वन्दना करवाई गई। जिन साध्वियों को विशेष अपेक्षा थी, उन्हें प्राथमिकता दी गई। जिन साध्वियों की अपेक्षा-पूर्ति नहीं की जा सकी, उनके नामों की सूची बनाकर रखी गई ताकि आगामी वर्षों में उन्हें प्राथमिकता दी जा सके। साधु-साध्वियों की दृष्टि में हमारा यह प्रयोग एक क्रांतिकारी कदम था। इससे साध्वियों में हर्ष की नई लहर दौड़ गई।

निकाय सचिव पद का विसर्जन

● १२ फरवरी १९७०। मर्यादा-महोत्सव के दिन अनेक साधु-साध्वियों ने कविता, मुक्तक, वक्तव्य, गीत आदि विधाओं में आचार्य भिक्षु के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित की और मर्यादा-महोत्सव के महत्त्व को उजागर किया। वक्ताओं में मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) भी थे। पिछले चार वर्षों से वे निकाय-सचिव के पद पर कार्य कर रहे थे। अपने वक्तव्य में इस विषय की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा–हिसार महोत्सव पर चार निकायों की व्यवस्था की गई थी और मुझे निकाय-सचिव के रूप में नियुक्त किया गया था। इस नियुक्ति की पृष्ठभूमि में लम्बी कार्यशृंखला थी। बहुत वर्षों तक मैं बिना किसी जिम्मेदारी के आचार्यश्री के आदेशानुसार कार्य करता रहा। इस दायित्व को निभाने में भी मैं सदा सतर्क रहा हूं।

अपनी बात को दूसरा मोड़ देते हुए मुनि नथमलजी ने कहा–'कई वर्षों से मेरा मन साधना के विशेष प्रयोग करने के लिए उत्कंठित है। कार्यबहुलता के कारण मैं इस दिशा में पर्याप्त समय नहीं लगा पाता। अतः मैं चाहता हूं कि मुझे निकाय-सचिव के पद से मुक्त किया जाए ताकि मैं इस दिशा में अधिक-से-अधिक अपना समय और शक्ति नियोजित कर सकूं। आप कृपा कर मुझे अवसर दें। आपकी कृपा से ही मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकूंगा।'

मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) की प्रार्थना मुझे अटपटी-सी लगी। जिस युग में बहुत लोग पद-प्राप्ति और उसकी सुरक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं, उस युग में पद-मुक्ति की बात आश्चर्य जैसी है। साधना के विशेष प्रयोगों का जहां तक प्रश्न है, उससे मेरी असहमति नहीं है। मैं स्वयं चाहता

"मुनि नथमलजी की प्रार्थना मुझे अटपटी-सी लगी। जिस युग में बहुत लोग पद-प्राप्ति और उसकी सुरक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं, उस युग में पद-मुक्ति की बात आश्चर्य जैसी है।"

हूं कि संघ में साधना का विशेष विकास हो। इन वर्षों में कुछ विकास भी हुआ है किन्तु उससे मैं पूर्ण संतुष्ट नहीं हूं। साधना में उत्कर्ष लाए बिना अध्यात्म के दीप को प्रज्वलित नहीं रखा जा सकता। कोई साधक विशेष साधना करे, यह अच्छी बात है। निकाय-सचिव का दायित्व संभालते हुए भी साधना की जा सकती थी, पर मुनि नथमलजी की विनम्रता और समर्पण को देखते हुए मैंने उनका आग्रहभरा अनुरोध स्वीकार कर लिया। उनकी पदमुक्ति के साथ ही उनके सहयोगियों को अपने आप ही मुक्ति मिल गई। फिर भी हमने निकाय-व्यवस्था को सदा के लिए स्थगित नहीं किया। अपेक्षा होने पर उसे पुनः सक्रिय किया जा सकेगा।

साधुओं की व्यवस्था

● बीदासर (वि.सं. २०२७), मर्यादा महोत्सव का अवसर। मैं फरवरी (सन् १९७१) के पहले सप्ताह में अस्वस्थ हो गया। लगभग डेढ़ महीने तक अस्वस्थ रहा। साधुओं की व्यवस्था का काम था। उसे मुनि नथमलजी से करवाया। मुझे काफी मदद मिली। उनको भी काम करने का मौका मिला। सब कुछ ठीक हो गया।

साध्वीप्रमुखा की नियुक्ति

● सन् १९७१ का चातुर्मास लाडनूं हुआ। साध्वियों का सारा काम व्यवस्थित और संतोषजनक चल रहा था। वहां से हमने गंगाशहर मर्यादा-महोत्सव के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में साध्वियों की भावी व्यवस्था की दृष्टि से मैंने मुनि नथमलजी से बात की। मैंने उनसे कहा–लाडांजी का स्वर्गवास हुआ, उस समय हम यात्रा पर थे। इसलिए उत्तरकालीन व्यवस्था पर चिन्तन नहीं किया। अब आवश्यक हो गया है कि एक व्यक्ति को दायित्व सौंपा जाए। अन्यथा काफी कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं। कौन किसके पास जाए? कहां बैठे? इत्यादि अनेक बातें हैं। करने का काम मुझे करना ही है। अभी विचारणीय बिंदु एक ही है कि दायित्व किसे सौंपा जाए? लंबे समय तक गंभीर चिन्तन चला। अनेक नाम सामने आए। आखिर मेरे मन में जो नाम था, उस पर उनकी भी सहमति हो गई।

● १२ जनवरी १९७२। रात्रि में काफी चिन्तन के बाद निश्चित निर्णय ले लिया। चिन्तन के समय मैं, मुनि नथमलजी और शुभकरण दसानी–हम तीनों बैठे थे। एकादशी का दिन बहुत शुभ है, इस आधार पर नियुक्ति-पत्र लिखकर तैयार कर लिया। रात को सब काम संपन्न कर लगभग ग्यारह बजे सोए। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

● नियुक्ति के लिए त्रयोदशी की तिथि निर्णीत कर दी। अब मैं पूरी तरह से निश्चिन्त था। केवल तीन व्यक्तियों को ही सही जानकारी थी। और कोई इस स्थिति को सही रूप में नहीं जानता था।

पुष्ट आधार : त्वरित कार्यवाही

● सितम्बर १९७४। एक प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति से कलकत्ता की सारी बातें सुनकर मैंने सेवाभावी मुनि चम्पालालजी, मुनि नथमलजी, मुनि मधुकर, मुनि दुलहराज आदि साधुओं को बुलाकर सब बातें सुना दीं।

कलकत्ता के संपूर्ण घटनाचक्र पर गहराई से विचार कर हमने उसके निर्णय का प्रारूप तैयार किया। मैंने अपने विचार दिए। उनको मुनि नथमलजी ने लिपिबद्ध कर लिया।

● नवम्बर १९७४ के प्रथम सप्ताह में अचानक एक बात मेरे ध्यान में आई, जो शासन के हित में है। कई महीनों और कई वर्षों से मैं जिस बात की कल्पना करता था, किंतु पुष्ट प्रमाण के बिना उसके बारे में कोई निर्णय नहीं ले सकता था और न उस विषय में विश्वस्त रूप में औरों को कुछ बता सकता था। पांच नवम्बर को उसका एक परिपुष्ट आधार मुझे मिल गया। वह है मुनि महेन्द्र (प्रथम) के हाथ का लिखा हुआ नौ पृष्ठों का एक पत्र।

पत्र पढ़ने के बाद स्थिति बिल्कुल साफ हो गई। उदंगलों की जड़ पकड़ में आ गई। शासन का भाग्य बड़ा है। अन्यथा भीतर-ही-भीतर बहुत तोड़फोड़ की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए? संघीय नीति के आधार पर मैंने तय किया कि ऐसे व्यक्ति को अब एक दिन भी संघ में रखना भयंकर अपराध है। मैंने तत्काल मुनि नथमलजी को बुलाया। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को भी पास बिठाया। मौखिक वक्तव्यों से कुछ होनेवाला नहीं है, यह सोचकर मैंने कुछ संदेश लिखवाए।

संदेश के अनुसार मुनि महेन्द्र (राजलदेसर) का संघ से संबंध विच्छेद कर दिया गया।

महाप्रज्ञ अलंकरण

● २० अक्टूबर १९७८। अब मेरे मन में आता है कि संघ के भविष्य का प्रबन्ध कर देना चाहिए। क्योंकि शरीर बार-बार अस्वस्थ हो जाता है। जीवन के चौंसठ वर्ष पूरे हो रहे हैं। मघवागणी, माणकगणी, डालगणी और कालूगणी–इन आचार्यों में कोई भी इस उम्र तक नहीं रहे। यह भी एक चिन्तनीय पहलू है। यद्यपि व्यवस्थित प्रबन्ध तो समय आने पर ही होगा, पर आकस्मिक स्थिति का मुकाबला करने के लिए तो कोई उपक्रम हो ही जाना चाहिए, यह निर्णय कर लिया है।

● १२ नवम्बर १९७८ का मंगल प्रभात। कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी का दिन। दीक्षा का कार्यक्रम। जनता की उल्लेखनीय उपस्थिति। शान्त वातावरण। चार मुमुक्षु भाई-बहनों का दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हुआ। मेरा प्रवचन चल रहा था। चालू विषय को एक नया मोड़ देते हुए मैंने कहा–'धर्म समीक्षा करने की नहीं, धारण करने की चीज है। कदाचित धर्म की समीक्षा अपेक्षित हो जाए तो करेगा कौन? हर व्यक्ति धर्म की समीक्षा नहीं कर सकता। प्रज्ञावान व्यक्ति ही धर्म की समीक्षा कर सकेगा। जिस व्यक्ति में प्रज्ञा है, मेधा है, वही व्यक्ति इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पादित कर सकता है। इसलिए मैं आज 'प्रज्ञा' शब्द को महत्त्व दे रहा हूं।'

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा–'शास्त्रीय अवधारणा के अनुसार यह संसार एक अरण्य है, समुद्र है। इसका पार पाना, इसे तरना बहुत कठिन है। जो संसार-समुद्र को तर गए, वे गुरु होते हैं, महाप्रज्ञ होते हैं। हमारे तीर्थंकरों, गणधरों तथा यशस्वी और मेधावी आचार्यों के लिए 'महाप्रज्ञ' शब्द का प्रयोग हुआ है। मैं स्वयं इस शब्द को बहुत महत्त्व देता हूं और आज इस सुन्दर समारोह में इस शब्द का प्रयोग करने जा रहा हूं।'

उपस्थित जनसमूह सहजभाव से प्रवचन सुन रहा था। मेरी उक्त बात सुनकर भी उसके मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। पर कुछ लोगों के कान खड़े हो गए। उनकी उत्सुकता को आगे बढ़ाने का मौका दिए बिना ही मैंने कहा–'हमारे धर्मसंघ के एक मुनि आपके सामने बैठे हैं। इन्होंने अपनी प्रखर प्रज्ञा से साहित्य की, साधना की धारा बहाई है। मैं चाहता हूं कि आज इनके लिए एक विशेष शब्द का प्रयोग करूं।'

"धर्म समीक्षा करने की नहीं, धारण करने की चीज है। कदाचित धर्म की समीक्षा अपेक्षित हो जाए तो करेगा कौन? हर व्यक्ति धर्म की समीक्षा नहीं कर सकता। प्रज्ञावान व्यक्ति ही धर्म की समीक्षा कर सकेगा। जिस व्यक्ति में प्रज्ञा है, मेधा है, वही व्यक्ति इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पादित कर सकता है। इसलिए मैं आज 'प्रज्ञा' शब्द को महत्त्व दे रहा हूं।"

कुछ लोग समझ गए, पर काफी व्यक्ति नहीं भी समझे। मैंने कहा–'मुनि नथमलजी! खड़े हो जाओ।' मेरा निर्देश प्राप्त होते ही वे खड़े हो गए। मैंने कहा–'मुनि नथमलजी के साहित्य को मैं जैनों के लिए ही नहीं, समस्त धार्मिकों के लिए, बौद्धिक जगत के लिए उपयोगी मानता हूं। इन्होंने अपनी विशिष्ट साधना और अभ्यास के द्वारा आज की युवापीढ़ी को आकृष्ट किया है। मैं मानता हूं कि ऐसा काम करने वाले व्यक्ति कोई अपेक्षा नहीं रखते। अपेक्षा रखने वालों से कुछ होता भी नहीं है। मैं आज इस शुभ अवसर पर मुनि नथमलजी को 'महाप्रज्ञ' विशेषण से विभूषित करना चाहता हूं–'महाप्रज्ञ मुनि नथमलजी'।

मैंने अपनी बात पूरी की और मुनि नथमलजी खड़े हो गए। वे बोले–'मैं संसार के उस नियम को समझ नहीं पाया जो सदा उलटा चलता है। जो व्यक्ति निर्विशेषण की ओर जाना चाहता है, सब विशेषणों को नीचे रखकर खुद ऊपर उठना चाहता है, सब उपाधियों को छोड़कर ऊपर जाना चाहता है, उसे फिर से नीचे लाने का प्रयत्न किया जाता है। जगत का यह नियम मेरी समझ में नहीं आ रहा है।'

मुनि नथमलजी अपने जीवन को एक नई दिशा देना चाहते थे। उसकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा- 'मैंने बहुत वर्ष पहले एक स्वप्न देखा था कि जब मैं पैंतालीस वर्ष का हो जाऊं, तब मुझे अन्य कार्यों से मुक्त होकर केवल प्रज्ञा की साधना में संलग्न होना है। मैंने अपनी भावना आचार्यवर के सामने प्रस्तुत कर दी। मेरा पैंतालीसवां वर्ष चला गया। उसके बाद मैंने प्रार्थना की कि पचास वर्ष का होने के बाद मुझे इस कार्य में पूर्ण रूप से लगना है। पचासवां वर्ष भी चला गया। मैं स्वतंत्र विचारों का व्यक्ति हूं। किसी की बात मन में जचे तो स्वीकार करता हूं, अन्यथा निषेध कर देता हूं। मैं किसी से नहीं डरता, पर मेरी एक दुर्बलता है। मैं अपनी प्रबल भावना लेकर जाऊं कि मैं तो ऐसा ही करूंगा, पर आचार्यश्री की स्वीकृति नहीं मिलती है तो वह बात वहीं समाप्त हो जाती है। उस पर पूर्ण विराम लग जाता है। कोई जन्मजात संस्कार ही ऐसा है, जिसकी व्याख्या शायद आचार्यवर भी नहीं कर सकते और मैं भी नहीं कर सकता।'

मुनि नथमलजी अतीत के पन्ने पलटते जा रहे थे। उन्होंने आगे कहा–गत वर्ष मैंने आचार्यवर से प्रार्थना की–अभी लाडनूं रहना है। काफी लम्बा समय सामने है। मुझे नौ महीने का समय दिया जाए, जिससे मैं कुछ विशेष प्रयोग कर सकूं। आचार्यश्री ने सोच-समझकर स्वीकृति प्रदान की। मैंने अपना प्रयोग शुरू किया। यह मेरे लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ। मेरी दिशाओं का उद्घाटन हुआ और मुझे आगे बढ़ने का मौका मिला। आचार्यवर का आशीर्वाद मेरे साथ है। मुझे लगता है कि मैं जहां पहुंचना चाहता हूं, निश्चित ही पहुंच जाऊंगा।'

मुझे लगा कि मुनि नथमलजी 'महाप्रज्ञ' विशेषण का भार अनुभव कर रहे हैं। अपने आपको निर्भार बनाने का अनुरोध करते हुए उन्होंने अपनी बात इस प्रकार आगे बढ़ाई–'आचार्यवर ! मैं आपके सब अनुग्रहों को स्वीकार करता आया हूं। एक छोटे बच्चे की तरह स्वीकार करता आया हूं। अब मेरी प्रार्थना आप भी स्वीकार कर लें। जो व्यक्ति निर्विशेषण और निरुपाधि सत्ता की ओर आगे बढ़ना चाहता है, उसके लिए इस विशेषण की बात से आप मुझे मुक्त कर दें। मैं चाहता हूं कि मेरी प्रज्ञा आगे बढ़े और उसमें आपका आशीर्वाद और वरदान मुझे निरन्तर उपलब्ध होता रहे। किन्तु यह विशेषण वाली बात बहुत अटपटी लगती है। आप मेरी प्रज्ञा को मेरे भीतर ही रहने दें, उसे निकालकर बाहर न फेंके।'

उक्त अनुरोध को स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं था, फिर भी जनता की नजरें मेरी ओर थीं। वह जानना चाहती थी कि मुनि नथमलजी की प्रार्थना पर मेरी क्या प्रतिक्रिया है? उस सन्दर्भ में मैंने कहा–'मेरे

मन में प्रसन्नता के भाव हैं। मैं एक व्यक्ति नहीं हूं। संघ का नायक हूं। इन्होंने संघ की जो सेवा की है, उसका मूल्यांकन करना मेरा कर्तव्य है।' जनता की जिज्ञासा समाहित हो गई।

दीक्षा समारोह के रूप में समायोजित कार्यक्रम के मध्य एक विशिष्ट माहौल बना या बनाया गया और महाप्रज्ञ विशेषण का नया उपक्रम सामने आ गया। यह कार्य इतना आकस्मिक हुआ कि लोग कुछ समझ ही नहीं पाए। इस संबंध में सबकी प्रतिक्रिया बहुत अच्छी रही। सबको अतिरिक्त प्रसन्नता हुई। शब्द की संघटना भी सब लोगों को बहुत पसन्द आई। ऐसा लगा कि एक अत्यन्त आवश्यक अपेक्षा की पूर्ति हो गई। 'महाप्रज्ञ' कोई आगमिक पद नहीं है, कोई अलंकरण भी नहीं है। यह तो एक गुणात्मक शब्द है, जिसका उचित समय पर उचित प्रयोग हुआ है। इस उपक्रम से मुझे भी बहुत आनन्द हुआ।

व्यक्ति एक : गुण अनेक

मुनि नथमल एक ऐसा व्यक्ति है, जो साधक है, विद्वान है, वक्ता है, लेखक है, चिन्तक है, अन्वेषक है और प्रयोक्ता है। यश, पद और नाम की भूख से काफी ऊपर है, विनम्र है, विश्वस्त है, भक्त है और समर्पित है। एक व्यक्ति में एक साथ इतने गुणों का समावेश बहुत बड़ी बात है। धर्मसंघ में विकास की मेरी कल्पना के ये कलाकार हैं। इनको 'महाप्रज्ञ' विशेषण से अलंकृत करके मैंने बहुत बड़ा काम किया हो, ऐसा नहीं है। बल्कि मैंने अपने दायित्व का निर्वहन मात्र किया है, ऐसा मैं मानता हूं।

साहित्य के क्षेत्र में मुनि नथमलजी ने एक कीर्तिमान स्थापित किया है तो साधना के क्षेत्र में प्रेक्षाध्यान का आविष्कार इनकी एक मौलिक देन है। बौद्धिक क्षेत्र में एक हलचल पैदा करनेवाली बात है यह। लगता है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसकी बहुत अच्छी प्रतिक्रिया होगी। हमारे शासन की प्रभावना में इनका अपूर्व योग रहा है। इस दृष्टि से इनका मूल्यांकन करना मेरा दायित्व है।

युवाचार्य पद पर मनोनयन

• १ फरवरी १९७९ को बसन्त पंचमी का दिन था। बसन्त पंचमी का दिन शुभ माना जाता है। इन वर्षों में मर्यादा-महोत्सव के त्रिदिवसीय कार्यक्रम का शुभारम्भ इसी दिन से होता है। मैंने अपना कार्य शुरू कर दिया। फरवरी का दूसरा दिन। प्रात:कालीन प्रवचन का समय। हजारों-हजारों लोगों की उपस्थिति। मैंने प्रवचन किया। प्रवचन की सम्पन्नता पर मैंने कहा–'कल कुछ नया घटित हो सकता है। जो उससे वंचित रहेगा, वह जीवन भर पछताएगा।' श्रोताओं में से कुछ लोगों ने उस कथन को सहज भाव से लिया। उनके मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। कुछ लोगों ने उसे गंभीरता से ग्रहण किया। उनके कानों में वे शब्द गूंजते रहे। कल क्या होगा?

• ३ फरवरी १९७९। माघ शुक्ला सप्तमी वि.सं. २०३५ का सूर्योदय हुआ। उस दिन प्रात:काल कोई कार्यक्रम नहीं था। आगन्तुक लोग व्यक्तिश: और समूहबद्ध साधु-साध्वियों से मिल रहे थे। अपने-अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में निवेदन कर रहे थे। मेरे पास भी लोगों का आवागमन जारी था। गोचरी का समय हो गया। लोग भोजन करने चले गए। हमारे प्रवास-स्थल पर भीड़ कुछ कम हुई। मैंने आहार किया। छोटे साधु आहार कर चले गए। कक्ष में एकान्त था। मैंने वहां उपस्थित सन्तों को निर्देश दिया–'अभी मैं काम में व्यस्त रहूंगा। बीच में कोई व्यवधान न करें।' सन्त सजग हो गए। मैंने कलम हाथ में ली और लिखना

" मुनि नथमल एक ऐसा व्यक्ति है, जो साधक है, विद्वान है, वक्ता है, लेखक है, चिन्तक है, अन्वेषक है और प्रयोक्ता है। यश, पद और नाम की भूख से काफी ऊपर है, विनम्र है, विश्वस्त है, भक्त है और समर्पित है। एक व्यक्ति में एक साथ इतने गुणों का समावेश बहुत बड़ी बात है। धर्मसंघ में विकास की मेरी कल्पना के ये कलाकार हैं। "

शुरू किया। सन्तों ने सोचा कि मैं महोत्सव का गीत लिख रहा हूं अथवा साधु-साध्वियों की चातुर्मासिक नियुक्तियों को अन्तिम रूप दे रहा हूं। खैर, मैंने अपना काम पूरा कर लिया।

घड़ी में लगभग सवा बारह बज रहे थे। सन्तों ने शब्द किया। सब साधु तैयार हो गए। साध्वियां आ गईं। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा कक्ष में पहुंची। मैंने उसको निकट आने का संकेत दिया। निकट पहुंचने पर मैंने उसको एक पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा। वह सकुचाई और बोली–'मेरे हस्ताक्षर की क्या अपेक्षा है?' मैंने कहा–'तुम पांच सौ से अधिक साध्वियों की प्रतिनिधि हो। तुम्हारे हस्ताक्षरों का भी महत्त्व है।' इससे आगे वह क्या कहती। उसने हस्ताक्षर कर दिए। हमने नाहर भवन से प्रस्थान किया। वहां से थोड़ी दूर डागा परिवार की बाड़ी में नवनिर्मित प्रवचन पण्डाल में पहुंचे। पण्डाल के मध्य में बड़े विशाल मंच पर मैं पट्टासीन हुआ। एक ओर साधु बैठ गए। दूसरी ओर साध्वियां थीं। सामने जनता का पारावार लहरा रहा था। बीस से पचीस हजार लोगों की उपस्थिति का अनुमान था। प्रवचन पण्डाल में अच्छी शान्ति थी। नमस्कार महामंत्र के उच्चारण से महोत्सव के कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। कुछ वक्ताओं ने मर्यादा-महोत्सव के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार प्रस्तुत किए।

तेरापंथ धर्मसंघ की दुर्लभ विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए मैंने मर्यादा-महोत्सव के उपलक्ष्य में निर्मित गीत का संगान किया।

घड़ी में लगभग ढाई बज रहे थे। विषय को दूसरा मोड़ देते हुए मैंने कहा–'मुझे धर्मसंघ का नेतृत्व संभालते हुए तैयांलीस वर्ष हो गए। मैंने अपने दायित्व को मनसा, वाचा, कर्मणा निभाया है और निभाता रहूंगा। आज मेरी अवस्था चौंसठ वर्ष की हो गई है। पैंसठवां वर्ष चल रहा है, फिर भी मैं स्वस्थ हूं और दिन-रात में लगभग अट्ठारह घंटे काम करता हूं। हमारे धर्मसंघ में अब तक जितने आचार्य हुए हैं, प्रायः इस उम्र से पहले ही निश्चिन्त हो गए थे। एक आचार्य को छोड़कर सभी आचार्यों ने इस उम्र से पहले-पहले अपने दायित्व औरों को सौंप दिए। मैं भी आज अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करना चाहता हूं।'

घोषणा की बात सुनते ही लोग उत्कंधर हो गए। मैंने पूछा–'कौन होगा वह?' सारी जनता सतृष्ण आंखों से देखने लगी और विस्मय के प्रवाह में बहने लगी। एक क्षण रुककर मैंने कहा–'वह व्यक्ति इसी हिन्दुस्तान के किसी कोने में है।' इस वाक्य ने सबको गहरे विस्मय-सागर में उतार दिया। अब क्या था? लोगों के दिमाग आसमान में लग गए। लोगों का धैर्य विचलित हो रहा था, पण्डाल में सन्नाटा-सा छा गया। जनता की बढ़ती हुई उत्सुकता को देखकर मैंने कहा–'आप लोग क्यों परेशान हो रहे हैं? अपने मस्तिष्क को क्यों भटका रहे हैं? आप मेरा निर्णय सुनना चाहते हैं तो सुनिए....।'

प्रवचन पण्डाल में गहरी खामोशी छा गई। सब लोगों की नजरें मेरी ओर केन्द्रित हो गईं। मैंने कहा–'मेरे समूचे जीवन का यह सबसे बड़ा निर्णय है। एक दृष्टि से यह समूचे संघ का निर्णय है। यहां जितने साधु बैठे हैं, उनमें से किसी को स्वप्न में भी कल्पना नहीं है कि आज क्या होने वाला है? यह उत्तराधिकार पत्र मेरे हाथ में है। इस पत्र को मैंने आज ही दिन के साढ़े ग्यारह बजे लिखा है। अब मैं अपने उत्तराधिकारी का नाम आप सब लोगों के समक्ष घोषित कर रहा हूं।'

हजारों-हजारों लोगों की नजरें मेरी ओर केन्द्रित थीं। उनके कान कुछ नया सुनने के लिए खड़े हो गए। मैं चाहता तो उन्हें और घुमा सकता था। किन्तु उत्सुकता को चरम सीमा पर देखकर मैंने अपने आसपास

स्थित साधुओं पर एक नजर डाली और कहा–'खड़े हो जाओ।' बिना नामोल्लेख कौन खड़ा होता? सब एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। असमंजस की स्थिति को तोड़ते हुए मैंने पुनः कहा–'मुनि नथमलजी ! खड़े हो जाओ।' मेरा निर्देश मिलते ही वे खड़े हो गए। 'मुनि नथमलजी मेरे उत्तराधिकारी युवाचार्य होंगे।' ये शब्द सुनते ही जयघोषों से आकाश गूंज उठा। लोग थिरकने लगे। खुशी का सागर लहराने लगा। सारी जनता हर्ष से खिलखिला उठी। मैंने उस विशाल जनसभा पर दृष्टिपात किया। सबके चेहरे प्रसन्नता से खिल रहे थे। साधु-साध्वियों में प्रसन्नता थी। श्रावक-श्राविकाओं में प्रसन्नता थी। चारों ओर प्रसन्नता ही प्रसन्नता। प्रसन्नता के उन्हीं क्षणों में मैंने अपने हाथ से लिखित नियुक्ति-पत्र पढ़कर सुनाया।

उत्तराधिकार पत्र

अर्हम्

॥ नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

॥ श्री भिक्षु - भारिमाल - ऋषिराय - जयजश - मघवा - माणक - डालचन्द - कालुगुरुभ्यो नमो नमः ॥

मैं आज तेरापंथ धर्मसंघ के ११५वें मर्यादा-महोत्सव में अपने उत्तराधिकारी के रूप में महाप्रज्ञ शिष्य मुनि नथमल को नियुक्त करता हूं।

मुनि नथमल प्रारम्भ से ही मेरे प्रति समर्पित रहा है और अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति करता रहा है। मेरा विश्वास है, मुनि नथमल अपने दायित्व का समग्रता से निर्वाह करते हुए हमारे धर्मसंघ को उत्तरोत्तर विकासोन्मुख बनाता रहेगा।

वि सं. २०३५, माघ शुक्ला सप्तमी **आचार्य तुलसी**
वार शनैश्चर, दिनमान ११.३० बजे **साक्ष्य : साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**
नाहर-भवन, राजलदेसर (राजस्थान)
३-२-१९७९

नियुक्ति-पत्र पढ़कर सुनाने के बाद मैंने साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा की ओर इंगित किया। उसने तत्काल एक नई पछेवड़ी (चद्दर) प्रस्तुत कर दी। मैंने वह पछेवड़ी ओढ़ी और उसे तत्काल उतारकर अपने हाथों से मुनि नथमलजी को ओढ़ा दी। विपुल हर्षध्वनि हुई। जय-जयकार से आकाश गूंज उठा। युवाचार्य का मनोनयन करने के साथ ही मैंने उनका नाम परिवर्तन करते हुए कहा–'अब इनका नाम नथमल नहीं, महाप्रज्ञ होगा।' एक बार फिर हर्षध्वनि हुई।

जन-जन को रोमांचित करने वाले उस वातावरण में मैंने अपने उत्तराधिकारी का हाथ पकड़कर कहा–'आओ, क्षण भर के लिए मेरे इस आसन पर बैठो।' मेरे शब्द सुनकर महाप्रज्ञ स्तब्ध रह गए। जनता गद्‌गद हो उठी। मेरे आदेश के उत्तर में महाप्रज्ञ बोले–'गुरुवर्य! अभी मेरे में इतनी शक्ति कहां कि मैं इस महान आसन पर बैठ सकूं। मैं तो सदा आपके चरणों में ही बैठता रहा हूं। मुझे अपने चरणों में ही स्थान दें।' महाप्रज्ञ के संकोच को मिटाने के लिए मैं बोला–'तुम्हें मेरे उत्तरदायित्व को निभाना है और इस आसन को तुम्हें ही शोभित करना है। आज नहीं तो कल तुम्हें बैठना ही होगा। आओ, क्षण भर के लिए मेरे साथ बैठो।' महाप्रज्ञ का संकोच दूर नहीं हुआ तो मैंने हाथ पकड़कर उन्हें एक बार पट्ट पर बैठा लिया। उस

"'मुनि नथमलजी मेरे उत्तराधिकारी युवाचार्य होंगे।' ये शब्द सुनते ही जयघोषों से आकाश गूंज उठा। लोग थिरकने लगे। खुशी का सागर लहराने लगा। सारी जनता हर्ष से खिलखिला उठी। मैंने उस विशाल जनसभा पर दृष्टिपात किया। सबके चेहरे प्रसन्नता से खिल रहे थे। साधु-साध्वियों में प्रसन्नता थी। श्रावक-श्राविकाओं में प्रसन्नता थी। चारों ओर प्रसन्नता ही प्रसन्नता।"

समय का दृश्य बहुत ही हृदयग्राही था। युवाचार्य के मनोनयन का कार्य विधिवत सम्पादित करने के बाद मैंने आशीर्वाद के रूप में प्राकृत भाषा में कुछ पद्य कहे।

प्रवचन सभा में उपस्थित विशाल जनसमुदाय को मैंने निर्देश दिया कि सब लोग युवाचार्य महाप्रज्ञ का अभिवादन करें। जनसमुदाय ने हर्षविभोर होकर वन्दन किया। युवाचार्य को पट्ट पर बिठाने के सन्दर्भ में टिप्पणी करते हुए मैंने कहा–'यह कोई नया काम नहीं है। जयाचार्य ने किसी विशिष्ट साधु को अपने पास पट्ट पर बिठाया था। मैं किसी साधु को नहीं बिठा रहा हूं, युवाचार्य को बिठा रहा हूं।'

युवाचार्य की नियुक्ति के बाद अपनी मन:स्थिति के बारे में बोलते हुए मैंने कहा-'मुझे बहुत प्रसन्नता है आज इस दायित्व को सौंपकर। मैं इनको अपना दायित्व सौंपकर अपने को हल्का अनुभव नहीं कर रहा हूं। दायित्व को मैंने सौंप दिया, पर मेरा भार तो मुझे ही वहन करना पड़ेगा। अभी ये किसी दूसरे काम में सलंग्न हैं। मैं उसमें बाधक बनना नहीं चाहता। मैं इनको आश्वासन देता हूं कि तुम्हें निश्चिन्त रहना है। अपनी साधना को चलाना है, निश्चिन्तता से चलाना है। मैं स्वयं सक्षम हूं काम करने के लिए, इसलिए इस काम को बराबर करता रहूंगा।'

मैंने अपनी कार्यवाही सम्पन्न की। उसके बाद महाप्रज्ञ ने भाषण दिया। महाश्रमणी ने भाषण दिया। कृतज्ञता ज्ञापित की। युवाचार्य के अभिनन्दन में मुनि बुद्धमलजी बहुत अच्छा बोले। थोड़ा कार्यक्रम और रहा। उस समय का वातावरण इतना सरस और सौरभमय बन गया कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

जनता को आश्चर्य इस बात का हुआ कि युवाचार्य के मनोनयन के महत्त्वपूर्ण निर्णय का पहले किसी को आभास तक नहीं हुआ। किसी दूसरे की तो बात ही क्या, स्वयं महाप्रज्ञ को एक क्षण पहले तक कल्पना नहीं थी कि आज कुछ होगा और होगा तो उनका नाम ही आएगा। बिल्कुल अज्ञात रूप में सब कुछ एकदम हो गया। इसकी ज्यादा प्रसन्नता थी।

मैं युवाचार्य की नियुक्ति करने वाला हूं, इस सम्बन्ध में महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को दो दिन पहले बता दिया। इस प्रकार शुभकरण दसानी को भी ज्ञात था। इन दो के सिवाय तीसरा कोई व्यक्ति नहीं, जो इस बात का आभास पा सके। इस सन्दर्भ में प्रसंगवश मैंने कहा–'आज जो कार्य हुआ, इसके लिए जनता बड़ी बेचैन थी। साधु-साध्वियां भी चिन्तित थे। सब सोचते थे कि कैसे क्या होगा? पर मैं कहता हूं कि एक क्षण के लिए भी मैं परेशान नहीं था, चिन्तित नहीं था। हां, कुछ समय से मैं सोचता जरूर था कि यह काम करना है। पर किसे करना है, इसके बारे में निर्णय इसी वर्ष किया और सामने ला दिया।

चातुर्मास के बाद शीतकाल में पंजाब की यात्रा नहीं हुई। उसमें स्वास्थ्य के साथ यह भी एक मुख्य कारण था, जिसके लिए राजलदेसर को चुना। अब मैं निश्चिन्त हो गया हूं। मेरे जीवन का सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण निर्णय आज हुआ और वह ऐसा निर्णय हुआ कि सर्वमान्य होगा, इसकी मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है।

उत्तराधिकारी की घोषणा के बाद उसी समय एक चमत्कार-सा घटित हुआ। मंच पर लगे शामियानों को छोड़कर सारे पण्डाल के शामियाने बीच में से ऊपर उठने लगे और उठते ही चले गए। न हवा और न तूफान, फिर भी पण्डाल की बल्लियां ऊपर उठीं। उन बल्लियों को थामने वाले व्यक्ति भी ऊपर उठ गए। लोग देखते ही रह गए। देखते-देखते जिस प्रकार पण्डाल ऊपर उठा था, उसी प्रकार आकर यथास्थान जम

गया। किसी को चोट आदि नहीं आई। यह क्यों हुआ? और क्या हुआ? सब प्रश्न अनुत्तरित ही रहे। कुछ व्यक्तियों ने कहा– 'यह दैविक चमत्कार है, इसमें सन्देहवाली कोई बात नहीं है।'

महोत्सव सम्पन्न होते ही हम सब प्रवास-स्थल पर पहुंच गए। गए तब मैं अकेला था, आए तब दो आए–आचार्य और युवाचार्य। फोन आदि माध्यमों से सर्वत्र सूचना हो गई। रेडियो स्टेशन पर भी खबर दी गई, जो तत्काल प्रसारित हो गई। कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े शहरों में ही नहीं, देशभर में खबर फैल गई। सबको अपार हर्ष हुआ। बधाइयों का तांता-सा लग गया।

मनोनयन की प्रक्रिया

• १३ मार्च १९७९। रात्रि में भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री एवं कांग्रेस दल के नेता श्री यशवंतराय चव्हाण अणुव्रत विहार आए। वार्तालाप के प्रारम्भ में ही उन्होंने युवाचार्य महाप्रज्ञ के मनोनयन की प्रक्रिया के बारे में जिज्ञासा करते हुए कहा-'आचार्यजी ! राजनीति में सत्ता-परिवर्तन के समय को आपाधापी चलती है, वह किसी से अज्ञात नहीं है। सत्तारूढ़ पार्टी सत्ता छोड़ना नहीं चाहती और विपक्ष उसे सत्ताच्युत करने के लिए हरसंभव प्रयत्न करता है। जनमानस इतना जागृत नहीं है। उस पर प्रलोभन और भय का प्रभाव रहता है। ऐसी स्थिति में जो कुछ होता है, वह वांछनीय नहीं होता। आपने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। इस सन्दर्भ में आपके यहां क्या विधान है? आपने सत्ता का हस्तान्तरण कैसे किया?'

युवाचार्य की नियुक्ति के बारे में तेरापंथ धर्मसंघ की जो परम्परा है, उसकी विस्तृत अवगति देते हुए मैंने कहा–'हमारे यहां सत्ता को लेकर छीनाझपटी का कोई प्रश्न ही नहीं है। इस सन्दर्भ में सम्पूर्ण अधिकार आचार्य के हाथ में रहते हैं। आचार्य किस व्यक्ति को अपना उत्तराधिकार सौंपे, इसमें अन्य किसी व्यक्ति का हस्तक्षेप नहीं होता। जिस व्यक्ति को यह महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा जाता है, उसके साथ भी किसी प्रकार के परामर्श की अपेक्षा नहीं रहती, ऐसी स्थिति में हमारे यहां सत्ता के हस्तान्तरण की जो प्रक्रिया है, वह अपने आपमें विलक्षण है।'

संघीय दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कार्य है–श्रावक समाज की संभाल, वृद्ध एवं रुग्ण श्रावकों को दर्शन देना। बाड़मेर और सरदारशहर प्रवास में आचार्यवर ने यह कार्य मुझसे करवाया–

• १५ दिसम्बर १९८४। इस बार बाड़मेर में घर-घर जाने का काम युवाचार्य महाप्रज्ञ को सौंपा है। इस काम में काफी समय लग जाता है। मैंने युवाचार्यजी से कहा–'हम पचास वर्ष से यह काम कर रहे हैं। अब तुमको भी अनुभव होगा कि यह कितना कठिन और कितना उपयोगी है।' आठ दिन में इस कार्य को पूरा किया गया।

अप्रैल १९८८। सरदारशहर बड़ा क्षेत्र है। वृद्ध और बीमार व्यक्तियों को दर्शन देना एक आवश्यक काम है। इस बार दर्शन देने मैं नहीं गया, युवाचार्य महाप्रज्ञ को भेजा। इस काम में श्रम होता है, उसके साथ आत्मतोष भी मिलता है।

• १३ अप्रैल १९८५ का दिन। तेरह किमी. का विहार। हमारा पड़ाव बेमाली गांव में हुआ। स्थानीय जनता का हर्ष एवं उल्लास दर्शनीय था। वहां श्रद्धा के नब्बे परिवार हैं। समाज के लोगों ने निःशुल्क भोजन की मर्यादा का अतिक्रमण किया। मैंने कुछ कड़ा कदम उठाया। वहां दो दिन रहना तय था। पर अतिक्रमण की स्थिति में दूसरे दिन ही विहार करने का निर्णय कर लिया। इससे लोग घबराए,

"जनता को आश्चर्य इस बात का हुआ कि युवाचार्य के मनोनयन के महत्त्वपूर्ण निर्णय का पहले किसी को आभास तक नहीं हुआ। किसी दूसरे की तो बात ही क्या, स्वयं महाप्रज्ञ को एक क्षण पहले तक कल्पना नहीं थी कि आज कुछ होगा और होगा तो उनका नाम ही आएगा। बिल्कुल अज्ञात रूप में सब कुछ एकदम हो गया। इसकी ज्यादा प्रसन्नता थी।"

बहुत घबराए। उन्होंने अपनी भूल मंजूर की। भविष्य में भूल न करने का संकल्प किया। किन्तु मेरा मानस नहीं बदला। आखिर युवाचार्य महाप्रज्ञ के कहने से मैंने अपना निर्णय स्थगित किया तब जाकर लोगों की जान में जान आई।

आचार्यवर ने उदयपुर मर्यादा महोत्सव पर मेरे अंतरंग सहयोगी की नियुक्ति की। भविष्य की दृष्टि से वह एक सुचिन्तित प्रयोग था–

• १६ फरवरी १९८६। युवाचार्य महाप्रज्ञ के आंतरिक कार्य में सहयोग करने के लिए आज मैं मुनि मुदितकुमार को उनके व्यक्तिगत सहयोगी के रूप में नियुक्त करता हूं।

समण श्रेणी

३ अगस्त १९८६। समणश्रेणी का क्रम व्यवस्थित चल रहा है। इस श्रेणी में एक नियोजिका का प्रावधान है। अब तक एक ही नियोजिका रही है। बदलाव नहीं हुआ। इस विषय में युवाचार्य महाप्रज्ञ और साध्वीप्रमुखा से बात की। चिन्तन आया कि बदलाव होना चाहिए। परिवर्तन की बात निर्णीत हो गई। नया नाम सामने आया। उस पर सबकी सहमति हो गई।

अनुशासन का प्रयोग : धारणा का परिवर्तन

• २५ जनवरी १९८८। मर्यादा महोत्सव का कार्यक्रम चल रहा था। अच्छे प्रभावकारी कार्यक्रम के बीच में कुछ युवकों ने मंच के पीछे की ओर से हो-हल्ला मचाना शुरू कर दिया। उसका कारण था शुभकरण दसानी की मंच पर उपस्थिति। स्थिति यह थी कि दसानी स्वेच्छा से मंच पर नहीं आया। कार्यक्रम के संचालक ने उसे मंच पर आने तथा अतिथियों का परिचय देने के लिए आमंत्रित किया था। इस बात को लेकर नारेबाजी होने से सभा में थोड़ी हलचल-सी होने लगी। उस समय मैंने धर्म की जय हो जय–गीत का संगान प्रारंभ कर दिया। उसके बाद मर्यादा महोत्सव के अवसर पर निर्मित गीत का संगान किया। जनता शान्त भाव से बैठी रही, फिर भी कुछ हलचल होती रही। उसे देखकर युवाचार्य महाप्रज्ञ ने बोलने की इच्छा प्रकट की। मेरा निर्देश प्राप्त होने पर वे बोले और इतना अच्छा बोले कि सारी सभा चित्रित हो गई। उनके वक्तव्य का प्रथम अंश इस प्रकार है–

'यह कोई राजनैतिक मंच नहीं है, कोई अखाड़ा नहीं है। यह हमारा धर्मसंघ है। किसी भी श्रावक के मन में, साधु के मन में या और किसी के मन में कोई बात हो तो वह आचार्यवर को निवेदन कर सकता है। ऐसा करने का उसे अधिकार है। किन्तु अपनी बात को मनवाने के लिए हो-हल्ला करना, नारे लगाना, विघ्न उत्पन्न करना कैसे उचित होगा? मैं उन बंधुओं से बड़ी विनम्रता के साथ कहना चाहता हूं कि वे स्वप्न में भी यह न सोचें कि हो-हल्ला करने से, नारेबाजी करने से उनकी बात मान ली जाएगी। यहां न तो हमें उनसे कुछ लेना है और न उनको कुछ देना है। जिनकी श्रद्धा हो, भावना हो, वे प्रवचन सुनें। जिनकी श्रद्धा न हो, वे न सुनें। पर धर्मशासन में और तेरापंथ के आचार्य के सामने ऐसा उद्दंडतापूर्ण व्यवहार न करें। वे अपने घर में सामायिक करें, यह बहुत अच्छी बात होगी। जहां हम मर्यादा का महोत्सव मना रहे हैं, वहां तेरापंथ के आचार्य के सामने इतना अनुशासनहीन और उच्छृंखलतापूर्ण व्यवहार करें, इससे अच्छा तो यह होगा कि वे अपने घर में ही धर्म की आराधना करें। इससे उनका भी कल्याण होगा और यहां भी किसी प्रकार का विघ्न नहीं होगा।'

जनता एकाग्र होकर युवाचार्यजी को सुन रही थी, उसके साथ छुटपुट नारेबाजी भी हो रही थी। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए महाप्रज्ञ ने कहा–'मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि यह सब क्या हो रहा है? मैं पूछना चाहता हूं कि क्या यह कोई राजनैतिक मंच है, जो ऐसा माहौल बनाया जा रहा है? क्या कोई वेतन बढ़ाने की बात है? क्या कोई मांगे हैं? हम तो फकीर हैं। हमें क्या लेना है और क्या देना है? हम आज दिल्ली में है। हो सकता है, दस दिन बाद दिल्ली से विहार कर जाएं। क्या आगे हर गांव में यही चलेगा? जहां भी मंच होगा, आचार्यप्रवर विराजेंगे। जहां प्रवचन होगा, वहां कुछ उद्दंड और मनचले युवक आएं और ऐसा मखौल कर जाएं, यह तेरापंथ की परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल बात है। कोई भी व्यक्ति विनम्रता से तो अपनी बात मनवा सकता है, पर ऐसा करके मनवाने की बात न हुई है और न होगी। मैं स्पष्ट रूप में कहना चाहता हूं कि पहले तो यह था कि उनको समय दिया जाए। किन्तु अब तो मेरी प्रार्थना है कि उनको समय ही न दिया जाए। उन्हें जो भी करना है, करें।'

वातावरण में आकस्मिक रूप में आया उभार प्रायः शांत हो गया। शान्त सरोवर में कंकर फेंकने से एक बार लहरें उठती हैं, पर कुछ ही क्षणों में पानी पुनः स्थिर हो जाता है। अहिंसा समवसरण में एक बार जो हलचल हुई, वह शान्त हो गई। हो-हल्ला करने वालों के होश गुम हो गए। एकदम शांति हो गई, सदा के लिए शांति हो गई। अब कोई सिर नहीं उठा सकेगा। एक गजब का वातावरण बना। रोजमर्रा का झंझट समाप्त हो गया। दिल्ली का महोत्सव ऐतिहासिक बन गया। जन-जन के मुंह पर प्रसन्नता छा गई। महाप्रज्ञजी के भाषण का जो प्रभाव पड़ा, उसे अवर्णनीय कहा जाएगा। उनका भाषण सबके लिए लाभकारी रहा ही, स्वयं महाप्रज्ञजी के लिए उपकारक रहा। उनका प्राज्ञ रूप तो प्रत्यक्ष था, पर प्रशासक रूप बिल्कुल प्रावृत था। वह खुलकर सामने आ गया। जनता की भ्रांत धारणा बदल गई। ऐसा होना आवश्यक था। अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ।

● फरवरी १९८९। माघ का महीना हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। गत वर्ष का पर्यवेक्षण और आगामी वर्ष के कार्यक्रमों एवं चातुर्मासों का निर्धारण इसी महीने में होता है। मेरे मस्तिष्क पर इन कार्यों का कभी भार नहीं होता। किन्तु इस बार स्वास्थ्य की अनुकूलता कम रही। अस्वस्थता के कारण मेरे अनेक काम स्थगित-से रहे। नियमित रूप से डायरी का लेखन भी बन्द हो गया। अभी लगभग काम युवाचार्यजी संभालते हैं। योगक्षेम वर्ष का उपक्रम सामने और स्वास्थ्य की यह स्थिति! पर शासन एवं शासनदेव के प्रभाव से सब काम अपने आप सफल होते चले गए। साधु-साध्वियों की अच्छी गोष्ठियां चलती रहीं। आवश्यक निर्णय होते गए। सब स्थितियां अनुकूल बनती चली गईं।

संघीय जिम्मेदारी

अगस्त १९८९। गणेशदासजी गधैया (सरदारशहर) मुझे कहा करते थे–उत्तराध्ययन की जोड़ अपूर्ण है। माणकगणी और डालगणी के जीवन चरित्र नहीं लिखे गए हैं। यह काम आपको करना है।' गधैयाजी के निवेदन पर ध्यान देकर मैंने माणक-महिमा और डालिम-चरित्र की रचना कर दी। उत्तराध्ययन की जोड़ का काम अभी बाकी है।' युवाचार्यजी बोले कि यह काम अब हो सकता है। मैंने कहा–'जयाचार्य की चर्या स्वीकार करें तो हो सकता है। जयाचार्य अंतिम वर्षों में संघीय जिम्मेदारियों से मुक्त होकर स्वाध्याय और साहित्य-सृजन में लग गए थे।'

"
महाप्रज्ञजी के भाषण का जो प्रभाव पड़ा, उसे अवर्णनीय कहा जाएगा। उनका भाषण सबके लिए लाभकारी रहा ही, स्वयं महाप्रज्ञजी के लिए उपकारक रहा। उनका प्राज्ञ रूप तो प्रत्यक्ष था, पर प्रशासक रूप बिल्कुल प्रावृत था। वह खुलकर सामने आ गया। जनता की भ्रांत धारणा बदल गई। ऐसा होना आवश्यक था। अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ।
"

नए पद का सृजन

योगक्षेम वर्ष में महाश्रमण और महाश्रमणी पद का सृजन संघीय व्यवस्था में एक नया और विलक्षण उन्मेष था। वह आचार्यवर की दूरदर्शिता का जीवन्त निदर्शन बना–

● ९ सितम्बर १९८९। लगभग नौ बजे पट्टोत्सव के उपलक्ष्य में एक विराट सभा का आयोजन था। उस आयोजन में योगक्षेम वर्ष के अंतर्गत तेरापंथ धर्मसंघ में एक नई सृष्टि हुई, एक अभिनव घोषणा की गई। उस घोषणा की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए युवाचार्य महाप्रज्ञ खड़े हुए। उन्होंने कहा–'आज आचार्यश्री के आचार्य पद का चौपनवां वर्ष प्रारंभ हो रहा है और उसके साथ ही एक नया अध्याय लिखा जा रहा है। आप लोगों ने जो अब तक नहीं देखा, वह देखने को मिलेगा। आचार्यवर कुछ नई सृष्टि करनेवाले हैं। आपको पता है कि आचार्यश्री जब चलते हैं तो दो चीजें उनके साथ चलती हैं–एक जनकल्याण और दूसरा धर्मसंघ। एक ओर जनकल्याण है तो दूसरी ओर धर्मसंघ है। शक्ति का मूलाधार है धर्मसंघ। धर्मसंघ जितना शक्तिशाली रहेगा, जनकल्याण उतने ही शक्तिशाली ढंग से हो सकेगा। धर्मसंघ की शक्ति को स्थायित्व देना, व्यवस्थाओं को और अधिक विकासशील बनाना भी आचार्यवर का काम है। आचार्यवर दोनों दृष्टियों से कार्य कर रहे हैं। आज अपने धर्मसंघ की दृष्टि से कुछ नए उन्मेष प्रस्तुत करेंगे। आप सब तैयार रहें। कान भी तैयार, आंखें भी तैयार। पूरी चेतना जागृत रहे।' युवाचार्यजी के अव्यक्त संकेत ने जनता को उत्सुकता से भर दिया।

मैंने अट्ठाईस वर्षीय मुनि मुदितकुमार को महाश्रमण और अड़तालीस वर्षीय साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को महाश्रमणी के पद पर नियुक्त किया।

महाश्रमण और महाश्रमणी ने कृतज्ञता ज्ञापित की। प्रस्तुत उपक्रम के उपसंहार में युवाचार्यजी ने कहा–'आज मुझे बहुत प्रसन्नता है कि आचार्यप्रवर ने तेरापंथ धर्मसंघ को नई दिशा और नई दृष्टि दी है। आपने अपने आचार्यत्व और नेतृत्व को सही अर्थ में सार्थक किया है। नेतृत्व वही है, जो दिशा दे सके। नेतृत्व वही है, जो दृष्टि दे सके। नेतृत्व वही है, जो शरण दे सके। नेतृत्व वही है, जो चरण दे सके। नेतृत्व वही है, जो छिपी हुई क्षमता को आंके और नेतृत्व वही है, जो सागर की गहराई में झांके। आचार्यप्रवर ने तेरापंथ धर्मसंघ में एक नई व्यवस्था को जोड़ा है। यह अचिन्तन में से उपजा हुआ चिन्तन है।'

अपने वक्तव्य का समापन करते हुए युवाचार्यजी ने कहा–'अब मैं आचार्यवर के प्रति अपनी विनम्र भावना प्रेषित कर रहा हूं कि आचार्यप्रवर! आपने बहुत सारे नए कार्य किए। युवाचार्य पद मुझे दिया। मुझे अपना उत्तराधिकारी बनाया। यह कोई नई बात नहीं थी। क्योंकि भिक्षु स्वामी ने भी भारमलजी स्वामी को युवाचार्य बनाया था। पर आज आपने जो किया है, धर्मसंघ में नया इतिहास बनाया है। आपने आज जो नई व्यवस्था दी है, आने वाली शताब्दी उसको याद करती रहेगी। आपने हमारे धर्मसंघ को और अधिक शक्तिशाली, तेजस्वी और यशस्वी बनाने में योगक्षेम वर्ष के पट्टोत्सव पर जो महान कार्य किया है, उसके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।'

नई व्यवस्था का प्रवर्तन होने के बाद युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'मैंने जब से दीक्षा ग्रहण की, तब से मैं निश्चिन्त हूं। चिन्ता है तो आचार्यश्री को है। मुझे कभी चिन्ता होगी, यह सोचा भी नहीं था। युवाचार्य बनने के बाद भी आचार्यश्री ने यही कहा कि तुम निश्चिन्त रहो। आज सचमुच मैं निश्चिन्त हूं, आचार्यश्री निश्चिन्त हैं और पूरा संघ भी निश्चिन्त है।'

प्रशासन और व्यवस्था का दायित्व

● १ जनवरी १९९० का दिन। ईस्वी सन के अनुसार वर्ष का प्रथम दिन। मेरा मन मुझे कह रहा है कि अब संघ-व्यवस्था का दायित्व पूरा ही युवाचार्यजी पर छोड़ दिया जाए। मैंने चौपन वर्षों तक काम कर लिया। अब मुझे स्वाध्याय, ध्यान तथा अध्यात्म के विशेष कार्य में अपने आपको लगा देना चाहिए। इस विषय में मेरी महाप्रज्ञजी से बात भी हुई। उनको भी इसके लिए तैयार जैसा कर लिया। पर अब तक वैसा हो नहीं पाया। अब महाप्रज्ञ और महाश्रमण दो हो गए। ऐसी स्थिति में मुझे विराम क्यों नहीं लेना चाहिए। लगता है, मन में कोई व्यर्थ का अहं काम कर रहा है कि वे इस काम को अभी कर नहीं सकेंगे। अभी नहीं कर सकेंगे तो बाद में कैसे करेंगे? होने का सब काम होता रहा है और होता रहेगा। मुझे अब निर्णय कर लेना चाहिए।

● ३१ जनवरी १९९०। बसन्त पंचमी के दिन मर्यादा महोत्सव के कार्यक्रमों का प्रारंभ हो जाता है। सेवाकेन्द्रों में साधु-साध्वियों की नियुक्ति से उनकी सिद्धश्री लिखी जाती है। आज यह घोषणा युवाचार्य महाप्रज्ञ से करवाई। नया काम, नई बात और नया उत्साह। बहुआयामी आयोजन उल्लासमय वातावरण में सम्पन्न हुआ।

● २ फरवरी १९९०। मर्यादा महोत्सव के कार्यक्रम में करणीय सभी कार्य अच्छे ढंग से सम्पादित हुए। मर्यादा पत्र का वाचन किया गया। हमारे वक्तव्य हुए। श्रावक निष्ठापत्र पढ़कर सुनाया गया। चातुर्मासों की घोषणा युवाचार्यजी ने की।

● २९ मार्च १९९०। चांदारूण पहुंचे। सभा भवन में प्रवास किया। प्रवचन-स्थल छोटा पड़ गया। जनता बहुत थी। प्रातः और मध्याह्न दो समय तो प्रायः बोलना ही होता है। कभी-कभी रात को भी बोलना पड़ता है। महाप्रज्ञ और महाश्रमण दोनों बोलने वाले हैं। अच्छा व्याख्यान देते हैं। फिर भी मेरा श्रम कम नहीं हो रहा है। क्या किया जाए, कुछ समझ में नहीं आता। खैर, अच्छा ही चल रहा है।

● ८ नवम्बर १९९१। कार्तिक शुक्ला द्वितीया का दिन। आचार्यवर ने अपने स्वास्थ्य की मीमांसा करते हुए कहा–'मैं भी अब सोचता हूं कि जीवन शैली में थोड़ा परिवर्तन करूं और एक स्थान में अधिक रहकर व्यक्ति-निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करूं। आचार्यकाल में जो कुछ किया है, उसकी निष्पत्तियों को अधिक नियोजित और व्यवस्थित बनाऊं।'

मेरे सामने दूसरा मुद्दा है–प्रशासनिक कार्य युवाचार्यजी के सुपुर्द किए जाएं। उनकी प्रशासनिक क्षमता अभ्रांत हो जाए और जनता में भविष्य के लिए ऊहापोह न रहे। इस संदर्भ में मैंने कहा–'मैं अनेक बार कह चुका हूं कि युवाचार्य मेरे पास हैं, फिर भी मैं जयाचार्य नहीं बन पाया हूं। इसका कारण किन्हीं अर्थों में मैं खुद हूं। मैंने सोचा कि ये जो कार्य कर रहे हैं, वह आवश्यक है। इसलिए प्रशासन और व्यवस्था के कार्य से ये मुक्त रहें। इसी दृष्टि से सम्पूर्ण दायित्व मैंने अब तक अपने पर रख छोड़ा है। इस कारण लोगों में यह भ्रांति भी बनी हुई है कि ये विद्वान हैं, दार्शनिक हैं, वक्ता हैं, किन्तु प्रशासनिक काम में शायद....। पर मैं सोचता हूं कि जिस दिन पूरा दायित्व सौंप दिया जाएगा, उस दिन यह भ्रांति अपने आप मिट जाएगी। इसका शुभारंभ आज से ही कर दिया जाए।'

उक्त घोषणाओं के फलस्वरूप अभी यात्रा नहीं होगी तो श्वास का वेग शान्त रहेगा। प्रशासनिक भार नहीं रहने से निश्चिन्तता रहेगी। स्वाध्याय, ध्यान, पठन-पाठन, व्यक्ति-निर्माण, संघ-निर्माण, राष्ट्रीय समस्या

"नेतृत्व वही है, जो दिशा दे सके। नेतृत्व वही है, जो दृष्टि दे सके। नेतृत्व वही है, जो शरण दे सके। नेतृत्व वही है, जो चरण दे सके। नेतृत्व वही है, जो छिपी हुई क्षमता को आंके और नेतृत्व वही है, जो सागर की गहराई में झांके।"

का समाधान आदि कार्यों के लिए अवकाश मिलेगा। पर एक समस्या है, ये लोग बिना मेरी दृष्टि लिए कुछ करें, कम संभव है। वैसी हालत में मैं पूर्ण मुक्त कहां हुआ? केवल मुक्त कहलाया, पर वास्तव में कहां हुआ? प्रातःकालीन प्रवचन युवाचार्य को सौंप दिया। अब मैं नहीं कर रहा हूं। देखो, क्या कैसे चलता है।

• १६ जनवरी १९९२। योगक्षेम सत्र की अच्छी प्रक्रिया चल रही है। सब साधु-साध्वियां प्रसन्न नजर आ रहे हैं। व्यवस्था सम्बन्धी कार्य में युवाचार्यजी संलग्न हैं। अच्छी स्थिति में काम करेंगे, ऐसा विश्वास बन रहा है। काफी साधु-साध्वियों का आगमन हो गया। कुछ आ रहे हैं। बाकी तो इस वर्ष लघु मर्यादा महोत्सव है। इसलिए अपेक्षाकृत संख्या कम ही रहेगी।

• ४ जनवरी १९९४। मर्यादा महोत्सव के उपलक्ष्य में संघीय सारे कार्यक्रम महाप्रज्ञजी ही बना रहे हैं। मैं तो अभी विश्राम में हूं। अच्छा है, पहले से ही संभाल लें। आखिर काम तो करना ही है।

• ११ फरवरी १९९४। महाप्रज्ञजी चातुर्मासों की नियुक्ति के चिन्तन में लगे हुए हैं। कितना जटिल काम है यह। मैंने चालीस-पचास वर्षों तक अकेले ही यह काम किया है।

आचार्य पद का विसर्जन

आचार्यवर ने आचार्य-पद का विसर्जन कर विरल इतिहास की रचना की। वह युग के लिए प्रायोगिक बोधपाठ बन गया। आचार्यवर ने पद-विसर्जन की घटना का हृदयस्पर्शी रेखांकन किया है–

• १८ फरवरी १९९४। आज मध्याह्न में साढ़े ग्यारह बजे हम लगभग चार सौ साधु-साध्वियों, सत्तर समण-समणियों एवं हजारों श्रावक-श्राविकाओं के साथ महोत्सव-स्थल लोहिया स्टेडियम में पहुंचे। वहां जनता की अपार भीड़ थी। पंडाल खचाखच भरा हुआ था। बाहर भी जनता का सैलाब उमड़ रहा था।

मेरे प्रवचन के दूसरे चरण का प्रसंग उपस्थित हुआ। मैंने कुछ चातुर्मासों की नियुक्तियां कीं। चालू क्रम को मोड़ देते हुए मैंने कहा–'आज एक विशिष्ट कार्य होनेवाला है। लोग जाने की जल्दी न करें।' मेरी इस संक्षिप्त सूचना ने लोगों को उद्ग्रीव बना दिया। वे उत्फुल्ल नेत्रों से कुतूहल में डूब गए, उत्सुकता से भर गए और कल्पनाओं के सागर में डूबने-उतरने लगे। उस स्थिति में मैंने अपनी बात कही। मैंने जो बात कही, वह अपूर्व तो थी ही, अद्भुत और विलक्षण भी थी। परिणाम तो भविष्य बतलाएगा। वर्तमान में तो वह घटना बहुत आश्चर्यजनक लगी।

मैंने एक छोटा-सा लिखित वक्तव्य पढ़ा। उसमें अपने आचार्य पद का विसर्जन और संघ का एक नया रूप सामने आया। मैंने कहा–'अब तक किसी ने अपने युवाचार्य को आचार्य रूप में नहीं देखा। मैं देखना चाहता हूं। अतः आज मैं युवाचार्य महाप्रज्ञ को आचार्य पद पर नियुक्त करता हूं। मैं पद के बिना स्वतंत्र साधना करूंगा।'

मैंने युवाचार्यजी को खड़े होने का निर्देश दिया। वे खड़े हो गए। मैं स्वयं पट्ट से नीचे उतरा। मैंने महाप्रज्ञ को सीने से लगाया और कहा–'यों तो मैं बार-बार कहता रहता हूं कि तुम अपना काम संभालो। संघ-व्यवस्था अपने हाथ में लो। पर वह काम पूरा नहीं बना। इसलिए अब मैं अपने आचार्य पद का भार तुम्हें सौप रहा हूं, हस्तान्तरित कर रहा हूं।'

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा–'भिक्षु स्वामी और भारमलजी स्वामी साथ-साथ रहे। जयाचार्य ने युवाचार्य मघवा को काम सौंपा और स्वयं निवृत्त हो गए। तुम्हें युवाचार्य बनाए पन्द्रह वर्ष हो

गए। पर पूरा कार्य मैं ही कर रहा हूं। तुम कार्यक्षम होते हुए भी दूसरे कामों में लगे हुए हो। इसलिए अब मैं पूरा ही दायित्व तुम्हें सौंप रहा हूं। मैं इस दायित्व को सौंपकर अपनी साधना और मानव जाति के लिए व्यापक कार्यक्रम में लगा रहूं, ऐसी मेरी भावना है। तेरापंथ के भाग्यविधाता आचार्य भिक्षु और भिक्षुशासन की परम्परा के अनुसार आचार्य अपने उत्तराधिकारी के रूप में युवाचार्य की नियुक्ति करते हैं। मैंने भी की है। पूर्ववर्ती किसी भी आचार्य ने अपने युवाचार्य को आचार्य के रूप में नहीं देखा। मैं इसे देखना चाहता हूं। अतः मैं निर्देश देता हूं कि युवाचार्य महाप्रज्ञ आचार्य पद का दायित्व संभालें।'

मेरे निर्देश को स्वीकार करते हुए महाप्रज्ञजी बोले–'जीवन में कुछ क्षण ऐसे आते हैं, जहां वाणी मौन हो जाती है। मैं पहले बहुत कम बोलता था, आजकल बहुत बोलता हूं पर अभी तो ऐसा अनुभव हो रहा है जैसे वाणी थम गई हो।'

मैंने नया प्रयोग किया तो महाप्रज्ञजी कब चूकने वाले थे। उन्होंने कहा–'पूज्य गुरुदेव! गण के विस्तार और कार्य के विस्तार को ध्यान में रखकर आप व्यवस्था को नया रूप देना चाहते हैं। यह आपका युगानुरूप चिन्तन है। आप अध्यात्म के उच्च शिखर पर पहुंच चुके हैं, अतः आप हमारी एक नेतृत्व की परम्परा के नियन्ता, अनुयोग के नियामक तथा अध्यात्म गुरु के पवित्र आसन पर विराजमान होकर 'गणाधिपति' के पद को सुशोभित करें। हमारी भावना को समझकर आपको 'गणाधिपति गुरुदेव' का पद स्वीकारना ही होगा।'

इस नए प्रसंग को टालने के अभिप्राय से मैंने कहा–'मैं कोई विशेषण या पद नहीं चाहता। मेरे नाम के साथ कोई पद या विशेषण जुड़े, यह आवश्यक नहीं है। मेरा 'तुलसी' नाम अपने आपमें जन-जन में परिचित और प्रतिष्ठित हो गया है।'

महाप्रज्ञजी अपने समर्थन में पूरे संघ को खड़ा करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा–'गुरुदेव! आपको किसी पद या विशेषण की जरूरत नहीं है। पर मुझे और मेरे संघ को आपके पथदर्शन की जरूरत है। इसलिए आपको हमारी प्रार्थना स्वीकार करनी होगी। मैं आपका शिष्य हूं। आपने मुझे यह अधिकार दिया है। उस अधिकार का उपयोग करते हुए मैं प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे अनुरोध को स्वीकार करें। इस प्रार्थना में सभी साधु-साध्वियां तथा श्रावक-श्राविकाएं भी मेरा समर्थन करेंगे।'

'समझदार को इशारा काफी' इस कहावत के अनुसार थोड़ा-सा संकेत मिलते ही सभी साधु प्रार्थना की मुद्रा में खड़े हो गए। साध्वियां भी खड़ी हो गईं। श्रावक समाज कब पीछे रहने वाला था। देखते-देखते पूरी परिषद खड़ी हो गई। तब तक भी मैं अपने संकल्प या निर्णय पर दृढ़ था। उन क्षणों में शुभकरण दसानी खड़ा होकर बोला–'आचार्यवर! आपने मुझे एक वचन दिया था। मैं उससे अपने लिए कुछ भी नहीं मांगता। मैं उसका इस अवसर पर उपयोग करना चाहता हूं। आप संघ की प्रार्थना को मानकर 'गणाधिपति गुरुदेव' के पद को स्वीकार करें।'

इधर मेरा मन, उधर सारा संघ। मैंने बहुत टालना चाहा। पर आखिर समूचे संघ की प्रार्थना को देखते हुए मुझे अपना निर्णय बदलना पड़ा, संघ का अनुरोध स्वीकार करना पड़ा। मेरे मौनभाव को स्वीकृति का सूचक मानकर सब लोग प्रसन्न हो गए। प्रवचन पंडाल जयघोषों से गूंज उठा। सभा का माहौल विचित्र-सा हो गया। हजारों लोगों की आंखों में अश्रु बह चले।

"
जीवन में कुछ क्षण ऐसे आते हैं, जहां वाणी मौन हो जाती है। मैं पहले बहुत कम बोलता था, आजकल बहुत बोलता हूं पर अभी तो ऐसा अनुभव हो रहा है जैसे वाणी थम गई हो।
"

उस समय मर्यादा समवसरण का सीन दर्शनीय था। सुजानगढ़ का महोत्सव ऐतिहासिक बन गया। जनता की उपस्थिति बीस हजार लगभग होगी। महाप्रज्ञ आचार्य बन गए। तुलसी गणाधिपति गुरुदेव बन गए। नया इतिहास बन गया। परिणाम अच्छा ही रहेगा, ऐसा लगता है। और तो भविष्य ही बतलाएगा।

● १६ फरवरी, शुक्रवार। आज प्रातःकालीन कार्यक्रम में कल के सन्दर्भ में अनेक वक्तव्य हुए। आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'महापुरुषों का सान्निध्य सत्य का दर्शन कराने वाला होता है, जीवन को सफल बनाने वाला होता है तथा आत्मा से परमात्मा तक पहुंचाने वाला होता है। मेरे जीवन में यह वाक्य बहुत अंशों में घटित हुआ है। मुझे पूज्य गुरुदेव सर्वप्रथम शिक्षागुरु के रूप में मिले, फिर अनुशास्ता के रूप में। आपने मुझे शिक्षित कर सत्य से परिचित किया। उसी के परिणामस्वरूप विविध आयामी सफलताएं मेरे सामने हैं। मैं जो कुछ भी हूं अथवा जैसा भी हूं, गुरुदेव द्वारा निर्मित हूं। अपने आप में मेरा कुछ नहीं है।'

मैंने अपने उद्‌बोधन में कहा–'कल का वह अनुपम दृश्य आज भी सबकी आंखों में समाया हुआ-सा प्रतीत हो रहा है। हमारा धर्मसंघ एक केन्द्रित है, इसलिए आचार्य का निर्णय सर्वमान्य होता है। हमारे यहां सारे निर्णय सुचिन्तित होते हैं। संभव है, आप सबको वे कल्पित और अचिन्तित-से लगते हों। पर हमारे यहां एक संगठन और एक दृष्टि से चलने की परम्परा कभी कम नहीं होगी। अनुशासन मैं करूं या महाप्रज्ञजी करें, एक ही बात है। हमारा धर्मसंघ अनुशासित है, संगठित है, शक्तिसम्पन्न है और आचारनिष्ठ है। इसलिए यह निरन्तर गतिमान है और रहेगा।'

मर्यादा महोत्सव के कार्यक्रम में जो कुछ घटित हुआ, वह नया परिवर्तन अप्रत्याशित तो था ही, अकल्पित भी था। क्यों हुआ? कैसे हुआ? क्या हुआ? अनेक लोगों के मन में अनेक प्रश्न थे। उत्तर किसी के पास नहीं थे। मैं भी मौन था।

प्रस्तुत सन्दर्भ में हमारे संघ का अनुशासन बेजोड़ रहा। हमारा यह कदम सर्वसम्मत एक स्वर से स्वीकृत हुआ। कहीं ऊहापोह नहीं। आशंका नहीं। हलचल भी नहीं। पद-प्राप्ति के लिए और उसकी सुरक्षा के लिए जीतोड़ प्रयत्न होता रहता है, अन्तिम श्वास तक होता रहता है। पद-त्याग के लिए यह कैसा प्रयत्न? किसी ने शायद कह दिया होगा–'कालूगणी ने इन्हें युवाचार्य इसीलिए बनाया था क्या कि ये अन्त में पद का त्याग कर दें?' यह भी चिन्तन का एक कोण है। कोई कुछ भी कह सकता है। पर जो किया गया, वह सुचिन्तित था। अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ। यह जानने की बड़ी चेष्टाएं हुई कि यहां परामर्श किसका रहा? पर प्रत्युत्तर कुछ नहीं।

● २० फरवरी १९९४, शनिवार। साधु-साध्वियों की गोष्ठी में अनेक जिज्ञासाएं उभर कर सामने आईं। हमने सबकी जिज्ञासाओं को समाधान देने का प्रयास किया। मैंने कहा–'अनेक कारणों से मैंने ऐसा सुचिन्तित कदम उठाया। उन कारणों को मैंने अपने हाथ से उल्लिखित किया है, जो विज्ञप्ति में प्रकाशित हो गया। अलबत्ता मैंने केवल महाश्रमणी से इस विषय में परामर्श किया, जो जरूरी समझा गया। क्योंकि वे संघ की महानिदेशिका हैं। मैं जो था, जहां था, वही हूं और वहीं हूं। आचार्य पद के दायित्व से मैंने मुक्ति ले ली है। महाप्रज्ञ में यह पद प्रतिष्ठित कर दिया है। ये सर्वथा सक्षम हैं। अब ये सबको संभालेंगे। मैं अब अणुव्रत अनुशास्ता के रूप में मानवता का मार्ग प्रशस्त करता रहूंगा। सब निश्चिन्त रहें, आश्वस्त रहें, स्वस्थ रहें।'

● २३ फरवरी १९९४। १८ फरवरी १९९४ (वि.सं. २०५०, माघ शुक्ला सप्तमी) को तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास में एक नया अध्याय लिखा गया। युवाचार्य महाप्रज्ञ आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गए। यह क्यों हुआ? मैंने ऐसा निर्णय क्यों लिया? इस संदर्भ में महाप्रज्ञजी ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण आलेख लिखा है। इतिहास के शोधकर्ताओं के लिए वह एक मूल्यवान दस्तावेज है।[1]

जयपुर में आचार्यवर ने साधु-साध्वियों की गोष्ठी आहूत की। उसमें अपने पद-विसर्जन के कारणों का उल्लेख करते हुए साधु-साध्वियों को दिशा निर्देश प्रदान किया–

● २७ मार्च १९९४। आज साधु-साध्वियों की सामूहिक गोष्ठी हुई। मैंने संस्कृत में वक्तव्य दिया।

'वयं जयपुरे समागताः। अस्ति आस्था प्रवर्धमाना। अनेके लोकाः अनेके परिवाराश्च आयातवन्तः। नाहं तान् जानामि। तैः सर्वैरपि श्रद्धा प्रकटीकृता।

अस्माकं संघेन प्रारम्भत एव प्रतिष्ठा प्राप्ता। अधुनाऽसौ विशेषतः सर्वेषाम् आकर्षणकेन्द्रं सञ्जातोऽस्ति। सर्वेषां मनसि एका धारणा सञ्जाता–एष संघः कार्यं कर्तुं समर्थः। कश्चित् तेरापंथसंघस्य अनुयायी नापि स्यात् तथापि तस्य मनसि एनं प्रति आस्थाभावो विद्यते।

भिक्षुरस्मिन्नेव संघे बभूव। आचार्यभिक्षुं प्रति यादृशी श्रद्धा अस्माकं संघे वर्तते, तादृशी कस्मिन्नपि संघे स्वगुरुं प्रति न दृश्यते। स महत् नक्षत्रमासीत्। एतादृशः महापुरुषः सहस्राब्द्यामेव कश्चिद् भवति। तस्य प्रज्ञा विलक्षणा आसीत्। स न प्राकृतपाठी आसीत्, न तेन संस्कृतमधीतम्, न च स हिन्दीभाषाविद्, तथापि प्रतिभा विलक्षणा आसीत्। तथा जातमासीद् अन्तर्दृष्टिजागरणम्। अद्भुता तस्य कार्यक्षमता। भिक्षोर्नाम अस्ति गङ्गायाः उद्गमस्रोतः। तस्मिन् वयं सदा निष्णाता भवामः वरमिदम्।

अस्मिन् वर्षे यज्जातं तन्मया कृतमिति नाहं मन्ये। ममाभिमतमिदम्–यज्जातं तत्र भिक्षोरेव काचिदज्ञातप्रेरणा। तत एव सञ्जातमिदम्। नियत्या कारितमिदम्। मया आकस्मिकरूपेण एकः स्वप्नो दृष्टः। केन कल्पना कृता–एवं भविष्यति। न मया केनापि सह चर्चा कृता। येन सह किञ्चित् आलोचितं, स आत्मीय एव। एतस्मिन् कार्ये संवृत्ते सर्वत्र अतीवाऽनुकूला प्रतिक्रिया सञ्जाता। अस्माकं विरोधिशिरोमणिभिरपि प्रशंसितमिदम्। कल्ये एव राजस्थानप्रदेशस्य मुख्यसचिवः मीठालालमेहताः समागतः। तेनोक्तम्–भवता आदर्शः पुरस्कृतः।

आचार्यकाले मया यदपि कृतम्–उपालम्भः प्रदत्तः, प्रायश्चित्तं प्रदत्तं, तद् उत्तरीकरणार्थम्। तेन केषाञ्चन मनसि ग्लानिरपि सञ्जाता स्यात् तदर्थमहं क्षमायाचनां करोमि। आचार्यकल्पा युवाचार्या अपि मया कदाचिदुपालब्धाः परन्तु एतेषां विनयः नम्रतापूर्णव्यवहारश्च सर्वेषां कृते शिक्षणीयः प्रशिक्षणीयश्च। न मया केवलम् उपालम्भ एव प्रदत्तः, वर्धापनमपि विहितम्। इदानीमहं पितृस्थानीयः गुरुस्थानीयोऽस्मि। यूयं सर्वे मम पुत्राः शिष्याश्च। सर्वान् प्रति मम मनसि प्रगाढं प्रेम विद्यते। यदा युष्माकं सर्वेषां विनयम् आत्मीयभावं च पश्यामि, तदा मम चक्षुषी आर्द्रीभवतः।

एषु दिनेषु 'चौधरी कुम्भाराम आर्यः' आयातः। वार्तालापः कृतः। तत्र एषां विनयपूर्णां मुद्रां व्यवहारं च दृष्ट्वा तेन प्रोक्तम्–कियद् अद्वैतम्? नैतादृशम् अद्वैतं मया क्वापि दृष्टम्। अद्य किमहं

१. देखें परिशिष्ट पृ. ३५९-३६१

"१८ फरवरी १९९४ (वि.सं. २०५०, माघ शुक्ला सप्तमी) को तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास में एक नया अध्याय लिखा गया। युवाचार्य महाप्रज्ञ आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गए। यह क्यों हुआ? मैंने ऐसा निर्णय क्यों लिया? इस संदर्भ में महाप्रज्ञजी ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण आलेख लिखा है। इतिहास के शोधकर्ताओं के लिए वह एक मूल्यवान दस्तावेज है।"

वच्मि? अत्यन्तप्रसन्नमना अस्मि। भारहीनताम् अनुभवामि। अहं वाञ्छामि–साधुसंघे कोऽपि प्रमादी न तिष्ठेत्। कदाचिद् ध्यानं, कदाचित् स्वाध्यायं, कदाचित् स्मृतिं कुर्वाणाः सर्वेऽपि तिष्ठेयुः। सर्वे प्रसन्नाः आनन्दनिमग्नास्तिष्ठेयुः इत्युक्त्वा विरमामि।

अन्यच्च–इदानीम् अयं महाप्रज्ञः आचार्यः। सर्वाधिकारसम्पन्नोऽयम्। सर्वे साधवः सर्वाः साध्व्यश्च मत्तोऽप्यधिकं विनयभावं, श्रद्धाभावं, भक्तिभावं, अनुशासनभावं च एनं प्रति रक्षेयुः। नास्मिन् विषये मम पुनः कथनावसरः समागच्छेत्। एषा अस्माकं गौरवमयी परम्परा विद्यते।'

साध्वी समाज का सम्मान

• १५ मई १९९४। नई दिल्ली। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मुझे 'राष्ट्रीय चरित्र निर्माण अभियान' का उद्घाटन भाषण करना था। किन्तु कार्यक्रम को एक नया मोड़ देते हुए महाप्रज्ञजी ने कहा–'मंगल वेला में पवित्र स्थान पर पूज्य गुरुदेव का आगमन सबके लिए परम उल्लास का विषय है। यहां आते ही इस स्थान पर आयोजित प्रथम अणुव्रत शिविर की स्मृति हो आई। उस समय यहां प्राकृतिक सुषमा और कुछ झोंपड़ियां थीं। उस शिविर में जैनेन्द्रजी, बच्चनजी, अमनजी, दादा धर्माधिकारी, श्रीमन्नारायण आदि साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों ने भाग लिया था। अणुव्रत की विचारधारा ने सबको प्रभावित किया था। उस समय मैं निकायसचिव मुनि नथमल के रूप में आया। उसके बाद युवाचार्य महाप्रज्ञ के रूप में आया और आज एक नए रूप में आया हूं। पूज्य गुरुदेव हमारे नियन्ता हैं। पर संघ में आदेश/आज्ञा आचार्य की होती है। पूज्य गुरुदेव ने मुझे यह अधिकार दिया है और आज मैं इसका उपयोग करना चाहता हूं।'

स्वागत कार्यक्रम में अप्रत्याशित रूप में उपस्थित इस प्रसंग ने लोगों के कान खड़े कर दिए। महाप्रज्ञजी ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा–'साध्वीप्रमुखा हमारे धर्मसंघ के विशाल साध्वी समाज की प्रमुखा है। आचार्य के बाद संघ में साध्वीप्रमुखा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साध्वीप्रमुखा आचार्य के कार्यों में पूरी-पूरी सहायक होती है। साध्वी समाज का सारा कार्य उसके माध्यम से होता है। आज मैं चाहता हूं कि साध्वीप्रमुखा हमारी पंक्ति में आए अर्थात् हमारे बराबर पट्ट पर बैठे।'

उक्त शब्द कानों में पड़ते ही कार्यक्रम श्रव्य कम और दृश्य अधिक बन गया। पंडाल में बैठे हजारों-हजारों दर्शकों की आंखें मंच पर केन्द्रित हो गईं। साध्वीप्रमुखा सहज ही विनम्र तथा संकोचशील स्वभाव वाली है। उसकी पट्ट पर बैठने की मानसिकता नहीं थी। एक ओर संकोच, दूसरी ओर आदेश। असमंजस की स्थिति में खड़ी होकर वह बोली–'मैं आचार्यश्री से निवेदन करना चाहती हूं कि लगभग बारह वर्ष पूर्व गुरुदेव का पदार्पण दिल्ली हुआ था। उस समय लालकिले के प्रांगण में स्वागत समारोह में आपने अनुग्रह बरसाते हुए कहा–'साध्वीप्रमुखा सभाओं में पट्ट पर बैठ सकती है।' मैंने उस दिन पट्ट का विसर्जन कर दिया था। क्या विसर्जन की हुई चीज को पुनः स्वीकार किया जा सकता है?'

महाप्रज्ञजी ने तत्काल कहा–'तेरापंथ में अर्जन-विसर्जन से अधिक महत्त्व आज्ञा का है। अतः साध्वीप्रमुखा संकोच न कर आज्ञा का पालन करे। मैं यह चाहता हूं और यही हमारी संघीय परम्परा है।' परिषद में बैठे साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं ने भी महाप्रज्ञजी के निर्देश का समर्थन किया। आखिर साध्वीप्रमुखा को पास में रखे पट्ट पर बैठना पड़ा। पट्ट पर बैठने के बावजूद वह संकोच के कारण सिकुड़ी हुई थी। उस अवसर पर मैंने कहा–'साध्वीप्रमुखाजी! संकोच छोड़कर अच्छी तरह से पट्ट का

उपयोग करो। यह अभूतपूर्व कार्य हुआ है। आदेश मैंने नहीं दिया और न ही मैंने कुछ कहा है। यह नया कार्य महाप्रज्ञजी ने किया है। मैं इस घटनाक्रम में नारी जाति और साध्वी समाज का सम्मान देख रहा हूं।'

एक नया उत्सव : विकास महोत्सव

आचार्य पद विसर्जन की एक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है विकास महोत्सव। आचार्यवर ने पद-विसर्जन के साथ पट्टोत्सव नहीं मनाने की घोषणा की। इस नकार ने एक नए उत्सव की सृष्टि की। आचार्यवर ने विकास महोत्सव के इतिहास का सजीव चित्रण किया है–

● संवत १९९३ में पूज्य कालूगणी का स्वर्गवास होने के बाद भाद्रव शुक्ला नवमी के दिन मैंने आचार्य पद का दायित्व संभाला। अभी संवत २०५१ चल रहा है। इन अट्ठावन वर्षों में बराबर पट्टोत्सव मनाया गया। इस बार नवमी को पट्टोत्सव मनाने की प्रासंगिकता नहीं रही। क्योंकि पिछले मर्यादा महोत्सव पर मैंने आचार्य पद का विसर्जन कर दिया। अट्ठावन वर्षों से मनाए जा रहे उत्सव को न मनाने का चिन्तन प्रायः सभी को अखरा। यहां तक कि महाप्रज्ञजी को भी यह बात अटपटी-सी लगी। उन्होंने कहा–'नवमी का दिन हमारे संघ में इतना प्रतिष्ठित हो गया है कि हम इसे छोड़ नहीं सकते। हम इसे किसी भी रूप में मनाए, पर मनाएंगे अवश्य।'

कुछ दिन चिन्तन-मन्थन करने के बाद अपने चिन्तन को पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत करते हुए महाप्रज्ञजी ने कहा–'गुरुदेव! आप विकास के प्रतीक पुरुष हैं। आपने संघ में विकास के अनेकानेक आयाम उद्घाटित किए हैं। उन्हीं के परिणामस्वरूप तेरापंथ ने विविध आयामी विकास किया है। विकास-यात्रा अनाबाध चलती रहे, वर्तमान विकास की समीक्षा और भावी विकास की व्यवस्थित योजनाएं बनाई जाएं, इन सबके लिए आवश्यकता है एक सशक्त आधार की। इन सबको क्रियान्वित करने के लिए भाद्रव शुक्ला नवमी को हम विकास महोत्सव के रूप में मनाना चाहते हैं। इस विकास महोत्सव का आधार संघीय विकास है। अतः मर्यादा महोत्सव की तरह यह सदा मनाया जाए।'

विकास महोत्सव के नाम से एक नया प्रसंग सामने आया। गहरा चिन्तन करके विकास महोत्सव मनाने का निर्णय लिया गया। उसकी पूरी रूपरेखा तैयार की गई। विकास महोत्सव की पृष्ठभूमि, उद्देश्य और आधारभूत तत्त्वों को प्रस्तुति देने वाले सर्वांगीण संदर्भों को समेटे हुए एक परिपत्र बनाया गया।[1]

● १३ सितम्बर १९९४, मंगलवार। संवत् २०५१, भाद्रव शुक्ला नवमी। विकास महोत्सव के परिधान में पट्टोत्सव। जनता के हृदय सागर में उत्सुकता का ज्वार। हजारों आंखों से झांकता हुआ प्रश्न–कैसे मनाया जाएगा विकास महोत्सव?

मंगलं भगवान् वीरो.....आदि पद्यों का समवेत स्वरों में संगान करके आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ धर्मसंघ में नए आयाम उद्घाटित किए, जिनसे इतिहास में नए आयाम का सृजन हुआ। आज से एक सौ तीस वर्ष पहले तेरापंथ के भाग्यविधाता जयाचार्य ने तेरापंथ की भाग्यलिपि में कुछ नए अक्षर लिखे। वे अक्षर हैं–मर्यादा महोत्सव। मर्यादा, व्यवस्था और अनुशासन में रहने वाला संघ ही नया विकास कर सकता है, नया विश्वास पैदा कर सकता है। उसके सामने विकास का असीम अवकाश

१. देखें परिशिष्ट पृ. ३६२-३६८

"आचार्य पद विसर्जन की एक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है विकास महोत्सव। आचार्यवर ने पद-विसर्जन के साथ पट्टोत्सव नहीं मनाने की घोषणा की। इस नकार ने एक नए उत्सव की सृष्टि की। विकास महोत्सव के नाम से एक नया प्रसंग सामने आया। गहरा चिन्तन करके विकास महोत्सव मनाने का निर्णय लिया गया।"

है। असीम पदार्थ नहीं होता। अध्यात्म जैसा शाश्वत तत्त्व ही असीम हो सकता है। एक सौ तीस वर्ष बाद महोत्सव की शृंखला में एक नई कड़ी जुड़ रही है विकास महोत्सव की। अन्य किसी संघ में मर्यादा का महोत्सव मनाया जाता है, विकास का महोत्सव मनाया जाता है, हमने नहीं सुना। हमारे संघ की नियति ही शुभ है। यहां अध्यात्म और विकास के नए-नए आयाम खुलते जा रहे हैं और भविष्य में खुलते रहेंगे।'

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए महाप्रज्ञजी ने कहा–'अब तक हम मर्यादा महोत्सव, भिक्षु चरमोत्सव और वर्तमान आचार्य का पट्टोत्सव–ये तीन महोत्सव मनाते रहे हैं। आज से इसी क्रम में विकास महोत्सव जुड़ रहा है। पूज्य गुरुदेव के पट्टोत्सव का दिन अब से विकास महोत्सव के रूप में मनाया जाएगा। पूज्य गुरुदेव तेरापंथ के विकास के ब्रह्मा हैं। आपने संघ में विकास को जो ऊंचाइयां दी हैं, वे अमाप्य हैं। अतः जब तक तेरापंथ है, तब तक विकास महोत्सव मनाया जाता रहेगा। इसका आधार हमारा यह विकास महोत्सव का परिपत्र है।'

विकास महोत्सव क्यों? और कैसे? आदि प्रश्नों को समाहित करनेवाले परिपत्र का वाचन करने के पश्चात महाप्रज्ञजी पट्ट से नीचे उतरे और बद्धांजलि मेरे सामने खड़े हो गए। वे परिपत्र मुझे सौंपना चाहते थे। मैंने दो क्षण सोचा–'संघ व्यक्ति से बड़ा होता है। मैं व्यक्ति हूं। यह परिपत्र संघ का है।' इस चिन्तन के साथ ही पट्ट से नीचे उतर कर मैंने विकास महोत्सव का परिपत्र ग्रहण किया और कहा–'हमारे महाप्रज्ञजी का दिमाग उर्वर है। इन्होंने चिन्तनपूर्वक नए इतिहास के सृजन की परिकल्पना कर ली। संघीय विकास का सिंहावलोकन, वर्तमान विकास की समीक्षा और भविष्य के विकास की संभावनाओं को सामने रखकर एक सार्थक आयोजन की प्रस्तुति की है। इसी का प्रतीक यह परिपत्र मुझे समर्पित किया गया। मैं इसे स्वीकार करता हूं।' जनता ने हर्षध्वनि के साथ अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्ति दी।

विकास महोत्सव का आयोजन जिस रूप में निर्धारित किया गया था, उसी रूप में सम्पादित हुआ। विकास महोत्सव का रूप भी अच्छा बन गया। विकास महोत्सव नाम भी खूब जमा। कार्यक्रम में जनता भरपूर थी। सबको बहुत प्रसन्नता हुई। नवमी से लेकर एकादशी (१३ सितम्बर से १५ सितम्बर) तक तीनों दिन विकास महोत्सव के संदर्भ में कार्यक्रम चला। बड़ा आनन्द रहा।

● १७ सितम्बर १९९४, शनिवार। भाद्रवी त्रयोदशी। भिक्षु चरमोत्सव। आज आचार्य भिक्षु का १९२वां निर्वाण दिवस है। अणुव्रत सभागार में उत्साहपूर्ण वातावरण में भिक्षु चरमोत्सव मनाया गया। कार्यक्रम लम्बा चला। बारह बजकर पैंतालीस मिनट तक चला। इस बार गीत महाप्रज्ञजी का हुआ। अब तक प्रतिवर्ष मेरा गीत होता था। अब आचार्य पद विसर्जित किया तो गीत भी विधिवत् विसर्जित हो गया। एक बार आचार्य भिक्षु का चातुर्मास कंटालिया में था और भारीमालजी स्वामी का बगड़ी में। नदी के दो तटों पर भिक्षु-भारीमाल का मिलन एवं वार्तालाप होता। गीत में मुख्य रूप से यही भाव मुखर हुआ है।

आचार्य पदाभिषेक

आचार्य पदाभिषेक का समय और कार्यप्रणाली निर्धारित हो चुकी थी। उसका प्रचार भी विधिवत् हो गया। एक नया उत्साह, नया वातावरण। इस दृश्य को देखने की उत्सुकता केवल तेरापंथ समाज में ही नहीं, सर्वत्र थी। फलतः वह कार्य विशाल आयोजन के रूप में समायोजित हुआ। गुरुदेव ने उसका सजीव वर्णन किया है–

'त्रि-दिवसीय विशेष कार्यक्रम। मर्यादा-महोत्सव का विशिष्ट रूप बन गया। ऐतिहासिक, दर्शनीय, स्मरणीय तथा अभूतपूर्व, जिसकी विधिवत् सूचना दी गई। शहर में सैकड़ों जगह होर्डिंग लगाए गए। सचित्र पट्ट लगाए गए। पोस्टर तो अनगिनत लगे होंगे। इतना व्यवस्थित प्रचार, शालीन प्रचार शायद प्रथम बार ही हुआ हो। देशभर में लोगों को आमंत्रण दिया गया। 'दिल्ली चलो' घोष प्रसारित किया गया। कठिनाई सबसे बड़ी स्थान की थी। राजधानी का मामला, महानगर की भीड़भाड़। कैसे वैसी स्थिति में सब कुछ बन पाएगा? पर शासन का भाग, पूर्वाचार्यों की तपस्या, वर्तमान पीढ़ी का श्रम, कुल मिलाकर सब काम अकल्पनीय रूप में संपन्न हुआ।

तारीख ५ फरवरी १९९५ का कार्यक्रम ग्यारह बजे था। तारीख ४ फरवरी को बादल छा गए। वर्षा आनी शुरू हो गई। लोग घबराए हुए बोले–'अब क्या करेंगे? वर्षा आ गई तो सब काम गड़बड़ा जाएगा।' हमने कहा–'घबराओ नहीं, प्रकृति का स्वागत करो, सब ठीक होगा।' यह सुनकर बल मिल गया। प्रकृति भी अनुकूल बन गई। बादल साफ हो गए। धूप निकल आई।

ठीक ग्यारह बजे हम शोभा-यात्रा से चले। आगे पारमार्थिक शिक्षण संस्था, फिर समणियां, साध्वियां, युवावाहिनी। दो बाल साधुओं के बीच महाश्रमण मुदित मर्यादा-पत्र हाथ में लिए। पीछे हम दोनों साधुओं के साथ। चलना साधन से पड़ा। जनता की अपार भीड़।

ठीक पौने ग्यारह बजे कार्यक्रम। समवसरण स्टेज भव्य रूप से निर्मित। सवा घण्टे करीब पूर्व कार्यक्रम चला। ठीक सवा बारह बजे अभिषेक कार्य शुरू हुआ। विशिष्ट व्यक्तियों की उपस्थिति, अत्यन्त आकर्षक जनसमारंभ।'

'सबसे पहले एक लिखित वक्तव्य पढ़ा।' अब आह्वान किया महाप्रज्ञजी को–

'महाप्रज्ञजी! अब हमें दूरी को पाटना होगा। बंधुओं! ये मेरे शिष्य हैं, युवाचार्य हैं, अब आचार्य हैं। एक शब्द में कहूं तो ये मेरे सब कुछ हैं। मैंने इनका लालन-पालन किया है, पढ़ाया-लिखाया है और कुछ बनाने का प्रयत्न किया है। विवेकानन्द को रामकृष्ण मिले, सचमुच विवेकानन्द धन्य हो गए, पर रामकृष्ण को विवेकानन्द जैसा शिष्य मिला, यह भी कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी। ठीक इसी प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ जैसे शिष्य मुझे मिले, यह मेरे लिए सात्त्विक गौरव का विषय है।'

"विवेकानन्द को रामकृष्ण मिले, सचमुच विवेकानन्द धन्य हो गए, पर रामकृष्ण को विवेकानन्द जैसा शिष्य मिला, यह भी कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी। ठीक इसी प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ जैसे शिष्य मुझे मिले, यह मेरे लिए सात्त्विक गौरव का विषय है।"

मेरे आह्वान के अनंतर पांच साधुओं ने वर्धापन कर हमारे सामने उपस्थित किया। मैंने नियुक्ति पत्र पढ़ा और महाप्रज्ञ को समर्पित किया।

नियुक्ति-पत्र

अर्हम्

श्री जिनेन्द्राय नमः

श्री भी. भा. रा. ज. म. मा. डा. का. गुरुभ्यो नमः।

तेरापंथ धर्मसंघ के अष्टम आचार्यश्री कालूगणी ने मुझे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया।

मैंने ५८ वर्षों तक धर्मसंघ की सेवा की। वि.सं. २०५० (सन् १९९४) सुजानगढ़ मर्यादा-महोत्सव के मध्य अन्तःप्रेरणा से अपने आचार्य पद का विसर्जन कर युवाचार्य महाप्रज्ञ को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

वि.सं. २०५१ (सन् १९९५) दिल्ली मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर आज माघ शुक्ला षष्ठी रविवार के दिन मैं महाप्रज्ञ को विधिवत् आचार्य पद पर अभिषिक्त कर रहा हूं। धर्मसंघ की परम्परा में यह एक नया प्रयोग है। आचार्य महाप्रज्ञ अपने प्रज्ञाबल से धर्म शासन की गौरव-वृद्धि करेंगे और मानव जाति का सही पथदर्शन करेंगे। हमारा विनीत एवं अनुशासित धर्मसंघ आज्ञा-मर्यादा का अखण्ड पालन करता हुआ उत्तरोत्तर विकास करेगा। आचार्य महाप्रज्ञ का शासनकाल अधिक यशस्वी और कार्यकारी बने, यह मेरी मंगल भावना है।

वि. सं. २०५१ माघ शुक्ला षष्ठी, रविवार **गणाधिपति तुलसी**

(वीर संवत् २५२०)

(५ फरवरी, १९९५)

अध्यात्म साधना केन्द्र, महरौली

नई दिल्ली (भारत की राजधानी)

आचार्य महाप्रज्ञ को नियुक्तिपत्र सौंपने के बाद मैं उनके ललाट/मस्तक पर तिलक करना चाहता था। तिलक करने के लिए रोली या केसर कोई द्रव पदार्थ मेरे पास नहीं था। चूंकि मुझे पदाभिषेक का प्रतीक आध्यात्मिक तिलक करना था, लोक परम्परा से हटकर करना था। उसके बारे में सूचना पाकर लोग उद्ग्रीव हो गए। उस आध्यात्मिक अभिषेक तिलक के तीन आयाम थे–

१. मैंने अपना अंगुष्ठ आचार्य महाप्रज्ञ के 'दर्शन केन्द्र' (दोनों भृकुटियों के मध्य) पर टिकाया और **'आइच्चेसु अहियं पयासयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'**–इस मंत्र का तीन बार उच्चारण किया।

२. मैंने अपना अंगुष्ठ आचार्य महाप्रज्ञ के 'ज्योति केन्द्र' पर रखा और **'चंदेसु निम्मलयरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'**–इस मंत्र को तीन बार दोहराया।

३. मैंने अपना अंगुष्ठ आचार्य महाप्रज्ञ के 'शान्ति केन्द्र' पर टिकाया और **'सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'**–इस मंत्र को तीन बार समुच्चारित किया।

आध्यात्मिक अभिषेक के साथ ही शक्ति-संप्रेषण का विशेष प्रयोग जुड़ा हुआ था। मैंने अपना हाथ आचार्य महाप्रज्ञ के मस्तक पर रखा और **'आरोग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु'**–इस मंत्र का तीन बार उच्चारण किया। तदनन्तर शरणसूत्र–**अरहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि**–का मांगलिक उच्चारण कर आध्यात्मिक अभिषेक तिलक अनुष्ठान सम्पन्न किया।

जनता ने भावविभोर होकर आध्यात्मिक तिलक तथा शक्ति संप्रेषण की प्रक्रिया का निरीक्षण किया। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था मानो इन दोनों उपक्रमों के माध्यम से मैं नौ आचार्यों की साधना, आराधना, तेजस्विता, बल, पराक्रम और सौभाग्य को आचार्य महाप्रज्ञ में संक्रान्त कर रहा हूं।

एक अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। दूसरे अनुष्ठान को सम्पादित करने के लिए मैं पट्ट से नीचे उतरा। महाप्रज्ञजी मेरे सामने खड़े हो गए। मैंने साध्वियों द्वारा सिली गई नई पछेवड़ी स्वयं ओढ़ी और तत्काल उसे उतार कर आचार्य महाप्रज्ञ को ओढ़ा दी। जनता ने एक बार पुनः 'ॐ अर्हम्' की ध्वनि कर अपने मानसिक आह्लाद को प्रकट किया। आचार्य महाप्रज्ञ पूरी विनम्रता के साथ प्रणत हो गए। वन्दना कर वे खड़े हुए तो मैंने उनको अपनी भुजाओं के घेरे में लेकर सीने से लगा लिया। साध्वियों ने संघगान (जय-जय धर्मसंघ अविचल हो) का संगान कर मध्य मंगल कर दिया। इसके बाद मैं पुनः पट्ट पर आसीन हो गया और अपने समीप ही बिछे हुए पट्ट की ओर इशारा करते हुए कहा–'आचार्य महाप्रज्ञजी! आओ, मेरे निकट बिछे पट्ट पर बैठो।' मेरा निर्देश पाकर महाप्रज्ञजी पट्टासीन हुए तो मर्यादा समवसरण एक बार फिर जयनिनादों से गूंज उठा।

नियुक्ति पत्र सौंपने, आध्यात्मिक तिलक करने और पछेवड़ी ओढ़ाने के बाद संकल्प-ग्रहण कराने का प्रसंग उपस्थित हुआ। महाप्रज्ञजी पट्ट से उतर कर मेरे सामने खड़े हो गए। मैंने एक-एक कर तीन संकल्पों का उच्चारण किया। महाप्रज्ञजी ने उनका पुनरुच्चारण कर स्वीकृत दायित्व के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त की। संकल्पों की शब्दावली इस प्रकार है–

१. मैं तेरापंथ की परम्परा, मर्यादा, आचार, विचार और सामाचारी की एकता को अक्षुण्ण रखूंगा।

२. मैं तेरापंथ धर्मसंघ के दायित्व का पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह करूंगा।

३. मैं तेरापंथ के व्यापक दृष्टिकोण एवं कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करूंगा।

आचार्य पदाभिषेक की प्रक्रिया सम्पन्न होने के बाद आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में कहा– 'गुरुदेव! आपने बहुत कुछ किया है। जिस संघ का दायित्व मुझे सौंपा है, वह बहुत विशाल है। संख्या की दृष्टि से और कार्य की दृष्टि से, दोनों ही दृष्टियों से विशाल है। गुरुदेव जिस समय आचार्य बने थे, उस समय एकमात्र संस्था थी–जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता। आज अनेक केन्द्रीय संस्थाएं हैं तथा उनकी शाखाएं भी सारे देश में फैली हुई हैं। गुरुदेव ने अपने श्रम से इतना विस्तार दिया, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक बात मैं और कहना चाहता हूं। पूज्य गुरुदेव मुझसे भी ज्यादा सक्षम किसी को ढूंढते तो कितना अच्छा होता। शरीर से दुबले-पतले मेरे कमजोर कन्धों पर इतना भार रखते समय गुरुदेव ने कुछ सोचा तो होगा ही। नहीं सोचा होगा, यह मैं कैसे कहूं। जरूर सोचा होगा। कितना अच्छा होता कि किसी मजबूत कन्धेवाले को गुरुदेव चुनते। पर गुरु, गुरु होते हैं। जो कर दिया, वह मान्य है और शिरोधार्य है। साठ वर्ष से आपकी हर आज्ञा, हर निर्देश स्वीकार करता आ रहा हूं तो आज क्यों नहीं स्वीकार करूंगा?'

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए महाप्रज्ञजी ने कहा–'मैं आज समस्त धर्मसंघ को आश्वस्त एवं विश्वस्त करना चाहता हूं कि मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। चिन्ता करना सीखा ही नहीं। इसलिए कि मुझे भगवान महावीर का अनेकान्त दर्शन मिला है। मुझे आचार्य भिक्षु का अनुशासन-सूत्र मिला है। मुझे पूज्य कालूगणी की अनन्त करुणा मिली है। उनके साये में मैं जीया हूं और मेरे भाग्यविधाता गुरुवर तुलसी का तो मुझे सब कुछ मिला है। मुझे किस बात की चिन्ता? इतने बड़े दायित्व और इतने बड़े धर्मसंघ का संचालन निष्ठा के साथ गुरुदेव ने जैसा संकल्प कराया, मैं पूरी निष्ठा के साथ उसका निर्वाह करूंगा।

"जनता ने भावविभोर होकर आध्यात्मिक तिलक तथा शक्ति संप्रेषण की प्रक्रिया का निरीक्षण किया। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था मानो इन दोनों उपक्रमों के माध्यम से मैं नौ आचार्यों की साधना, आराधना, तेजस्विता, बल, पराक्रम और सौभाग्य को आचार्य महाप्रज्ञ में संक्रान्त कर रहा हूं।"

चिन्ता इसलिए भी नहीं है कि मुझे एक अनुशासित और विनीत धर्मसंघ मिला है, जो मात्र इशारे या इंगित को मानकर चलता है, कुछ कहने की जरूरत नहीं होती। गुरुदेव ने महाश्रमण मुदितकुमार को पहले ही नियुक्त कर रखा है, जो मेरे अन्तरंग कार्य के सहयोगी हैं। महाश्रमणी कनकप्रभा, जो हमारी साध्वियों और समणियों का नेतृत्व करनेवाली हैं, मेरा पूरी सहयोगी हैं। जब इतने सक्षम सहयोगी हैं तो फिर मैं चिन्ता क्यों करूं? मुझे अपने विनीत साधु-साध्वियों का पूरा सहयोग प्राप्त है। मेरा श्रावक समाज पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ दायित्व का निर्वाह कर रहा है। मैं चिन्ता किस बात की करूं।'

कृतज्ञता-ज्ञापन के स्वरों में महाप्रज्ञजी ने कहा–'इस अवसर पर मैं अपनी स्वर्गीया माता साध्वी बालूजी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं, जिनसे मुझे संस्कार मिले। रात्रि के पिछले प्रहर में वे गाती थीं–'सन्त भीखणजी रो समरण कीजै।' जाने-अनजाने वे संस्कार मेरे अन्तस में जमते गए। साध्वी मालूजी, जिन्होंने मेरा पालन-पोषण किया, उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। मैं नहीं भूल सकता छबीलजी स्वामी को, जिन्होंने सर्वप्रथम कहा था–'तुम गंगाशहर जाओ तो वहां पूज्य कालूगणी हैं, उनके दर्शन करना। वहीं मुनि तुलसीजी मिलेंगे। उनके भी दर्शन जरूर करना।' कैसे भूल जाऊं मुनि चम्पालालजी स्वामी को, जिन्हें चतुर्विध धर्मसंघ सेवाभावी भाईजी महाराज के नाम से याद करता है। उनके साथ बहुत वर्ष रहा। मेरे जीवन-निर्माण में उनका पूरा हाथ रहा। मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामी जैसा सन्त मैंने अपने जीवन में दूसरा नहीं देखा। मुझसे वे जैसी बातें करते, उससे ऐसा लगता, जैसे मेरे भीतर वे कोई बीज बो रहे हैं। और भी अनेक साधु-साध्वियों का संरक्षण और वत्सलता मिली। उन सबके प्रति मैं कृतज्ञभाव से अभिवन्दना करता हूं। मेरी कामना है कि हमारे धर्मसंघ में एक-दूसरे को बनाने या एक-दूसरे का निर्माण करने की यह प्रक्रिया सतत चालू रहे।'....

अपने अभिभाषण का उपसंहार करते हुए महाप्रज्ञजी बोले–'मेरे जीवन का लक्ष्य सदा रहा अध्यात्म का विकास। मेरी धारणा है कि जिस समाज में या जिस राष्ट्र में अध्यात्म का विकास नहीं होता, वहां फिर अपराध ही विकसित होते हैं। आप ऐसा आशीर्वाद दें कि अध्यात्म के क्षेत्र में मैं अधिक-से-अधिक लगूं और संघ की शक्ति को भी उसमें लगाऊं। प्रारंभ से ही आपका पथदर्शन मुझे अयाचित रूप से मिलता रहा है। आज भी आपका वरदहस्त मेरे सिर पर है। जो दायित्व आपने मुझे सौंपा है, उसे निभाने में, उसे बढ़ाने में मेरी शक्ति, मेरी ऊर्जा और अधिक सक्रिय हो, आज के दिन यही आशीर्वाद मुझे प्रदान करें।'

अनुशासन का प्रयोग

• १३ अप्रैल १९९५। जैन विश्व भारती। पिछले मर्यादा महोत्सव पर दिल्ली में साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों को नहीं बुलाया गया था। इस कारण यहां काफी सिंघाड़े एकत्रित हो गए। उनकी पूछताछ एवं व्यवस्था का काम प्रायः सलट गया। अब विहार हो रहे हैं। महाप्रज्ञ अपना दायित्व निभा रहे हैं।

• १ जनवरी १९९६। तेरापंथ धर्मसंघ का प्राणतत्त्व है अनुशासन। अनुशासन के बिना कोई भी संगठन विशुद्ध नहीं रह सकता, पवित्र नहीं रह सकता। पूर्ववर्ती सभी आचार्यों ने अनुशासन को महत्त्व दिया है और उसके द्वारा संघ की पवित्रता को बनाए रखा है। संघ में दीक्षित होनेवाला साधु एक क्षण में ही वीतराग नहीं हो जाता। उससे प्रमाद हो सकता है। पर उसका परिष्कार और यथोचित प्रतिकार न हो तो प्रमाद अपने पांव जमा लेता है। तेरापंथ के आचार्य परिष्कार के प्रति सजग रहे हैं। संघ के किसी सदस्य की भूल हो सकती है। पर इस सतर्कता के कारण वह चल नहीं सकती। उसके लिए समय-समय पर आचार्य

अनुशासनात्मक कार्यवाही करते रहे हैं। उसके अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ताजा उदाहरण है पिछले दिनों मुनि मृत्युंजयकुमार का संघ से सम्बन्ध विच्छेद।

मुनि मृत्युंजय बाईस वर्षों से संघ में दीक्षित था। उसको अध्ययन, कला-साधना, बड़े सन्तों के साथ यात्रा आदि विकास के कई अवसर दिए गए। फिर भी उसने आचार और मर्यादा के क्षेत्र में अनेक बार लापरवाही बरती। बार-बार सतर्क करने पर भी वह नहीं संभला। आखिर अन्तिम चेतावनी के रूप में एक लिखित व्यवस्था दी गई। उसका भी उसने अतिक्रमण किया। उस समय अनेक अग्रणी साधुओं की परिषद आमंत्रित कर उनके सामने मुनि मृत्युंजयकुमार से पूछा गया–'तुमने लिखित व्यवस्था का अतिक्रमण किया या नहीं?' उसने स्वीकार किया कि अतिक्रमण हुआ है। तब उससे कहा गया कि तुमने यह अतिक्रमण कर संघ की विश्वसनीयता को खो दिया है। इसलिए तुम्हें अब संघ में रखना संभव नहीं है। उपस्थित सभी साधुओं ने इस कथन का अनुमोदन किया।

संघ के किसी सदस्य का सम्बन्ध-विच्छेद अन्तिम कोटि का कदम होता है। इसलिए झटपट किसी को संघ से पृथक नहीं किया जाता। किन्तु स्थिति जब सीमा से बाहर हो जाती है और असह्य हो जाती है, तब वह (सम्बन्ध-विच्छेद का कदम) आवश्यक हो जाता है। इस आधार पर मेरे सान्निध्य में अग्रणी सन्तों की परिषद के सामने आचार्य महाप्रज्ञ ने मुनि मृत्युंजयकुमार का संघ से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। दिनांक २२ दिसम्बर १९९५ को जैन विश्व भारती के भिक्षु विहार में यह अनुशासनात्मक कार्यवाही सम्पन्न हुई। मृत्युंजयकुमार ने अनुरोध किया कि उसे एक बार फिर संघ में रहने का अवसर प्रदान करें। किन्तु विश्वसनीयता के अभाव में उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया जा सका। निष्ठा के अभाव में कोई कब तक संघ में टिक सकेगा? अनुशासन का जो प्रयोग हुआ, अच्छा रहा। सबको प्रेरणा मिली। संघ समुद्र है। उम्मग्गजला-निमग्गजला नदियों से उपमित है।

प्रशासन-कौशल से मिटी भ्रांत धारणा

• ५ जनवरी १९९६, शुक्रवार। अग्रगामी और अनुगामी साधु-साध्वियों की गोष्ठियां चल रही हैं। प्रशिक्षण चल रहा है। महाप्रज्ञजी अपना काम कर रहे हैं। हमारा सान्निध्य रहता है। प्रवक्ता भी बनना ही पड़ता है। संघ की अपार श्रद्धा जो संचित है, उसको सहजतया उपेक्षित कैसे किया जाए। चार सौ के करीब साधु-साध्वियां समुदित हैं।

संघ में साधु-साध्वियों के स्वास्थ्य की समस्या है। बीमारियां, दर्द, दुर्बलता, बुढ़ापा आदि सब समस्याएं हैं। इन सब समस्याओं से महाप्रज्ञजी को जूझना होगा। जूझ भी रहे हैं। चिन्तन स्वस्थ है। मार्ग निकाल रहे हैं। हार नहीं मान रहे हैं। महाप्रज्ञजी में विलक्षण शक्ति है। मेरा सहयोग तो ले ही रहे हैं। यह समय बहुत व्यस्तता का है। सफलता का भी है। गुरुदेवः शरणम्।

• २६ जनवरी १९९६। महाप्रज्ञजी के पदाभिषेक के बाद यह पहला महोत्सव है। वि.सं. २०५२ का मर्यादा महोत्सव अनेक दृष्टियों से विलक्षण रहा। लगभग पांच सौ साधु-साध्वियों और समण-समणियों ने प्रशिक्षण में भाग लिया। सबकी अनिवार्य उपस्थिति रहती। प्रशिक्षण का दृश्य अभूतपूर्व होता। उसे देखते ही सब विस्मयविमुग्ध हो जाते। प्रतिदिन प्रातःकाल प्रवचन और मध्याह्न में गोष्ठी होती। रात्रि में भी गोष्ठियां चलतीं। पूरा वातावरण प्रशिक्षणमय बन गया। साधु-साध्वियां भी पूरे मनोयोग से प्रशिक्षण के

"संघ में साधु-साध्वियों के स्वास्थ्य की समस्या है। बीमारियां, दर्द, दुर्बलता, बुढ़ापा आदि सब समस्याएं हैं। इन सब समस्याओं से महाप्रज्ञजी को जूझना होगा। जूझ भी रहे हैं। चिन्तन स्वस्थ है। मार्ग निकाल रहे हैं। हार नहीं मान रहे हैं। महाप्रज्ञजी में विलक्षण शक्ति है। मेरा सहयोग तो ले ही रहे हैं। यह समय बहुत व्यस्तता का है। सफलता का भी है। गुरुदेवः शरणम्।"

साथ जुड़ी रहीं। उनकी तन्मयता देखकर लगता था कि वे केवल कानों से ही नहीं, आंखों से व रोम-रोम से अमृतपान कर रहे हैं। एक तरह से मिनी योगक्षेम वर्ष जैसा वातावरण बन गया। यह सब महाप्रज्ञजी की सूझबूझपूर्ण कार्यशैली का प्रतीक है। महाप्रज्ञजी को महाश्रमणीजी का महत्त्वपूर्ण योगदान मिला। दोनों की कुशल कार्य पद्धति को देखकर मुझे अत्यधिक संतोष का अनुभव होता है। अनेक लोगों की यह धारणा थी कि महाप्रज्ञजी प्रशासन कैसे कर पाएंगे? किन्तु महाप्रज्ञजी ने अपने प्रशासन-कौशल से उक्त भ्रान्त धारणा को मिटा दिया है।'

● २९ जनवरी १९९६। तेरापंथ का कुंभ मर्यादा महोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया। इस बार सभी सिंघाड़ों और क्षेत्रों की सारी व्यवस्था महाप्रज्ञजी ने की। महाश्रमण और महाश्रमणी का पूरा-पूरा योग और उपयोग हुआ। मैं प्रायः तटस्थ रहा, देखता रहा, जानता रहा और सुनता रहा। अच्छा रहा। लगभग सभी कार्य सानन्द सम्पन्न हो गए हैं। साधु-साध्वियों के विहार भी हो गए हैं, हो रहे हैं। किसी प्रकार की विघ्न-बाधा सामने आई ही नहीं। भिक्षुशासन जयवंता है। धर्मसंघो विजयतेतराम्।

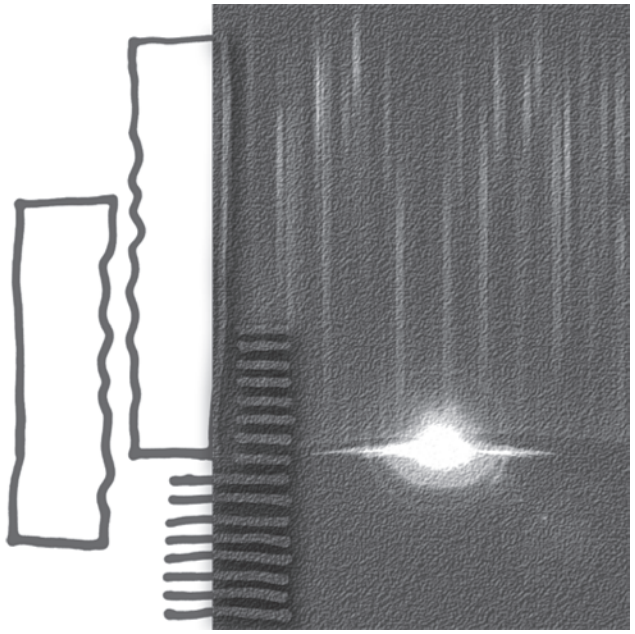

अंतरंग संघर्ष के क्षण

प्राचीनता और नवीनता

गुरुदेव की जन्मकुंडली केवल सौभाग्य की ही कुंडली नहीं थी, संघर्ष की कुंडली भी थी। कुछ संघर्ष बाहर से आए और कुछ संघर्ष भीतर से। भीतर के संभावित संघर्ष के अवसर पर गुरुदेव से मुझे एक प्रेरणा सूत्र मिला, वह मेरे लिए प्रकाश रश्मि बन गया।

• वि. संवत् १९९५। मैं अनुभव कर रहा था कि संघ में दो वर्ग स्थापित हो रहे हैं। एक वर्ग में उपेक्षा का दंश भोगने वाले वे साधु थे, जिनके मन में प्रतिक्रिया का भाव उभर रहा था। संघ के प्रति सर्वात्मना समर्पित होने पर भी उनके मन में सन्देह की फांस अटक गई थी। उनका दृष्टिकोण बदल गया था, इसलिए उनको बहुत कुछ बदला हुआ प्रतीत होने लगा। मेरे द्वारा की जाने वाली हर व्यवस्था में उन्हें पक्षपात दिखाई देने लगा। इस वर्ग में प्रमुख भूमिका मुनि रंगलालजी और नथमलजी (बागोर) की थी। उनके साथ कई साधु वैचारिक दृष्टि से एक धरातल पर आ गए थे।

दूसरे वर्ग में पुराने और नए दोनों प्रकार के साधु थे। उनके सामने किसी मानसिक द्वन्द्व की स्थिति नहीं थी। श्रद्धाप्रधान होने के कारण वे मेरी प्रत्येक गतिविधि के समर्थन में संलग्न थे। उन साधुओं में मुनि

“
गुरुदेव की जन्मकुंडली केवल सौभाग्य की ही कुंडली नहीं थी, संघर्ष की कुंडली भी थी। कुछ संघर्ष बाहर से आए और कुछ संघर्ष भीतर से। भीतर के संभावित संघर्ष के अवसर पर गुरुदेव से मुझे एक प्रेरणा सूत्र मिला, वह मेरे लिए प्रकाश रश्मि बन गया।
”

चम्पालालजी (मीठिया), मुनि चौथमलजी आदि अनेक नाम उल्लेखनीय हैं। उस प्रसंग में मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) को विशेष रूप से तैयार होने का मौका मिला। उस समय वह स्थिति सामने नहीं आती तो संभवतः उनको स्वामीजी के साहित्य का गंभीर अध्ययन करने की प्रेरणा नहीं मिलती।

● राजलदेसर मर्यादा महोत्सव (वि. संवत् २००५)। नाहरों की हवेली के नीचे वाले हॉल में एक रात हमने कुछ चुने हुए साधुओं की गोष्ठी बुलाई। गोष्ठी में मंत्री मुनि मगनलालजी, मुनि चम्पालालजी (सेवाभावीजी), मुनि रंगलालजी, मुनि नथमलजी (बागोर), मुनि धनराजजी, मुनि चन्दनमलजी, मुनि चौथमलजी, मुनि भोजराजजी, मुनि गणेशमलजी, मुनि जंवरीमलजी, मुनि नथमलजी (टमकोर), मुनि दुलीचन्दजी (दिनकर) आदि साधु उपस्थित थे। चिन्तनीय मुद्दे गोष्ठी में प्रस्तुत किए गए। विचार-भेद के बावजूद पूरी शान्ति के साथ गोष्ठी चलती रही। सब साधुओं को अपने विचार और अपनी युक्तियां रखने की छूट थी। कुछ साधुओं ने धारणा-प्रणाली का प्रश्न उठाया।

उस समय तक नवीनता, प्राचीनता आदि के संदर्भ में उन्मुक्त सोच रखने वाले और मेरे चिन्तन के साथ जुड़ने वाले साधु अधिक नहीं थे। मुनि नथमलजी (टमकोर) तैयार हो रहे थे। उनकी पढ़ने में रुचि थी। वे आधुनिक साहित्य पढ़ने लगे थे और हिन्दी में लिखने भी लगे थे। मैंने उनको बुलाकर कहा–'संघर्ष का बीज कभी भी अंकुरित होकर वातावरण को प्रभावित कर सकता है। अब घबराने से काम नहीं बनेगा। गंभीरता से काम करना होगा।' मुनि नथमलजी अपनी प्रकृति के अनुसार बोले–'गुरुदेव! आपकी जैसी दृष्टि होगी, मैं काम करने के लिए तैयार हूं।'

आंतरिक संघर्ष के अंकुर

आंतरिक संघर्षों के उन क्षणों में आचार्यवर ने मुझे सब दृष्टियों से जागरूक रहने का निर्देश दिया। भिक्षु स्वामी के सिद्धांतों को गहराई से पढ़ने की प्रेरणा दी। आगम और भिक्षु साहित्य के अनुशीलन से जहां विकास के नए क्षितिज खुले वहां आंतरिक संघर्ष के बीज निर्वीर्य बनते चले गए। प्रस्तुत संदर्भ में गुरुदेव का आलेख है–

● वि.सं. २००७। इन दिनों धर्मसंघ में कुछ प्राचीन बातों में परिवर्तन की लहर चल रही थी। उस संदर्भ में मुनि नथमलजी (बागोर) ने मारवाड़ से आने वाले साधुओं के साथ लिफाफे में बंद एक कापी भेजी। वह मेरे पास पहुंची। मैंने कापी देखी, पढ़ी। एक बार झटका सा लगा। उस कापी में कुछ बातें ऐसी थी, जो स्पष्ट रूप से आरोपात्मक थी, उनके आधार पर उस कापी का नाम 'आरोपी कापी' हो गया।

भिवानी मर्यादा महोत्सव (वि.सं. २००७) के बाद मुझे पंजाब की यात्रा पर जाना था। इसे मेरा अति साहस ही मानना होगा कि धर्मसंघ में विद्रोह जैसी स्थिति का निर्माण होने पर भी मैंने पंजाब की यात्रा की और उसके बाद दिल्ली चातुर्मास्य किया। यदि साहस नहीं होता तो उसी समय आगे के सब कार्यक्रम स्थगित कर मंत्री मुनि के पास पहुंचता। किन्तु यात्रा में कोई व्यवधान न आए, यह सोचकर एक बार उस प्रकरण पर विराम लगा दिया। ऊपर से सर्वथा निश्चिन्त दिखाई देने पर भी मैं भीतर से सचिन्त हो उठा। मैंने मुनि चौथमलजी, मुनि चम्पालालजी आदि कुछ साधुओं को उस कॉपी के बारे में जानकारी दी। मुनि नथमलजी (टमकोर) को वह कॉपी पढ़ने के लिए दी। कॉपी पढ़कर वे बोले–'गुरुदेव! यह तो होने का ही है।' मैंने कहा–'होने का है, इतना कहकर हम इस प्रसंग से निरपेक्ष नहीं हो सकते। हमें सजग रहना होगा।

अब तक अनुमान के आधार पर प्रतीत होता था कि कुछ हो रहा है। अब बात सामने आ गई है। हम जो कुछ कर रहे हैं, चिन्तनपूर्वक कर रहे हैं। हमारी नीति साफ है। फिर भी नया तो नया ही है। नई बातों को लेकर जो प्रश्न आते हैं, उन्हें समाहित करना है। स्वामीजी के सिद्धांतों के साथ उनका तालमेल बिठाना है।' मुनि नथमलजी बोले–'आपकी जैसी दृष्टि होगी और जो निर्देश मिलेगा, वह सब हो जाएगा।'

गुरुदेव ने साधुओं की कार्य प्रणाली में कुछ परिवर्तन किए। कुछ पुरानी विचारधारा के साधु उनसे सहमत नहीं हुए। वह असहमति एक अंतरंग संघर्ष के रूप में बदल गई। गुरुदेव ने मुक्त चर्चाओं के बाद इस विषय पर पटाक्षेप कर दिया। उस प्रसंग में गुरुदेव का आलेख है–

● माघ शुक्ला अष्टमी (वि.संवत् २००८) सरदारशहर। पश्चिम निशा में साढ़े तीन बजे से साधुओं की विशेष संगोष्ठी का प्रारम्भ हुआ। उसमें केवल अग्रगण्य साधुओं को सम्मिलित किया गया। हॉल के मध्य में बिछे पट्ट पर मैं आसीन था। मेरे निकट मंत्री मुनि का आसन बिछा था। उनके पास सेवाभावी मुनि चम्पालालजी बैठे। एक ओर मुनि चौथमलजी, मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमल्लजी, मुनि गणेशमलजी आदि कुछ साधु थे। दूसरी ओर मुनि रंगलालजी, मुनि घासीरामजी, मुनि नथमलजी (बागोर), मुनि धनराजजी, मुनि डूंगरमलजी आदि साधु थे। जो साधु तटस्थ थे, वे दोनों पक्षों के बीच में पीछे की ओर शान्त किन्तु उत्सुक होकर बैठ गए। आलोच्य बोलों पर इन्हीं दोनों पक्षों के साधुओं को चर्चा करनी थी।

नौ दिनों की लम्बी चर्चा के बाद साधुओं ने सामूहिक सहमति से कहा–'अब अलग से चर्चा करने जैसा कोई गंभीर बोल नहीं रहा है। चर्चित बोलों के बारे में आपका निर्णय जानने की उत्सुकता है। आप कृपा करें, निर्णय सुनाएं।'

● फाल्गुन कृष्णा द्वितीया। मैंने नौ दिनों तक चर्चित बोलो के बारे में निर्णायक उत्तर दिए। अनेक साधुओं ने कहा–गुरुदेव! आपने बड़ी कृपा की। आप द्वारा प्रदत्त निर्णयों से हमारा मन समाहित हुआ है। आपने जो कुछ फरमाया है, वह हमें मान्य है।

● 'मेरे विचारों को सही संदर्भों में न समझने के कारण चार वर्षों में जो उलझनें खड़ी हो गई थीं, उन्हें सुलझाने में सबसे बड़ा सहयोगी था मेरा अपना आत्मबल। पूज्य गुरुदेव की सतत स्मृति से मेरा आत्मबल सदा वर्धमान रहा। मंत्री मुनि का सहयोग मुझे प्रारंभ से ही मिल रहा था। उनके अतिरिक्त मुनि चौथमलजी, मुनि गणेशमलजी, मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमल्लजी का सहयोग भी अविस्मरणीय है। मुनि चौथमलजी अपनी श्रद्धा और समर्पण के बल से मेरे सहयोगी बने। मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमलजी का यौक्तिक बल बहुत काम आया।

कुछ पुराने साधुओं की यह धारणा थी कि आगमों और स्वामीजी एवं जयाचार्य के ग्रंथों का ज्ञान उनकी पीढ़ी के साधुओं को ही है। उत्तरवर्ती साधुओं में यह ज्ञानधारा क्षीण हो गई है। किन्तु चर्चा के लम्बे प्रसंग ने यह प्रमाणित कर दिया कि उक्त धारणा उनके मन का भ्रम था। उनके उत्तरवर्ती साधुओं ने शास्त्रों और परम्परागत ग्रंथों को जिस सूक्ष्मता के साथ पढ़ा है, उसकी उन्हें कल्पना ही नहीं थी। मुनि नथमलजी का कर्तृत्व खुलकर सामने आ गया। विवादास्पद प्रश्नों में धारणा-प्रणाली का मुद्दा काफी जटिल बन चुका था। उसके बारे में सकारात्मक तथ्यों का समुचित आकलन करने के लिए उन्होंने विशेष अध्ययन कर एक विस्तृत 'शोध-निबन्ध' लिखा। उसका सामूहिक रूप से वाचन कराया गया। उस निबंध में मुनि

" मुनि नथमलजी ने सकारात्मक तथ्यों का समुचित आकलन करने के लिए विशेष अध्ययन कर एक विस्तृत 'शोध-निबन्ध' लिखा। उस निबंध में मुनि नथमलजी की बुद्धि की प्रखरता और चिंतन की गहराई को उजागर होने का अवसर मिल गया। प्रतिपक्ष से जुड़े साधुओं की समझ में भी आ गया कि उनके चिंतन की गहराई असाधारण है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उस प्रकरण में उनका सहयोग सर्वोपरि रहा। "

नथमलजी की बुद्धि की प्रखरता और चिंतन की गहराई को उजागर होने का अवसर मिल गया। प्रतिपक्ष से जुड़े साधुओं की समझ में भी आ गया कि उनके चिंतन की गहराई असाधारण है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उस प्रकरण में उनका सहयोग सर्वोपरि रहा।

जीवन का कठिन दौर : सहयोग

सन् १९५६ धर्मसंघ में अंतरंग वैचारिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई। मुझे और मुनि बुधमलजी आदि अनेक साधुओं को काम करने का अवसर मिला।

● २९ जनवरी १९५६। 'उन दिनों मुनि नथमलजी (टमकोर) और मुनि बुद्धमल्लजी मेरी चिंतन यात्रा में सहयोगी थे। मैंने भावी रूपरेखा की दृष्टि से उनके साथ बात की।'

३१ जनवरी १९५६। मैंने मुनि नथमलजी और मुनि बुद्धमलजी को बुलाया। अपना संकल्प उन्हें बताते हुए मैंने कहा–'मैं अभी प्रवचन करने जा रहा हूं। तुम दोनों बैठो और एक लिखत तैयार करो। उसमें अमुक-अमुक धाराओं का समावेश करना है, निर्देश प्राप्त होते ही दोनों मुनि बैठ गए। उन्होंने निर्धारित नीति के आधार पर लिखत तैयार कर लिया। मैं प्रवचन करके आया। मैंने लिखत देखा। अपेक्षित संशोधन के बाद उसे अन्तिम रूप दे दिया गया। वह लिखत[1] एक ऐसा दस्तावेज है, जिसने सारी स्थिति को स्पष्ट कर दिया।

१ फरवरी १९५६। निर्णयविंशिका के बोलों में कोई नई बात नहीं थी, फिर भी उन्हें लेकर दिनभर चर्चा का माहौल रहा। मुनि रंगलालजी, मुनि नथमलजी (बागोर) आदि साधु उनके बारे में असंदिग्ध नहीं हो पाए। मुनि नथमलजी (टमकोर) के प्रति उनके मन में पूरी सद्भावना थी। ये भी उनके प्रति बहुत सद्भाव रखते थे। क्योंकि वे लोग तत्त्व के अच्छे जानकार थे और छिछली बातें नहीं करते थे। प्रस्तुत प्रकरण में उन्होंने मुनि नथमलजी के साथ विस्तार से बात की। नथमलजी ने भी उनको यौक्तिक ढंग से समझाने का प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिली।

२ फरवरी १९५६ को लिखत पर हस्ताक्षर न करने वाले नौ साधु संघ से अलग हो गए। वह समय मेरे जीवन का एक कठिन दौर था।

हम भीलवाड़ा मर्यादा महोत्सव संपन्न कर (१३ अप्रैल १९५६) लाडनूं पहुंचे। उसी दिन मध्याह्न में मैंने मुनि धनराजजी और मुनि नथमलजी (टमकोर) को बुलाया। मैं बोला–'मुनि धनराजजी! आपने मुझे अनेक बार संघ से अलग हुए साधुओं को आह्वान करने के लिए कहा। आज मैंने प्रवचन में सार्वजनिक रूप में उन्हें आह्वान कर दिया। अब आप इस संदर्भ में उनसे मिलें, बात करें और उन्हें समझाएं। वे मेरे साथ बात करना चाहें तो मैं तैयार हूं। मैं अपने विचारों की खिड़कियों को खुला रखता हूं। फिर भी यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जो निर्णय किए गए हैं, अच्छी तरह सोच-विचार के बाद किए गए हैं। पुष्ट प्रमाणों के आधार पर किए गए हैं। मुझे आज भी नहीं लगता कि मैंने निर्णय करने में कोई शीघ्रता या भूल की है। चिन्तन का जहां तक प्रश्न है, उसके लिए रास्ता सदा खुला है। उनके मन में कोई गलतफहमी हो, वैयक्तिक असुविधा की बात हो अथवा मानसिक असामंजस्य मिटाने का प्रसंग हो तो मैं पूरी तरह तैयार हूं। निर्णयों में परिवर्तन की बात तभी संभव है, जब कोई बात मेरी समझ में आ जाए।' मेरी बात सुनकर

१. मेरा जीवन : मेरा दर्शन भाग ३ पृष्ठ ३०७-३०८

मुनि धनराजजी ने कहा–'आपकी दृष्टि है तो मैं उनसे मिलकर बातचीत करूंगा, पर अकेला नहीं। आप मुनि नथमलजी को मेरे साथ भेज दें।' मैं बोला–'मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप चाहें तो अकेले जाएं और चाहें तो दोनों जाएं।'

मुनि धनराजजी और मुनि नथमलजी–दोनों जयचंदलालजी बरमेचा की हवेली में बहिर्भूत साधुओं से मिले। सौहार्दपूर्ण वातावरण में मिले। दोनों मुनियों ने मुनि नथमलजी (बागोर) के साथ कई बार वार्तालाप कर उनकी मानसिकता को बदलने में सफलता प्राप्त कर ली।

वि.सं. २०१३। आषाढ़ कृष्णा अष्टमी। 'सामंजस्य, समझौता, समन्वय आदि शब्दों की सार्थकता वहीं है, जहां आग्रह छूटता है। मेरे मन में किसी प्रकार की धारणा बद्धमूल नहीं थी। इसलिए मैंने मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी आदि को भावी रूपरेखा तैयार करने का निर्देश दे दिया।

आषाढ़ कृष्णा एकादशी (वि. संवत् २०१३) को पूरी गरिमा और गंभीरता के साथ एक विवादास्पद अध्याय की सुखद परिसमाप्ति हो गई।

प्रस्थान क्रांति की दिशा में

गुरुदेव उन सामाजिक प्रथाओं को बदलने की बात सोचते रहते थे, जो वर्तमान समाज के लिए अनपेक्षित हैं। गुरुदेव में चिन्तन और साहस दोनों की मात्रा प्रचुर थी। मैं साहस और चिंतन दोनों में सामंजस्य बिठाने में कभी-कभी विलम्ब कर देता। फिर भी सहचिंतन की शृंखला बराबर चलती रहती।

● 'जहां तक मुझे याद है, हमने सबसे पहले कलकत्ता (सन् १९५९) में पर्दा प्रथा के बारे में बोलना शुरू किया था। एतद्विषयक चिन्तन के बाद मैंने एक दिन मुनि नथमलजी से कहा–'अब हमें पर्दा आदि सामाजिक बुराइयों के खिलाफ बोलना और लिखना चाहिए।' मुनि नथमलजी बोले–'एक बार चर्चा का विषय तो बनेगा।' मैंने कहा–'बने तो बने, सामाजिक बुराइयों का प्रतिकार करना है तो चर्चा के भय से कब तक रुकेंगे। पर्दा, अस्पृश्यता, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज की मांग और ठहराव आदि वर्तमान की ज्वलन्त समस्याएं हैं।

"
गुरुदेव उन सामाजिक प्रथाओं को बदलने की बात सोचते रहते थे, जो वर्तमान समाज के लिए अनपेक्षित हैं। गुरुदेव में चिन्तन और साहस दोनों की मात्रा प्रचुर थी। मैं साहस और चिंतन दोनों में सामंजस्य बिठाने में कभी-कभी विलम्ब कर देता। फिर भी सहचिंतन की शृंखला बराबर चलती रहती।
"

माइक का प्रयोग

उन दिनों की बात है जब हम प्रवचन में माइक पर नहीं बोलते थे। जब बोलना शुरू किया तो इस विषय में प्रश्न और तर्क सामने आने लगे। समय-समय पर मैंने सिद्धांत के आधार पर उन्हें समाहित करने का प्रयत्न किया। वह समाधान धीरे-धीरे स्थाई समाधान बन गया।

● मार्च १९६८। महासभा के वार्षिक अधिवेशन का प्रसंग था। समाज के प्रमुख लोग जयसिंहपुर आए हुए थे। मुझे उनके बीच उस प्रश्न पर चर्चा करना उचित प्रतीत हुआ। मैंने वह विषय प्रस्तुत किया। तीन गोष्ठियों में उस पर खुलकर प्रश्नोत्तर चले। माइक सम्बन्धी हमारी नीति का खुलासा किया गया। उसका परिणाम अच्छा रहा। बात सबकी समझ में आ गई।

उन गोष्ठियों में संभागी व्यक्तियों में जबरमलजी भण्डारी, इन्द्रमल भण्डारी, मानमल बैद और जेठाभाई झवेरी के नाम उल्लेखनीय हैं। मुनि नथमलजी आदि कुछ साधु भी गोष्ठियों में उपस्थित थे। मैंने पूरी स्पष्टता के साथ कहा कि माइक गृहस्थों की अपनी सुविधा है। इसे साधुओं के साथ क्यों जोड़ा जाए? मुनि नथमलजी ने प्रबल तर्कों के साथ प्रस्तुत विषय को समझाया।

अग्नि परीक्षा

पूज्य गुरुदेव की कृति 'अग्नि-परीक्षा' को लेकर उग्र आंदोलन हुए। संघर्ष और अराजकता की स्थितियां बनी। उन विषम परिस्थितियों में सहयोगी बने व्यक्तियों का आचार्यवर ने विस्तार से उल्लेख किया है। उन्होंने मेरे संदर्भ में लिखा–

• 'सेवाभावी मुनि चम्पालालजी, मुनि नथमलजी आदि सन्तों ने चिन्तन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। हमारे सभी साधु-साध्वियों ने अपना-अपना कार्य बंद करके रात-दिन स्थिति को संभालने में प्रयत्न किया। मैंने इनके हृदय में जिस तड़प और अटूट श्रद्धा का भाव देखा, मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।'

चूरू चतुर्मास (सन् १९७२) में अग्नि-परीक्षा के विरोध में पुनः वातावरण बना। समझौते के अनेक प्रयत्न हुए। प्रस्तुत संदर्भ में गुरुदेव का आलेख है–

आपसी सद्भावना को और अधिक विकसित करने के लिए यह सोचा गया कि दोनों धर्माचार्यों में वार्तालाप हो। इस प्रस्ताव पर भी दोनों ओर से स्वीकृति हो गई। २० जुलाई १९७२ को मध्याह्न में चार बजे जिलाधीश महोदय के कार्यालय में दोनों आचार्यों के मिलन का कार्यक्रम निर्णीत हो गया। हम दोनों मीटिंग-रूम में बैठे। मेरे साथ सेवाभावी मुनि चम्पालालजी, मुनि नथमलजी और मुनि रूपचंद–ये तीन साधु थे। श्री शंकराचार्यजी के साथ उनके दो संन्यासी थे। जिलाधीश तथा एस. पी. भी वहां उपस्थित थे।

३० जुलाई १९७२। रविवार को मध्याह्न में समझौते से संबंधित निर्णय का मसविदा तय किया। उसके लिए मुनि नथमलजी के सान्निध्य में श्रीचंदजी रामपुरिया, मोहनलालजी बांठिया, मोतीलाल नाहटा आदि कुछ व्यक्ति बैठे थे। सर्वोदयी कार्यकर्ता बद्रीप्रसाद स्वामी भी बीकानेर से आ गए। सबने गंभीरता के साथ चिन्तन कर मसविदे का स्वरूप निर्धारित कर लिया। सायंकाल छह बजे स्थानीय कलक्टर, एस.पी., एस.डी.एम., एम.एल.ए., पत्रकार, विरोधी पक्ष के प्रतिनिधि आदि अनेक व्यक्ति उपस्थित थे। कुछ साधु मेरे निकट थे ही। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा आदि कुछ साध्वियां भी आ गईं। उन सबके बीच समझौते की एकपक्षीय क्रियान्विति का निर्णय लिया गया।

१६ अगस्त १९७२। मध्याह्न में तीन बजे हमारे सान्निध्य में 'सद्भावना सम्मेलन' आयोजित किया गया। बाबू जयप्रकाश नारायण गंभीर मुद्रा में बैठे थे। मुनि नथमलजी ने मनुष्य के भीतर छिपे सद्भावना के बीजों की चर्चा करते हुए कहा–'यदि ऐसा नहीं होता तो जयप्रकाश बाबू को चम्बल घाटी में सफलता नहीं मिलती। इनकी सफलता का कारण है डाकुओं में छिपे हुए अच्छाई के बीज। इन्होंने उन बीजों को विकसित किया और एक समस्या का समाधान हो गया। यहां भी कुछ ऐसी स्थितियां पैदा हो गईं, जिन्होंने समस्या का रूप धारण कर लिया। अब अपेक्षा है सद्भावना का कोई ऐसा अंकुर फूटे, जिससे भाई-भाई के बीच होने वाला असद् व्यवहार सदा के लिए समाप्त हो जाए।'

मैंने इस अवसर पर एक ऐतिहासिक घोषणा करते हुए कहा–'पिछले पचीस वर्षों से अहिंसा एवं सर्वधर्मसद्भाव का विकास मेरा मिशन रहा है। देश भर में इसके प्रसार के लिए मैं और मेरे शिष्य साधु-साध्वियां सतत प्रयत्नशील हैं। मेरी पुस्तक को निमित्त बनाकर साम्प्रदायिक घृणा व हिंसा फैली, इसका मुझे दुःख है। अतः मैं अहिंसा व सद्भाव की दृष्टि से इस घोषणा के द्वारा 'अग्नि परीक्षा' पुस्तक के प्रकाशन से संबंधित संस्थानों को यह सूचित करता हूं कि उक्त पुस्तक का वितरण, विक्रय व प्रकाशन सदा के लिए बंद रहेगा।'

प्रतिक्रिया के प्रति क्रिया का पत्र

● २२ अक्टूबर १९७४। जोधपुर के श्रावक पर्वतमलजी भण्डारी के साथ ग्वालियर से प्रेषित एक पत्र प्राप्त हुआ। उसमें मुनि चन्दनमलजी के विचार लिखे हुए हैं। तेरापंथ संघ की साहित्य उपसमिति द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने जो बातें लिखी हैं, वे संघीय अनुशासन के अनुकूल नहीं हैं। उस पत्र को पढ़कर मुनि दुलहराज ने कहा–'तेरापंथ के आचार्य को कोई ऐसा पत्र भी लिख सकता है, यह एक विचित्र बात है।' मैंने उसे पूरा पढ़ा नहीं। मुनि नथमलजी ने उसको पढ़ा और अहिंसात्मक ढंग से उसका जवाब दे दिया।

मुनि चन्दनमलजी का पत्र पढ़ने के बाद मैंने जो पत्र लिखा, उसका सारांश यहां दिया जा रहा है–

● 'साहित्य के विषय में जो कठिनाइयां हैं या जो आपको प्रतीत हो रही हैं, उनका समाधान होना चाहिए और हम मिलकर उन्हें समाहित करने का प्रयत्न करेंगे। मेरी दृष्टि में ऐसी कोई भी समस्या नहीं होती, जिसका समाधान न हो सके। आप हमारे संघ के प्रौढ़ संत हैं, अतः आपसे हम यही अपेक्षा करेंगे कि आप समाधान का वही मार्ग पसंद करेंगे, जो हमारे संघ की गरिमा के अनुरूप हो। आप जानते ही हैं कि यह युग स्वतंत्र चिन्तन का है। चिन्तन की स्वतंत्रता को मैं असंगत भी नहीं मानता, पर कोई संगठन चिन्तन की स्वतंत्रता को स्वीकृति देते हुए भी अनुशासन का अवमूल्यन नहीं कर सकता। हमारे संघ की यह सार्वभौम विशेषता है, जिसे आज भी लगभग सभी धर्मसंघ महत्त्व दे रहे हैं। मैं नहीं सोचता कि आप उसका मूल्यांकन नहीं करते। मैं एक बार फिर आपसे विनम्र अनुरोध करना चाहूंगा कि आप व्यवस्था या मर्यादा के अतिक्रमण की बात नहीं दोहराएंगे।'

'आपकी सज्जनता के लिए कृतज्ञता, मानसिक प्रतिक्रिया के लिए सहानुभूति और आपकी भूमिका से अप्रत्याशित व्यवहार के लिए खेद प्रकट करते हुए मैं अपनी बात को समाप्त करता हूं और आशा करता हूं कि आप मेरे विनम्र अनुरोध पर गंभीरता से विचार करेंगे और समस्या का समाधान हम सबके साथ बैठकर ही खोजेंगे, अकेले नहीं।'

शांति उग्रता के क्षणों में

आचार्यवर ने कुछ नए प्रस्थान शुरू किए। कुछ साधु उन्हें आत्मसात् नहीं कर सके। उनके विचार कभी-कभी उग्रता के साथ व्यक्त होते किन्तु मैंने और गुरुदेव ने बड़ी शांति के साथ उनके समाधान का प्रयत्न किया। उसका एक उदाहरण प्रस्तुत है–

● २२ जनवरी १९७७। अपने प्रवचन को आगे बढ़ाते हुए मैंने राजलदेसर के वर्धमान महोत्सव की चर्चा भी की। उस सन्दर्भ में साधु-साध्वियों की एक गोष्ठी की स्मृति हो आई। पूरा प्रसंग इस प्रकार है–

'मध्याह्न का समय था। साधु-साध्वियों की सामूहिक गोष्ठी थी। गोष्ठी के वक्ता एक वरिष्ठ साधु थे। वे खड़े हुए और इस प्रकार बोले मानो विद्रोह फैला देंगे। आचार्य के समक्ष इस तरह खुलकर जिहाद-सा छेड़ना साधु-साध्वियों को बहुत अखरा। शायद कइयों को अच्छा भी लगा हो। प्रश्न हो सकता है कि आखिर ऐसी बात क्या थी? नई बात तो कोई थी नहीं, जैन विश्व भारती, अणुव्रत, रायपुर और चूरू के अग्निपरीक्षा आंदोलन आदि की तीखी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा–'हमारी सर्वत्र हार-ही-हार क्यों हो रही है? केवल शासन की प्रशस्ति से काम नहीं चलेगा। किसी को बुरा लगे तो लगे, मैं तो स्पष्ट शब्दों

"यह युग स्वतंत्र चिन्तन का है। चिन्तन की स्वतंत्रता को मैं असंगत भी नहीं मानता, पर कोई संगठन चिन्तन की स्वतंत्रता को स्वीकृति देते हुए भी अनुशासन का अवमूल्यन नहीं कर सकता।"

में कहना चाहता हूं आदि-आदि।' वक्ता के शब्दों में खुला व्यंग्य था। बगावत जैसी स्थिति थी। उनका बोलने का तरीका ऐसा था कि मेरे मन पर भी उसकी गहरी प्रतिक्रिया हुई, फिर भी बड़े धैर्य के साथ मैंने उस स्थिति को संभाला।

वक्ता बोलकर बैठ गए तो मुनि नथमलजी खड़े हुए। उन्होंने प्रत्येक बात का बड़ी शालीनता के साथ जवाब दिया। बिना किसी पर व्यंग्य किए उन्होंने पूर्व वक्तव्य को पूरी तरह से निरस्त कर दिया। मैंने भी शांत भाव से वाद का प्रतिवाद किया। सभा में प्रायः सबको बड़ा संतोष हुआ। कुछ साधुओं को भय था कि प्रतिवाद से गोष्ठी में उग्रता का वातावरण न बन जाए। पर हमने इरादतन उग्रता की स्थिति से बचाव किया और शांति को अक्षुण्ण रखा। उस स्थिति में बोलनेवाले स्वयं अपनी अविमृश्यकारिता को अनुभव करने लगे होंगे।

अपूर्व योगदान

१ दिसम्बर १९८३, काकेलाव। प्रतिक्रमण के बाद बैठे थे। अतीत की चर्चा चल पड़ी। नए-पुराने अनेक प्रसंग सामने आए। एक साथ कई बातें सामने आने पर पता लगा कि जीवन में क्या-क्या घटनाएं घटी और कैसी-कैसी घटनाएं घटित हुईं। उनकी स्मृति होने से हृदय द्रवित हो जाता है। अनेक भयंकर स्थितियां पैदा हुईं, पर चरम परिणाम प्रायः सबका अच्छा रहा। यह संघीय सौभाग्य की बात है। सब घटनाओं का वर्णन करना संभव नहीं है, फिर भी इतना कहा जा सकता है कि अनेक प्रसंगों में युवाचार्य महाप्रज्ञ का अपूर्व योगदान रहा।

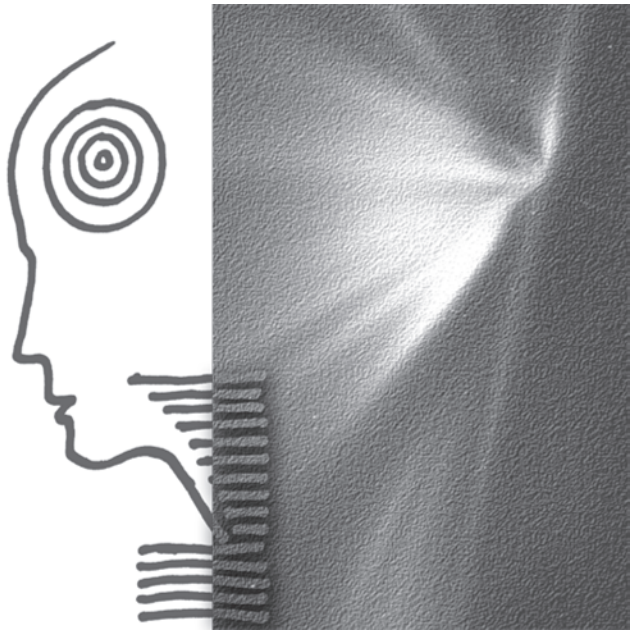

चिन्तन के क्षण

मेरे जीवन में प्रियता-अप्रियता का प्रश्न सदा गौण रहा, हित और कल्याण का प्रश्न सदा प्रमुख रहा। मैं जितना व्यक्तिगत हित के प्रति जागरूक था, उतना ही जागरूक था संघ और समष्टि के हित के लिए। इसीलिए अनेक संदर्भों में आचार्यवर के साथ चिन्तन और परामर्श का क्रम चलता रहता था। अंतरंग और बहिरंग–सभी प्रकार के विषयों पर हम उन्मुक्त विचार-विमर्श करते थे। उन चिन्तन-क्षणों से अनेक कल्पनाओं का आकार मिला। आचार्यवर की डायरी में अंकित पारस्परिक चिन्तन-मंथन के उन क्षणों से गुरु-शिष्य के विलक्षण आत्मीय संबंधों का साक्षात् किया जा सकता है–

> “मुनि नथमलजी पर मुझे काफी भरोसा है। ये गुरु-दृष्टि की सूक्ष्मता से आराधना करते हैं। साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने प्रगति की है। मेरा विश्वास है कि कई विषयों में इनकी शासन को बड़ी देन होगी।”

● अक्षय तृतीया, वि. संवत् २०१७। राणकपुर। रात्रि के समय मुनि नथमलजी के साथ काफी समय तक अंतरंग बातें हुईं। मुख्य रूप से साधु-साध्वियों के निर्माण को लेकर लम्बी चर्चा चली। मुनि नथमलजी पर मुझे काफी भरोसा है। ये गुरु-दृष्टि की सूक्ष्मता से आराधना करते हैं। साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने प्रगति की है। मेरा विश्वास है कि कई विषयों में इनकी शासन को बड़ी देन होगी। इनके स्वास्थ्य को लेकर मैं कभी-कभी चिंतित हो जाता हूं। फिर सोचता हूं कि शासन का भविष्य उज्ज्वल है। हमारे द्वारा शासन की

सेवा होनी है, उसमें इनका सहयोग मिलना अवश्यंभावी है तो मिलेगा ही। फिर चिंता क्यों करूं? समय पर सब ठीक होगा।

तेरापंथ द्विशताब्दी का अवसर। राजसमंद के विद्यालय में चातुर्मासिक प्रवास। मैं स्वास्थ्य की दृष्टि से बाल निकेतन में रहता था। गुरुदेव ने एकान्तवास का निर्णय लिया। एकान्तवास में अनेक विषयों पर चिन्तन चले। गुरुदेव ने संक्षेप में उसका उल्लेख किया है–

● आश्विन कृष्णा चतुर्थी, वि.सं. २०१७। पहाड़ी पर स्थित दयालशाह के देहरे पर एकांतवास के लिए प्रवास। आहार के बाद हम विशेष चिन्तन की दृष्टि से मंदिर के ऊपर वाले कक्ष में बैठते। मुनि नथमलजी और मुनि बुधमलजी चिन्तन में समभागी बनते। मध्याह्न में संबोधसत्तरी, गच्छाचार, साधुदैनिककृत्यं, प्रशमरतिप्रकरण आदि प्राचीन ग्रंथों का सामूहिक स्वाध्याय चलता। मध्याह्नोत्तर समय में प्राचीन मर्यादाओं का अवलोकन करते।

प्रसन्नता की अभिव्यक्ति

मार्च १९६१, पाली के प्रवास में एक बार रात्रि के समय मैंने मुनि नथमलजी (टमकोर) को बुलाया। बातचीत के दौरान मैं बोला–'नथमलजी! इस बार मेरा चित्त बहुत प्रसन्न है।' प्रसन्नता के कारण को स्पष्ट करते हुए मैंने कहा–'साधु-साध्वियों को सायंकाल उष्ण आहार और वस्त्र-प्रक्षालन की छूट मिलने से सभी को प्रसन्नता हुई होगी। मुझे इससे अतिरिक्त प्रसन्नता हुई है और वह सकारण है। आचार्य होने के नाते मैं स्वयं उष्ण आहार करता, पर साधु-साध्वियों को ठंडा भोजन मिलता। इस बात से मेरा मन बेचैन रहता। मैंने कई बार ठंडा भोजन करने का प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिली। ऊपर से इतना आग्रह और दबाव रहता कि मुझे अपना चिंतन बदलना पड़ता।

वस्त्र-प्रक्षालन के संदर्भ में भी इसी प्रकार की स्थिति थी। मेरे पहनने के वस्त्रों का प्रक्षालन किया जाता, पर साधु-साध्वियों को मलिन और पसीने से कड़े हुए वस्त्र पहनने पड़ते। मुझे संकोच का अनुभव होता। मैं सोचता–यह युग साम्राज्यवाद या सामन्तशाही का नहीं है। फिर हमारी व्यवस्था में इतना अन्तर क्यों रहे? वह अन्तर मुझे बहुत अखरता था। इस वर्ष मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर अनेक गोष्ठियों में गंभीर चिंतन के बाद दोनों विधियों में एक सीमा तक साधु-साध्वियों को भी छूट दे दी गई। इससे मेरे मन में जो खुशी हुई है, उसे मैं ही समझता हूं। कुछ और बातें मेरे चिन्तन में हैं। उनके बारे में भी समय आने पर सोचा जा सकता है।'

संदर्भ संवत्सरी का

● २ सितम्बर १९६२। आज रात्रि में मैंने कुछ चुने हुए साधुओं को बुलाया और संवत्सरी पर्व के कार्यक्रम को लेकर चिंतन करने का निर्देश दिया। अनेक विचार सामने आए। मुनि नथमलजी ने कहा–अन्य धर्मों में कम-से-कम एक दिन ऐसा होता है, जो उनकी संस्कृति का प्रतीक हो। मुसलमानों में सामूहिक नमाज पढ़ी जाती है। ईसाई लोग सामूहिक प्रार्थना करते हैं। हमारे यहां भी एक दिन ऐसा कार्यक्रम होना चाहिए जो जैनत्व का परिचायक हो। समग्र चिन्तन का निष्कर्ष निकालते हुए तीन बिन्दु निर्णीत किए गए–

१. संवत्सरी के दिन सामूहिक रूप में कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम किया जाए। उसके लिए कुछ पद्यों का विशेष मुद्रा में उच्चारण हो।

२. आज के दिन व्याख्यान को लम्बे समय तक चलाने की प्रतिस्पर्द्धा-सी हो जाती है। कई बार शरीर की भी उपेक्षा कर दी जाती है। इसलिए आवश्यक है कि यहां से ही पहल करके व्याख्यान की अवधि कम की जाए।

३. आज के दिन अन्य प्रकरणों की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्य अधिक सामने आने चाहिए।

● २८ मार्च १९६३। प्रथम प्रहर में आहार करना और दिन में सोकर नींद लेना–ये दोनों कार्य मेरी प्रकृति से प्रतिकूल हैं। हमारे सिद्धान्तों के अनुसार ये दोनों बातें वर्जनीय मानी गई हैं। मुनि नथमलजी कह रहे थे कि चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से भी मेरा चिन्तन सही है। वैसे विशेष अपवाद हर बात में रहते ही हैं। सामान्यतः उक्त दोनों प्रवृत्तियों से बचने में लाभ अधिक है।

● १४ जनवरी १९६४। मैंने मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी और मुनि नगराजजी–तीनों को एक साथ बुलाकर उनके सामने शासन के शुभ भविष्य की परिकल्पना प्रस्तुत की। अणुव्रत आंदोलन, तेरापंथी महासभा, आगम-साहित्य, अन्य साहित्य, उपासक-संघ, शोधपीठ, शिक्षाकोर्स आदि विषयों पर एक योजना बनाने का निर्देश दिया। कुल मिलाकर सारे काम व्यवस्थित हो रहे थे।

समीक्षा परिवर्तन की

● १५ सितम्बर १९६६। रात्रि में ध्यान के बाद मुनि नथमलजी के साथ बात की। मैंने उनसे कहा–'इन वर्षों में हमारे धर्मसंघ में जो परिवर्तन आए हैं, उनको लेकर एक पर्यवेक्षण करना जरूरी है। जिन उद्देश्यों को लेकर परिवर्तन किए गए, यदि वे फलीभूत नहीं हुए तो क्या परिवर्तन में भी परिवर्तन जरूरी नहीं होगा? अथ च सफल हुए हैं तो वैसा सोचना चाहिए। मैं नहीं चाहता कि परम्पराओं एवं परिवर्तनों के संदर्भ में हमारे संघ में तटस्थ चिंतन न हो और सारे परिवर्तन सहज ही खप जाएं। उनके बारे में स्वस्थ आलोचना होती रहनी चाहिए ताकि पूरा अंकन किया जा सके। मुझे लगता है कि आजकल कुछ सुविधावादी दृष्टिकोण पनपता जा रहा है, यह अच्छा नहीं है। सहज रूप से कल्पनीय सुविधाएं मिलें तो मिलें, पर दृष्टि वैसी क्यों बने? इन सब बिन्दुओं की छानबीन होनी चाहिए। उसके आधार पर भविष्य का मार्ग निर्णीत किया जा सकेगा।'

अपनी बात को दूसरा मोड़ देते हुए मैंने कहा–'हमने साधना के लिए घर-बार छोड़ा है। हमारी साधना संघबद्ध साधना है। मौलिक आस्थाओं को सुरक्षित रखकर युगानुरूप चलना हमारा लक्ष्य है। इस रूप में चलते हुए भी कभी-कभी मेरे मन में एक सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि कहीं अपरिग्रह, अहिंसा आदि महाव्रतों का अतिक्रमण तो नहीं हो रहा है, क्योंकि हमारे आसपास प्रवृत्ति-बहुल कार्यक्रम चल रहे हैं। इस चिन्तन-मंथन में कभी-कभी रात की नींद भी उचट जाती है। मैं अपने-आपको तथा धर्मसंघ को किसी भी स्थिति में आचार-शिथिल देखना नहीं चाहता। यदि कहीं भी ऐसा होता है तो वह मेरे लिए असह्य वेदनादायक होता है। यद्यपि शैथिल्य की परिभाषाएं हर युग की पृथक्-पृथक् होती हैं। जिस प्रवृत्ति को हम समता दृष्टि से सिद्धान्ततः स्वीकार कर लेते हैं। उसे कोई शिथिलता भी माने तो मुझे चिन्ता नहीं है। पर हमारी ओर से वैसा कोई प्रयोग नहीं होना चाहिए जो सचमुच शिथिलता का पोषक हो।'

> "
> मुनि नथमलजी के स्वास्थ्य को लेकर मैं कभी-कभी चिंतित हो जाता हूं। फिर सोचता हूं कि शासन का भविष्य उज्ज्वल है। हमारे द्वारा शासन की सेवा होनी है, उसमें इनका सहयोग मिलना अवश्यंभावी है तो मिलेगा ही। फिर चिंता क्यों करूं?
> "

तीसरी श्रेणी की कल्पना

● १३ सितम्बर १९६७ को प्रातःकालीन कार्यक्रम की सम्पन्नता पर महाराष्ट्र विधान-परिषद के अध्यक्ष श्री बी. एस. पागे दर्शनार्थ आए। संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति से उन्हें अच्छा अनुराग है।

जैन आगमों में भी उनकी रुचि है। उन्होंने जैन आगम 'उत्तराध्ययन' का संस्कृत में अनुवाद करवाकर उसका अध्ययन किया। श्री पागे 'तत्त्वार्थ सूत्र' को भी पढ़ चुके हैं। साहूजी की पुत्रवधू श्रीमती इन्दु जैन भी उस समय वहां पहुंच गईं। विचार-यात्रा एक नई योजना पर केन्द्रित हो गई। उसका संबंध साधु और श्रावक के बीच एक कड़ी अथवा तीसरी श्रेणी से था। उस चिंतन में मुनि नथमलजी का अच्छा सहयोग रहा। एक विचार यह भी सामने आया कि जैन साधु की दीक्षा के कई स्तर निर्धारित किए जा सकते हैं। इन्दु बहन ने भी उस चर्चा में पूरा रस लिया।

• १७ दिसम्बर १९६७। वापी के ट्रेनिंग सेन्टर में एक गोष्ठी बुलाई। सेवाभावी मुनि चम्पालालजी आदि कई साधु उपस्थित थे। विचार विमर्श चला। माइक के बारे में नीति स्पष्ट की गई। बालोतरा महोत्सव (वि.सं. २०२०) के अवसर पर जो स्पष्टीकरण हुआ था, उसके बाद स्थिति काफी बदल गई थी। इन दिनों उसका खुला उपयोग हो रहा था। उस विषय में निर्णय लिया गया कि गृहस्थ अपनी सुविधा के लिए माइक लगाएं, उसे कहीं रखें, उसमें हमारा हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। बिजली की तरह यह भी उनकी अपनी सुविधा है। इस संदर्भ में सबका उत्तर एक समान होना चाहिए। उसकी भाषा तैयार करने का काम मुनि नथमलजी को सौंपा गया।

• १३ मई १९६८, बेल्लारी। अपराह्न में साधना केन्द्र के संबंध में एक चिंतन गोष्ठी हुई। मुनि नथमलजी ने साधना केन्द्र का प्रारूप प्रस्तुत किया। साधना केन्द्र की परिकल्पना को साकार करने के लिए मैंने श्रावक समाज को विशेष उद्‌बोधन दिया। उस केन्द्र का प्रमुख लक्ष्य है—साधु और श्रावक के बीच की तीसरी श्रेणी को तैयार करना। इस विषय में कई वर्षों से चिन्तन चल रहा है। कुछ प्रयोग भी किए गए, पर उनका कोई निर्णयात्मक रूप नहीं बन पाया। गोष्ठी में उस योजना पर विशद चिन्तन चला।

सुन्दर अवसर

• १५ अप्रैल १९७०, मौदा गांव। मेरा लक्ष्य है कि धर्मसंघ में चतुर्मुखी विकास होता रहे। इस संदर्भ में मुनि नथमलजी के साथ परामर्श का क्रम चलता रहता है। जैनधर्म का अच्छे स्तर का साहित्य तैयार हो, यह एक बड़ी अपेक्षा है। इस संबंध में भी योजना बनाने का काम सौंपा हुआ है। आगम-सम्पादन का कार्य यथासंभव निरंतर चलता ही है। मैं अनुभव करता हूं कि अभी मेरे सामने बहुत सुंदर अवसर है। इस अवसर का लाभ उठाकर अधिक-से-अधिक काम करना है।

• ३० अप्रैल १९७०, राजनांदगांव। पदयात्रा, जनसंपर्क, प्रवचन, आगमकार्य, अध्ययन-अध्यापन आदि विभिन्न प्रवृत्तियों के साथ संघीय विकास के परिप्रेक्ष्य में समय-समय पर चिन्तन चलता रहता है। कभी मैं अकेला सोचता हूं। कभी मुनि नथमलजी को साथ रखता हूं। कभी कुछ अन्य साधुओं को भी चिन्तन में सहभागी बनाता हूं। कभी व्यापक चिन्तन-गोष्ठियां चलती हैं, उनमें प्रायः साधु-साध्वियों की उपस्थिति रहती है। कुछ गोष्ठियों में चिन्तनशील श्रावकों को भी साथ रखा जाता है। कभी-कभी प्रवचन में विचारणीय बिंदुओं पर चर्चा हो जाती है।

५ अप्रैल १९७१, लाडनूं। प्रातःकालीन चिन्तन-गोष्ठी में नवीन और पुरातन विचारों के संदर्भ में बहुत स्पष्टता से चर्चा हुई। अनेक प्राचीन उदाहरण प्रस्तुत किए गए। इतनी खुली चर्चा संभवतः पहली बार हुई हो। जयाचार्य युग की संघ-व्यवस्था, डालगणी के युग की रेशम-रुचि, कालूगणी के युग की

संग्रह-रुचि आदि के कई उदाहरण सामने आए। कुछ नए निर्णयों के बारे में अवगति दी गई। अच्छी स्पष्टता हो गई।

अंतरंग और बहिरंग सभी गोष्ठियां पूरी गंभीरता के साथ चलीं। संघीय परिप्रेक्ष्य में अनेक बिन्दु चिंतन के विषय बने। कुछ विषयों पर विस्तार के साथ विचार-विमर्श हुआ। अनेक व्यक्तियों का चिन्तन काफी सुलझा हुआ है। जैन विश्व भारती, पारमार्थिक शिक्षण संस्था, भगवान महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी, नवीन एवं प्राचीन परम्पराएं, अणुव्रत कार्य का विस्तार, शिक्षा, साहित्य आदि बिन्दुओं को मुख्य रूप से चिन्तन का विषय बनाया गया।

● १९ नवम्बर १९७१। 'हम नोखामंडी के निकट जोरावरपुरा पहुंच गए। अब कुछ विश्राम सामने है। साध्वियों के काफी सिंघाड़े पहुंचने वाले हैं, अतएव हम लम्बे विहार कर शीघ्रता से यहां आए हैं। इस सप्ताह मुनि नथमलजी के साथ कई प्रकार से विचार-विमर्श चला। साधना, महावीर निर्वाण शताब्दी, साध्वीसंघ की व्यवस्था आदि हमारी चर्चा के प्रमुख विषय थे।'

धर्मसंघ और उसकी स्थितियां

● २० मार्च १९७२, सरदारशहर। आज प्रातः मौनी मुनि मीठालाल के साथ आंतरिक और महत्त्वपूर्ण चर्चाएं हुईं। मुनि नथमलजी और मुनि रूपचन्द उनमें संभागी थे। अपराह्न में चार बजे पुनः विविध विषयों पर चर्चा की। अच्छा समय बिताया। उस समय साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा भी उपस्थित थी। हमारी दिन भर की चर्चा का विषय था–धर्मसंघ और उसकी स्थितियां। इस संदर्भ में चर्चा के मुख्य दो बिन्दु थे–

१. क्या वर्तमान परिस्थितियों और वातावरण में हमारे धर्मसंघ की व्यवस्था संतोषजनक है? यदि नहीं तो क्या करना चाहिए?

२. क्या तीन करण और तीन योग से 'सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि' का क्रम ठीक है? इसकी परिभाषा में अंतर है या पालन में?

इस प्रकार के अनेक ज्वलंत प्रश्न हैं। ऐसे प्रश्नों का समाधान देना ही होगा, अन्यथा निराशा का रूप बढ़ता चला जाएगा। इस रूप में चिन्तन का क्रम अच्छा रहा।

भिन्न सामाचारी का प्रयोग

● १७ अप्रैल १९७२, लाडनूं। रात्रि में आंधी और वर्षा आई। सहज ठंडक हो गई। रात को वर्षा के समय हम काफी देर तक घनघोर अंधकार में बैठे रहे। क्योंकि बिजली चली गई थी। फिर मुनि नथमलजी, मुनि रूपचन्द और मुनि किशनलाल के साथ भावी योजनाओं के बारे में अच्छी चर्चाएं हुईं। इस बार लाडनूं-प्रवास का मई मास कई दृष्टियों से निर्णायक मास होगा। मुझे लगा कि जैसा चिन्तन चल रहा है, हमारे धर्मसंघ के द्वारा आध्यात्मिक क्षेत्र में कोई विशिष्ट काम होगा। संदेह तो नहीं है, पर हमें अपना पुरुषार्थ दीर्घकाल तक चालू रखना होगा। धर्मसंघ को किसी भी समय एक नया रूप मिल सकता है, पर उसका आधार ठोस होगा। आगामी दस वर्ष हमारे लिए बहुत उपयोगी होंगे। ऐसा विश्वास दृढ़ हो रहा है।

साधु-साध्वियों की चिकित्सा के संबंध में काफी समय से चिन्तन चल रहा था। बीदासर मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर शल्य-चिकित्सा आदि के बारे में कुछ निर्णय हुए थे। उसी शृंखला में यह तय

> "विचार-यात्रा एक नई योजना पर केन्द्रित हो गई। उसका संबंध साधु और श्रावक के बीच एक कड़ी अथवा तीसरी श्रेणी से था। उस चिंतन में मुनि नथमलजी का अच्छा सहयोग रहा। एक विचार यह भी सामने आया कि जैन साधु की दीक्षा के कई स्तर निर्धारित किए जा सकते हैं।"

किया गया कि जिन साधु-साध्वियों के विशिष्ट चिकित्सा की स्थिति में विशेष अपवाद सेवन का प्रसंग उपस्थित होगा, उन्हें 'भिन्न सामाचारी' में रहना पड़ेगा। फिर उसका प्रायश्चित्त करके ही 'सम सामाचारी' में आना होगा। इस निर्णय को लिखित रूप में तैयार करा लिया गया। अब सामूहिक रूप में सुनाकर इसी वर्ष बीकानेर में उसका प्रयोग भी होगा।

जैन विश्व भारती

• १८ सितम्बर १९७२। समाज के चिन्तनशील और दायित्वशील व्यक्ति मेरे सामने बैठे थे। उन्हें संबोधित करते हुए मैंने एक बात कही–जैन विश्व भारती के रूप में समाज कल्याण की एक निर्माणकारी योजना प्रस्तुत कर दी। अब समाज को कब, कैसे और किस रूप में उसे क्रियान्विति करना है, यह आप लोग सोचें। इस विषय में प्रारंभिक चर्चा के लिए अस्थायी रूप से तीन साधुओं को मैं नियुक्त कर रहा हूं–

- आगम-कार्य — मुनि दुलहराज
- शिक्षा-शोध — मुनि रूपचंद
- साधना-क्षेत्र — मुनि किशनलाल

आगम-साहित्य, शिक्षा और साधना के बारे में प्राथमिक दृष्टि से चिन्तन करने की जिम्मेवारी उक्त तीनों साधुओं की है। किसी भी व्यक्ति को कुछ पूछना हो या परामर्श लेना हो तो इनसे लिया जा सकता है। इनका संबंध मुनि नथमलजी के साथ रहेगा और वे मेरे से सीधे संबंधित रहेंगे। इससे मेरा काम हल्का हो जाएगा और आप लोगों को भी सुविधा रहेगी।' वहां उपस्थित सब लोगों को मेरी बात पसंद आई। वातावरण बहुत सुन्दर बना।

• २२ अक्टूबर १९७४। रात्रि के समय जोधपुर के वकील सुमेरचंदजी भण्डारी से बात की। 'दिल्ली प्रदेश निर्वाण समिति' के सदस्यों से बातचीत हुई। श्रीचंदजी रामपुरिया और उत्तमचंदजी सेठिया (मोमासर) के साथ कई विषयों पर चर्चा हुई। मुनि नथमलजी भी चर्चा में सहभागी रहे। गृहस्थ कार्यकर्ताओं से अवकाश पाकर हमने साधु-जीवन की नई भूमिका के बारे में विचार-विनिमय किया।

• अप्रैल १९८०, लाडनूं। 'जयाचार्य निर्वाण शताब्दी' के उपलक्ष्य में पूरे वर्ष को अनुशासन वर्ष के रूप में मनाना है, यह पहले से निर्णीत है। उसकी रूपरेखा अभी पूरी तरह से नहीं बन पाई है। प्रस्तुत संदर्भ में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'अनुशासन हृदय से स्वीकृत हो, वैसा होना चाहिए।' इस बात को सामने रखकर चिन्तन चल रहा है। चिन्तन के निष्कर्ष का एक बिन्दु यह है कि भाद्रपद मास से पहले-पहले एक प्रारूप तैयार हो जाए तो उसकी क्रियान्विति के लिए पर्याप्त समय मिल जाए।

समणश्रेणी

• १५ अगस्त १९८०, लाडनूं। हमने चिन्तन किया कि इस वर्ष कुछ बहनों को तीसरी श्रेणी की दीक्षा दी जाए। चिन्तन का एक बिन्दु यह भी था कि तीसरी श्रेणी की दीक्षा साधु दीक्षा जैसी हो। उसमें कुछ अपवाद अवश्य रहेंगे। प्रारंभ में यह बात किसी की समझ में न भी आए, पर आगे चलकर प्रस्तुत वर्ग प्रभावशाली बन जाएगा। इस विषय में युवाचार्य महाप्रज्ञ से बात की। तीसरी श्रेणी में दीक्षित होने वाली बहनें किसके संरक्षण में रहेंगी? इस विचारणीय बिन्दु के संदर्भ में युवाचार्यजी बोले–'इस श्रेणी का नेतृत्व

आचार्य करेंगे और आध्यात्मिक संरक्षण साध्वीप्रमुखा का रहेगा।' यह बात सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो कांटा-सा निकल गया।

• सितम्बर १९८०। कार्तिक शुक्ला द्वितीया का दिन दीक्षा के लिए निर्णीत हो गया। उसका नाम चिन्तनपूर्वक 'समणश्रेणी' निर्धारित कर दिया।

समण दीक्षा की स्वीकृति देने के बाद हमारी जिम्मेदारी बढ़ गई। वह एक नया प्रयोग होनेवाला था, इसलिए उसका पूरा प्रारूप निश्चित करना अपेक्षित था। एक दिन रात्रि में इसी विषय पर चिन्तन किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ साथ में रहे। समणदीक्षा का क्रम क्या रहे? इस श्रेणी में दीक्षित होनेवालों के लिए प्रतिक्रमण कैसा हो? दैनिक चर्या क्या हो? वेशभूषा कैसी हो? आदि विभिन्न बिन्दुओं पर संतोषजनक चिन्तन हुआ। नया-नया काम है। जमने में समय लग सकता है। किन्तु यह एक उपयोगी कदम है। इसका परिणाम समय आने पर ही आ सकेगा।

हमने समण श्रेणी के बारे में एक निबन्ध तैयार किया। उसे हम तीनों (युवाचार्य महाप्रज्ञ, महाश्रमणी कनकप्रभा और मैं) ने बैठकर तैयार किया। समण श्रेणी पर अनुशासन किसका हो? उसकी आचार-संहिता क्या हो? वेशभूषा कैसी हो? साध्वियों के साथ समणियों का संबंध क्या और कैसा रहे? उन्हें अभिवादन कैसे किया जाए? उनकी ओर से स्वीकृति सूचक शब्द क्या कहे जाएं? वे कहां रहें? उनकी व्यवस्था कौन करे और कैसे करे? इन सब प्रश्नों का समाधान उस निबन्ध में किया गया। निबन्ध तैयार हो गया। समण दीक्षा की तरह मुमुक्षु दीक्षा का भी प्रारूप बना लिया गया।

• ८ नवम्बर १९८० को प्रातः साढ़े आठ बजे से पौने नौ बजे के मध्य युवाचार्य महाप्रज्ञ, महाश्रमणी कनकप्रभा, छह दीक्षार्थिनी बहनों तथा पारमार्थिक शिक्षण संस्था के पदाधिकारियों के समक्ष समण श्रेणी का अनौपचारिक प्रारंभ किया। पहले ध्यान किया, फिर चिन्तन किया। दीक्षा के समय क्या करना है, कैसे करना है, सब समझा दिया। वातावरण प्रसन्न था। नए काम का शुभारम्भ हो गया।

• ८ दिसम्बर १९८०, गांधी आश्रम, सुजानगढ़। रात्रि में शुभकरण दसानी आश्रम में आया। युवाचार्य महाप्रज्ञ के साथ हम बैठे। अनुशासन वर्ष का रूप क्या हो? इस विषय में चिन्तन किया। उत्तमचंदजी सेठिया (मोमासर) भी वहां आ गए। उन्होंने मोमासर में दीक्षा महोत्सव की प्रार्थना की। हमने चिन्तन किया। निर्णय बीदासर के लिए शेष रखा।

• ८ अगस्त १९८२, राणावास। आज रात को युवाचार्य महाप्रज्ञ के साथ विचार-विमर्श किया। भावी कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई।

• ४ अगस्त १९८३। समण दीक्षा की कल्पना लगभग दो दशक तक चिंतन के सागर में लहराती रही। मैं चाहता था कि आज के प्रबुद्ध युग में सामयिक संदर्भ में काम करनेवाला एक वर्ग तैयार हो। चिन्तन समय की कसौटी से परिपक्व बना, पर क्रियान्विति एक समस्या पर अटक गई कि इस श्रेणी का संरक्षण कौन करेगा? एक दिन मैं और महाप्रज्ञजी इसी बिन्दु पर चिंतन कर रहे थे। उन्होंने कहा–'एक अध्यात्म पथ के पथिकों का संरक्षण आप जैसे अध्यात्म योगी ही करेंगे। इस दिशा में दूसरा कौन समर्थ बन सकेगा?' उसी दिन हमने समण दीक्षा का निश्चय कर लिया। यह बहुत साहस भरा कदम था। विलक्षण दीक्षा के नाम से दीक्षा की घोषणा हुई। समाज में ऊहापोह मच गया। पर धीरे-धीरे सभी लोग इसकी सार्थकता समझ गए। आज यह श्रेणी अपनी कार्यदक्षता से समाज में प्रभावशाली बन रही है।

"तीसरी श्रेणी में दीक्षित होने वाली बहनें किसके संरक्षण में रहेंगी? इस विचारणीय बिन्दु के संदर्भ में युवाचार्यजी बोले–'इस श्रेणी का नेतृत्व आचार्य करेंगे और आध्यात्मिक संरक्षण साध्वीप्रमुखा का रहेगा।' यह बात सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो कांटा-सा निकल गया।"

• २७ अक्टूबर १९८३। रात्रि में युवाचार्य महाप्रज्ञ मेरे उपपात में बैठे थे। आगामी बृहत मर्यादा-महोत्सव के बारे में चिन्तन किया। उस अवसर पर लगभग पांच सौ साधु-साध्वियों की उपस्थिति संभाव्य है। इधर कुछ वर्षों में इतनी संख्या प्रथम बार होनेवाली है। मर्यादा-महोत्सव का समय संघीय दृष्टि से कायाकल्प का समय है। आयुर्वेद का कायाकल्प शरीर को स्वस्थ बनाता है। हमारा कायाकल्प समग्र जीवनशैली को प्रभावित करता है। इस दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।

बात मन की

• १ दिसम्बर १९८३। मुझे अपने जीवन में दो व्यक्तियों का बड़ा योग मिला है। युवाचार्य महाप्रज्ञ तो हैं ही। चिन्तन के क्षेत्र में इनका अतिशय सुयोग है, अनिर्वचनीय योग है।

• २७ जुलाई १९८४, जोधपुर। दिन भर अपनी अत्यधिक व्यस्तता देखकर मन में आया कि स्वामीजी (आचार्य भिक्षु) ने तात्कालिक स्थितियों का अध्ययन करके कहा कि सातों पदों का काम वे अकेले ही करेंगे। ऐसा कहकर उन्होंने भावी आचार्यों को भी बांध लिया। जो कोई तेरापंथ का आचार्य होगा, उसे इस तरह व्यस्त रहना ही होगा। युवाचार्य महाप्रज्ञ अभी तक ऐसी व्यस्तता से बचे हुए हैं, क्योंकि काम मैं कर रहा हूं।

• २४ फरवरी १९८५, लांबिया। मेरा मन करता है कि कभी मौका मिले, युवाचार्य महाप्रज्ञ काम संभाल लें तो मैं कुछ दिन गांवों में बिताऊं। ग्रामीण लोगों के बीच रहूं, उन्हीं का खाना खाऊं और उनका जीवन बनाने का प्रयत्न करूं। देखता हूं, कब मौका मिलेगा।'

• २८ जून १९८५। मध्याह्न में फिर समणियों की गोष्ठी की। मैं, युवाचार्यजी और साध्वीप्रमुखा तीनों बैठे थे। अच्छा चिन्तन किया। समण श्रेणी को कार्यक्षम और उपयोगी बनाना है।

• ११ जुलाई १९८५। रात्रि में हम तीनों (मैं, युवाचार्य और दसानी) के बीच काफी चर्चा हुई। कुछ ऐसे विषय थे, जो अन्तरंग और विमर्शनीय थे। उनके बारे में गंभीर चिन्तन हुआ। कतिपय विषयों के निष्कर्ष पर भी पहुंचे। अन्तिम निर्णय आगे करना है और उसका स्वरूप भी निर्धारित करना है।

• ३० दिसम्बर १९८५। नवाह्निक प्रेक्षा प्रयोग का शुभारम्भ। यह केवल साधु-साध्वियों के लिए है। प्रयोग काल में प्रतिदिन दो बार अंतरंग गोष्ठियों का समायोजन हुआ। इनमें साधना, शिक्षा, साहित्य, मर्यादा, व्यवस्था आदि विभिन्न विषयों पर गंभीर चर्चा हुई। अंतरंग समस्याओं के समाधान की दिशाएं स्पष्ट हों, इस दृष्टि से इन गोष्ठियों का विशेष महत्त्व है। प्रायः सभी गोष्ठियां मेरी सन्निधि में हुईं। इनमें युवाचार्य महाप्रज्ञ तो साथ रहे ही।

• १० नवम्बर १९८५। दीपावली का समय एकदम निकट है। त्रयोदशी (धनतेरस) और दीवाली के बीच फासला ही कितना है। कुछ बिन्दुओं पर चिन्तन करना है। मैं, युवाचार्य और साध्वीप्रमुखा, तीनों बैठेंगे। आगामी महोत्सव पर साधु-साध्वियों के किन-किन सिंघाड़ों को बुलाना है, चिन्तन का एक बिन्दु यह है। कुछ अन्य विषयों पर भी सोचना है।

• १४ नवम्बर १९८५। अहिंसा सार्वभौम दिवस मनाने का चिन्तन करते समय एक निर्णय लिया गया था कि अहिंसा के बारे में एक गीत का निर्माण किया जाएगा और कार्यक्रम में उसका संगान होगा।

गीत में किन बिन्दुओं को गूंथना है, इसका चिन्तन महाप्रज्ञजी के साथ बैठकर किया। गीत बन गया। मन को भा गया। पूरा रस लेकर उसका संगान किया।

● १७ नवम्बर १९८५। रात्रि में युवाचार्य महाप्रज्ञ और मैं दोनों रामपुरियाजी के साथ चिन्तन करने बैठे। अग्रिम वर्ष में क्या-क्या कार्य होने चाहिए, उसकी एक सूची बनाई। सूची काफी वजनी लगी। पर सुनियोजित व्यवस्था से काम किया जाए तो कम समय में अधिक काम हो सकता है। यह संभावना का ही नहीं, अनुभव का विषय है। व्यवस्था ऐसा तत्त्व है, जिससे समय का सही उपयोग होता है और कार्य भी होता है।

● ६ अगस्त १९८६। रात्रि के समय हम लोग जैनविश्वभारती के विकास की दृष्टि से चर्चा करने बैठे। युवाचार्य महाप्रज्ञ आदि सात साधु थे। एक टाटियाजी थे। काफी चिन्तन चला। जैनविश्वभारती का कार्यक्षेत्र इतना व्यापक है कि एक गोष्ठी में सब बिन्दुओं पर चर्चा हो ही नहीं पाती। चिन्तन के कुछ मुद्दे दूसरे दिन की गोष्ठी के लिए छोड़े गए हैं।

● १४ अगस्त १९८६। रात्रि में हम बैठे थे। जैनविश्वभारती के कुलपति, अध्यक्ष आदि सभी प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। जैनविश्वभारती के नए संविधान की चर्चा चल पड़ी। साक्षी रूप में हम भी उस चर्चा में संभागी थे। अपनी सीमा के अन्तर्गत चिन्तन भी दे रहे थे। इस चर्चा ने दूसरा मोड़ लिया। आगम-सम्पादन के सन्दर्भ में चिन्तन हुआ। इसी दौरान युवाचार्यजी को सुझाव दिया गया कि सम्यक्त्व, श्रावक धर्म, तप, कर्म आदि विषयों पर आगम-वाणी का सुन्दर संकलन होना चाहिए। इसी प्रकार ठाणं और समवाओ का भी एक रूप में परिमार्जित संकलन हो जाए। यद्यपि यह काम समयसाध्य है, पर आवश्यक है।

● १६ अगस्त १९८६। रात्रि में भी हम चिन्तन के लिए बैठे। डॉ. टाटिया द्वारा जैन दर्शन का एम.ए. का कोर्स बनाया गया है। उसे देखा और उस पर चिन्तन किया।

● १ नवम्बर १९८६। प्रवचन के बाद आठ समणियों की एक गोष्ठी हुई। युवाचार्यजी और साध्वीप्रमुखा भी गोष्ठी में उपस्थित थी। कुछ विषयों पर चर्चा चली। निर्णायक रूप में तय किया गया कि समणी स्थितप्रज्ञा दक्षिण भारत की तथा समणी स्मितप्रज्ञा बंगाल की यात्रा करेगी। मध्याह्न में सब समणियों की गोष्ठी में निर्णय घोषित कर दिया गया। आधा घंटा गोष्ठी चली। सबको प्रशिक्षण दिया गया।

● १९ मार्च १९८७। राजगढ़। युवाचार्य महाप्रज्ञ का सुझाव था कि इस बार मुझे लम्बे विहारों में साधन (हस्तचालित वाहन) का प्रयोग करना चाहिए। इससे स्वास्थ्य पर होने वाले प्रतिकूल प्रभाव से बचाव होगा तथा सबकी चिन्ता में कमी आएगी। अब तक साधन से विहार करने की मानसिकता नहीं थी, किन्तु वर्तमान स्वास्थ्य की स्थिति को देखते हुए कुछ चिंतन आवश्यक हो गया। युवाचार्यजी का सुझाव ठीक लगा। क्योंकि इससे जीवन शक्ति का ह्रास नहीं होगा और सबकी चिन्ता भी दूर हो जाएगी। इस विषय में चिंतन किया, निर्णय लिया और एक साधन साथ में रखने का निर्देश दे दिया। पांच-सात किमी. चलने के बाद साधन का उपयोग किया। मुनि मधुकरजी की देखरेख में पांच साधुओं ने साधन चलाया, इससे काफी राहत मिली।

योगक्षेम वर्ष

● २० मई १९८८ को साधु-साध्वियों की एक गोष्ठी को संबोधित किया। मेरे बोलने से पहले युवाचार्य महाप्रज्ञ ने साधु-साध्वियों को प्रेरित करते हुए कहा–'किसी बड़े कार्य को करने से पहले सहमिलन

"मर्यादा-महोत्सव का समय संघीय दृष्टि से कायाकल्प का समय है। आयुर्वेद का कायाकल्प शरीर को स्वस्थ बनाता है। हमारा कायाकल्प समग्र जीवनशैली को प्रभावित करता है। इस दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।"

और सहचिन्तन आवश्यक है। चिन्तन को व्यक्तिगत न रखकर सामुदायिक गरिमा देने का यह एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम है। करणीय कार्य को सामुदायिक बनाना आचार्य का काम है। संघ का अर्थ है गति करना, विकास करना और नया ज्ञान-विज्ञान उपलब्ध करना। गति और नए विकास से पहले जरूरी है कि हम चित्त का निर्माण करें। अन्यथा सही ढंग से क्रियान्विति कठिन हो जाएगी। जो करना है, उस संकल्प के अनुसार अपने चित्त का निर्माण करना साधु-साध्वियों का पहला दायित्व है। आगम वाणी के अनुसार हम तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए बनकर उदार दृष्टिकोण और खुले दिमाग से सोचना प्रारंभ करें। निर्माण की दिशा में प्रस्थान करने से पहले प्रयत्न प्रारंभ कर देना सफलता का शुभ संकेत होता है।'

● २५ मई १९८८। उदयपुर से श्री जर्नादनराय नागर का एक पत्र देवेन्द्रकुमार कर्णावट के पास आया। पत्र में श्रद्धा की अभिव्यक्ति के साथ एक उचित अनुरोध किया गया है। उसके बारे में चिंतन किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'एक बार नागरजी से मिलकर चर्चा करनी चाहिए। इससे स्पष्ट हो जाएगा कि वे क्या चाहते हैं और हम क्या करना चाहते हैं।'

● ४ फरवरी १९८९। मध्याह्न में एक विशेष गोष्ठी आयोजित थी। उस गोष्ठी में योगक्षेम वर्ष में प्रशिक्षण की दृष्टि से चयनित साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों की सूची प्रस्तुत की गई। पिछले कई दिनों से हम इस काम में लगे हुए थे। साधु-साध्वियों के स्वास्थ्य एवं मानसिक स्थिति का अध्ययन, जैन विश्व भारती में आवास तथा अन्य व्यवस्थाओं के बारे में चिन्तन, गोचरी, चिकित्सा, पंचमी समिति के लिए स्थान आदि अनेक बिन्दुओं पर चिन्तन-मनन के बाद साधुओं के इक्कीस और साध्वियों के इकतालीस सिंघाड़ों के नाम घोषित किए गए।

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने गोष्ठी को संबोधित करते हुए कहा–'आज से एक नया अध्याय प्रारंभ हो रहा है। पर उसे इस वर्ष के साथ सम्पन्न नहीं समझना चाहिए। कुछ व्यक्तियों को इस बार मौका मिलेगा तो कुछ को बाद में भी मिल सकेगा। अवसर सबके लिए हैं। वह हमारी प्रतीक्षा करेगा। हमें इस संकल्प के साथ प्रवेश करना है कि हमें कुछ बनना है। तभी हम इस वर्ष को सार्थक बना पाएंगे। गुरु और शिष्य के बीच परस्परोपग्रह होता है। गुरु बनाना चाहते हैं और हम बनना न चाहें तो कार्य नहीं होगा। हम बनना चाहें और गुरु न बनाना चाहें तो भी कुछ नहीं होगा। इसलिए परस्पर में उपग्रह आवश्यक है। जहां शिष्य लेना चाहते हैं और गुरु देना चाहते हैं, वहां तादात्म्य स्थापित होता है। यही परस्परोपग्रह का सुन्दर प्रयोग है।'

संघ की भावी व्यवस्था

● २५ मार्च १९८९। प्रवचन की सम्पन्नता के बाद हम चिन्तन करने के लिए बैठे। मैं, युवाचार्य महाप्रज्ञ और शुभकरण दसानी, तीन-ही-तीन बैठे। चिन्तन का विषय था–साधु संघ का भावी रूप क्या होगा? भविष्य का चिन्तन किए बिना केवल वर्तमान का चिन्तन अधूरा रहेगा। इस पृष्ठभूमि पर चिन्तन चला। गहरा चिन्तन हुआ।

निष्कर्ष के रूप में मैंने कहा–'हमें एक निर्णय पर पहुंचना होगा। कोई बिन्दु निश्चित करना होगा। उसकी प्रक्रिया फिर सोचनी होगी। ठीक, बिल्कुल ठीक क्रम यही लगता है। हमारा दृष्टिबिन्दु यथार्थपरक हो। वह न शैथिल्यपरक हो ओर न अहंभावपरक हो। आज जैसा क्रम चल रहा है, अपवाद के रूप में कई

काम चल रहे हैं। अकेला व्यक्ति हो अथवा संख्या स्वल्प हो, वहां जिस रूप में कोई क्रम चलाना चाहे, वैसा चल सकता है। किन्तु संख्यावृद्धि के साथ अनेक अपवाद आ ही जाते हैं। उन्हें अपवाद न मानें तो छलना बढ़ती है।

उपर्युक्त विचार-मन्थन से लगा कि वर्तमान में अध्यात्म और साधना तो अनिवार्य है। पर बलात कठोर चर्या थोपना कठिन है। कोई भी चर्या दीर्घकाल तक थोपी भी नहीं जा सकती। इस दृष्टि से यह चिन्तन यथार्थपरक है, ऐसा स्वीकार किया जा सकता है।

प्रारंभिक चिन्तन-प्रक्रिया में हम तीन ही व्यक्ति हैं। इसका एक रूप बन जाए, फिर इसे बड़ी संख्या में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाए।

• ११ अप्रैल १९८९। रात को हम गंभीर चिन्तन के लिए बैठे। मैं और महाप्रज्ञ दो ही थे। चिन्तन की भूमिका कुछ प्रशस्त बनी है। यह सिलसिला चलता रहेगा। संघ की भावी गतिविधियों के बारे में चिन्तन का क्रम प्रारंभ किया गया है। कुछ बातें आगे के लिए रखी गई हैं।

• २२ अप्रैल १९८९। अब संघीय दृष्टि से कुछ ठोस चिन्तन अपेक्षित है, गहरा चिन्तन अपेक्षित है। आज दिन में चार बजे महाप्रज्ञजी के कक्ष में हम बैठे। एक ठोस चिन्तन एवं निश्चित निर्णय करके उठे। थावर की थरपना की। अब उसका रूप बनाना है। बात यह है कि हम दोनों वयःप्राप्त हैं। किसी तीसरे युवा व्यक्ति को इस पंक्ति में लाना चाहते हैं, जिससे भविष्य की निश्चिन्तता हो जाए। अच्छा चिन्तन हुआ। प्रसन्नता।

• २३ अप्रैल १९८९। संघीय चिन्तन का क्रम आज फिर चला। एक प्रकरण स्थिर कर लिया। एक बड़े प्रश्न का समाधान खोज लिया।

कारण अस्वास्थ्य का

• २० जनवरी १९९०। मध्याह्न में चिन्तन गोष्ठी का एक बिन्दु था–साध्वियां इतनी अस्वस्थ क्यों हैं? अनेक कोणों से चिन्तन हुआ। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने दो कारण प्रस्तुत किए–

१. साध्वियां प्रकृति से संवेदनशील अधिक होती हैं। वे घुटन में जी सकती हैं। पर अपने मन की बात बोलकर नहीं बता सकतीं।

२. स्त्रीधर्म की स्थिति में कैसे रहना, क्या करना और क्या नहीं करना, इस विषय में साध्वियों को पूरी जानकारी नहीं होती। इसलिए अतिक्रमण होता है।

हमने साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को निर्देश दिया कि कुछ साध्वियों के साथ बैठकर चिन्तन किया जाए। कोई सही उपाय हाथ लग जाए तो बीमारियों से छुटकारा मिल जाए।

संदर्भ यात्रा का

• १४ जून १९९०। सायंकाल मैं और युवाचार्यजी दोनों बैठे। चिन्तन में लगे। चिन्तन का मुख्य बिन्दु प्रस्तुत करते हुए मैंने कहा–'पाली चातुर्मास एवं बगड़ी में मर्यादा महोत्सव करने के बाद क्या मेवाड़ जाना है? वहां एक दुविधा है। उदयपुर और भीलवाड़ा दोनों चातुर्मास के प्रार्थी हैं। किसी एक क्षेत्र को चातुर्मास देकर एक को नाराज करना भारी पड़ सकता है। दूसरी बात, अंतर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्स राजसमंद में हो,

"गुरु और शिष्य के बीच परस्परोपग्रह होता है। गुरु बनाना चाहते हैं और हम बनना न चाहें तो कार्य नहीं होगा। हम बनना चाहें और गुरु न बनाना चाहें तो भी कुछ नहीं होगा। इसलिए परस्पर में उपग्रह आवश्यक है। जहां शिष्य लेना चाहते हैं और गुरु देना चाहते हैं, वहां तादात्म्य स्थापित होता है। यही परस्परोपग्रह का सुन्दर प्रयोग है।"

यह भी कठिन लगती है। तीसरी बात, साधन से सदा यात्रा करना अच्छा नहीं लगता। यह समय भी बहुत कीमती है, केन्द्रित होकर काम करने का है। क्या बगड़ी के बाद सीधे लाडनूं पहुंचना ठीक नहीं रहेगा?' महाप्रज्ञ मेरे चिन्तन से पूर्ण सहमत हो गए। मैंने कहा–'सप्ताहभर और सोच लिया जाए। उसके बाद निर्णय करेंगे।'

• १ जुलाई १९९०। अणुव्रत वर्ष के शुभारम्भ के अवसर पर हमने (मैंने और युवाचार्यजी ने) संयुक्त रूप में एक संदेश दिया। अ.भा. अणुव्रत समिति के विशेष अनुरोध पर वह तैयार किया गया। उसका देशभर में अच्छा उपयोग हुआ। संदेश कुछ लम्बा अवश्य है, पर उसमें सामयिक समस्याओं को उनके समाधान के साथ प्रस्तुत किया गया है।

• २७ अगस्त १९९० को हम तीनों (मैं, युवाचार्य और महाश्रमण) बैठे। आगामी यात्रा सम्बन्धी एक लिखित निर्णय तैयार किया। चरमोत्सव के अवसर पर इस संदर्भ में लोगों को जानकारी देनी है।

मूल बात है अंतरंग शुद्धता

• २१ अप्रैल १९९२। एक तरफ संघ की प्रतिष्ठा बढ़ रही है। राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिल रही है। लोग आशाभरी नजर से हमारी ओर निहार रहे हैं। दूसरी ओर संघ की आंतरिक स्थिति संतोषजनक नहीं है। संस्कार-निर्माण एवं व्यक्तित्व-निर्माण का काम जिस तीव्र गति से होना चाहिए, नहीं हो पा रहा है। क्या यह चिन्ता का विषय नहीं है? आज रात महाप्रज्ञ, महाश्रमण और संघ परामर्शक (मुनि मधुकर) के साथ विचार-विमर्श किया, गहरा चिन्तन किया गया। इस विषय में और भी चिन्तन चले, ऐसा निर्णय हुआ।

• २३ अप्रैल १९९२। आजकल चिन्तन गोष्ठियां चल रही हैं। कल रात युवाचार्य महाप्रज्ञ, महाश्रमण मुदित, मुनि मधुकरजी, मुनि सुखलालजी और मुनि दुलहराजजी मेरे उपपात में बैठे। चिन्तन चला। आज फिर चलेगा। कल के चिन्तन के निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

◈ अक्षय तृतीया पर्व के उपलक्ष्य में त्रिदिवसीय आध्यात्मिक अनुष्ठान का रूप निश्चित किया जाए।

◈ चैत्र और आश्विन–इन दो महीनों में किसी विशेष तप अनुष्ठान का प्रारंभ किया जाए।

◈ अहिंसा प्रशिक्षण का उपक्रम साधु संघ में पहले चले। उसका क्या रूप हो, चिन्तन किया जाए।

• २४ अप्रैल, १९९२ शुक्रवार। कल रात फिर गोष्ठी हुई। उसी चर्चा को आगे बढ़ाया। कुछ रूप बना है। चिन्तन का एक बिन्दु था–विनम्रता, सहिष्णुता, करुणा आदि के संस्कार पुष्ट कैसे हों? सबने अपने-अपने विचार व्यक्त किए। साप्ताहिक संकल्प की बात सामने आई। नौ व्यक्ति कल से प्रायोगिक रूप में संकल्प करें और व्यवहार में भी उसका कोई रूप बने। संकल्प करनेवाले किसी भी स्थिति में आवेश न करें, सहिष्णुता बढ़ाएं और विनम्रता रखें। साधना का क्या रूप बने, यह सोचा जा रहा है। मूल बात है अंतरंग शुद्धता की। उसका प्रभाव तो सहज ही होगा।

• २१ जुलाई १९९२, मंगलवार। आज महीने का छठा दिन है। रात को युवाचार्य महाप्रज्ञ मेरे उपपात में बैठे। चिन्तन चला। संघीय दृष्टि से क्या-क्या करना चाहिए? यह चिन्तन का मुख्य मुद्दा रहा। काफी अच्छे विचार सामने आए। आगे और भी चिन्तन करना है। दायित्व अच्छी तरह समझें और निभाएं, यह अपेक्षित है। केवल मेरे भरोसे ही क्यों रहे? स्वयं स्वावलंबी बनकर कार्य करना चाहिए।

• १५ सितम्बर १९९२। आजकल हमारी अंतरंग परिषद की गोष्ठियां हो रही हैं। संघ की अंतरंग व्यवस्था का चिन्तन चल रहा है। साधुओं, साध्वियों, समणियों और मुमुक्ष बहनों की सुव्यवस्था कैसे हो। भिक्षु चेतना वर्ष के चिन्तनीय बिन्दुओं में यह एक मुख्य विषय है। महाप्रज्ञ, महाश्रमण और महाश्रमणी, तीनों मेरे उपपात में बैठते हैं। चर्चा चलती है। मेरा ध्यान है कि अब मैं बिल्कुल तटस्थ साधना करूं। व्यवस्था-पक्ष से निरपेक्ष बन जाऊं। पर अब तक स्वीकृति नहीं मिल रही है।

• जनवरी १९९३। बीदासर-प्रवास में साधु-साध्वियों की कई संयुक्त गोष्ठियां हुईं। गोष्ठियों में अनेक मुद्दों पर चर्चा की गई। 'भिक्षु चेतना वर्ष' की दृष्टि से कुछ बोलों पर विशेष चर्चा हुई। चर्चा का क्रम यह रहा–पहले हम चारों (मैं, महाप्रज्ञ, महाश्रमण और महाश्रमणी) की अंतरंग गोष्ठी होती, फिर कुछ अग्रगण्य साधु-साध्वियों की गोष्ठी होती, उसके बाद सब अग्रगण्य साधु-साध्वियों की संभागिता में चिन्तन चलता और अन्त में एक जनरल गोष्ठी बुलाई जाती। इस प्रकार सबके बीच में मुक्त रूप से चिन्तन-मन्थन का क्रम चलता। इन गोष्ठियों की चर्चा-परिचर्चा के निष्कर्ष प्रस्तुत होने के बाद पुनः अंतरंग गोष्ठी में चिन्तनपूर्वक निर्णय लिए जाते। यह क्रम बहुत प्रशस्त रहा। सबके मन में संतोष परिलक्षित हुआ।

दिल्ली यात्रा

• १९ अगस्त १९९३। युवाचार्य महाप्रज्ञ के साथ बात हो रही थी। यात्रा के संदर्भ में उन्होंने कहा–'दिल्ली की आगामी यात्रा नियति का परिणाम है। यह किसी ने करवाई नहीं है। इस संबंध में कोई कल्पना भी नहीं थी। लगता है, यह यात्रा अद्भुत परिणाम लाएगी। अब तक की सारी यात्राएं पीछे रह जाएंगी। पर इसके लिए भारी परिश्रम करना होगा, करना ही होगा।'

• २० अगस्त, शुक्रवार। आज रात्रि में पुनः चिन्तन करने के लिए बैठे। दिल्ली यात्रा की गुरुता का आकलन किया। वहां क्या-क्या किया जा सकता है, संभावनाओं पर ध्यान दिया। यह यात्रा सब यात्राओं से निराली यात्रा हो, इस दृष्टि से गंभीर चिन्तन किया जाए और पूरे वर्ष का खाका बनाया जाए। एक उपासक श्रेणी का नया रूप निर्णीत हो। कम-से-कम पचीस व्यक्तियों से उसका प्रारंभ हो, ऐसा निर्णयात्मक चिन्तन चला। गुरुदेवः शरणम्।

• १६ सितम्बर १९९३। आज दिन में रामजीसिंह से बात हुई। श्रीचंद बैंगानी और बच्छराज नाहटा दोनों वार्तालाप में साथ रहे। हम तीनों (मैं, महाप्रज्ञ और महाश्रमण) थे। विश्वविद्यालय और विश्व भारती को लेकर लगभग दो घंटे तक चर्चा चली। अच्छा वातावरण बन रहा है। प्रस्तुत संदर्भ में आगे भी चर्चा चलती रहेगी।

• १९ सितम्बर १९९३, राजलदेसर। आज एक नया चिन्तन सामने आया। बातचीत के प्रसंग में गुलाबचन्दजी चिण्डालिया ने कहा–'आप संवत्सरी के दिन फुहारा (इनहेलर) क्यों नहीं लेते? इसके माध्यम से दी जाने वाली दवा पेट में नहीं जाती। यह श्वासनली से होकर सीधी फेफड़ों में पहुंचती है। इस दृष्टि से यह आहार नहीं है।' इस संदर्भ में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने संतों की संगोष्ठी में परामर्श किया। मैंने कहा–'प्रस्तुत प्रसंग सीधा मेरे से संबंधित है। इसलिए इस विषय में मैं निर्णय नहीं करता, अन्यथा मैं स्वयं निर्णय कर लेता।' मेरे इस कथन पर युवाचार्यजी के सान्निध्य में साधु बैठे। सबने चिन्तन किया और निर्णय लिया कि

> "रात को युवाचार्य महाप्रज्ञ मेरे उपपात में बैठे। चिन्तन चला। संघीय दृष्टि से क्या-क्या करना चाहिए? यह चिन्तन का मुख्य मुद्दा रहा। काफी अच्छे विचार सामने आए। आगे और भी चिन्तन करना है। दायित्व अच्छी तरह समझें और निभाएं, यह अपेक्षित है। केवल मेरे भरोसे ही क्यों रहे? स्वयं स्वावलंबी बनकर कार्य करना चाहिए।"

इसमें कोई बाधा नहीं है। क्योंकि हमारी परम्परा के अनुसार आहार-पानी का उपयोग नहीं करना है। यह आहार नहीं है। फलतः संवत्सरी के दिन फुहारा लिया जा सकता है।

• ६ जनवरी १९९४, लाडनूं। सैकड़ों किमी. की यात्रा करके साधु-साध्वियों के वर्ग यहां पहुंचते हैं। सबके मन में मर्यादा महोत्सव में सम्मिलित होने का आकर्षण रहता है। उनके समय का समुचित उपयोग हो और उन्हें कुछ नया चिन्तन मिलता रहे, इस दृष्टि से समय-समय पर गोष्ठियों का आयोजन भी किया जाता है। आज शरदकालीन सत्र के शुभारम्भ रूप में एक गोष्ठी आयोजित हुई। गोष्ठी का विषय था–जीवनशैली। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने वक्तव्य में जीवन शैली के प्रशिक्षण की चर्चा करते हुए तीन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला। वे तीन बिन्दु हैं–'सम्यग्दर्शनप्रधान जीवनशैली, अनेकान्तप्रधान जीवनशैली और अहिंसाप्रधान जीवनशैली।'

संघ का भविष्य

• २६ जुलाई १९९४। कल रात प्रतिक्रमण के बाद हम दोनों (मैं और महाप्रज्ञजी) लम्बे समय तक बैठे। काफी बातें हुईं। संघ का भविष्य प्रभावी कैसे रहे, इस बिन्दु पर खुलकर चर्चा हुई। भविष्य में संभावित कठिनाइयों पर भी विचार-विमर्श हुआ। बीच में महाश्रमण और महाश्रमणी का प्रसंग भी आया। इनका संघ में प्रभाव है वह कैसे सुरक्षित रहे। मेरा त्याग भी प्रभावी रहे। इस रूप में अनेक बिन्दुओं पर विशद चर्चा हुई।

• २ अगस्त १९९४। आज प्रातः मैं पट्ट से नीचे उतरा। आंगन पर बिछे बिछौने पर योगासन किया और वहीं बैठ गया। महाप्रज्ञजी आए और मेरे उपपात में बैठ गए। कुछ चिन्तनशील श्रावक भी आ गए। चिन्तन गोष्ठी का रूप बन गया। संघीय संस्थाओं के बारे में चिन्तन किया। कुछ अन्य बिन्दु भी थे। उन्हें मुख्य रूप से चार मुद्दों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

१. संघ की केन्द्रीय संस्थाओं का परिसीमन २. अंधेरी ओरी (केलवा) का भावी प्रारूप ३. आवासीय शिक्षा का प्रबन्धन ४. चुनाव आयोग द्वारा प्रस्तावित चुनावशुद्धि अभियान में हमारा योगदान।

चारों मुद्दों पर अच्छा चिन्तन हुआ। कार्यकर्ताओं ने भी खुले रूप में अपने विचार रखे। एक सुझाव आया कि इन सारे मुद्दों पर विचार होता रहे तथा इसके लिए एक कार्यशाला का आयोजन भी किया जाए। सुझाव स्वीकार किया गया। शीघ्र ही ऐसी कार्यशाला आयोजित करने का निर्णय ले लिया गया। यह निर्णय उपयोगी लगा, इसलिए इसकी क्रियान्विति की प्रक्रिया शुरू कर दी गई।

• १७ अगस्त १९९४। इन दिनों भारतीय संसद में जे.पी.सी. की रिपोर्ट के कारण अभूतपूर्व गतिरोध उत्पन्न हो गया। देश के कई प्रबुद्ध व्यक्ति हमारे पास आए और बोले–'ऐसे समय में आप अपने आध्यात्मिक ओजस का उपयोग करें।' इस विषय में महाप्रज्ञजी से विचार-विमर्श किया और हमने संयुक्त रूप में एक सन्देश तैयार किया।

अपूर्व दस्तावेज

• २५ अक्टूबर १९९४, मंगलवार। आजकल हम सायं प्रतिक्रमण के बाद अर्हत्-वन्दना करके महाप्रज्ञजी के कक्ष में बैठते हैं। घंटाभर अंतरंग चिन्तन करते हैं, संघीय दृष्टि से विचार-विमर्श करते हैं। एक

दिन अचानक मैंने कहा–'देखो, मेरा पद-विसर्जन जो है, वह वास्तविक है। इसे औपचारिक समझने की भूल कोई न करे। लो लिखो, मैं तुम्हें लिखाता हूं।' यों कहकर मैंने लिखाना शुरू किया। एक पूरा आलेख लिखा दिया। पहले कोई चिन्तन नहीं किया। अचिन्तन में से चिन्तन निकल गया। वह ऐतिहासिक आलेख बन गया। महाप्रज्ञ के लिए अपूर्व निधि बन गया। उन्होंने उसे सन्त-सभा में सुनाया। सबको आश्चर्य और आनन्द हुआ। अध्यात्म साधना केन्द्र के लिए विशिष्ट यादगार बन गई। उस आलेख से महाप्रज्ञजी बहुत प्रभावित हुए। वे उसे अपूर्व दस्तावेज मान रहे हैं।

● ४ दिसम्बर १९९४। कल रात हमने एक योजना की बात सोची है। हमारे चिन्तन का मुख्य बिन्दु यह है कि समण साधना का एक त्रिवर्षीय कार्यक्रम चले। समाज के प्रबुद्ध और प्रौढ़ श्रद्धालु व्यक्ति इस क्रम में आएं। कुछ व्यक्ति तैयार हो रहे हैं। योजना चलने जैसी है।

पृथक् विहार

सितम्बर १९९६। एक नया चिन्तन दिमाग में आया है कि महाप्रज्ञजी को अलग विहार करा दिया जाए। अच्छा तो हो कि चौमासा अलग ही करें। पर इस बार गंगाशहर की घोषणा कुछ ऐसी हो गई है कि चातुर्मास अलग कराने में कठिनाई है। पर मर्यादा महोत्सव अलग करा दिया जाए तो क्या हर्ज है। यह निर्णय अवश्य करना है।

● २३ अक्टूबर १९९६। भाइयो! मैं तो बहुत घूम चुका हूं। मेरे आठों पूर्वाचार्यों ने जितनी यात्राएं कीं, संभवतः उतनी मैंने अकेले ने की हैं। आचार्य महाप्रज्ञजी अभी नहीं घूमे हैं। आचार्यों का काम घूमना, अपनी पूंजी की सुरक्षा करना और उसे वृद्धिंगत करना है। आज हमारे पास लोककल्याण के लिए कार्यक्रम भी हैं। पर महाप्रज्ञजी भी स्वामीजी की अवस्था में आ गए हैं। ऐसी स्थिति में आगे के कार्यक्रमों पर हमें चिन्तन करना है।'

● २१ नवम्बर १९९६। एक छोटी साध्वी ने दिमागी सनक के कारण एक समस्या खड़ी कर दी। स्थिति सामने आई। उससे बातचीत की। समझाने का प्रयास किया। मुश्किल से भूल स्वीकार की। उसे प्रायश्चित्त दिया। जहां संघ होता है, वहां छोटी-बड़ी समस्या आती रहती है। कल ही इस विषय में महाप्रज्ञजी से चर्चा हुई। चर्चा के दौरान मैंने कहा–'हमारी व्यापकता बढ़ रही है, यह अच्छी बात है। पर अंतरंग स्थिति को सुदृढ़ रखना ज्यादा जरूरी है।'

लक्ष्य क्या है?

● २२ नवम्बर १९९६। आज प्रातः साधुओं की एक छोटी गोष्ठी की गई। महाप्रज्ञजी भी वहां उपस्थित थे। उनके समक्ष साधुओं को शिक्षा दी। उसके बाद मैंने पूछा–'तुम्हारा लक्ष्य क्या है?' कुछ मुनियों ने अपनी सोच के अनुसार उत्तर दिया। मैं जैसा सीधा-सपाट उत्तर चाहता था, वैसा नहीं मिला। आखिर उन्हें बताया गया कि साधु का मूल लक्ष्य होता है–अच्छा साधु बनना। कैसा होता है अच्छा साधु? इसकी एक मानसिक प्रतिमा का निर्माण होना चाहिए। उस पंचांग प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार हो सकता है।

सिर/मस्तिष्क	उपशान्त कषाय
दायां हाथ	विनम्रता और अनुशासन

"'लो लिखो, मैं तुम्हें लिखाता हूं।' यों कहकर मैंने लिखाना शुरू किया। एक पूरा आलेख लिखा दिया। पहले कोई चिन्तन नहीं किया। अचिन्तन में से चिन्तन निकल गया। वह ऐतिहासिक आलेख बन गया। महाप्रज्ञ के लिए अपूर्व निधि बन गया।"

बायां हाथ	सामंजस्य
दायां पैर	सहिष्णुता
बायां पैर	सेवा-सहयोग

इस रूप में पंचांग प्रतिमा बन जाती है। प्रतिमा-निर्माण के बाद एक-एक अंग पर अलग-अलग ध्यान किया जाए। कम-से-कम दो मिनट का ध्यान प्रत्येक अंग पर करने का लक्ष्य रहे। ऐसा करने से वैसी परिणति शुरू हो जाएगी। जैन वाङ्मय में कहा भी है–**जं जं भावं आविसइ, तं तं भाव परिणमइ**–जैसी-जैसी भावना होती है, वैसी-वैसी परिणति हो जाती है।

● १ दिसम्बर १९९६। अब ३० दिसम्बर निकट आ रहा है। आचार्य महाप्रज्ञजी का विहार होना है। हमें यहां रहना है। नया नया लगता है। कैसा-कैसा ही लगता है। कौन-कौन साधु साथ रहेंगे, कौन-कौन साध्वियां रहेंगी, यह निर्धारण करना है। उचित समय पर सब हो जाएगा। इस प्रसंग को लेकर सब जगह हलचल है, पर पहले से ही चिन्तनपूर्वक वैसा निर्णय किया गया है। अब इसमें परिवर्तन कैसे हो सकता है। लगता है कि सहज ही एकान्तवास हो जाएगा। साधु-साध्वियों में कौन कहां रहेगा, यह तय करना है। एक नई व्यवस्था-सी करनी होगी।

● १६ दिसम्बर १९९६। अब हमने बैठकर तय कर लिया है कि यहां कौन-कौन रहेंगे और महाप्रज्ञजी के साथ विहार कौन-कौन करेंगे। यहां हम व्यवस्थित कार्यक्रम चलाएंगे। मुमुक्षु बहनें और समणियां यहां हैं। विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, प्रोफेसर आदि हैं। उनकी दृष्टि से कोई सुचिन्तित क्रम चलाएंगे। प्रवचन आदि कार्यक्रम कैसे होंगे, क्या होंगे, यह विचार कर तय करेंगे। यह पहला ही अवसर है, जब हमारा इस रूप में अलग रहना होगा। सबको आश्चर्य हो रहा है।

● २१ दिसम्बर १९९६, शनिवार। आज आगम-पाठ के समय महाप्रज्ञजी बोले–'अब विहार के बीच में दिन कम ही रह गए। अलग रहना पड़ेगा। इतना लम्बा अन्तराल इधर में नहीं रहा। अब सामने दीख रहा है। कैसे रहेंगे? क्या होगा?' महाप्रज्ञजी की मानसिक दुविधा को दूर करते हुए मैंने कहा–'अच्छा ही रहेगा। नया अनुभव होगा।'

● २९ दिसम्बर १९९६, शनिवार। आज साधु-साध्वियों की सामूहिक गोष्ठी हुई। अच्छे विचार सामने आए। महाप्रज्ञजी के विहार की चर्चा भी चली। मैंने कहा–'महाप्रज्ञजी विहार करें और हम यहां रहें, इस बात को अधिक तूल नहीं दिया जाए। यह निर्णय सुविचारित है और सही है।' एक सुझाव आया कि इस निर्णय के पीछे जो रहस्य है, वह कुछ प्रकट हो जाए तो अच्छा रहे। प्रस्तुत सन्दर्भ में मैंने अपना विचार रखते हुए कहा–'अभी रहस्य को रहस्य ही रहने दो, यही अच्छा है। वैसे हम दोनों एक हैं। तुलसी महाप्रज्ञ है और महाप्रज्ञ तुलसी है। सबको इनके अनुशासन में रहना है। मेरा विश्वास है कि चाड़वास का मर्यादा महोत्सव सफल होगा। लोग इसे याद करेंगे।'

१०

वर्धापना और अभ्यर्थना

आचार्य तुलसी की अभिवंदना एक तेजस्वी व्यक्तित्व की अभिवंदना है, एक क्रांतिकारी कर्तृत्व की अभिवंदना है, एक वर्चस्वी अनुशास्ता की अभिवंदना है, मेरे जीवन के भाग्यविधाता की अभिवंदना है। आचार्य तुलसी जीवन-निर्माण के कुशल शिल्पी थे। जीवन में मैंने जो कुछ भी पाया, उनके अनुग्रह और आशीर्वाद से पाया। जब जब उनकी अभिवंदना का अवसर आता, मुझे अतिरिक्त आह्लाद की अनुभूति होती। अभिवंदना के उन क्षणों में मैंने अनेक रूपों में अपनी भावनाएं व्यक्त की। आचार्यवर ने भी अनेक अवसरों पर मेरे कार्यों का उल्लेख करते हुए उदात्त भावनाएं व्यक्त कीं। वे भावनाएं आचार्यवर की दैनंदिनी में संरक्षित हो गई।

• १८ सितम्बर १९६१। भाद्रव शुक्ला नवमी का दिन। मुनि नथमलजी ने शब्दचित्र के माध्यम से मेरे जीवन के सैंतालीस वर्षों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर कविता-पाठ किया। 'हम सब तुम्हारे साथ हैं'–कविता के इन बोलों ने जनता को मुग्ध कर दिया।

गुरुदेव का जन्मदिन। वर्धापन का प्रसंग। मैंने कुछ प्रश्न उपस्थित किए और वे प्रश्न बिना कुछ कहे उत्तर बन गए।

> "स्थानांग सूत्र के अनुसार गुरु के उपकार से ऋणमुक्त होना संभव नहीं है, फिर भी मैं अपने जीवन को उस दिन धन्य, कृतार्थ और सफल मानूंगा जब अपने गण में अनेक साधुओं को मुनि नथमलजी की तरह तैयार होते देखूंगा।"

• १० नवम्बर १९६१ को मैंने अपने जीवन की डोरी में ४८वीं गांठ लगाई। प्रातःकाल आर्षवाणी में बधाई प्राप्त करने का वह प्रथम अवसर था। सार्वजनिक रूप में जन्मदिन का कार्यक्रम प्रवचन पण्डाल में था। वर्धापन गीतों और मंगल भावाभिव्यक्तियों के बीच मुनि नथमलजी खड़े हुए। उन्होंने मेरे सामने प्रश्न उपस्थित करते हुए कहा–'नया वर्ष नया इतिहास और नया कर्तृत्व लेकर आता है। आपका नया कार्यक्रम क्या है? आगे आपका कर्तृत्व क्या है? आपने अग्रिम वर्ष के लिए क्या योजना बनाई है?' अपने प्रश्न को उत्तरित करते हुए उन्होंने आगे कहा–'ज्योतिर्विदों का कथन है कि आप एकांतवास लेकर यौगिक साधना में संलग्न होंगे। मैं शुभकामना करता हूं कि आपका योगाभ्यास शीघ्रातिशीघ्र हम लोगों के लिए पथदर्शन बने।'

प्रार्थना का अंतःस्वर

• ५ सितम्बर १९६५, नई दिल्ली। पट्टोत्सव का कार्यक्रम। मुनि नथमलजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'मैंने आचार्यश्री को मुनि, अध्यापक, आचार्य, प्रवर्तक आदि अनेक रूपों में देखा है। अब मैं देख रहा हूं कि आप अरूप की ओर बढ़ रहे हैं। वह अरूप रूप ऐसा है, जिसे न शब्द पकड़ पाते हैं और न कल्पना बांध पाती है। मेरी दृष्टि में आचार्यवर का वह रूप एक योगी का रूप है। आचार्यवर ने बाहर बहुत किया है, अब आप भीतर में जो कुछ कर रहे हैं, वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूं कि आप बाहर बहुत रहे, पर अब भीतर आएं।'

दायित्व के प्रति उऋण होने का भाव

• अक्टूबर १९६७, अहमदाबाद। 'स्थानांग सूत्र के अनुसार गुरु के उपकार से ऋणमुक्त होना संभव नहीं है, फिर भी मैं अपने जीवन को उस दिन धन्य, कृतार्थ और सफल मानूंगा जब अपने गण में अनेक साधुओं को मुनि नथमलजी की तरह तैयार होते देखूंगा। अनेक विदुषी साध्वियां जैनशासन को शिखर पर चढ़ाकर मानवता को सुशोभित करेंगी और युगीन समस्याओं के समाधान में धर्मसंघ की उपयोगिता हो जाएगी।

युगप्रधान अलंकरण

• २ फरवरी १९७१, बीदासर। (वि. सं. २०२७, माघ शुक्ला सप्तमी) का दिन। मध्याह्न का समय। 'दुलीचंदजी सेठिया हाई स्कूल' का विशाल प्रांगण। चारों ओर जनता का पारावार उमड़ रहा था। ठीक साढ़े ग्यारह बजे हम बांठिया-भवन से चले और मर्यादा-महोत्सव के लिए निर्मित पण्डाल में पहुंच गए। १११ साधुओं और ४०६ साध्वियों का विशाल समुदाय मेरे परिपार्श्व में था। कार्यकर्ताओं की सजगता से पण्डाल में अच्छी व्यवस्था थी। साध्वियों ने मंगल संगान किया। मुनि नथमलजी खड़े हुए। उन्होंने चतुर्विध धर्मसंघ की ओर से 'युगप्रधान आचार्य' की उपाधि देने की सूचना देते हुए कहा–'आचार्यप्रवर साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं को समय-समय पर सम्मानित करते रहे हैं। आज संघ आपको सम्मानित कर रहा है।' तेरापंथ के इतिहास में वह प्रथम अवसर था, जब संघ द्वारा आचार्य को इस रूप में सम्मानित किया गया हो। उस अभूतपूर्व सूचना ने सबको हर्षोत्फुल्ल बना दिया।

प्रवचन-पण्डाल में उपस्थित बीस हजार से अधिक लोग उद्ग्रीव होकर बैठ गए। उनके नेत्र मुझ पर केन्द्रित थे और कान कुछ नया सुनने के लिए उत्सुक हो रहे थे। कुछ प्रबुद्ध और तार्किक लोगों के मन में एक जिज्ञासा भी उभरी कि युगप्रधान आचार्य कौन हो सकता है? तेरापंथ संघ ने आचार्य तुलसी के

व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को किन मानकों पर कसा है? उनकी मौन जिज्ञासा को समाधान मिला चतुर्विध संघ द्वारा समर्पित अभिनंदन पत्र से। उसका वाचन मुनि नथमलजी ने किया।

चतुर्विध धर्मसंघ की ओर से जिस श्रद्धा एवं उदात्त भावना से मेरे कर्तृत्व को नवाजा गया, उसे उतने ही सम्मान के साथ स्वीकार करना मेरा दायित्व था। इसलिए मैंने पट्ट से नीचे उतरकर अभिनन्दन-पत्र ग्रहण किया। दर्शकों के लिए यह भी एक नया प्रसंग था। संघ ने मुझे सम्मानित किया और मैंने संघ को सम्मान दिया। सामूहिक हर्षध्वनि के साथ उपस्थित जनसमूह ने उस उपक्रम की सराहना की।

• १० अगस्त १९७१, लाडनूं। पट्टोत्सव का कार्यक्रम बहुत उत्साह के साथ मनाया गया। मुनि नथमलजी ने अपनी नई कल्पना को कविता के माध्यम से स्वर दिया। उसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं–

कुछ लोग चाहते हैं
तुम रक्षिता ही रहो
रोहिणी बनने का यत्न मत करो
मैं चाहता हूं तुम रोहिणी बनो
क्योंकि रक्षिता
बहुत पैदा होती हैं इस दुनिया में
रोहिणी का जन्म
कभी-कभी होता है।

अमृत महोत्सव

• २१ जनवरी १९८३, नाथद्वारा। सन् १९८५ में मेरे आचार्यकाल का पचासवां वर्ष प्रारंभ होने वाला है। उस उपलक्ष्य में युवाचार्य महाप्रज्ञ ने 'अमृत महोत्सव' का समायोजन करने की योजना प्रस्तुत की।

• १ अक्टूबर १९८३ का दिन। उदयपुर से लगभग पांच सौ व्यक्तियों का समूह बालोतरा पहुंचा। आनेवाले लोगों में उत्साह था और एक साथ आने का विशेष प्रयोजन भी था। वे उदयपुर में एक विशिष्ट आयोजन की प्रार्थना लेकर आए थे। उसका संबंध मेरे साथ था। सन १९३६ में मेवाड़ संभाग के गंगापुर कस्बे में पूज्य गुरुदेव कालूगणी ने तेरापंथ का शासन सूत्र मुझे संभलाया। उस ऐतिहासिक प्रसंग के पांच दशक पूरे होनेवाले थे। उस उपलक्ष्य में चतुर्विध धर्मसंघ एक कार्यक्रम आयोजित करना चाहता था। इस विषय में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। पर धर्मसंघ के आग्रहपूर्ण अनुरोध को टालना कठिन हो गया। उसके साथ युवाचार्य महाप्रज्ञ का भी बल था, इसलिए मैंने उस आयोजन के बारे में युवाचार्यजी को ही अधिकृत कर दिया।

• ७ जून १९८४। जैन विश्व भारती, लाडनूं। मंगल भावना समारोह का आयोजन। केन्द्रीय विद्यालय जयपुर के अंग्रेजी प्राध्यापक सोहनलाल गांधी ने १९८५ में मनाए जाने वाले अमृत महोत्सव की चर्चा की। शुभकरण दसानी का सुझाव था–अमृत महोत्सव को चार चरणों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर आयोजित किया जाए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अमृत महोत्सव के संदर्भ में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा–'काम ऐसा होना चाहिए, जिसमें प्रवृत्ति कम हो और निष्पत्ति अधिक। कुछ ऐसे मानवहितकारी आयामों का उद्घाटन

"काम ऐसा होना चाहिए, जिसमें प्रवृत्ति कम हो और निष्पत्ति अधिक। कुछ ऐसे मानवहितकारी आयामों का उद्घाटन हो, जिनके माध्यम से मानवीय एकता, मैत्री, सौहार्द आदि मूल्यों का व्यापक स्तर पर प्रसार हो।"

हो, जिनके माध्यम से मानवीय एकता, मैत्री, सौहार्द आदि मूल्यों का व्यापक स्तर पर प्रसार हो।' विचारों का जो नया सिलसिला चला, उसके आधार पर यह माना जा सकता है कि अमृत महोत्सव के संदर्भ में एक उद्देश्यपूर्ण चिन्तन की शुरुआत हो गई।

● मई १९८५। पुर में हम चार दिन रहे। चार दिनों में अमृत महोत्सव वर्ष में करणीय कार्यों की दृष्टि से कुछ सृजनात्मक बिन्दु निर्धारित किए गए। कुछ बिन्दु पहले से सुचिन्तित थे। उनके साथ कतिपय कार्य और जोड़ दिए गए। समग्र रूप से करणीय कार्यों की सूची इस प्रकार है–

१. पचास दिनों की अमृत कलश पदयात्रा। २. अणुव्रत ग्रामों का निर्माण। ३. अणुव्रत बाल भारती का निर्माण। ४. मद्य-निषेध अभियान। ५. रूढ़िमुक्ति की दिशा में महिलाओं के लिए पंचसूत्री अभियान। ६. देशभर में जप, तप और आयंबिल का अनुष्ठान। ७. युवाचार्य महाप्रज्ञ द्वारा मेरी जीवनी का आलेखन। ८. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा द्वारा मेवाड़ यात्रा का आलेखन।

● १५ सितम्बर १९८५। अमृत महोत्सव का एक अविस्मरणीय प्रसंग बना युवाचार्य-आचार्य का सार्वजनिक केश लोच। इस संदर्भ में आचार्यवर ने लिखा–

प्रातः नौ बजे अमृत समवसरण में हजारों लोगों की उपस्थिति में युवाचार्य एवं आचार्य का सार्वजनिक केशलोच हुआ। जनता ने आश्चर्यभरी निगाहों से उस दृश्य को देखा। अच्छा आनन्द रहा। रविवार होने से लोग भी बहुत थे। कार्यक्रम लम्बा चला और प्रभावकारी रहा। उस अवसर पर उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए मैंने कहा–'केशलोच साधु जीवन की साधना का एक अनिवार्य अंग है। यह कोई नया या अद्भुत कार्य नहीं है। जनता के बीच मैं अनेक बार लोच करा चुका हूं। आज के कार्यक्रम में कोई नवीनता है तो वह यह है कि आज युवाचार्य महाप्रज्ञ का भी मेरे साथ जनता के बीच में केशलोच हो रहा है। हमारा केशलुंचन प्रदर्शन नहीं, दर्शन है इसलिए दर्शक इस दृश्य को देखें ही नहीं, साथ में कुछ-न-कुछ संकल्प अवश्य लें।'

● २२ सितम्बर १९८५। पचासवां पट्टोत्सव। अमृत समवसरण के षट्कोणीय प्रांगण में जन आकलन के अनुसार पैंतीस हजार लोगों की उपस्थिति थी। जनता बहुत थी और शान्ति उससे भी अधिक थी। इतनी बड़ी उपस्थिति में इतनी शान्ति आश्चर्य का विषय बन रही थी। जितनी शान्ति थी, उससे भी अधिक उल्लास और उत्साह परिलक्षित हो रहा था। उस दिन का कार्यक्रम श्रव्य भी था और दृश्य भी था। यह सारी संरचना अमृत महोत्सव के प्रमुख कल्पनाकार युवाचार्य महाप्रज्ञ ने की।

पारमार्थिक शिक्षण संस्था की मुमुक्षु बहनों के मंगल संगान से कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। देवेन्द्रकुमार कर्णावट ने मेरे शासनकाल के इतिहास की संक्षिप्त प्रस्तुति दी। स्वागताध्यक्ष महन्त जयरामदासजी का वक्तव्य हुआ। कुछ गीत गाए गए। राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल देवपुरा बोले। युवाचार्य महाप्रज्ञ का अभिभाषण हुआ। उनके नेतृत्व में साधु-साध्वियों द्वारा एक बधाई गीत गाया गया। गीत की प्रारम्भिक पंक्तियां ये हैं–

भैक्षव शासन के शृंगार,
मानवता के व्याख्याकार,
गण की आज बधाई लो।
गण की आब बढ़ाई जो॥

केन्द्रीय राज्यमंत्री श्री शिवराज पाटिल, प्रमुख गांधीवादी विचारक एवं गुजरात के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री बाबूभाई पटेल, सर्वोदयी विचारक श्रीमती निर्मला देशपाण्डे, स्थानीय कवि श्री अब्दुल गफ्फार आदि अनेक वक्ताओं ने अपने भावपूर्ण विचार प्रस्तुत किए। देश के विभिन्न भागों से समागत हजारों व्यक्तियों ने संकल्प पत्रों में अपने-अपने नाम अंकित कर उन्हें अमृत कलश में डाला। कार्यक्रम अच्छा रहा।

सन्तों के द्वारा अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया। साध्वियों ने अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में अनेक कलाकृतियों का निर्माण किया था। कार्यक्रम के बीच में अमृत कलश, तासक, टोपसियां, रजोहरण, माला आदि कलात्मक वस्तुएं उपहृत की गईं। युवाचार्यजी ने एक नूतन शॉल ओढ़ाकर सम्मान किया। मैंने युवाचार्य और महाश्रमणी के लिए रचित पद्यों को अपने हाथ से लिखा और उन पत्रों को अपने हाथ से ही दोनों को दिया। आदान-प्रदान का उपक्रम जनता के लिए आकर्षण का विषय बना रहा।

● १८ अक्टूबर १९८५। आज दीर्घ तपस्विनी साध्वी पन्नांजी को पारणा कराने साध्वियों के स्थान पर गए। उनके इक्यावन दिनों की तपस्या का पारणा था। मैंने और युवाचार्यजी ने एक साथ अपने हाथ से उनको ग्रास दिया। उसी समय एक दोहा कहा–

पन्ना दीर्घ तपस्विनी, इक्यावन दिन साज।
युवाचार्य आचार्य कर, करै पारणो आज॥

जैन एकता के लिए संकल्प

● १०,११ फरवरी १९८६। अमृत महोत्सव के लिए निर्धारित कार्यक्रमों का एक बिन्दु था जैन एकता की दिशा में काम करना। १० फरवरी को जैन समन्वय सम्मेलन का उद्घाटन सत्र था। समागत प्रतिनिधियों ने चिन्तनपूर्वक कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत किए। वे सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। जैन समन्वय सम्मेलन के समापन सत्र को संबोधित करते हुए मैंने कहा–संवत्सरी के एकीकरण के कार्य की शक्ति बढ़ाने के लिए मैं कुछ संकल्प स्वीकार करना चाहता हूं। जब तक सर्वसम्मति या बहुमत से इसके एक निर्णय की घोषणा न हो, तब तक मैं....

◇ स्वास्थ्य की अनुकूलता होते हुए चीनी और चीनी से बनी हुई किसी वस्तु का प्रयोग नहीं करूंगा।

◇ स्वास्थ्य की अनुकूलता होते हुए प्रतिदिन आधा घंटा खड़े-खड़े जप या ध्यान करूंगा।

◇ स्वास्थ्य की अनुकूलता होते हुए युवाचार्य महाप्रज्ञ प्रतिदिन एक घंटा खड़े-खड़े ध्यान करेंगे।

जैन योग पुनरुद्धारक

● १२ सितम्बर १९८६, लाडनूं। अमृत महोत्सव का पांचवां चरण। अमृत महोत्सव के प्रस्तुत चरण में ज्योंही मैंने अपने संकल्प को दोहराया, चतुर्विध धर्मसंघ ने अहोभाव के साथ उसकी सफलता के लिए मंगलकामना की। संघ की मौन अभिव्यक्ति को मुखर करने का दायित्व युवाचार्य महाप्रज्ञ ने निभाया। उनकी पद्यात्मक अभिव्यक्ति का नमूना यहां प्रस्तुत है–

भिक्षुगण का प्रवर नन्दन! यह तुम्हारे हाथ में है,
एकता को दृढ़ करो, हम सब तुम्हारे साथ में हैं।
एकता चारित्र बल से टिक रही है, फिर टिकेगी,
साधना को स्फूर्ति दो, हम सब तुम्हारे साथ में हैं।

“जनता बहुत थी और शान्ति उससे भी अधिक थी। इतनी बड़ी उपस्थिति में इतनी शान्ति आश्चर्य का विषय बन रही थी। जितनी शान्ति थी, उससे भी अधिक उल्लास और उत्साह परिलक्षित हो रहा था। उस दिन का कार्यक्रम श्रव्य भी था और दृश्य भी था। यह सारी संरचना अमृत महोत्सव के प्रमुख कल्पनाकार युवाचार्य महाप्रज्ञ ने की।”

साधना को चाहिए अनुशासना की छत्रछाया,
दृढ़ करो अनुशासना, हम सब तुम्हारे साथ में हैं।

अमृत महोत्सव का उपक्रम धर्मसंघ के लिए विशेष आह्लाद और प्रसन्नता का प्रसंग था। सबकी प्रसन्नता ने मेरी प्रसन्नता को बढ़ा दिया। उसकी अभिव्यक्ति अनुग्रह के रूप में हुई। उस अनुग्रह के प्रथम अधिकारी हैं–युवाचार्य महाप्रज्ञ। पचास वर्षों की इस सुदीर्घ अवधि में युवाचार्यजी के समर्पण और विशेष सहयोग का अंकन करते हए उन्हें 'जैन योग के पुनरुद्धारक' संबोधन से संबोधित किया। उस संदर्भ में मैंने कहा–मेरे जीवन की अनेक उपलब्धियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है–युवाचार्य महाप्रज्ञ। मैंने एक योग्य और योग्यतर ही नहीं, योग्यतम उत्तराधिकारी को पाया है। मैं चाहता हूं कि युवाचार्यजी मुझे संघीय व्यवस्थाओं से शीघ्र ही उसी प्रकार निश्चिन्त बनाएंगे, जिस प्रकार जयाचार्य को युवाचार्य मघवा ने बनाया था।

पचास वर्ष पहले विक्रम संवत् १९९३, भाद्रपद शुक्ला नवमी के दिन मैंने विधिवत् दायित्व संभाला था। उस दिन मुझे नई पछेवड़ी (चद्दर) ओढ़ाई गई थी। अमृत महोत्सव के ऐतिहासिक महत्त्व को ध्यान में रखकर उस दिन भी युवाचार्य महाप्रज्ञ ने मुझे पछेवड़ी ओढ़ाई और धागों से बनाई गई एक माला उपहृत की।

● १४ नवम्बर १९८५ का दिन। कार्तिक शुक्ला द्वितीया का दिन। मेरे जन्म के साथ जुड़ा हुआ है यह दिन। इकहत्तर वर्ष पहले इसी दिन मेरा जन्म हुआ था। सदा की भांति प्रातःकाल मैं जल्दी उठ गया, बल्कि सदा की अपेक्षा जल्दी उठा। ध्यान, जप, स्वाध्याय किया। लगभग पांच बजे युवाचार्य महाप्रज्ञ आए। उन्होंने समग्र धर्मसंघ की ओर से मंगल भावना करते हुए आशुकविता के रूप में दो श्लोक सुनाए–

१. शतशाखी यतो जातः, संघकल्पतरुर्महान्।
शतजीवी चिरं भूयात्, आचार्यस्तुलसीप्रभुः॥

२. सोच्छ्वासा विजयोल्लासा, सापेक्षा सुसमन्विता।
सायासा सहजानन्दा, श्रीर्धीः कीर्तिः प्रवर्धताम्॥

श्लोक सुनाकर युवाचार्यजी मौन नहीं हुए। प्रथम श्लोक की व्याख्या में उन्होंने कहा–'आपने इस संघ को अनेक क्षेत्रों में प्रगति का अधिकार दिया है। आपके प्रयत्न, पुरुषार्थ और आशीर्वाद से ही संघ बहुआयामी गति कर पाया है। विद्या, साहित्य, संस्कृति, कला, योग आदि क्षेत्रों में संघ ने अभूतपूर्व प्रगति की है। धर्मसंघ रूपी कल्पतरु को आपने शतशाखी बनाया है। इस शुभ अवसर पर हम यह कामना करते हैं कि आप शतजीवी बनें और आपने संघ को जो विशिष्टता प्रदान की है, उसे हम निरन्तर बढ़ाते रहें।'

द्वितीय श्लोक की व्याख्या करते हुए युवाचार्यजी बोले–'आपने धर्मसंघ को नए-नए उन्मेष दिए हैं। उन उन्मेषों और सपनों को क्रियान्वित कर धर्मसंघ को अपूर्व प्रतिष्ठा और विजय के उल्लास से भरा है। आपके सारे कदम सुसमन्वित और सापेक्ष हैं। नए-नए आयामों को मूर्त रूप देने में आपने अनथक श्रम किया है। फिर भी आप सहजानन्द से परिपूर्ण हैं। इसीलिए आपने श्री, बुद्धि और कीर्ति के अप्रतिम शिखर को छुआ है। हम यह अभ्यर्थना करते हैं कि आपका यह जन्मदिन हमारे धर्मसंघ की तेजस्विता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो।'

धर्मसंघ की अभिवंदना से अभिभूत होकर मैंने कहा–'अभी हम सब महाप्रज्ञजी को सुन रहे थे। उन्होंने मेरे अवदानों की चर्चा की। इसी प्रकार अनेक मनीषियों ने संघ की प्रगति का सारा श्रेय मुझे दिया है। पर मैं मानता हूं कि मैंने जो कुछ किया है, उसमें युवाचार्य और साध्वीप्रमुखा का विरल योग कार्यकारी रहा है।

योगक्षेम वर्ष

● वि.सं. २०४३, माघ कृष्णा त्रयोदशी का दिन। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा का मनोनयन दिन। प्रसन्न वातावरण था। साध्वीप्रमुखा बोली–'गुरुदेव! मुझे मंगलपाठ सुनाने की कृपा करें।' मैंने सहज भाव से मंगलपाठ सुना दिया। उसके बाद मैंने कहा–'मंगलपाठ क्या, आज तो कुछ मांगो।' साध्वीप्रमुखा ने सोचने के लिए अधिक समय नहीं लिया। वह बोली–'गुरुदेव! वि.सं. २०४६ का वर्ष आपके पचहत्तरवें संवत्सर-प्रवेश का वर्ष है। उस वर्ष को हमें मनाना है। सम्मान और प्रशस्तिपरक आयोजनों में आपकी रुचि नहीं है। इसलिए उस वर्ष को साधु-साध्वियों के निर्माण वर्ष के रूप में मनाने की स्वीकृति प्रदान करें।'

युवाचार्य महाप्रज्ञ मेरे उपपात में ही बैठे थे। मैंने उनकी ओर देखा। मेरा आशय समझकर वे बोले–'साधु-साध्वियों का युगानुरूप निर्माण करने के लिए ऐसे प्रयोग आवश्यक हैं। साध्वीप्रमुखा की प्रार्थना और युवाचार्य के युक्तिपुरस्सर समर्थन ने मुझे चिन्तन करने के लिए अभिप्रेरित किया। दो क्षण सोचने के बाद मैंने संघीय विकास की दृष्टि से एक वर्ष मनाने की स्वीकृति दे दी।

● २७ मार्च १९८८ की रात को करणीय कार्यों से निवृत्त होकर मैं लेटा, पर दिमाग में योगक्षेमवर्ष का विचार कौंधने लगा। मन ने कहा–कितना बड़ा काम उठा लिया और अब तक कोई व्यवस्था ही नहीं हो पाई। दोनों तरफ से कल्पना-ही-कल्पना चल रही है। अगर बात ठीक नहीं बन सकी तो स्थिति हास्यास्पद हो जाएगी। प्रचार-प्रसार इतना कर दिया। आशा बहुत बड़ी बांध ली। अब काम उसके अनुरूप हो, यह आवश्यक है। पर यों सुस्त बैठे रहने से यह सब संभव कैसे हो पाएगा? इस उधेड़-बुन में नींद विदा हो गई।

विचारों का प्रवाह बह रहा था। मैंने घड़ी देखी। लगभग डेढ़ बजे का समय था। मैं उठकर बैठ गया। मैंने इधर-उधर देखा। संत निश्चिन्त और गहरी नींद में लेट रहे थे। उनकी नींद पर ईर्ष्या-सी हो गई। आखिर मैंने उनको जगाया और युवाचार्य महाप्रज्ञ को बुलाने का निर्देश दिया। मुनि बालजी युवाचार्यजी के कक्ष में गए। अचानक युवाचार्यजी को नींद से जगाया। उन्होंने आश्चर्यभरी निगाहों से देखकर पूछा–'क्यों? क्या बात है? आचार्यश्री का स्वास्थ्य तो ठीक है?' मुनि बालजी बोले–'आपको गुरुदेव याद कर रहे हैं।' युवाचार्यजी कुछ समझ नहीं पाए। स्वास्थ्य ठीक है तो फिर आधी रात के समय मुझे याद क्यों किया? इस उलझन में उन्होंने पूछा–'ऐसा क्या काम है? तुम्हें कुछ पता है?' मुनि बालजी बोले–'मुझे कोई जानकारी नहीं है।'

युवाचार्यजी तत्काल उठे और मेरे पास आ गए। कक्ष में कुछ साधु सो रहे थे। नींद में व्यवधान न हो, इस दृष्टि से हम वहां से उठकर बाहर आ गए। बरामदे में हम दोनों बैठ गए। मैंने कहा–'आज मुझे नींद नहीं आई। मन में परेशानी-सी हो रही है, इसलिए तुमको अभी बुलवाया।' उन्होंने कारण पूछा तो मैं बोला–'योगक्षेम वर्ष का इतना बड़ा काम है और तुम्हें उसकी कोई चिन्ता नहीं है। कैसे होगा यह काम? समय कम रहा है। व्यवस्था बन नहीं रही है। ऐसा न हो कि हम हास्यास्पद बन जाएं।' मेरी बात सुनकर युवाचार्यजी ने कहा–'नहीं गुरुदेव! ऐसा नहीं होगा। आप बड़े भाग्यशाली हैं। सब काम सफल होंगे। आपके द्वारा उठाया गया कोई भी काम अब तक अधूरा नहीं रहा। यह भी सफल होगा, सम्पूर्ण रूप से सफल होगा।'

चिन्तन-चिन्तन में एक घंटे का समय बीत गया। कई रचनात्मक सुझाव आए। युवाचार्यजी ने अपनी डायरी मंगाई और उसमें अंकित प्रारंभिक रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कहा–'गुरुदेव! आपने हमको सजग

"मेरे जीवन की अनेक उपलब्धियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है—युवाचार्य महाप्रज्ञ। मैंने एक योग्य और योग्यतर ही नहीं, योग्यतम उत्तराधिकारी को पाया है।"

किया। बहुत बड़ी कृपा की। अब इस विषय में किसी प्रकार का प्रमाद नहीं होगा। कल से ही हम बैठकर चिन्तन करना प्रारंभ कर देंगे।'

मेरी एक रात की बेचैनी बहुत कारगर साबित हुई। उसी समय नियमित गोष्ठियां करने का निर्णय ले लिया गया। योगक्षेम वर्ष की समग्र योजना का प्रारूप निश्चित करने के लिए ऐसा होना आवश्यक था। गोष्ठियों में साधु-साध्वियों की संभागिता की दृष्टि से एक 'प्रज्ञा परिषद' का गठन हुआ। गोष्ठियां कब और किसके सान्निध्य में हो? इस जिज्ञासा के समाधान में निश्चित किया गया कि मैं और युवाचार्य महाप्रज्ञ दोनों अपना सान्निध्य देंगे। साध्वीप्रमुखा भी बराबर उपस्थित रहेगी। साध्वियों को संभागी बनाने के लिए प्रायः गोष्ठियां दिन में रहेंगी। आवश्यकता होने पर कुछ गोष्ठियों का समायोजन रात्रि में भी हो सकता है।

● १३ नवम्बर १९८८, श्रीडूंगरगढ़। पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार १३ नवम्बर को योगक्षेम वर्ष के सन्दर्भ में विशेष कार्यक्रम आयोजित हुआ। मंगल संगान, मंगल वाणी, तेरापंथ गीत और त्रिपदी वन्दना के उपक्रम व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किए गए। इस अवसर के लिए युवाचार्य महाप्रज्ञ ने एक लिखित सन्देश तैयार किया। स्थानीय व्यवस्था समिति ने देशभर में सभी निर्दिष्ट स्थानों पर उसे प्रेषित कर दिया। हमारे सान्निध्य में मुनि मुदित ने सन्देश का वाचन किया। वह यहां अविकल रूप में प्रस्तुत है–

'तेरापंथ एक शक्तिशाली धर्मसंघ है। उसके शक्तिस्रोत तीन हैं–एक नेतृत्व, समर्पण और रचनात्मक दृष्टिकोण। आचार्य भिक्षु से आज तक इनसे निकली अमृतधारा कण-कण को अभिषिक्त करती रही है।

आचार्य तुलसी तेरांपथ के शक्तिशाली आचार्य हैं। आपका नेतृत्व समय की कसौटी पर खरा उतरा है। आप संघीय और मानवीय विकास के प्रति समर्पित हैं। आपने रचनात्मकता की गंगोत्री को गंगा की विशाल धारा का रूप दिया है। एक समर्थ आचार्य की अभिवन्दना संघ के विकास की अभिवन्दना है।

आचार्यश्री की यशःप्रतिमा को सामने रखकर अब तक तीन आयोजन किए गए। धवल समारोह और अमृत महोत्सव, ये दोनों आचार्य पद के पचीस और पचास वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित किए गए। षष्टिपूर्ति का आयोजन साठ वर्ष की सम्पन्नता पर आयोजित किया गया। ये तीनों रचनात्मक होने के उपरांत भी आयोजनात्मक अधिक थे।

११ नवम्बर १९८८ (कार्तिक शुक्ला द्वितीय, वि.सं. २०४५) को आचार्यश्री पचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस उपलक्ष्य में कोई आयोजन की परिकल्पना नहीं की गई। अनायास प्रशिक्षण की परिकल्पना हुई, पचहत्तरवें वर्ष का सन्दर्भ जुड़ गया और उसे मनाने का नया रूप सामने आ गया।

योगक्षेम वर्ष तेरापंथ की भाग्यलिपि का एक अनुत्तर अभिलेख है। यह अपनी समग्रता से रचनात्मक या सृजनात्मक है। पूर्ववर्ती तीन आयोजनों में हमने विकास की यात्रा के तीन पड़ाव पूरे किए थे। यह ऊर्ध्वारोहण की यात्रा का अभिक्रम होगा। शिखर पर पहुंचने के लिए प्रज्ञा का पर्व जरूरी है। उससे भी अधिक जरूरी है दायित्वबोध। धर्मसंघ का हर सदस्य अपने दायित्व का

अनुभव करे, अपने विवेकपूर्ण पुरुषार्थ, समर्पण और जिज्ञासा-प्रेरित गति के साथ शिखर आरोहण का संकल्प ले। यह संकल्प अभिनव चैतन्य के जागरण का संकल्प है। प्रज्ञा के जागरण का संकल्प है। इस संकल्प से होनेवाली निष्पत्तियां धार्मिक जगत की भाग्यलिपि को बदलने का हेतु बनेंगी, इस विश्वास के साथ हमारे चरण आगे बढ़ें।'

● २० फरवरी १९८९। योगक्षेम वर्ष प्रज्ञा-जागरण का वर्ष है। प्रज्ञा-जागरण का एक सशक्त माध्यम है आगम की वाचना। हमारे साधु-साध्वियां आगमों के सूक्ष्म रहस्यों को हस्तगत कर सकें, इस दृष्टि से यथासंभव पूरे वर्ष में आगम-वाचना का उपक्रम चलाने का चिन्तन किया गया। इस चिन्तन को क्रियान्वित करने के लिए २० फरवरी के दिन मध्याह्न में सुधर्मा सभा में प्रायः सभी साधु-साध्वियों की उपस्थिति में आगम-वाचना का शुभारंभ हुआ। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने सब साधु-साध्वियों को लक्ष्य करके आगम-वाणी का उच्चारण किया–

नाणेणं दंसणेणं च चरित्तेण तहेव य।
खंतीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहि य॥

साधु-साध्वियों ने खड़े होकर श्रुतसम्पन्न बनने का संकल्प दोहराया। युवाचार्यजी ने वाचना के प्रारम्भ में कहा–'हमारी वाचना का मुख्य उद्देश्य है अज्ञान का निवारण करना। अज्ञान का निवारण होने से प्रज्ञा का जागरण स्वतः प्राप्त है।' वाचना के मानक बिन्दुओं को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा–'जो हंसी-मजाक नहीं करता, इन्द्रियों को अपने वश में रखता है, किसी के मर्म का उद्घाटन नहीं करता, शीलसम्पन्न होता है, अपने चरित्र को दोषों से कलुषित नहीं करता, रसों में अतिलोलुप नहीं होता, क्रोध नहीं करता और सत्य की साधना में रत रहता है, उसे शिक्षाशील कहा जाता है। वह वाचना के योग्य होता है।'

प्रज्ञापर्व के अंतर्गत आगम-वाचना का विधिवत शास्त्रीय ढंग से प्रारम्भ हो गया। सबने बहुत पसन्द किया। स्वास्थ्य की अनुकूलता नहीं होने से मैं उस उपक्रम में उपस्थित नहीं रहा। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने सर्वेसर्वा के रूप में सारा कार्यक्रम संचालित किया, अच्छे तरीके से किया। मुझे अतिमात्र प्रसन्नता हुई।

● फरवरी १९८९। योगक्षेम वर्ष में प्रज्ञापर्व के अंतर्गत प्रशिक्षण और प्रयोग के प्रायः कार्यक्रम व्यवस्थित रूप में चल रहे हैं। साधु-साध्वियां अपने दायित्व एवं करणीय के प्रति जागरूक हैं। प्रवचन युवाचार्य महाप्रज्ञ करते हैं। अन्य सभी कार्यों का संचालन उन्हीं के निर्देशन में हो रहा है। मेरा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है, इसलिए मैं अभी विश्राम कर रहा हूं।

● ९ से ११ जनवरी १९९०। प्रज्ञा-पर्व प्रशिक्षण की संपन्नता पर दीक्षांत समारोह का आयोजन। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने योगक्षेम वर्ष की प्रासंगिक उपलब्धियों का उल्लेख किया। उनके द्वारा संकेतित उपलब्धियां इस प्रकार हैं–

१. भगवान महावीर के जीवन और दर्शन पर 'गाथा' ग्रंथ का प्रणयन।

२. प्रशिक्षण में विभज्यवादी शैली का प्रयोग।

३. जैन जीवन शैली का निर्धारण।

४. अहिंसा की प्रशिक्षण पद्धति का प्रयोग।

५. परीक्षा (मूल्यांकन) की नई पद्धति का निर्धारण।

"शिखर पर पहुंचने के लिए प्रज्ञा का पर्व जरूरी है। उससे भी अधिक जरूरी है दायित्वबोध। धर्मसंघ का हर सदस्य अपने दायित्व का अनुभव करे, अपने विवेकपूर्ण पुरुषार्थ, समर्पण और जिज्ञासा-प्रेरित गति के साथ शिखर आरोहण का संकल्प ले। यह संकल्प अभिनव चैतन्य के जागरण का संकल्प है। प्रज्ञा के जागरण का संकल्प है। इस संकल्प से होनेवाली निष्पत्तियां धार्मिक जगत की भाग्यलिपि को बदलने का हेतु बनेंगी।"

६. अध्यात्म-विज्ञान के प्रशिक्षण की नई शैली का विकास।

७. आत्म-विज्ञान की नई शाखा का उद्घाटन।

अद्वैत को प्रणाम

● ३१ अक्टूबर १९८९। कार्तिक शुक्ला द्वितीया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अद्वैत को प्रणाम करके उपस्थित जनसमूह से एक प्रश्न किया–'आप किसका जन्मदिन मना रहे हैं?' प्रश्न सुनकर एक बार तो लोग अवाक् रह गए। कुछ लोगों ने कहा–'आचार्य तुलसी का।' युवाचार्यजी ने उक्त उत्तर को अस्वीकार करते हुए कहा–'आज हम अपना स्वयं का जन्मदिन मना रहे हैं। आचार्यश्री ने पूरे संघ के साथ इतना अद्वैत साध लिया है कि पूरा संघ आप में समाहित हो गया है। इसलिए आज आप यह न समझें कि हम आचार्यश्री का जन्मदिन मना रहे हैं, अपितु यह समझें कि हम अपना ही जन्मदिन मना रहे हैं। यदि आपने आचार्यश्री के साथ अभिन्नता साध ली तो निश्चय ही बिन्दु सिन्धु का रूप ग्रहण कर सकता है।'

प्रज्ञा के मूर्त रूप

● २० अक्टूबर १९९०। कार्तिक शुक्ला द्वितीया का दिन। मैंने अपने प्रवचन में कहा–प्रज्ञा के मूर्त रूप महाप्रज्ञ मेरे सामने बैठे हैं, जो संघ की एक-एक प्रतिभा को प्रज्ञा में रूपान्तरित करने का प्रयास कर रहे हैं। मैं भाषा का अतिरेक नहीं कर रहा हूं। जब से ये युवाचार्य बने हैं, संघ को सजाने, संवारने और नए निर्माण में अपनी प्रज्ञा का उपयोग कर रहे हैं।

● ८ नवम्बर १९९१, शुक्रवार। कार्तिक शुक्ला द्वितीया का दिन। मेरा अठहत्तरवां जन्म दिवस। रात को साढ़े तीन बजे आंख खुली। मैं उठते ही पद्मासन में बैठ गया। जप में संलग्न हो गया। जप पूरा हुआ कि लोगों का तांता-सा लग गया। जैन विश्व भारती के अध्यक्ष गुलाबचंदजी चण्डालिया आए। उन्होंने बधाई दी। बहनें थाली बजाती हुई और गीत गाती हुई आईं। लोग आते गए और बैठते गए। साधु आए, युवाचार्यजी साढ़े चार बजे आ गए। श्रीचंदजी रामपुरिया, कन्हैयालालजी छाजेड़ आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति आ गए। इतिहास के पृष्ठ खुलते गए। महाप्रज्ञजी ने एक श्लोक कहा। श्लोक भावपूर्ण था।

आचार्यों की आयु-सीमा का अतिक्रमण : वर्धापन

● १२ सितम्बर १९९२। मेरे बारे में कहा जाता है कि मैंने अपने पूर्ववर्ती आठ आचार्यों से अधिक लम्बी पदयात्राएं की हैं। पूर्वज आचार्यों ने अपने-अपने युग में जितने साधु-साध्वियों को दीक्षित किया, मेरे युग में दीक्षित साधु-साध्वियों की संख्या उनसे अधिक हो गई। पूर्वाचार्यों में कुछ आचार्यों का शासनकाल काफी लम्बा रहा है। किन्तु मेरा शासनकाल उन सीमाओं को अतिक्रान्त कर आगे बढ़ गया। इसी शृंखला में पूर्ववर्ती आचार्यों की आयु-सीमा को रखा जा सकता है। आचार्य भिक्षु ने सतहत्तर वर्ष का आयुष्य प्राप्त किया। जयाचार्य ने उससे बड़ी लेकर खींचकर लगभग अठहत्तर वर्ष की आयु का कीर्तिमान स्थापित किया।

भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा (पूज्य कालूगणी का पट्टोत्सव दिन) को युवाचार्य महाप्रज्ञ आए। उन्होंने जयाचार्य की आयु-सीमा के मानदंड को अतिक्रान्त करने के उपलक्ष्य में बधाई दी और सम्पूर्ण धर्मसंघ की ओर से दीर्घजीवन की मंगलकामना की। अब तो वर्धापना का तांता-सा लग गया।

• २७ अक्टूबर १९९२। कार्तिक शुक्ला द्वितीया का दिन। मेरा उनयासीवां जन्मदिवस। जैन विश्व भारती का जनसंकुल परिसर। चारों ओर उल्लासमय वातावरण। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में मेरे कल्पनाशील स्वभाव की चर्चा की और भविष्य में संभावित कुछ नई कल्पनाओं को प्रस्तुति देते हुए कहा–'जब दूसरा विश्वयुद्ध हुआ था, आपने अशान्त विश्व को शांति का सन्देश दिया था। अब इक्कीसवीं शताब्दी सामने आ रही है। उसके प्रथम दिन आप विश्व को क्या सन्देश देंगे? आपकी कल्पना की इक्कीसवीं सदी का मनुष्य कैसा होगा? उस समय आप धर्म के संदर्भ में क्या कल्पना करते हैं? मनुष्य को बदलने की प्रक्रिया क्या होगी? विज्ञान से अपनी समस्याओं को कैसे सुलझाया जा सकता है? इन सभी बातों पर आपको कल्पना करनी है। आपका कार्य कल्पना करने का है। भाष्य करना मेरा काम है। आपका पुरुषार्थ जब उस दिशा में सक्रिय बनता है, हर कल्पना साकार हो जाती है।'

• १५ नवम्बर १९९३। कार्तिक शुक्ला द्वितीया। मेरा अस्सीवां जन्मदिवस। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने भावपूर्ण विचारों को शब्द देते हुए कहा–'हम सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें परम पुरुषार्थी पुरुष का सक्षम नेतृत्व मिला है। आचार्यप्रवर ने अपने पसीने की बूंदें बहाकर धर्मसंघ को जो ऊंचाइयां प्रदान की हैं, वे बेजोड़ हैं। आपने जो महान श्रम किया है, उसे अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती। साधु-साध्वियां आपके लिए जितना भी श्रम करें, कम है। हमें आपका जन्मदिन मनाने का सौभाग्य चिरकाल तक मिलता रहे, यही काम्य है।'

• २ जनवरी १९९४। उनसठवां दीक्षा दिवस। मैंने अपने जीवन का विश्लेषण करते हुए कहा–पूज्य गुरुदेव ने मिट्टी के ढेले को कलश बना दिया। मंत्री मुनि मगनलालजी के कथनानुसार मेरी दीक्षा से पूज्य गुरुदेव निश्चिन्त हो गए। इससे बढ़कर मेरा और क्या सौभाग्य होगा। गुरुदेव के प्रति सहज समर्पण और उनके अनुशासन में रहने का भाव मुझमें था। यही मेरी निधि है। मेरे जीवन की कथा मुनि नथमलजी (युवाचार्य महाप्रज्ञ) और मुनि बुद्धमलजी जानते हैं।

• १० अप्रैल १९९४, रविवार। महावीर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, सी-स्कीम के विशाल प्रांगण में एक विशेष कार्यक्रम आयोजित था। अभिनन्दन मानवता के भविष्य का–कार्यक्रम इस थीम पर आधारित था। लगभग दस हजार लोगों की उपस्थिति थी। मंच पर राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंह शेखावत, संघप्रवक्ता चन्दनमलजी बैद, अजमेर दरगाह शरीफ के दीवान सैयद जैनुल आबैदीन, आर्यसमाज के प्रदेश मंत्री श्री सुमेधानन्द, चौधरी कुंभाराम आर्य, स्वामी ओमपूर्ण स्वतंत्र आदि अनेक व्यक्ति आसीन थे।

आचार्य महाप्रज्ञ ने आध्यात्मिक अनुष्ठान के रूप में महाप्राण ध्वनि करके दीर्घ श्वासप्रेक्षा का प्रयोग करवाया। उन्होंने अपने अभिभाषण में कहा–'नवयुग' प्रवेश के उपलक्ष्य में यह अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया है। दुनिया में नया कुछ नहीं होता। अनेकांत का चक्र घूमता है और नया घटित हो जाता है। अध्यात्म में भी नया कुछ नहीं होता। क्योंकि अध्यात्म कालातीत और देशातीत होता है। व्यवहार की भाषा में विस्मृत का स्मरण करना ही नया है। अतीत के छह दशकों की यात्रा का सिंहावलोकन करें तो आत्मगौरव का अनुभव होता है। अणुव्रत-प्रवर्तन से नए युग का शुभारम्भ हुआ। अणुव्रत निर्विशेषण धर्म है। इसे मैं धर्मक्रांति का पहला चरण मानता हूं। अणुव्रत के माध्यम से धर्म को युगीन संदर्भों में प्रस्तुति देकर आपने उसके सही स्वरूप को सामने रखा है। अब पूज्य गुरुदेव नव निर्माण का संकल्प लेकर नए युग में प्रवेश कर रहे हैं। आपका संकल्प है–मेरी शक्ति अहिंसा के विकास में लगे। इस संकल्प के पहले चरण में

> "प्रज्ञा के मूर्त रूप महाप्रज्ञ मेरे सामने बैठे हैं, जो संघ की एक-एक प्रतिभा को प्रज्ञा में रूपान्तरित करने का प्रयास कर रहे हैं। मैं भाषा का अतिरेक नहीं कर रहा हूं। जब से ये युवाचार्य बने हैं, संघ को सजाने, संवारने और नए निर्माण में अपनी प्रज्ञा का उपयोग कर रहे हैं।"

आपने अपने दायित्व को हल्का कर लिया। यह भी पूर्णरूप से सक्षम होते हुए किया है। क्योंकि आप चाहते हैं कि अपनी वैयक्तिक साधना के साथ मानव जाति का भी कल्याण हो। पूज्य गुरुदेव ने जयाचार्य की परम्परा का अनुकरण किया है। मानवता के शुभ भविष्य के लिए गुरुदेव चाहते हैं कि शस्त्रीकरण, आतंक एवं निरपराध की हत्या के लोहावरण को चीरकर अहिंसा के युग को प्रतिष्ठित करें।'

● ५ नवम्बर १९९४। आज नौवें दशक में प्रवेश का दिन अणुव्रत दिवस के रूप में मनाया गया। मैंने अपनी बात शुरू करते हुए कहा–'मुझे आश्चर्य होता है कि जब मैंने निर्णय कर लिया कि मुझे अपना जन्मदिन, पट्टोत्सव दिन आदि नहीं मनाने हैं, फिर भी मनाए जा रहे हैं। क्या करूं? मेरे उत्तराधिकारी भी विचित्र व्यक्ति हैं। पट्टोत्सव को 'विकास महोत्सव' और जन्मोत्सव को 'अणुव्रत दिवस' की अभिधा देकर मनाते हैं। ऐसी स्थिति में मैं रोक भी नहीं सकता। मैं मानता हूं कि जन्म दिन मेरा नहीं, मानवीय चरित्र का जन्मदिन है, राष्ट्रीय चेतना का जन्मदिन है। इसीलिए इसे अणुव्रत दिवस के रूप में मनाया जा रहा है। यह अणुव्रत दिवस की परिकल्पना महाप्रज्ञजी के उर्वर मस्तिष्क की उपज थी, जो सफल रही। भविष्य में और अधिक व्यवस्थित और सार्वदिक बन जाएगी, ऐसा प्रतीत होता है।

● २५ अक्टूबर १९९५, विक्रम संवत २०५२ कार्तिक शुक्ला द्वितीया। मेरा बयासीवां जन्मदिन। मैं सदा की अपेक्षा जल्दी उठा। तीन बजे से पांच बजे तक का समय ध्यान, जप एवं आत्मचिन्तन में लगाया। लगभग पांच बजे महाप्रज्ञजी कक्ष में आ गए। उन्होंने भावविभोर होकर शुभकामना प्रकट की। कुछ ही क्षणों में प्रायः साधु पहुंच गए। प्रतीक्षारत भाइयों को भी कक्ष में प्रवेश प्राप्त हो गया। वातावरण में प्रसन्नता थी। मैं भी प्रसन्न था।

कक्ष में उपस्थित साधु-समुदाय को संबोधित करते हुए मैंने कहा–'साधुओ! मैं आज बयासीवें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूं। अपने आपको मध्यस्थ भाव में स्थापित कर रहा हूं। यह सबको ज्ञात है कि मैंने अपने आचार्यपद का विसर्जन कर दिया। इसलिए तुम लोग आचार्य महाप्रज्ञ के प्रति मुझसे भी अधिक श्रद्धाभाव रखो। धर्मसंघ और जनता की श्रद्धा की प्रगाढ़ता के कारण मैं पद-विसर्जन के बाद अपनी जैसी स्थिति बनाना चाहता था, नहीं बना सका हूं। फिर भी अपने आप में संतुष्ट हूं। हलकापन महसूस करता हूं।

दूसरी बात, मेरे पद-विजर्सन को औपचारिक मानने की भूल कोई न करे। वह वास्तविक है और सुचिन्तित है।'

दायित्व बोध समारोह

११ अक्टूबर १९९३। दिल्ली से संवाद प्राप्त हुआ है कि सन् १९९२ का इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार आचार्यश्री तुलसी के नाम से घोषित हुआ है।' इस सूचना से सारे संघ में हर्ष की लहर दौड़ गई। रेडियो और टीवी के माध्यम से न्यूज प्रसारित हुई। सर्वत्र एक ही चर्चा होने लगी। महाप्रज्ञजी आए। महाश्रमणी साध्वियों को लेकर आई। जन-जन के द्वारा बधाइयां मिलने लगीं। आचार्य का दायित्व संघ का दायित्व होता है। इस दृष्टि से १२ अक्टूबर को दायित्व बोध के रूप में विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने अपनी भावाभिव्यक्ति के बाद युवाचार्यजी से निवेदन किया–'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार के रूप में आचार्यवर को जो राष्ट्रीय सम्मान मिला है, उससे तेरापंथ धर्मसंघ

का कण-कण पुलकित है। संघ के सदस्य इस संघीय गौरव से फूले नहीं समा रहे हैं। इस ऐतिहासिक अवसर पर आप संघ के सब साधु-साध्वियों को पुरस्कृत करने की कृपा करें।'

निवेदन युवाचार्यजी से किया गया था। उन्होंने मेरी ओर देखा। मैं उन्हें क्या कहता। मेरी मौन मुस्कान को सकारात्मक संकेत मानकर युवाचार्यजी ने आगामी मर्यादा महोत्सव तक सब साधु-साध्वियों को सभी प्रकार की विगय वर्जन की बख्शीश कर दी। भले ही वह औषधि की विगय हो या उपवासों की विगय।

युवाचार्यजी ने अपने अभिभाषण में कहा–'अभिवंदना के इन क्षणों में मैं धर्मसंघ से कहना चाहता हूं कि हर्ष के साथ दायित्व को और जोड़ लें। यद्यपि आज तक की हमारी विकास यात्राओं में चार तीर्थ का महान योगदान रहा है। याद करें जयपुर को। उस वर्ष हमारी चार हजार श्राविकाओं ने संघनिष्ठा का जो उदाहरण प्रस्तुत किया, वह उनके अद्भुत साहस का प्रतीक था। तेरापंथ ने जो पाया है, वह मंजिल तक चलकर पाया है। इसने बहुत लम्बी मूक साधना की है। आचार्यवर ने जो कार्य किया है, वह इतना महान है कि उसके सामने हर पुरस्कार बहुत छोटा दिखाई देता है। यदि आचार्यप्रवर के स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति होता तो नोबेल पुरस्कार पाने का प्रयत्न करता। पर हमने देशहित के लिए स्वयं दायित्व ओढ़ा है और निर्जरा के लिए कार्य किया है। इसलिए कुछ भी पाने की आकांक्षा नहीं है। पर मैं यह अवश्य कहूंगा कि इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त करना दायित्व की चादर को और फैलाने का अवसर है। पुरस्कार की घोषणा को मैं निर्णायकों की सही दृष्टि का प्रतिफल मानता हूं, आध्यात्मिक जगत का मूल्यांकन मानता हूं और दिल्ली यात्रा का पहला स्वागत मानता हूं।

युवाचार्य मनोनयन दिवस

पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने माघ शुक्ला सप्तमी वि.संवत् २०३५ (३ फरवरी १९७९) को मुझे अपना उत्तराधिकार सौंपा। माघ शुक्ला सप्तमी के दिन मर्यादा महोत्सव मनाया जाता है। उसी दिन युवाचार्य मनोनयन का भी अनायोजित आयोजन हो जाता। मनोनयन दिवस पर प्रस्तुत भावाभिव्यक्तियों में आचार्यवर के हृदय के उल्लास और अंतस्तोष का साक्षात्कार किया जा सकता है–

• १२ फरवरी १९८९। माघ शुक्ला सप्तमी का दिन। एक सौ पचीसवें मर्यादा महोत्सव का दिन। एक दशक पूर्व इस महोत्सव के साथ एक नई कड़ी जुड़ी। वि. सं. २०३५, राजलदेसर मर्यादा महोत्सव के मंगल अवसर पर मैंने युवाचार्य की नियुक्ति की। देखते-देखते दस वर्ष बीत गए। आज प्रातः साध्वीप्रमुखा ने रजोहरण और प्रमार्जनी भेंट की। उसके बाद कालू कल्याण केन्द्र गीत की स्वरलहरियों से थिरकने लगा। सैकड़ों साध्वियों ने समवेत स्वरों में युवाचार्य महाप्रज्ञ के मनोनयन दिवस का वर्धापन किया। उस अवसर पर मैंने कहा–'हमारे युवाचार्य आज एक दशक पार कर दूसरे दशक में प्रवेश कर रहे हैं। योगक्षेम वर्ष का शुभारंभ और इनका दूसरे दशक में प्रवेश, यह एक शुभ योग है। आज मैं इनके प्रति बहुत-बहुत शुभकामना करता हूं।' मैंने अपनी भावना को पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत किया–

दूसरे दशक में आज शुभ प्रवेश,
महाप्रज्ञ युवाचार्य कैसा शुभ वेश।
योगक्षेमवर्ष का सफल सुफल योग,
तेरापंथ संघ का यह अमोघ प्रयोग॥

"तेरापंथ ने जो पाया है, वह मंजिल तक चलकर पाया है। इसने बहुत लम्बी मूक साधना की है। आचार्यवर ने जो कार्य किया है, वह इतना महान है कि उसके सामने हर पुरस्कार बहुत छोटा दिखाई देता है।"

• २३ जनवरी १९९१, माघ शुक्ला सप्तमी का दिन। मर्यादा महोत्सव की महिमा और युवाचार्य मनोनयन की गरिमा को उजागर करने वाला दिन। समणियों, साधुओं, साध्वियों और मुमुक्षु बहनों के सामूहिक गीत हुए। महाश्रमण और महाश्रमणी ने युवाचार्य महाप्रज्ञ के प्रति मंगल भावनाएं व्यक्त कीं। मैंने कहा–'आज सहज रूप में अनायोजित आयोजन हो गया। सहजता में अधिक आनन्द आता है। यद्यपि मनोनयन का समय दोपहर का है पर उस समय महोत्सव का कार्यक्रम होने से यह अभी मनाया जा रहा है। यह एक ऐसा दिन है, जिसे युग-युग तक मनाया जाएगा। आज मैं महाप्रज्ञ से कहना चाहता हूं कि संघ में एक महाप्रज्ञ नहीं, अनेक महाप्रज्ञ पैदा करने होंगे। एक कनकप्रभा से काम नहीं चलेगा, अनेक कनकप्रभा तैयार करनी होंगी। यह कार्य युवाचार्य महाप्रज्ञ और साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा का है।'

युवाचार्य महाप्रज्ञ के युवाचार्य काल का एक युग सम्पन्न हो गया। नए युग में प्रवेश के अवसर पर मैंने अपनी ओर से उन्हें अन्तःप्रज्ञा-जागरण का आशीर्वाद देते हुए कहा–

महाप्रज्ञ ने नूतन युग में, आज किया है प्रवर प्रवेश।
अन्तर् प्रज्ञा की जागरणा हुई, रहे होती अनिमेष॥

• ११ फरवरी १९९२। माघ शुक्ला सप्तमी का दिन तेरापंथ धर्मसंघ का ऐतिहासिक दिन है। युवाचार्य महाप्रज्ञ को यह दिन सहज रूप में मिला है। मर्यादा महोत्सव के अवसर पर चतुर्विध धर्मसंघ अच्छी संख्या में उपस्थित रहता है। इस दिन को मनाने के लिए जनता स्वयं आती है। हमारे युवाचार्यजी तेरह वर्षीय बालक हैं। बाल्यावस्था चंचलता की आभा से हरी-भरी रहती है। युवाचार्यजी ने अपनी प्रज्ञा से नई आभा बिखेरी है। अभी ये नाबालिग हैं। इसके युवा होने में जैन दृष्टि से तीन वर्ष और कानूनी दृष्टि से पांच वर्ष बाकी हैं। आज युवाचार्य मनोनयन दिवस के उपलक्ष्य में मैंने एक पद्य के माध्यम से अपनी मंगलभावना को अभिव्यक्ति दी–

शुभ सौरभमय तेरह वर्ष, महाप्रज्ञ जीवन उत्कर्ष।
स्वस्थ शान्तमन सदा बढ़ो, गण गौरव इतिहास गढो॥

जनता का उत्साह और खुशहाल वातावरण देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने कहा–'मैं बहुत सौभाग्यशाली हूं। मेरे दाएं-बाएं मेरी दो वराकृतियां बैठी हैं। मैं मध्य में निश्चिन्त हूं। हमारे पूर्वाचार्य इतने निश्चिन्त शायद ही रहे हों। भिक्षु-भारीमाल और जय-मघवा की अनुपम जोड़ी तेरापंथ के इतिहास का गौरव है। वर्तमान में तुलसी-महाप्रज्ञ की जोड़ी जनता को आकृष्ट कर रही है। युवाचार्यजी ने नए युग का प्रारंभ किया है।

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा–'आपने आज जो आशीर्वाद प्रदान किया है, उसे मैं अपने जीवन की सम्पदा मानता हूं। आप मेरे कर्ता हैं। मैं आपकी कृति हूं। मैं क्या हूं, मैं नहीं जानता। क्या होता है, कैसे होता है, यह भी मैं नहीं जानता। केवल इतना जानता हूं कि कुछ हो रहा है। यह आपका प्रसाद है। आपने मुझे विकास के जितने अवसर दिए हैं, किसी एक गुरु ने अपने शिष्य को इतने अवसर दिए हों, खोज का विषय है। मैं अपना सौभाग्य मानता हूं कि मुझे जैन शासन मिला, तेरापंथ मिला, पूज्य कालूगणी के चरणों में दीक्षा का अवसर मिला तथा आपका कुशल संरक्षण मिला।'

• ३० जनवरी १९९३। मर्यादा महोत्सव के ऐतिहासिक दिन के साथ एक और इतिहास की कड़ी जुड़ी हुई है, वह कड़ी है युवाचार्य का मनोनयन। चतुर्विध धर्मसंघ में अतिरिक्त उल्लास था। उल्लास

की अभिव्यक्ति गीतों एवं संक्षिप्त वक्तव्यों के माध्यम से हुई। श्रद्धासिक्त भावनाओं के गतिमान प्रवाह में अभिष्णात होकर युवाचार्य महाप्रज्ञ खड़े हुए, उन्होंने कहा–'मैं बोलूंगा तो बैठकर ही, किन्तु उससे पूर्व.....।' जनसमुदाय चौकन्ना हो गया। कुछ नया देखने व सुनने के लिए उद्ग्रीव और उत्कर्ण हो गया। युवाचार्यजी ने वन्दना की। मैंने उनके सिर पर हाथ रखा। विनय और वात्सल्य की धाराएं एकीभूत होकर सबको अभिभूत करने लगीं। उन्हीं क्षणों में महाप्रज्ञ पुनः खड़े हुए और बोले–'आचार्यवर संघ में नवीन परम्परा कायम करना चाहते हैं। आज इस अवसर पर मैं करबद्ध संघ का अभिवादन करता हूं।' साधु-साध्वियों ने विस्मय-विमुग्ध होकर अभिवादन के उत्तर में वन्दना की।

प्रसन्न वातावरण में अपने उद्गार प्रकट करते हुए मैंने कहा–'युवाचार्यजी का मनोनयन मर्यादा महोत्सव के दिन हुआ, यह अधिक सौभाग्य की बात है। इनके विषय में मैं क्या कहूं? ये मेरी ही कृति हैं। इन्होंने साधु-साध्वियों को बद्धांजलि अभिवादन कर एक नई परम्परा का श्रीगणेश किया है। इससे मैं प्रसन्न हूं। आज पन्द्रहवां मनोनयन दिवस है। अब युवाचार्यजी जयाचार्य की तुलना में आ गए हैं।

प्रसन्नता के उन पलों में मैंने एक पद्य के द्वारा अपनी भावना को अभिव्यक्ति दी–

विद्या विनय विवेक त्रिवेणी प्रवहमान है एक अंग में,
युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी बने तीर्थ इस धर्मसंघ में।
सीखें युग के सभी हमारे साधक इनसे जीवन जीना,
शासन-उन्मुख हंसते-खिलते सदा रहें ताने निज सीना॥

● १८ फरवरी १९९४ का दिन। विक्रम संवत २०५०, माघ शुक्ला सप्तमी का मंगल प्रभात। आज महाप्रज्ञजी का सोलहवां मनोनयन दिवस है। उल्लासमय वातावरण में सहज भाव से कार्यक्रम चला। मुमुक्षु बहनों, समणियों, साधुओं और साध्वियों की मंगल भावनाएं उनके सामूहिक स्वरों में अभिव्यक्त हुई। महाश्रमण और महाश्रमणी ने युवाचार्यजी के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया। उनके सहपाठी मुनि बुद्धमलजी मुखर हुए। अन्य अनेक व्यक्तियों को बोलने का अवसर मिला। मैंने महाप्रज्ञजी को गले लगाया और एक क्षण के लिए उन्हें अपने पट्ट पर बिठाया। वे मेरे बराबर बैठने में संकोच कर रहे थे। मैंने हाथ पकड़कर उनको बिठा लिया। पूरी परिषद में हर्षातिरेक छा गया।

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में कहा–'मैं सोचता हूं कि आज का यह सारा उपक्रम मर्यादा महोत्सव को समर्पित है। आचार्यप्रवर ने मेरे लिए ऐसा दिन चयनित किया, जैसा आज तक किसी ने नहीं किया। मेरे गुरु ने मुझे मर्यादा में प्रतिष्ठित किया। तब से मेरा महोत्सव मर्यादा महोत्सव बन गया और मर्यादा महोत्सव मेरा महोत्सव बन गया।'

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए युवाचार्यजी ने कहा–'धर्मसंघ के उमड़ते-घुमड़ते उत्साह को देखता हूं तो अपने दायित्व के दायरे को भी विस्तृत करना चाहता हूं। मेरी अभिकांक्षा है कि मैं धर्मसंघ की सेवा करूं। साधु-साध्वियों की चित्तसमाधि में निमित्त बनूं। श्रावक-श्राविकाओं की धर्माराधना में सहायक बनूं। इन मंगल क्षणों में मैं आचार्यवर से निवेदन करना चाहता हूं कि आप ऐसी शक्ति, ऐसा वरदान और ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं तेरापंथ धर्मसंघ का सच्चा सेवक बन सकूं।'

मैंने अपनी बात शुरू करते हुए कहा–'हमारे युवाचार्य अभी तक नाबालिग हैं, साबालिग नहीं बने हैं। यह अच्छा भी है। बचपन में जितना श्रम होता है, जितना ग्रहण होता है, बाद में नहीं होता। इनमें

> "मैं बहुत सौभाग्यशाली हूं। मेरे दाएं-बाएं मेरी दो वराकृतियां बैठी हैं। मैं मध्य में निश्चिन्त हूं। हमारे पूर्वाचार्य इतने निश्चिन्त शायद ही रहे हों। भिक्षु-भारीमाल और जय-मघवा की अनुपम जोड़ी तेरापंथ के इतिहास का गौरव है। वर्तमान में तुलसी-महाप्रज्ञ की जोड़ी जनता को आकृष्ट कर रही है।"

ग्रहणशीलता है और वितरण की क्षमता भी है। इनको दायित्व सौंपे पन्द्रह वर्ष हो रहे हैं पर इन्होंने अभी तक अपना दायित्व संभाला नहीं है। यह पहला ही वर्ष है, जब ये इस रूप में दायित्व निभाने के लिए सक्रिय हुए हैं। इतने दिन ये नाम निक्षेप ही थे, अब भाव निक्षेप बन रहे हैं। इससे पूर्व मैं जब-जब इन्हें कहता, ये टालमटोल कर जाते। पर इस बार इन्होंने कार्य प्रारंभ किया है। इसमें मेरा स्वास्थ्य भी निमित्त बना।'

भिक्षु शासन के गौरवशाली इतिहास का उल्लेख करते हुए मैंने कहा–'भिक्षु स्वामी और भारीमालजी स्वामी दोनों साथ-साथ रहे। जयाचार्य ने अपना दायित्व मघवागणी को सौंपा और स्वयं मुक्त हो गए। उनके पास कोई आता तो वे कहते थे कि मघजी की सेवा करो। हमारे युवाचार्यजी अब मघजी बने हैं। अब कोई साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका को कुछ निवेदन करना होता है तो मैं कहता हूं युवाचार्यजी की सेवा करो। उनसे प्रार्थना करो। इस संदर्भ में वे सोचेंगे और करणीय कार्य करेंगे।'

आचार्य पदारोहण समारोह

पूज्य गुरुदेव ने १८ फरवरी सन् १९९४ में स्वयं आचार्य पद का विसर्जन कर मुझे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। माघ शुक्ला ६ वि. संवत् २०५१ (५ फरवरी १९९५) को आचार्यवर ने आचार्य-पद पर आध्यात्मिक विधि से अभिषेक किया। तेरापंथ धर्मसंघ में वर्तमान आचार्य का पदारोहण दिवस मनाया जाता है इसलिए माघ शुक्ला ६ वि. सं. २०५२ को पट्टोत्सव का कार्यक्रम आयोजित हुआ। किसी आचार्य ने अपने शिष्य को आचार्य-रूप में नहीं देखा और किसी आचार्य ने अपने शिष्य का आचार्य पदारोहण दिवस नहीं मनाया। आचार्य तुलसी को ये दोनों इतिहास-विरल अवसर प्राप्त हुए। मेरे जीवन की भी यह विलक्षण घटना है–मैंने अपने गुरुदेव के हाथों आचार्य-पद के दायित्व की चादर को धारण किया, गुरु ने कर-कमलों से आचार्य-पदाभिषेक किया, पदाभिषेक समारोह पर गुरु का मंगल आशीर्वाद प्राप्त किया। आचार्यवर ने आचार्य पदारोहण दिवस का रेखांकन इन शब्दों में किया है–

२५ जनवरी १९९६। आज आचार्य महाप्रज्ञ का पदारोहण समारोह आयोजित हुआ। ठीक सवा बारह बजे सुधर्मा सभा में नमस्कार महामंत्र के उच्चारण से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। अनेक साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं ने विभिन्न विधाओं में श्रद्धासिक्त उद्‌गार व्यक्त किए। महाश्रमण और महाश्रमणी के वक्तव्य हुए। साहित्य लोकार्पण के उपक्रम में कुछ विशिष्ट और कुछ सामान्य पुस्तकें प्राप्त हुईं।

महाप्रज्ञजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'मेरे भाग्यविधाता! आपने जो कर्तव्यबोध, दायित्वबोध मुझे दिया, प्रेरक संकेत दिए, मेरे कदम अनवरत उस मंजिल की ओर बढ़ते गए। पूज्यवर ने जो भी काम सौंपा, उसे पूरा किया। मुझे क्या पता था कि सारा काम ही सौंप देंगे। पूज्यवर! मैंने सदा आपसे पाया ही पाया है। जिस दिन दीक्षा ली, पूज्य कालूगणी ने फरमाया–'तुम तुलसी के पास जाओ।' तब से अब तक आपकी सन्निधि में रहा हूं। प्रतिपल आपसे प्रेरणा पाता रहा हूं। आपसे मुझे सदा मार्गदर्शन मिला है और मिलता रहे, यही कामना करता रहा हूं। तेरापंथ धर्मसंघ के प्रति मन में प्रारंभ से ही अहेतुक आकर्षण रहा है। आज के इस अवसर पर मैं आपसे आशीर्वाद चाहता हूं।

◈ मेरे मन में अपने गण के प्रति, पूर्वाचार्यों के प्रति और पूरी परम्परा के प्रति समर्पण का भाव सदा बढ़ता रहे।

◈ मेरे मन में कृतज्ञता का भाव निरन्तर प्रवर्धमान रहे।

◈ समस्याओं की जड़ है अहंकार। मैं चाहता हूं कि मेरे मन में उत्तरोत्तर विनम्रता बढ़ती जाए।

◈ असहिष्णुता के इस युग में भी मेरे मन में सहिष्णुता का भाव बढ़ता रहे।

◈ मेरे मन में संतुलन का भाव वृद्धिंगत होता रहे।'

मैंने अपने प्रवचन में कहा–'आज आचार्य महाप्रज्ञ का द्वितीय अभिषेक समारोह है। यह कार्यक्रम मर्यादा महोत्सव के अंतर्गत आता है। इसलिए सैकड़ों साधु-साध्वियों की सहज संभागिता हो जाती है। इस बार बहुत सारे साधु-साध्वियों ने उपालंभ के स्वर में कहा कि अभिषेक का कार्यक्रम बड़े संघ के समक्ष होना चाहिए था। पर किया क्या जाए? अब तिलक तो दुबारा हो नहीं सकता। मेरे हाथ में एक कलात्मक माला आ गई। इसे पहना देता हूं। लो, यह दृश्य देख लो।'

प्रवचन के उपसंहार में मैंने कहा–'आचार्य महाप्रज्ञ महाप्रज्ञ बाद में बने। पहले बीज रूप में थे। बीज अंकुरित होता है, पौधा बनता है, फलता-फूलता है। यह प्रक्रिया कठिन है। ठीक इसी प्रकार महाप्रज्ञ बनना भी कठिन है। अनेक श्रावकों में से एक साधु बनता है, अनेक साधुओं में एक अग्रणी बनता है और अनेक अग्रणी की अर्हता रखनेवालों में कोई एक आचार्य बनता है। सब लोग कहते हैं कि इनके निर्माण में मेरा चिन्तन व अंगुलियां लगीं। पर मुझे लगता है कि महाप्रज्ञ गर्भ में ही सब कुछ सीख गए थे।'

खमतखामणा का संदर्भ

जैन धर्म का महान् पर्व है संवत्सरी। यह पर्व मन की गांठों को खोलने का पर्व है। खमतखामणा का प्रसंग मेरे लिए बहुत हृदयस्पर्शी होता था। आचार्यवर मुझे गले लगाकर जिस भावपूर्ण मुद्रा में खमतखामणा करते थे, उससे मैं ही नहीं, पूरी परिषद् भावविभोर बन जाती। गुरु-शिष्य के अनाविल और आत्मीय संबंधों का जीवन्त साक्ष्य बनता था खमतखामणा का उपक्रम। उस अवसर पर व्यक्त उद्गारों में गुरु की गुरुता का साक्षात्कार होता था–

● २० सितम्बर १९८५, आमेट। खमतखामणा के महत्त्व को उजागर करके उस क्रम को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा–'अब मैं खमतखामणा का प्रायोगिक रूप प्रस्तुत कर रहा हूं। इसमें सबसे पहले बारी आती है युवाचार्य महाप्रज्ञ की। ये मेरे अभिन्न अंग हैं। ये मेरी जो सेवा कर रहे हैं, वह अपूर्व है। इनकी तुलना मैं किनसे करूं? इनके जैसी सेवा और कौन कर सकता है? मिनट-मिनट ये मेरी सेवा कर रहे हैं। शासन का काम कर रहे हैं। इनके प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का उच्चावच भाव आया हो तो मैं खमतखामणा करता हूं।' युवाचार्यजी की विनम्र वन्दना मेरे कथन का प्रत्युत्तर बन गई। उस अवसर पर मैंने युवाचार्यजी को गले लगाया तो पूरी परिषद भावविभोर हो गई।

● २६ अगस्त १९९०, पाली। मैं जनता को खमतखामणा का प्रायोगिक रूप दिखाना चाहता था। इस दृष्टि से मैंने कहा–'मेरे सबसे अधिक निकट युवाचार्य महाप्रज्ञजी हैं। ये पिछले बारह वर्षों से युवाचार्य पद पर हैं। अंतर्राष्ट्रीय विद्वान हैं। संघ में कई बातों में सर्वोपरि हैं। इनके मन में गुरु के प्रति जो श्रद्धा है, समर्पण है, वह समूचे संघ के लिए सीखने का है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा हर काम करने के लिए ये तैयार रहते हैं। अपना तर्क रखते ही नहीं, यह इनकी बहुत बड़ी विशेषता है। इनके प्रति मन में किसी प्रकार का विचार आया हो तो मैं खमतखामणा करता हूं।'

"
अनेक श्रावकों में से एक साधु बनता है, अनेक साधुओं में एक अग्रणी बनता है और अनेक अग्रणी की अर्हता रखनेवालों में कोई एक आचार्य बनता है। सब लोग कहते हैं कि इनके निर्माण में मेरा चिन्तन व अंगुलियां लगीं। पर मुझे लगता है कि महाप्रज्ञ गर्भ में ही सब कुछ सीख गए थे।
"

• २ सितम्बर १९९२, लाडनूं। खमतखामणा के संदर्भ में सैद्धांतिक प्रस्तुति के बाद व्यवहार के धरातल पर उपस्थित होकर मैंने कहा–'मैं अब सबके साथ खमतखामणा कर रहा हूं। मेरे नजदीक युवाचार्य महाप्रज्ञ बैठे हैं। इनसे सबसे अधिक काम पड़ता है। ये मेरे हाथ, पैर ही नहीं, मेरी देह है। मेरा दूसरा शरीर है, ऐसा कह सकता हूं। मैं इनमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं मानता। ये विद्वान हैं, दार्शनिक हैं, प्रवक्ता हैं, चिन्तक हैं, साधक हैं। इनमें जितनी विशेषताएं हैं, मैं उन सबका अंतर्मन से आदर करता हूं। हमारे धर्मसंघ का सौभाग्य है कि हमें ऐसे युवाचार्य मिले। इनके प्रति मेरे मन में कभी उच्चावच भाव आया हो तो मैं शुद्ध अंतःकरण से खमतखामणा करता हूं।'

• २१ सितम्बर १९९३, राजलदेसर। खमतखामणा का प्रायोगिक रूप प्रस्तुत करते हुए मैंने कहा– 'रात सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने के बाद मैंने साधुओं से खमतखामणा किया तो अपार आनन्द की अनुभूति हुई। एक-एक साधु को निकट बुलाकर, उसके सिर और पीठ को सहलाकर मैंने खमतखामणा किया। ये हमारे महाप्रज्ञजी हैं। इन्हें मैं अपनी दूसरी देह मानता हूं। देह ही नहीं, ये मेरे सब कुछ हैं। यह हमारे धर्मसंघ का बहुत बड़ा भाग्य है कि इन जैसा युवाचार्य मिला है। इनसे भी मैं खमतखामणा करता हूं।'

गुरु-सन्निधि में जन्मदिन : विलक्षण प्रसंग

तेरापंथ में वर्तमान आचार्य के जन्मोत्सव पर आयोजन की परम्परा का सूत्रपात आचार्य तुलसी के युग में हुआ। आचार्य-पद का दायित्व संभालने के बाद मेरे तीन जन्म-दिन आचार्य तुलसी की सन्निधि में मनाए गए। गुरु की सन्निधि में शिष्य के जन्मोत्सव के वे प्रसंग आज इतिहास की अनमोल निधि बन गए हैं–

• आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी (६ जुलाई १९९४) को आचार्य महाप्रज्ञ का जन्म दिन है। इस उपलक्ष्य में त्रिदिवसीय कार्यक्रम समायोजित किया गया। ४ जुलाई से ६ जुलाई तक तीन दिवसीय आयोजन में प्रथम दिन का कार्यक्रम एक संगोष्ठी के रूप में रहा। संगोष्ठी का विषय था–मूल्यपरक शिक्षा : जीवन विज्ञान। महाश्रमण मुदित ने महाप्रज्ञजी का परिचय दिया। महाप्रज्ञजी ने मूल्यपरक शिक्षा के संदर्भ में अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया। मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुनसिंह और दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री मदनलाल खुराना के वक्तव्य हुए।

मैंने अपने प्रवचन में कहा–'हमारे शिष्य के जन्मदिन को निमित्त बनाकर रचनात्मक कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं, इसकी मुझे प्रसन्नता है। शिष्य की जितनी ख्याति बढ़ती है, गुरु को उससे प्रसन्नता ही होती है। मैं पहला व्यक्ति हूं, जो अपने शिष्य को आचार्य के रूप में देख रहा हूं।

• ५ जुलाई को आयोजित संगोष्ठी का विषय था–स्वस्थ समाज के निर्माण में साहित्यकार का योगदान। वरिष्ठ पत्रकार विनोदकुमार मिश्र, प्रसिद्ध साहित्यकार श्री यशपाल जैन, डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल और साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने निर्धारित विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। महाप्रज्ञजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'साहित्यकार यदि अर्थ की प्रतिस्पर्द्धा में खड़े हो गए और व्यसनमुक्त नहीं हुए तो सत्साहित्य की स्रोतस्विनी का बहना संभव नहीं है। उसके अभाव में स्वस्थ समाज की कल्पना भी कैसे की जा सकती है? आज अपेक्षा इस बात की है कि साहित्यकारों में त्याग की चेतना जागे और सत्साहित्य एवं स्वस्थ समाज का निर्माण हो।'

सुन्दर, शालीन और अपूर्व दृश्य

● ६ जुलाई का कार्यक्रम संघीय अभिवंदना के रूप में आयोजित था। आचार्य महाप्रज्ञ के जन्मदिवस को सुनियोजित रूप में मनाने का वह पहला अवसर था। मंगल संगान के बाद अनेक साधु-साध्वियों ने कविता, गीत, वक्तव्य आदि विधाओं में अपनी भावनाएं व्यक्त कीं। अखिल भारतीय महिला कांग्रेस की अध्यक्ष डॉ. गिरिजा व्यास, भारत जैन महामंडल के अध्यक्ष नरेश जैन, दिगम्बर समाज के प्रमुख साहू अशोककुमार जैन, तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष कन्हैयालाल छाजेड़, अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष धर्मचन्द चौपड़ा, दिल्ली प्रवास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष मांगीलाल सेठिया आदि अनेक व्यक्तियों ने अपनी भावांजलियां प्रस्तुत कीं।

अभिवन्दना के उत्तर में महाप्रज्ञजी ने कहा–'भीतर में जीनेवाले को कभी बाहर की यात्रा भी करनी पड़ती है, निश्चय के साथ व्यवहार को भी जीना पड़ता है। अभी मैं व्यवहार के धरातल पर खड़ा होकर बोल रहा हूं। इस धरातल पर कहा जा सकता है कि तू कर्ता है, मैं तेरी कृति हूं। मुझे जैसे नियोजित करना चाहें, कर दें। मैं तैयार हूं। मेरा सौभाग्य है कि मुझे जैन शासन मिला। तेरापंथ जैसा अनुशासित धर्मसंघ मिला। पूज्य कालूगणी का चरण-स्पर्श और पूज्य गुरुदेव का वरदहस्त एवं छत्रछाया मिली। मैं मंगल भावना व्यक्त करता हूं कि गणाधिपति और आचार्य का यह नया योग बना रहे। आपके देने की उदारवृत्ति हम पर बरसती रहे। हम सौभाग्य और गौरव के साथ युगीन समस्याओं का समाधान करें। आप हमें ऐसा आशीर्वाद दें जिससे महावीर का युग पुनः आए।'

अपने प्रवचन में मैंने कहा–'सुन्दर, शालीन और अपूर्व दृश्य हमारे सामने है। इसे अपूर्व दृश्य कहूं या और कुछ, उपयुक्त शब्द नहीं मिल रहे हैं। अतीत में कभी ऐसा हुआ नहीं और भविष्य में जल्दी ऐसा होगा, ऐसी संभावना भी नहीं है। मैंने नया कुछ नहीं किया। पूज्य कालूगणी की शब्दावली को नया आकार, नया रूप दिया है। कालूगणी कहते थे–'हमारे संघ में अनेक साधु-साध्वियां आचार्य पद के योग्य बने।' उस वाक्य को मैंने पकड़ा। इतने बड़े उपकारी, महाउपकारी पूज्य कालूगणी की शब्दावली को मैं सार्थक कर पाया, इसकी मुझे प्रसन्नता है।'

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा–'आचार्य महाप्रज्ञ के समर्पण को आपने देखा। इतनी ऊंचाई पर पहुंचा हुआ व्यक्ति आज भी अपने गुरु के प्रति उतना ही समर्पित है। यह सबके लिए सीख लेने का अवसर है। यहां उपस्थित सब लोग आत्मचिन्तन करें कि क्या वे अपने अध्यक्ष, मंत्री या नेता के प्रति इतने समर्पित हैं। ये आज भी अपने को कृति मानते हैं। इनका यह समर्पण औपचारिक नहीं, वास्तविक है। हमारे विचारों में अद्वैत है। आप सबकी प्रसन्नता से मैं प्रसन्न हूं, यह कहकर अपनी प्रसन्नता को कम करना नहीं चाहता। महाप्रज्ञजी के साथ जितने भी विशेषण जोड़े जाएं, वे सब छोटे हैं, बौने हैं। हम सब मानव जाति के उन्नयन के लिए प्रयासरत रहें, यही सबसे बड़ी अपेक्षा है।'

स्वस्थ, सुव्यवस्थित और निश्चिंत जीवन

● २५ जून १९९५, रविवार। आज आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी है। महाप्रज्ञजी का छिहत्तरवां जन्मदिन है। यह पहले से ही निर्धारित था कि आचार्य महाप्रज्ञ का जन्मदिन इस बार 'प्रज्ञा दिवस' के रूप में मनाया जाए और व्यापक रूप में मनाया जाए। यहां जैन विश्व भारती, लाडनूं में उपस्थिति बहुत अच्छी रही। प्रसन्न वातावरण रहा। इनका स्वास्थ्य ठीक रहे, कार्यकारी रहे, यही अपेक्षा है।

"साहित्यकार यदि अर्थ की प्रतिस्पर्द्धा में खड़े हो गए और व्यसनमुक्त नहीं हुए तो सत्साहित्य की स्रोतस्विनी का बहना संभव नहीं है। उसके अभाव में स्वस्थ समाज की कल्पना भी कैसे की जा सकती है? आज अपेक्षा इस बात की है कि साहित्यकारों में त्याग की चेतना जागे और सत्साहित्य एवं स्वस्थ समाज का निर्माण हो।"

महाप्रज्ञजी बोले, पर मेरे बारे में ही अधिक बोले। उन्होंने कहा–'भारत में अनेक युद्ध हुए हैं। उनमें महाभारत की सबसे अधिक ख्याति है। उसका श्रेय अर्जुन को दिया जाता है। पर आप सोचें–अर्जुन का गांडीव क्या कर लेता यदि उसके सारथी श्रीकृष्ण नहीं होते। ठीक इसी प्रकार गुरुदेव ने मुझे बुलाया और कहा–'रथ में बैठो, प्रज्ञा का गांडीव संभालो, रथ का सारथी मैं बनूंगा।' जहां कृष्ण सारथी है, वहां अर्जुन निश्चिन्त है और उसकी विजयश्री भी निश्चित है। मेरे गुरु सारथी हैं, फिर मुझे विजय की किंचित् भी आशंका नहीं है। आज मैं अपने जीवन के चौथे चरण में प्रवेश कर रहा हूं। मैं आशीर्वाद क्या मांगू, वह तो मुझे सहज उपलब्ध है। मैं जीवन के चौथे चरण में अध्यात्म की अवधारणा में जीने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करूंगा।'

मैंने अपने प्रवचन के प्रारंभ में कहा–'मैं आज प्रातः चार बजे उठकर महाप्रज्ञजी के पास गया। ये मेरे पास आएं, क्या बड़ी बात है। मैं गया, यही बड़ी बात है। मैं अचानक गया और कमरे में हलचल मच गई। मैंने कहा–'कुर्सी लाओ।' सन्त कुर्सी लाए। मैं वहां बैठ गया और बोला–'मैं बधाई देने आया हूं।' बधाई के अनन्तर मैंने कहा–महाप्रज्ञजी! हमें तीन काम करने हैं–

१. मानव जाति की सेवा में अपना पुरुषार्थ लगाना है। दीन, हीन, गरीब लोगों के नैतिक व आध्यात्मिक पक्ष को ऊंचा उठाना है। यह कार्य लाडनूं तहसील में प्रारंभ हो गया है। यहां की अणुव्रत समिति के कार्यकर्ता सक्रिय हैं।

२. जैन विद्या जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उसे संसार के कोने-कोने में फैलाना है और जैन विश्व भारती मान्य विश्वविद्यालय के माध्यम से पहुंचाना है।

३. तेरापंथ धर्मसंघ के संपोषण तथा विकास के लिए विविध आयामी प्रयत्न करना है।'

अपने प्रवचन के उपसंहार में मैंने कहा–'महाप्रज्ञजी महाप्रज्ञ बने हैं, इसके लिए किसी को भी श्रेय दिया जा सकता है। पर मैं मानता हूं कि सबसे अधिक श्रेय इन्हीं को है। इन्हें जीने की कला आती है। उसी का सुपरिणाम है कि ये स्वस्थ, सुव्यवस्थित और निश्चिन्त जीवन जीते हैं। मैं मानता हूं कि तेरापंथ के लिए यह स्वर्णिम समय है। ८१ वर्ष मेरे और ७५ वर्ष महाप्रज्ञजी के, दोनों के प्रौढ़ अनुभवों का उपयोग कर काम करना है और संघ को विकास की दृष्टि से नए आयाम देना है।'

परिक्रमा विधायक दृष्टिकोण की

● ईस्वी सन् १९९६, जून महीने का तेरहवां दिन। वि.सं. २०५६, आषाढ़ मास का तेरहवां दिन। इधर १३ जून, उधर आषाढ़ी त्रयोदशी। कैसा विचित्र संयोग! प्रज्ञा दिवस के रूप में समायोजित आचार्य महाप्रज्ञ का सतहत्तरवां जन्म दिवस। सूर्योदय से पहले ही वर्षा हो गई। मौसम ने अपने तीखे तेवर को सुहावना बनाकर महाप्रज्ञजी का अभिनन्दन किया। सुधर्मा सभा में लाडनूं महिला मंडल के मंगल संगान से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। राजस्थान पत्रिका प्रबन्ध निदेशक श्री गुलाब कोठारी एवं राजस्थान विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री उन्नीथान मुख्य अतिथि की हैसियत से उपस्थित थे। अनेक साधु-साध्वियों तथा भाई-बहनों ने अपनी मंगल भावनाएं प्रकट कीं।

राजस्थान विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. उन्नीथान ने अपने भाषण में कहा–'पूज्य गुरुदेव तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ को जन्म दिन मनाने की आवश्यकता नहीं है। पर ऐसे कार्यक्रमों से प्रेरणा

मिलती है, उत्साह बढ़ता है, इसलिए हमें अपेक्षा है। आज समाज में तरह-तरह की विकृतियों का प्रवेश हो रहा है। उनसे बचने के लिए ऐसे महापुरुषों के विचार ही सशक्त माध्यम हैं। आपके सान्निध्य में चल रहे अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान ऐसे कार्यक्रम हैं, जो हमारी सोच को बदलाव देते हैं और जीवन को नई दिशा देते हैं। मैं आशा करता हूं कि गुरुदेव और आचार्यश्री के सान्निध्य में जैन विश्व भारती मान्य विश्वविद्यालय तक्षशिला का गौरव प्राप्त करेगा।'

गुलाबजी कोठारी ने अपने वक्तव्य में कहा–'एक जीवन में हर व्यक्ति को अनेक गुरु मिलते हैं। वैसे मां सर्वप्रथम गुरु होती है, जो अस्तित्वबोध देती है। पिता कर्म का बोध देते हैं। अक्षरज्ञान सिखानेवाले भी गुरु होते हैं। किन्तु सुपथ पर ले जानेवाले तथा ज्ञान के साथ अध्यात्म-विकास की रोशनी देनेवाले गुरु विरले होते हैं। गुरुदेवश्री तुलसी तथा आचार्य महाप्रज्ञ देश की ऐसी ही विरल विभूतियां हैं, जो हमारा पथदर्शन कर रही हैं। सामाजिक क्षेत्र में केवल सामाजिकता ही नहीं, धर्मयुक्त नीति का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। गणाधिपति गुरुदेव ने अपने पद का विसर्जन कर धर्म एवं नीतियुक्त कर्म का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने समाज को नई सोच, नई जीवन शैली और नई शिक्षा पद्धति के रूप में युग को महान अवदान दिया है।'

आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अभिभाषण में कहा–'आज सारी चर्चा प्रज्ञा की हो रही है। मैं सर्वप्रथम गुरुदेव को नमस्कार करता हूं, जिनके हर श्वास का उच्छ्वास प्रज्ञा है। आपके पास वह प्रज्ञा है, जहां बुद्धि की सीमा समाप्त हो जाती है। जो प्रत्यक्ष को ही नहीं, परोक्ष को भी प्रकाशित करती है। मैं सौभाग्यशाली हूं, जिसे ऐसे महान गुरु मिले और इस दुनिया में आने के लिए खुला आकाश मिला। दस वर्ष तक मुझे मां बालूजी तथा ज्येष्ठा भगिनी मालूजी का सुयोग मिला। जब पूज्य कालूगणी के पास दीक्षित हुआ, उनका वात्सल्य और आशीर्वाद ऐसा मिला कि जागरण की दिशा स्वयं उद्घाटित हो गई। उन्होंने जब मुझे अध्ययन के लिए मुनि तुलसी को सौंपा, वह क्षण और स्थान सब कुछ मुझे याद है। उसी समय उन्होंने मुझे प्रज्ञा का वरदान दे दिया था। मैं सोचता कम हूं। अचिन्तन से निकले चिन्तन को ही अधिक महत्त्व देता हूं। जहां आम आदमी बुद्धि की सीमा में ही सब कुछ मानता है, मेरे गुरु ने मुझे उससे पार देखने की क्षमता दी है। उन्होंने मेरे सुप्त केन्द्रों को खोला है। गुरु का आत्मीय भाव व आत्मप्रकाश मुझे मिला। मैं कुण्ड से कुएं का पानी बन गया। उसी का परिणाम है कि मुझे आज भी बचपन की-सी अनुभूति होती है। मैं गुरुदेव से प्रार्थना करता हूं कि आप सबको ऐसी प्रेरणा दें, जिससे यह संघ अपनी प्रज्ञा को जगाकर सम्पूर्ण मानव जाति की बुद्धि का घेरा तोड़ सके और उसे कल्याण का पथ दिखा सके।'

उस अवसर पर मैंने जनसभा को संबोधित करते हुए कहा–'महाप्रज्ञ शब्द को उपाधि न रखकर नाम रूप में परिणत कर वास्तव में ही मैंने महत्त्वपूर्ण काम किया है। यद्यपि गंगाशहर में हमने इनको 'महाप्रज्ञ' की उपाधि दी थी। पर युवाचार्य बनाते समय इनको उपाधि से मुक्त कर दिया। नथमल की जगह महाप्रज्ञ नामकरण कर दिया। अभी आप सभी प्रज्ञा-जागरण के विषय में सुन रहे थे। विनय, समर्पण और विधायक भाव वाले व्यक्ति की प्रज्ञा जागती है। जो मन में नफरत व विरोध की भावना रखता है, वह कभी आगे नहीं बढ़ सकता। महाप्रज्ञ ने अपने चिन्तन में कभी निषेधात्मक भाव नहीं आने दिया। इनका सारा कार्य, सारा चिन्तन विधायक दृष्टिकोण की परिक्रमा करता रहा। आज विश्व मानव का चिन्तन सत्ता और सम्पदा

" मैं सोचता कम हूं। अचिन्तन से निकले चिन्तन को ही अधिक महत्त्व देता हूं। जहां आम आदमी बुद्धि की सीमा में ही सब कुछ मानता है, मेरे गुरु ने मुझे उससे पार देखने की क्षमता दी है। उन्होंने मेरे सुप्त केन्द्रों को खोला है। गुरु का आत्मीय भाव व आत्मप्रकाश मुझे मिला। मैं कुण्ड से कुएं का पानी बन गया। "

पर केन्द्रित है, जिसके कारण मानव जाति अशांत है। मैं महाप्रज्ञजी से कहना चाहता हूं कि हमें अणुव्रत व प्रेक्षाध्यान के माध्यम से ऐसे वातावरण का निर्माण करना है, जिससे अशान्त मानव को शांति का मार्ग मिल सके।'

द्वैत में अद्वैत

टमकोर मेरी जन्मभूमि हैं। आचार्यवर सन् १९९५ में आचार्य पदाभिषेक के बाद प्रथम बार टमकोर पधारे। मेरी जन्मभूमि में मेरे बारे में जो उद्‌गार व्यक्त किए, उनमें द्वैत में अद्वैत की भाव-प्रवण स्वीकृति हैं–

● २० मार्च १९९५ को हम टमकोर पहुंचे। यह आचार्य महाप्रज्ञ का जन्मस्थान है और महाश्रमणी कनकप्रभा का ननिहाल है। इस रूप में यहां हमारा प्रथम आगमन है। अब टमकोर बदल गया। जनता की इतनी उपस्थिति कल्पनातीत है। टमकोर आने में कुछ कठिनाई थी। क्योंकि यहां सड़क नहीं थी। सरकार ने सहयोग किया। सड़क बनवा दी। जनता का भला हो गया। जाति और सम्प्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर सब लोग इस प्रवास का लाभ उठाने के लिए उत्सुक दिखाई दे रहे हैं।

स्वागत सभा का सीन दर्शनीय था। देश के विभिन्न अंचलों में प्रवासी टमकोर के अधिसंख्य लोग अपने गांव में पहुंच गए। गांववासियों ने अपने सगे-संबंधियों को भी बुला लिया। निकटवर्ती क्षेत्रों–चूरू, राजगढ़, सादुलपुर आदि से भी काफी लोग पहुंच गए। गांव में पूरी चहल-पहल हो गई। स्वागत कार्यक्रम में राजस्थान के उपमुख्यमंत्री श्री हरिशंकर भाभड़ा मुख्य अतिथि की हैसियत से उपस्थित थे। उनका वक्तव्य हुआ। महाप्रज्ञजी ने अपनी जीवन यात्रा के कई पड़ावों पर प्रकाश डाला।

उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए मैंने कहा–'आज हम टमकोर में आए हैं, महाप्रज्ञजी की जन्मभूमि में आए हैं। स्वागत कार्यक्रम के वक्ताओं को मैंने सुना। एक व्यक्तित्व के विषय में अनेक दृष्टिकोणों से अभिव्यक्ति दी गई। एक व्यक्ति, जिसकी पहचान नत्थू, नथमल, महाप्रज्ञ, युवाचार्य और आचार्य, कितने रूपों में हो रही है। किन्तु मैं इनको जितना जानता हूं, आप नहीं जान सकते। यह अभिमान नहीं, यथार्थता है। आप जान भी नहीं सकेंगे। क्योंकि इन्हें जानना भी मुश्किल है। ये मेरे समर्पित शिष्य हैं और ज्ञान की उत्कृष्ट आराधना करनेवाले हैं। जब से ये मेरी दृष्टि में आए, अद्वैत हो गए। महाप्रज्ञ और तुलसी में यदि कोई द्वैत करना चाहे, महाकठिन काम होगा। आचार्य महाप्रज्ञ को समझना अद्वैत को समझना है।'

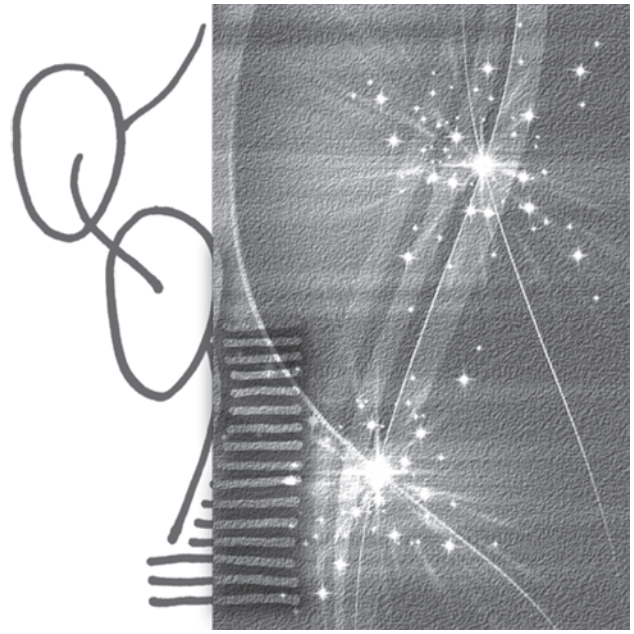

वार्तालाप और संगोष्ठी

> “
> प्रबुद्ध विचारकों को उनके क्रांत विचारों में युग की समस्या के समाधान की रश्मियां उपलब्ध हुई। राष्ट्रपति भवन से लेकर गरीब की झोंपड़ी तक उनका संदेश आदर और श्रद्धा के साथ सुना गया। वे मानवधर्म के महान् प्रवक्ता और व्याख्याकार के रूप में प्रतिष्ठित होते चले गए। प्रबुद्धजनों और शिखर पुरुषों के साथ हुए वार्तालाप उनकी मनस्विता और चिन्तन की मौलिकता के साक्ष्य हैं।
> ”

पूज्य गुरुदेव का चिन्तन उदात्त था और जनसंपर्क व्यापक। उन्होंने धर्म के नैतिक और आध्यात्मिक स्वरूप को जनता के सामने प्रस्तुत किया। पूज्य गुरुदेव के क्रांतिकारी विचारों से जनता प्रभावित हुई। प्रबुद्ध विचारकों को उनके क्रांत विचारों में युग की समस्या के समाधान की रश्मियां उपलब्ध हुई। राष्ट्रपति भवन से लेकर गरीब की झोंपड़ी तक उनका संदेश आदर और श्रद्धा के साथ सुना गया। वे मानवधर्म के महान् प्रवक्ता और व्याख्याकार के रूप में प्रतिष्ठित होते चले गए। प्रबुद्धजनों और शिखर पुरुषों के साथ हुए वार्तालाप उनकी मनस्विता और चिन्तन की मौलिकता के साक्ष्य हैं। अनेक वार्तालापों और संगोष्ठियों में मैं साक्षी और सहभागी रहा। आचार्यवर ने अपनी दैनन्दिनी में उनका यत्र-तत्र उल्लेख किया है। उनमें विचार और चिन्तन के एकत्व के अभिनव उच्छ्वास के साथ युगीन समस्याओं के समाधान-सूत्र उपलब्ध हैं।

राष्ट्रपति भवन में

● २९ अप्रैल १९५०। राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद से वार्तालाप चल रहा था। इसी बीच राष्ट्रपति की पत्नी, पुत्रवधू, पौत्र-पौत्री आदि पारिवारिक जन वहां आ गए। परिचय के बाद उन्होंने

उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। मैंने उनको शान्तसुधारस काव्य की एकत्व भावना का गीत सुनाकर उसकी संक्षिप्त व्याख्या की। सब लोगों ने पूरी तन्मयता के साथ सारी बात सुनी। लगभग पैंतालीस मिनट तक वार्तालाप कर हमने वहां से प्रस्थान किया। इस वार्तालाप के समय मुनि चम्पालालजी, मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी आदि साधु तथा श्रीचन्दजी रामपुरिया, नेमीचन्दजी पींचा आदि कुछ श्रावक वहां उपस्थित रहे।

आचार्य गणेशीलालजी से मिलन

• २१ सितम्बर १९६२, उदयपुर। आज रात्रि में संवाद मिला कि स्थानकवासी आचार्य गणेशीलालजी अत्यधिक अस्वस्थ हैं। उनको कैंसर की बीमारी है। बचने की आशा कम है। यह बात सुनकर मन में आया कि आचार्यजी से खमतखामणा करना चाहिए। २२ सितम्बर को प्रातःकालीन प्रवचन के बाद कुछ साधुओं को साथ लेकर हम स्थानक में गए।

मैंने उनसे खमतखामणा किया, स्वास्थ्य के बारे में पूछा और आत्म-समाधि की कामना की। उन्होंने भी अच्छे ढंग से खमतखामणा किया। सेवाभावी मुनि चम्पालालजी आदि संतों का परिचय कराते हुए मैंने कहा–'स्थानकवासी सम्प्रदायों में आचार्य जवाहरलालजी के सम्प्रदाय से हमारा अधिक सम्पर्क व निकटता रही है।' मेरी बात सुनकर आचार्य गणेशीलालजी बोले–'निकटता क्या, हम तो एक मूंग की दो फाड़ हैं। मैं तो चाहता हूं जो तड़ पड़ गई है, उसे मिटा लें। भेद के तत्त्व हैं, उनका भी विचार-विनिमय के द्वारा हल निकाल लें।'

आचार्य गणेशीलालजी का सकारात्मक रुख देखकर मैं बोला–'भगवान महावीर ने हमें स्याद्वाद का सिद्धांत दिया है। जो स्याद्वाद संसार भर की समस्याओं को सुलझा सकता है, वहां हमारी समस्या है ही क्या?'

मुनि नथमलजी ने कहा–'आज तो वायुमण्डल ऐसा बन रहा है कि जैनेतर लोग जैन साहित्य पर अनुसंधान करते हैं, थीसिस लिखते हैं और उसे प्रकाश में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके अनुसार हिन्दी भाषा में पर्याप्त जैन साहित्य नहीं है। ऐसे समय में हमारा कर्तव्य है कि हम इस ओर ध्यान दें। यदि परस्पर मैत्री का वातावरण रहे तो कार्य में सुगमता हो सकती है।'

• ८ अक्टूबर १९६२, उदयपुर। यशपालजी, भटनागरजी और दिल्ली राज्य के मुख्य सचिव श्री जोशीजी लगभग दो घण्टे तक मुनि नथमलजी के उपपात में बैठे। उन्होंने उनको हमारी चालू प्रवृत्तियों की जानकारी दी। वे लोग इससे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा–'हम इन सब बातों से सर्वथा अनजान थे। आज हमारी भ्रांति दूर हुई है।'

मिठास संस्मरणों की

• २८ दिसम्बर १९६२। आहार के बाद पूज्य गुरुदेव कालूगणी के संस्मरणों का लम्बा सिलसिला शुरू हो गया। लगभग एक घंटा बीत गया। काल का बोध ही नहीं हुआ। आनन्द का पारावार उमड़ पड़ा। कुछ प्रसंग मैंने सुनाए। कुछ मुनि सोहनलालजी (चूरू) और मुनि नथमलजी ने। संस्मरण सुनने के लिए काफी साधु-साध्वियां एकत्रित हो गईं। वह सारा क्रम खड़े-खड़े ही चलता रहा। संस्मरणों की मिठास में खड़ा रहना किसी को भी अखरा नहीं।

• २६ मार्च १९६८, कोल्हापुर। मध्याह्न में मुनि नथमलजी के सान्निध्य में प्राकृत-भाषा के बारे में एक गोष्ठी हुई। जैनदर्शन के विद्वान डॉ. ए. एन. उपाध्ये गोष्ठी के प्रमुख वक्ता थे। प्राकृत भाषा के स्वरूप, व्यवहार एवं साहित्य आदि पर विस्तृत चर्चा चली। उस गोष्ठी में साधु-साध्वियों ने विशेष रुचि के साथ भाग लिया।

राजगोपालाचार्य के साथ

• १५ नवम्बर १९६८। आज प्रातः साढ़े सात बजे हम आठ संतों और कुछ कार्यकर्ताओं के साथ भारत के मूर्धन्य चिन्तक और राजनीति के चाणक्य चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के निवास-स्थान पर गए। राजाजी अपनी पुत्रियों के साथ द्वार पर उपस्थित थे। राजाजी के निवास-स्थल पर हम लगभग पौन घण्टे तक रहे। राजाजी से मिलने का वह प्रथम अवसर था। विविध विषयों पर चर्चा हुई। भारत का भविष्य, भाषायी विवाद, अणुव्रत, राष्ट्र की राजनीति, गांधी टोपी, जैनधर्म, हमारी दक्षिणयात्रा, दक्षिण और जैनधर्म आदि हमारी चर्चा के प्रमुख बिन्दु थे। दोनों ओर से प्रसन्न वातावरण रहा। राजाजी की दोनों पुत्रियां वार्तालाप के समय उनके पास थीं। मुनि नथमलजी आदि संत हमारे साथ थे। अनुवादक का काम मुनि दुलहराज ने किया।

• २७ दिसम्बर १९६८। टिण्डीवनम में हम तीन दिन रहे। वहां पाण्डिचेरि से 'अरविन्द आश्रम' के सचिव श्री नवजातभाई मिलने आए। इला बहन जवेरी (बम्बई) और फूलकुमारी सेठिया उनके साथ थीं। सामान्यतः मिलने की दृष्टि से वे कहीं भी नहीं जाते हैं। इला बहन की विशेष प्रेरणा से हमारे पास आ गए। मैं प्रवचन करके आया, तब तक मुनि नथमलजी उनसे बात करते रहे।

• २ जनवरी १९६९। रमण आश्रम के साधक जिज्ञासु थे। वे बात करना चाहते थे। मैंने मुनि नथमलजी को उनके साथ बातचीत करने का निर्देश दिया। साधना के विविध प्रयोगों के बारे में चर्चा हुई।

प्रसंग चंद्र यात्रा का

• २९ जुलाई १९६९। चन्द्रयात्रा का प्रसंग अनेक दृष्टियों से समालोच्य है। इस सन्दर्भ में हमने साधु-साध्वियों की एक गोष्ठी बुलाई। उसमें सेवाभावी मुनि चम्पालालजी, मुनि जसकरणजी, मुनि नथमलजी, मुनि बुद्धमलजी, मुनि दुलीचन्दजी, मुनि मिलापचन्दजी, मुनि सागर, मुनि सुमेर, मुनि बालचन्द, मुनि मधुकर, मुनि पानमल, मुनि श्रीचन्द, मुनि मोहन, मुनि दुलहराज, मुनि रूपचन्द, मुनि किशनलाल मुनि गुलाब आदि सन्त उपस्थित थे। साध्वियों में साध्वी कमलूजी, साध्वी सोहनांजी, साध्वी भीखांजी, साध्वी कानकुमारीजी, साध्वी संघमित्रा, साध्वी मंजुला, साध्वी सरोजकुमारी, साध्वी कनकप्रभा आदि की उपस्थिति थी। रामकुमारजी सरावगी, शुभकरण दसानी आदि कुछ श्रावक भी संगोष्ठी में संभागी थे। चन्द्रमा के विषय में काफी चर्चा चली। कुछ प्रश्न भी सामने आए। उन्हें समाहित करने का प्रयास किया गया।

• २५ जनवरी १९७०, हैदराबाद। चोरड़िया गार्डन में अणुव्रत मिशन : प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन राज्यपाल खंडुभाई देसाई ने किया। अणुव्रत मिशन के कार्यकर्ताओं का वह पहला शिविर था, इसलिए उन पर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा थी। मध्याह्न में उनकी गोष्ठी निकाय-सचिव मुनि नथमलजी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई।

"'आज तो वायुमण्डल ऐसा बन रहा है कि जैनेतर लोग जैन साहित्य पर अनुसंधान करते हैं, थीसिस लिखते हैं और उसे प्रकाश में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके अनुसार हिन्दी भाषा में पर्याप्त जैन साहित्य नहीं है। ऐसे समय में हमारा कर्तव्य है कि हम इस ओर ध्यान दें। यदि परस्पर मैत्री का वातावरण रहे तो कार्य में सुगमता हो सकती है।'"

वियोगी हरि के साथ

● १३ सितम्बर १९७०। मध्याह्न में अणुव्रत नगर के सामने मोतीबाग में निर्मित पंडाल में एक गोष्ठी हुई। उसमें समाज के कार्यकर्ताओं के साथ श्री वियोगी हरि भी उपस्थित थे। दूसरे दिन प्रवचन के समय भी उनका वक्तव्य हुआ। यहां से विदा होते समय वे बोले–'आचार्यजी ! आपके प्रति मेरी बहुत श्रद्धा है। मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) पर भी श्रद्धा है। मैं चाहता हूं कि अग्निपरीक्षा को लेकर उत्पन्न हुआ विवाद समाप्त हो जाए। मैं इस विषय में कमिश्नर से बात करूंगा, कलक्टर से भी मिलूंगा। मेरा आपसे अनुरोध है कि कोई अच्छा और सर्वसम्मत रास्ता बैठता हो तो आप उसे अवश्य मान लीजिए।

● ११ अप्रेल १९७१ की रात्रि में युवक गोष्ठी हुई, उसमें सुजानगढ़ के युवकों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। उनके मन में अनेक प्रकार के प्रश्न थे। उनको प्रश्न पूछने के लिए मुक्त अवसर दिया गया। कुछ प्रश्न अच्छे स्तर के थे तो अनेक छिछले और परस्पर भेद डालने वाले प्रश्न भी सामने आए। मुनि नथमलजी (टमकोर) ने अच्छे तरीके से सारे प्रश्न समाहित किए।

● १ अगस्त १९७१। रात्रि में अणुव्रत-गोष्ठी का आयोजन था। अध्यापकों की अच्छी उपस्थिति थी। मुनि नथमलजी का विशेष वक्तव्य हुआ। अच्छा प्रभाव रहा। गोष्ठी सफल रही। लाडनूं आने के बाद प्रत्येक रविवार को अच्छा रंग जमता है।

अणुव्रत और संस्कार निर्माण समिति

● अगस्त १९७३। संस्कार-निर्माण समिति के अंतर्गत दलित वर्ग का कार्य चल रहा है। उसे व्यवस्थित करने की दृष्टि से एक विचार-गोष्ठी आयोजित की गई। उसमें बाहर से आए हुए समाज के विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित थे। मुनि नथमलजी, मुनि किशनलाल आदि कुछ संत भी थे। सर्वसम्मति से एक निर्णय लिया गया कि यह कार्य अणुव्रत के अंतर्गत चलना चाहिए। इस निर्णय का उद्देश्य यही था कि अणुव्रत को बल मिले और इस काम में कोई कठिनाई न आए।

गोष्ठी चल ही रही थी, इसी बीच दिल्ली से देवेन्द्र कर्णावट और बुधमलजी श्यामसुखा पहुंच गए। ये दोनों वर्तमान में अणुव्रत के विशिष्ट कार्यवाहक हैं। सबने उक्त निर्णय का स्वागत किया। एक विचार यह भी सामने आया कि इसकी वैधानिक खानापूर्ति दिल्ली में कर ली जाएगी। 'संस्कार निर्माण समिति' को एक तरह से स्वतंत्र जैसा रखा जाएगा, पर उसका भी वैधानिक संबंध होगा। इस प्रकार सामूहिक चिन्तन का क्रम संपन्न हुआ।

अहिंसा भवन में

● १२ फरवरी १९७४, दिल्ली। हमारा रात्रि-प्रवास अहिंसा भवन में ही था। अर्हत्-वन्दना के बाद वार्तालाप का प्रथम दौर प्रारंभ हुआ। मुनि सुशीलकुमारजी अपने सहयोगी संतों के साथ उपस्थित थे। सेवाभावी मुनि चम्पालालजी, मुनि नथमलजी, मुनि राकेश आदि कुछ साधुओं की संभागिता थी। श्रावकों में श्री आदीश्वरमल जैन, श्री डिप्टीमल जैन, श्री आर. डी. जैन, डॉ. विमलकुमार जैन आदि ने वार्तालाप में विशेष रूप से भाग लिया। निर्वाण शताब्दी, जैन शासन की प्रभावना, साम्प्रदायिक सद्भावना आदि बातचीत के मुख्य बिन्दु रहे।

प्रहर रात्रि के पश्चात वार्तालाप का दूसरा दौर अहिंसा भवन की तीसरी मंजिल में शुरू हुआ। उसमें केवल साधुओं की उपस्थिति थी। अनेक मुद्दों पर खुलकर चर्चा हुई। रात्रि को लगभग बारह बजे तक वार्तालाप का सिलसिला चलता रहा। दिल खोलकर बातें हुईं। वातावरण आत्मीय भावना से ओत-प्रोत था। सहज आनन्द का अनुभव हुआ।

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के साथ

● १९ अप्रैल १९७४। आज प्रातः पंचशील पार्क से विदा हुए। सीधे रास्ते 'अणुव्रत विहार' के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में ही प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का निवास स्थान आता है। कई दिनों से उनसे मिलने की चर्चा चल रही थी। उस दिन सहज संयोग बना और हम उनके निवास-स्थान पर पहुंच गए।

प्रधानमंत्री के निवास-स्थान पर उनके साथ लगभग चालीस-पैंतालीस मिनट तक बातचीत हुई। प्रारंभ में दो-चार मिनट शिष्टाचारमूलक बात हुई। उनके साथ मुझे बहुआयामी बात करनी थी। सबके सामने सारी बातें नहीं हो सकतीं, यह सोचकर मैंने प्रायः साधु-साध्वियों को बाहर भेज दिया। कक्ष में मेरे साथ केवल पांच साधु–सेवाभावी मुनि चम्पालालजी, मुनि नथमलजी, मुनि मधुकर, मुनि किशनलाल और मुनि महेन्द्र तथा साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा रहीं। प्रसन्न वातावरण में खुलकर बातचीत हुई।

महावीर निर्वाण शताब्दी

● मई महीने (सन् १९७४) के अंतिम तीन दिनों में दिगम्बर सम्प्रदाय के मुनि विद्यानंदजी, तेरापंथ के प्रतिनिधि मुनि नथमलजी, स्थानकवासी सम्प्रदाय से मुनि सुशीलकुमारजी और मूर्तिपूजक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने वाली साध्वी मृगावती ने एक साथ बैठकर कई संगोष्ठियां कीं। उनके चिंतन का मुख्य बिन्दु था भगवान महावीर की निर्वाण शताब्दी। सहचिन्तन से जो निष्कर्ष सामने आए, उनके आधार पर कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय भी लिए गए।

● जुलाई १९७४। भगवान महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी को लेकर पूरे देश में एक उत्साहपूर्ण वातावरण बन रहा है। दिल्ली में दिगम्बर, मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापंथ–इन चारों सम्प्रदायों के प्रतिनिधि मुनि समय-समय पर मिल रहे हैं और साधु-संस्थाओं द्वारा करणीय रचनात्मक कार्यों के बारे में विचार-विमर्श कर रहे हैं। इसी शृंखला में जुलाई के अंतिम सप्ताह में एक संगोष्ठी 'अणुव्रत विहार' में हुई। मुनि विद्यानंदजी, मुनि जनकविजयजी और मुनि सुशीलकुमारजी निर्धारित समय पर 'अणुव्रत विहार' पहुंच गए। मुनि नथमलजी वहां थे ही। मुनि चतुष्टयी ने अनेक बिंदुओं पर चिन्तन-मंथन किया। दो बार मेरे सान्निध्य में भी चिन्तन हुआ। कार्य को गति देने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए।

● १७ नवम्बर १९७४। भगवान् महावीर पच्चीसवां निर्वाण शताब्दी समारोह का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि गृहस्थों और पण्डितों के हाथों में जो सत्ता थी, वह वहां से निकलकर आचार्यों व मुनियों के हाथों में आ गई। चारों सम्प्रदायों के चार आचार्यों तथा चार मुनियों के नाम इस प्रकार हैं–

◇ आचार्य देशभूषणजी, आचार्य समुद्रविजय सूरिजी, आचार्य आनन्दऋषिजी, आचार्य तुलसी।

◇ मुनि विद्यानन्दजी, मुनि नथमलजी, मुनि सुशीलकुमारजी, मुनि जनकविजयजी।

"भगवान् महावीर पचीसवां निर्वाण शताब्दी समारोह का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि गृहस्थों और पण्डितों के हाथों में जो सत्ता थी, वह वहां से निकलकर आचार्यों व मुनियों के हाथों में आ गई। चारों आचार्यों और विशेष रूप से चारों मुनियों ने लगातार कई दिनों तक एक साथ बैठकर सहचिंतन से जो कार्यक्रम निर्धारित किया, वही व्यवस्थित रूप से चल पाया।"

चारों आचार्यों और विशेष रूप से चारों मुनियों ने लगातार कई दिनों तक एक साथ बैठकर सहचिंतन से जो कार्यक्रम निर्धारित किया, वही व्यवस्थित रूप से चल पाया। बाकी समितियों का कार्यक्रम ढीलाढाला-सा रहा। भगवान महावीर के बारे में लिखी गई पुस्तक सर्वमान्य नहीं हो सकी। क्योंकि वह पण्डितों के चक्रव्यूह में फंस गई। अन्यथा इस अवसर पर हमारे द्वारा प्रस्तुत महावीर की एक जीवनी सर्वमान्य हो सकती थी।

● १९ दिसम्बर १९७४। साढ़े बारह बजे संसद-भवन में संसद-सदस्यों के बीच एक विशेष कार्यक्रम आयोजित था। उसकी अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष श्री गुरुदयालसिंह ढिल्लो ने की। कार्यक्रम का प्रारंभ साध्वियों के मंगल संगान से हुआ। मुनि नथमलजी ने अणुव्रत के कार्यक्रमों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला।

तेरापंथ और मुनि विद्यानंदजी

भगवान महावीर की २५००वीं निर्वाण शताब्दी। जैन समाज के साधु-संतों का परस्पर संगठित रूप में मिलन। कार्य-संपादन की दृष्टि से मेरा दरियागंज स्थित अनाथाश्रम में विद्यानंदजी के साथ रहना हुआ। मुनि सुशीलकुमारजी और मुनि जनकविजयजी भी वहां रहे। मुनि विद्यानंदजी तेरापंथ के संगठन से बहुत प्रभावित थे और मेरे प्रति भी उनका बहुत आंतरिक अनुराग था। गुरुदेव ने उस प्रसंग की संक्षिप्त चर्चा की–

● ११ जून १९७४। मुनि विद्यानंदजी के विशेष अनुरोध पर ही हमने दरियागंज का कार्यक्रम बनाया था। उस दिन आचार्य शांतिसागरजी महाराज की एक सौ तीसवीं जन्म जयंती थी। मंगल संगान आदि औपचारिकताओं के बाद मुनि नथमलजी का वक्तव्य हुआ। मुनि विद्यानंदजी ने हजारों दिगम्बर जैनों की उपस्थिति में तेरापंथ के संगठन पक्ष की महत्ता बताते हुए कहा–'संगठन की दृष्टि से जितना सुदृढ़ तेरापंथ धर्मसंघ है, उतना शायद ही कोई और हो। ईसाई, इस्लाम, दिगम्बर या मूर्तिपूजक कोई भी संगठन हो, किंतु जितना संगठित तेरापंथ धर्मसंघ है, उतना कोई और नहीं है।'

तेरापंथ के दूसरे अवदान की चर्चा करते हुए मुनिजी ने आगे कहा–'हमारे जैन समाज के सामने कोई व्यापक कार्यक्रम नहीं था। आचार्य तुलसी ने पहली बार अणुव्रत के रूप में एक विश्वव्यापी कार्यक्रम जनता के सामने प्रस्तुत किया। हो सकता है, किसी आचार्य या मुनि ने कोई कार्यक्रम प्रस्तुत किया हो, किंतु अणुव्रत जैसा एक भी कार्यक्रम हमारे सामने नहीं आया।'

पिछले महीने मुनि विद्यानंदजी और मुनि नथमलजी तीन-चार दिन तक साथ-साथ रहे थे। वे दोनों ही एक दूसरे से बहुत प्रभावित हुए। मुनि विद्यानंदजी ने अपने वक्तव्य में उस प्रभाव को अभिव्यक्ति देते हुए कहा–'आचार्य तुलसी की एक विशिष्ट देन है मुनि नथमलजी जैसे विद्वान दार्शनिक संत। आप लोगों ने अपने देश में डॉ. राधाकृष्णन का नाम सुना होगा। विदेशों में डॉ. रसेल का भी नाम सुना होगा। मैं मुनि नथमलजी को इनसे कम नहीं मानता हूं। ये उच्चकोटि के दार्शनिक, चिन्तक और अध्येता हैं।'

मुनिजी ने तेरापंथ के साहित्य के बारे में भी बहुत प्रशंसात्मक शब्द कहे। गुणग्राही मनोवृत्ति और प्रमोद भावना का विकास न हो तो किसी दूसरे सम्प्रदाय, उसके आचार्य या मुनियों के बारे में यह सब नहीं कहा जा सकता।

● ७ सितम्बर १९८४, जोधपुर। एलाचार्य विद्यानन्दजी अभी बम्बई में हैं। चन्दनमल 'चांद' वहां

उनसे मिला। उसने जोधपुर जाने की बात कही तो विद्यानन्दजी महाराज बोले–'तुम जोधपुर जा रहे हो तो एक काम करना, मेरे शब्द जनता के बीच आचार्यजी को सुना देना।' उन्होंने दो बातें कहीं–

१. 'आचार्यजी बड़े भाग्यशाली हैं, जिन्हें महाप्रज्ञ जैसा शिष्य मिला। डॉ.राधाकृष्णन के बाद ऐसा कोई दार्शनिक नहीं है, जैसा युवाचार्य महाप्रज्ञ है।'

२. 'आचार्यजी ने भगवान महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी में जो योगदान दिया, उसे हम भूल नहीं सकेंगे। हम कुछ नहीं कर सके। उन्होंने ही बहुत कुछ किया है।'

एलाचार्य विद्यानन्दजी गुणग्राही व्यक्ति हैं। एक सम्प्रदाय के आचार्य के लिए ऐसा होना कठिन है। पर इस मामले में विद्यानन्दजी महाराज बहुत उदार हैं। अपने समाज के लोगों के बीच में अन्य सम्प्रदाय के आचार्य एवं युवाचार्य के बारे में इतने मुक्तभाव से गुणात्मक बात कहना बहुत कठिन काम है। एलाचार्यजी में इतनी उदारता है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

● २० अक्टूबर १९८७। आज मध्याह्न में दो बजे दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्य विद्यानन्दजी महाराज अणुव्रत भवन आए। युवाचार्य महाप्रज्ञ सन्तों के साथ भवन के बाहर तक गए। दोनों साथ-साथ आए। ऊपरवाले कक्ष में वार्तालाप हुआ। दूसरे दिन प्रातः पुनः आए। लगभग साढ़े तीन घंटे तक यहां रहे। मधुर मिलन हुआ। वार्तालाप के दौरान उन्होंने बहुत आत्मीयता के साथ अनेक बातें कहीं। कुछ बातें यहां प्रस्तुत हैं–

१. आप उदार हैं। आपके कार्यक्रम व्यापक हैं। मैं तो एक छोटा-सा कार्यकर्ता हूं।

२. आपने आगम-सम्पादन का अनूठा काम किया है। प्रकाशन भी सुन्दर है। विशेष बात यह है कि आगम ग्रन्थों में भगवान महावीर के अतिरिक्त और कोई चित्र नहीं दिया गया।

३. समण श्रेणी का कार्य धन्यवाद के योग्य है। इससे देश-विदेश में जैनधर्म के प्रसार में बड़ा योग मिलेगा। इसकी संख्या बढ़नी चाहिए। मैं एक बात कहने का साहस कर रहा हूं कि साधु-साध्वियों की संख्या कम हो तो भी कोई हर्ज नहीं है। इसकी संख्या बढ़ती रहे।

४. प्रेक्षाध्यान का प्रयोग बहुत वैज्ञानिक है। आपने यह प्रेक्षा शब्द कहां से निकाला है? बहुत अच्छा है। मैं भी प्रेक्षा शिविर लगाना चाहता हूं। यह दक्षिण भारत के कोथली गांव में होगा। इसके लिए प्रेक्षा-प्रशिक्षक यहां से भेजना होगा।

५. अर्हत्-वन्दना में तो आपने 'समयसार' भर दिया है।

६. कुन्दकुन्दभारती में प्रेक्षाध्यान का प्रारम्भ हो। इसके लिए एक विशेष सभागार हो, जिसका नाम प्रेक्षा सभागार रहे।

७. कुन्दकुन्द शताब्दी के अवसर पर 'समयसार' के आधार पर प्रवचन हो।

आचार्य विद्यानन्दजी से बात करने में सहज प्रसन्नता की अनुभूति होती है। अतिमात्र एकता का परिचय मिलता है। वार्तालाप पूरा करके हम प्रवचन पण्डाल में गए। वहां युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'दो दिनों से आचार्य विद्यानन्दजी से बातचीत करने पर सन १९७४ की स्मृतियां ताजी हो गईं। भगवान महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी पर मुनिजनों की संगीतियों के माध्यम से जो वातावरण बना था, वह आज

"आचार्य तुलसी की एक विशिष्ट देन है मुनि नथमलजी जैसे विद्वान दार्शनिक संत। आप लोगों ने अपने देश में डॉ. राधाकृष्णन का नाम सुना होगा। विदेशों में डॉ. रसेल का भी नाम सुना होगा। मैं मुनि नथमलजी को इनसे कम नहीं मानता हूं। ये उच्चकोटि के दार्शनिक, चिन्तक और अध्येता हैं।"

पुनः साकार हो गया। वर्तमान युग के सन्दर्भ में जैनाचार्यों के सामने बहुत सारे ज्वलन्त प्रश्न हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है।'

संदर्भ शोध और शिक्षा का

२४ अगस्त १९७५। मध्याह्न में एक विशेष संगोष्ठी थी। उसमें राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. जी. सी. पाण्डेय, दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ. दयाकृष्ण, शोधसहायक डॉ. मुकुन्द लाट, इतिहास विभाग के डॉ. गोपीनाथ शर्मा आदि शिक्षा जगत के प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। संगोष्ठी में विचारणीय विषय था–राजस्थान विश्वविद्यालय में जैन चेयर के शिक्षाक्रम एवं शोधक्रम का निर्धारण। संगोष्ठी के प्रारम्भ में मैंने जैनविश्वभारती के नए पाठ्यक्रम, शोधकार्य, साहित्य-निर्माण, पुस्तकालय आदि के बारे में जानकारी दी।

डॉ. पाण्डेय ने अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हुए कहा–'जैनविश्वभारती का समग्र कार्यक्रम शिक्षा एवं शोध की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा। राजस्थान विश्वविद्यालय और जैनविश्वभारती के परस्पर समन्वय एवं सहयोग से शिक्षा और शोधकार्य को बल मिलेगा। राजस्थान विश्वविद्यालय में इसी वर्ष जैन चेयर का प्रारम्भ होने जा रहा है। इस दृष्टि से हमारा चिन्तन है कि सितम्बर महीने से जैनदर्शन से सम्बन्धित किसी विषय पर एक भाषणमाला का आयोजन हो। इसके लिए आप अपने विद्वान साधु-साध्वियों को वहां भेजने की कृपा करें।'

डॉ. दयाकृष्ण ने पाण्डेयजी की बात पर बल देते हुए एक सुझाव दिया कि भाषणमाला 'जैन न्याय और स्याद्वाद' विषय पर आयोजित की जाए। विद्वानों के अनुरोध को स्वीकार करके मैंने मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) को इस कार्य में नियुक्त कर दिया। १९ सितम्बर से प्रति शुक्रवार राजस्थान विश्वविद्यालय में मुनि नथमलजी के अभिभाषण का कार्यक्रम निर्णीत हो गया।

● फरवरी १९७७। कालूगणी जन्म शताब्दी के संदर्भ में श्रीमती इन्दिरा गांधी का सन्देश लेकर दिल्ली से श्री धीरेन्द्र ब्रह्मचारी अपने विशेष वायुयान द्वारा छापर पहुंचे। उन्हें देखने के लिए ताल में काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। उस दिन हमारे सान्निध्य में 'योग' विषय पर विशेष गोष्ठी का आयोजन हुआ। गोष्ठी में मुनि नथमलजी, श्री धीरेन्द्र ब्रह्मचारी के वक्तव्यों के बाद मेरा वक्तव्य हुआ। गोष्ठी की सम्पन्नता के बाद लगभग आधा घंटा तक बातचीत हुई।

डॉ. राजा रमन्ना और अनेकांत

● ६ अप्रैल १९७९। देश के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं भाभा एटोमिक इंस्टीट्यूट के अध्यक्ष डॉ. राजा रमन्ना अणुव्रत विहार आए। उनके अभिवादन के उत्तर में मैंने कहा–'हम जब दक्षिण भारत गए थे, तब आप वहां नहीं मिले।' डॉ. रमन्ना बोले–'आचार्यजी! मैंने तीस साल पहले ही घर छोड़ दिया।' वार्तालाप के दौरान मैंने जैन दर्शन, योग और प्रेक्षाध्यान के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी। उन्होंने विस्तार से जानने की भावना व्यक्त की। मुझे प्रवचन करने जाना था, इसलिए युवाचार्य महाप्रज्ञ को निर्देश दिया कि वे डॉ. रमन्ना से बात करें।

युवाचार्य महाप्रज्ञ के पास पहुंचकर डॉ. रमन्ना ने जैन लॉजिक के बारे में जिज्ञासा की। उन्होंने कहा–'आप मुझे सबसे पहले 'अनेकांत' के बारे में बताइए। युवाचार्य ने पूरे विस्तार के साथ अनेकांत की

व्याख्या की। इधर अनेकांत विषय पर युवाचार्यजी का प्रवचन हुआ, उधर मेरा प्रवचन भी पूरा हो गया। मैं अपने कक्ष में पहुंचा तो डॉ. रमन्ना प्रमुदितमना मेरे पास आए और बोले–'बहुत वर्षों से मेरी इच्छा थी कि मैं जैन लॉजिक के बारे में जानूं, पर आज तक कभी ऐसा अवसर नहीं मिला। आज मैं प्रसन्न हूं, क्योंकि आज मेरी एक चिरपालित अभिलाषा पूरी हो गई।'

धर्म का प्रभाव

● २४ जुलाई १९८१। सन्ध्या के समय दिल्ली के उपराज्यपाल श्री मदनलाल खुराना ने दर्शन किए। धर्म के धार्मिक व्यक्ति के जीवन पर होने वाले प्रभाव को लेकर विशद चर्चा हुई। उस चर्चा में हमारे साथ युवाचार्य महाप्रज्ञ भी थे। उसका निष्कर्ष यह था कि धर्म का उपदेश तो बहुत होता है, किन्तु उस पर अमल नहीं होता। यदि धर्मशास्त्रों की बातों पर अमल हुआ होता तो आज भारत का नक्शा कुछ और ही होता। अणुव्रत मानवीय मूल्यों की आचार-संहिता है और प्रेक्षाध्यान प्रयोग के माध्यम से उन मूल्यों को आत्मसात करने की प्रक्रिया है। जब तक ग्रंथियों के स्राव ठीक तरह से नहीं होगे, मनुष्य में परिवर्तन नहीं हो सकेगा।

संदर्भ हिन्दू समाज का

● ७ अक्टूबर १९८१। आज कश्मीर के पूर्व महाराजा डॉ. कर्णसिंह और श्री जैनेन्द्रकुमार आए। उन्होंने इसी महीने में १८ अक्टूबर को आयोजित होने वाले विराट हिन्दू सम्मेलन की चर्चा की। उनका आग्रह था कि सम्मेलन में हमारी उपस्थिति अनिवार्य रूप में होनी चाहिए। मैंने कहा–'उसी दिन हमारे यहां भी विराट सभा का आयोजन है। ऐसी स्थिति में अन्यत्र कहीं भी जाने में कठिनाई तो रहेगी, फिर भी हम सोचेंगे। दूसरी बात, हिन्दू समाज या सम्मेलन के बारे में कुछ ऐसे मुद्दे भी हैं, जो गंभीरता से विचारणीय हैं।' डॉ. कर्णसिंह की जिज्ञासा पर मैंने कुछ मुद्दे इस रूप में प्रस्तुत किए–

१. विराट हिन्दू समाज कोई राजनैतिक संगठन या साम्प्रदायिक संस्था न बन जाए, इस बात का ध्यान रखना जरूरी है। अगर ऐसा होता है तो तटस्थ संस्थानों और व्यक्तियों का सहयोग नहीं मिल सकेगा।

२. हिन्दू समाज का यह मंच सीधा मुसलमानों के खिलाफ खड़ा न हो। ऐसा होने से कॉन्ट्रॉवर्सी (विवाद) बढ़ने की संभावना है और संगठन बनाने का लक्ष्य भी अधूरा रहेगा।

३. भय और घृणा, इन दोनों नकारात्मक भावों से परे रहकर ही अच्छा काम किया जा सकता है।

डॉ. कर्णसिंह ने इन तथ्यों को स्वीकार किया। इस चर्चा में युवाचार्य महाप्रज्ञ और जैनेन्द्रजी भी साथ थे। काफी लम्बी चर्चा हुई।

● आज मध्याह्न में सांसद विश्वंभरनाथ पांडेय तथा श्रीमती कमलारत्नम ने दर्शन किए। कमलारत्नम के साथ संस्कृत के दो छात्र थे। श्रीमती कमलारत्नम संस्कृत की विदुषी हैं। अच्छी साहित्यकार हैं। युवाचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य से बहुत प्रभावित हैं। उनके साथ अनेक विषयों पर बातचीत हुई।

संदर्भ अहिंसा का

● २३ अप्रैल १९८३, अहमदाबाद। साबरमती आश्रम। आज प्रातः नौ बजे हम आश्रम में पहुंच गए। प्राथमिक औपचारिकताओं के बाद अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में विचारयात्रा शुरू हुई। उस विचारयात्रा में

"बहुत वर्षों से मेरी इच्छा थी कि मैं जैन लॉजिक के बारे में जानूं, पर आज तक कभी ऐसा अवसर नहीं मिला। आज मैं प्रसन्न हूं, क्योंकि आज मेरी एक चिरपालित अभिलाषा पूरी हो गई।"

मेरा सान्निध्य तो उपलब्ध था ही, युवाचार्य महाप्रज्ञ, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा और अणुव्रत प्रवक्ता श्री जैनेन्द्रकुमार की भी पूरी सहभागिता रही। खुलकर विचार-मंथन हुआ। कुछ नई जानकारियां मिलीं तथा नए निष्कर्ष सामने आए। चर्चा गम्भीर होने पर भी नीरस नहीं थी। जैनेन्द्रजी बहुत अधिक उत्साहित थे। शोध, प्रशिक्षण और प्रयोग के द्वारा अहिंसा का वर्चस्व स्थापित करने की दिशा में एक नए उपक्रम का सूत्रपात हो गया। प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

● २१ जुलाई १९८४, जोधपुर। विचारगोष्ठी में सान्निध्य मेरा था। युवाचार्य महाप्रज्ञ साथ में थे। कुछ कार्यकर्ता थे। गोष्ठी में अहिंसा सार्वभौम की चर्चा भी चली। उसका प्रारंभ जैनेन्द्रकुमारजी से करवाया जाए या किसी अन्य व्यक्ति से, इस विषय पर चिन्तन हुआ। जैनेन्द्रजी अन्यथा न लें तो उन्हें किसी अन्य महत्त्वपूर्ण काम में जोड़ा जा सकता है। फिलहाल अहिंसा सार्वभौम का कार्यक्रम यहीं से चलेगा, ऐसा चिन्तन हुआ है।

आयुर्वेद और प्रेक्षाध्यान

● ५ मई १९८३। वैद्य गोविन्दप्रसादजी की इच्छा थी कि एक दिन हम उनके कार्यालय में आएं और वहां एक कार्यक्रम रखा जाए। वैद्यजी के अनुरोध को स्वीकार कर आज मध्याह्न में समिति भवन से साढ़े तीन बजे चलकर हम गुजराती आयुर्वेद भवन पहुंचे। भवन का हॉल खचाखच भरा था। लगभग दो घंटे तक कार्यक्रम चला। मैं, युवाचार्यजी और साध्वीप्रमुखा तीनों बोले। वैद्यजी ने जो समर्पण किया, वह अद्‌भुत था, बेजोड़ था। समिति भवन से वहां गए, तब धूप तेज थी। पैर बहुत जले। पर वहां जाकर बैठे और कार्यक्रम की भव्यता देखी तो दिल ठंडा हो गया। प्रेम का वातावरण छा गया।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में वैद्य माधवप्रसादजी ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा–'एंटीबॉयोटिक दवाओं ने मनुष्य की आयु सीमा को तो बढ़ाया है, पर उनसे बुढ़ापे की क्रूर छाया भी बहुत जल्दी मंडराने लगती हैं। आयुर्वेद तथा प्रेक्षाध्यान में गहरा सम्बन्ध है। इस दृष्टि से हम युवाचार्यजी के अनुदान के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अवसर पर मैं आचार्यश्री तथा युवाचार्यश्री के सामने अपना सर्वात्मना समर्पण कर रहा हूं। वे प्रेक्षाध्यान तथा आयुर्वेद के बीच मुझे कड़ी के रूप में किसी भी तरह का माध्यम बनाएं।'

● ५ सितम्बर १९८४, जोधपुर। मध्याह्न में डॉ.दयानन्द भार्गव के यहां एक विशेष गोष्ठी रखी हुई थी। कॉलेज का कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद युवाचार्य महाप्रज्ञ को गोष्ठी में सान्निध्य देने के लिए भेज दिया। गोष्ठी कल्पना से अधिक अच्छी रही। डीन, विभागाध्यक्ष, प्रोफेसर और लेक्चरर, कुल मिलाकर अस्सी व्यक्ति उपस्थित थे। कई विषयों पर खुलकर चर्चा हुई। जिज्ञासा बढ़ी। जानकारी भी बढ़ी। जोधपुर के वैज्ञानिकों में भी प्रेक्षाध्यान के प्रति बहुत अभिरुचि जागी है। यह एक शुभ संकेत है।

● २९ सितम्बर १९८४, जोधपुर। आज रात्रि में केन्द्रीय प्रतिरक्षा मंत्री श्री शंकरराव चह्वाण ने दर्शन किए। उन्हें प्रेक्षाध्यान और जीवनविज्ञान के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने रक्षामंत्री से कहा कि प्रेक्षाध्यान से सेना के जवानों को लाभान्वित करना चाहिए। इससे सैनिकों में अधिक चुस्ती व एकाग्रता आ सकेगी। श्री चह्वाण ने इस दिशा में प्रयत्न करने का संकल्प व्यक्त किया।

● ४ अप्रैल १९८५, आसीन्द। उदयपुर से राजस्थान विद्यापीठ से भाई भगवान आए। वे वहां के अधिकारी हैं और विद्वान हैं। युवाचार्य महाप्रज्ञ से बात करने के बाद बोले–'आज मुझे एक नई रोशनी

मिली है। मेरी वर्षों की चिन्ता मिटी है।' उनकी बात सुनकर मैंने कहा–'आपको नई रोशनी मिली है और महाप्रज्ञजी को 'जीवनविज्ञान' को क्रियान्वित करने का एक आधार मिल गया। इससे आप दोनों सन्तुष्ट हैं।

● ९ जुलाई १९८५। अपराह्न में चार बजे संत हरचंदसिंह लोंगोवाल एवं श्री सुरजीतसिंह बरनाला पुनः सभा भवन में आए। ऊपर वाले कक्ष में उनसे मुलाकात हुई। प्रायः साधु-साध्वियां और श्रावक वहां से चले गए। मैं, युवाचार्यजी, साध्वीप्रमुखा, संत लोंगोवाल, श्री बरनाला और दसानी हम छह व्यक्ति बैठे। वार्तालाप का सिलसिला पौने दो घंटे तक चला। पंजाब की चर्चा काफी विस्तार से हुई। निष्कर्ष यह निकला कि कुछ बातें सरकार मान्य कर ले तो वातावरण अच्छा हो सकता है। उन्हें सरकार के साथ मिलने और बैठकर बात करने में कोई कठिनाई नहीं है। वातावरण सौहार्दपूर्ण रहा। संतजी बहुत प्रभावित हुए।

● ३ अप्रैल १९८६। रीछेड़ में प्रवासित संवेगी साधु श्री हिमाचल सूरि का संवाद मिला–'मैं वृद्ध हूं, आने में असमर्थ हूं, पर मिलने की तीव्र इच्छा है। क्या मेरी इच्छा पूरी हो पाएगी? आप हर किसी को दर्शन देते हैं। क्या मुझे दर्शन नहीं देंगे?' यों भी मुझे जाने में कोई कठिनाई नहीं थी। फिर हिमाचल सूरिजी के इतने विनम्र अनुरोध को तो टालना संभव ही नहीं था। युवाचार्य महाप्रज्ञ को साथ लेकर हम उनके प्रवास-स्थल पर गए। उनसे मिले, चर्चा की। वे बहुत खुश हुए। हमें भी अच्छा लगा।

● ५ जून १९८६। दिल्ली दूरदर्शन केन्द्र के प्रोड्यूसर श्री दर्शनकुमार (आनन्द) की एक टीम जैनविश्वभारती के प्रांगण में पहुंची। उस टीम ने हमारा (मेरा, युवाचार्यजी और साध्वीप्रमुखा का) इंटरव्यू लिया। जैनविश्वभारती द्वारा संचालित शिक्षा, शोध, साधना आदि से सम्बन्धित प्रवृत्तियों का आकलन करने के लिए अनेकान्त शोधपीठ, अध्यात्म नीडम, ग्रन्थागार आदि का छायांकन किया। जीवनविज्ञान और प्रेक्षाध्यान की चालू कक्षाओं को भी उन्होंने अपने कैमरे में कैद किया। तेरापंथ धर्मसंघ के साधु-साध्वियों द्वारा निर्मित कलाकृतियों को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए।

● अक्टूबर १९८६। श्रेणिक भाई को जल्दी जाना था, अतः उनको भोजन के तत्काल बाद समय दिया। आधा घंटा चर्चा हुई। कई प्रश्न सामने आए। उन्हें समाहित किया गया। श्रेणिक भाई ने युवाचार्य महाप्रज्ञ से भी बात की।

साहू अशोकजी जैन देर रात तक यहीं थे। उन्होंने युवाचार्य महाप्रज्ञ के साथ काफी चर्चा की, अन्तरंग चर्चा की। रात्रि में ध्यान का प्रयोग किया। उसके बाद मंगल मंत्र सुनकर चले गए।

● १० सितम्बर १९८७। आज लगभग साढ़े दस बजे आकाशवाणी के डायरेक्टर अपनी टीम के साथ आए। उन्होंने एक घंटा तक हमारी जीवनी का एक हिस्सा रिकॉर्ड किया। 'धर्मक्रान्ति की पृष्ठभूमि'– इस शीर्षक से एक वक्तव्य लिया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने उसकी भूमिका प्रस्तुत की।

संसद भवन में

१६ सितम्बर १९८१ को अणुव्रत संसदीय मंच के द्वारा हमारी सन्निधि में संसद सदस्यों की एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। हम संसद भवन पहुंचे। राज्यसभा के उपाध्यक्ष श्री श्यामलाल यादव तथा लोकसभा के अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ ने स्वागत किया। गोष्ठी में लगभग पचास सांसद उपस्थित थे। उन्हें बोलने के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा कि आज बोलने के लिए नहीं, सुनने के लिए आए हैं।

"आयुर्वेद तथा प्रेक्षाध्यान में गहरा सम्बन्ध है। इस दृष्टि से हम युवाचार्यजी के अनुदान के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अवसर पर मैं आचार्यश्री तथा युवाचार्यश्री के सामने अपना सर्वात्मना समर्पण कर रहा हूं। वे प्रेक्षाध्यान तथा आयुर्वेद के बीच मुझे कड़ी के रूप में किसी भी तरह का माध्यम बनाएं।"

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने गोष्ठी को संबोधित करते हुए कहा–'आज हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम अतीत से कटते जा रहे हैं। हम बहुत समृद्ध हैं, वैभवशाली हैं, पर अपनी सम्पदा से कट गए हैं। कटने का कारण भी है। अतीत से संपर्क का सबसे बड़ा माध्यम होता है भाषा। हमने हिन्दुस्तान की भाषाओं के साथ बड़ा अन्याय किया है। उनकी बहुत उपेक्षा की है। कई बार तो मुझे लगता है कि जिन सिद्धांतों का आज हम आयात कर रहे हैं, वे बहुत पहले से ही हमारे यहां विद्यमान हैं। कठिनाई यह है कि हमारा उनसे सम्पर्क विच्छिन्न हो चुका है। हम आयात करने में ज्यादा रस लेते हैं।'

दूरदर्शन पर महाप्रज्ञ

● ३ दिसबर १९८७ को दूरदर्शन पर 'व्यक्तित्व और अस्तित्व'–इस विषय पर युवाचार्य महाप्रज्ञ का कार्यक्रम प्रसारित हुआ। कैलाश वाजपेयी के प्रश्न और युवाचार्यश्री के उत्तर–इस रूप में कार्यक्रम था। बहुत लोगों ने देखा। सबको पसन्द आया।

प्रधानमंत्री राजीव गांधी से वार्तालाप

● ५ दिसम्बर १९८७। दस बजकर सात मिनट पर भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने अणुव्रत भवन में प्रवेश किया। ज्योंही हमारी नजरें मिलीं, प्रधानमंत्री ने बद्धांजलि हो सिर झुकाकर अभिवादन किया। सभागार में उपस्थित लोगों के अभिवादन को शालीनता से स्वीकार करते हुए वे हमारे निकट पहुंचे। प्रधानमंत्री के बैठने के लिए वहां कुर्सी रखी हुई थी। कुर्सी पर बैठते-बैठते वे रुक गए और सहजता के साथ बोले–'आपके सामने ऊपर बैठना अजीब-सा लगता है। मैं नीचे ही बैठूंगा।' इतना कहकर वे नीचे बिछे कालीन पर बैठ गए।

लगभग पचीस मिनट हॉल में कार्यक्रम हुआ। उसके बाद हम (मैं, युवाचार्य महाप्रज्ञ, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा और प्रधानमंत्री) भीतरी कक्ष में आ गए। मुक्त वातावरण था। चर्चा का प्रारम्भ करते हुए मैंने कहा–'सबसे पहले मैं आपको बधाई देना चाहता हूं। रूस के साथ समझौता करके आपने जो घोषणापत्र प्रस्तुत किया है, वह एक विलक्षण घोषणापत्र है।' मेरी बात सुनकर प्रधानमंत्री बोले–'आचार्यजी! अहिंसक क्षेत्र में रूस हमारे साथ आ गया।'

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'गांधीजी जो काम नहीं कर सके, वह आपने कर दिखाया।' प्रधानमंत्री बोले–'नहीं, ऐसी बात नहीं है। पचास वर्ष से बनता-बनता वातावरण बना है। श्रेय अपने को मिला है। मूल तो उन्हीं का है।'

मैंने कहा–'महामात्य चाणक्य के बारे में सुना है कि झोंपड़ी में रहता था। उसकी झोंपड़ी में दो-दो दीये जलते थे–एक सरकारी और एक व्यक्तिगत। क्या यह बात आपके ध्यान में है?' यह सुनकर प्रधानमंत्री हंसते हुए बोले–'हां, ऐसा होता होगा।' युवाचार्यजी ने कहा–'यह इतिहास का तथ्य है, सत्य है। उस समय ऐसा होता था। आज स्थितियां बदल गई हैं।'

शिक्षा और मूल्यों के संदर्भ में शुरू हुए संवाद को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा–'हमने इस विषय में चिन्तन किया है। इस दृष्टि से कुछ प्रयोग भी निर्धारित किए हैं। यह काम पुस्तकों से नहीं, प्रयोगों से होने का है। आपकी समस्या के समाधान में जीवन विज्ञान कारगर हो सकता है।'

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने जीवन विज्ञान के बारे में पूरे विस्तार से बताया। प्रधानमंत्री के लिए एक चिन्तनीय विषय सामने आ गया। उन्होंने अत्यन्त सहजता के साथ कहा–'यह सब कैसे हो सकता है? इसके लिए क्या करना है? पुस्तकों से यह काम नहीं हो सकता तो प्रयोग की विधि क्या हो?' प्रधानमंत्री की इस उलझन को समाहित करने के लिए मैंने एक सुझाव दिया कि एक व्यक्ति इस काम के पीछे लगे, यह जरूरी है।

धर्म और सम्प्रदाय का प्रसंग चल पड़ा तो मैंने दोनों के बीच एक भेदरेखा खींचते हुए कहा–'फल और छिलका, दो अलग-अलग चीजें हैं। छिलका फल की सुरक्षा का कवच है, पर खाने की चीज नहीं है। खाने का तत्त्व तो भीतर का गूदा या रस है। इसी प्रकार सम्प्रदाय छिलका है और धर्म है भीतर का गूदा। उसका अंकन होना चाहिए।'

धर्म के महत्त्व को उजागर करते हुए युवाचार्यजी बोले–'गांधीजी कहते थे कि उन्हें सबसे बड़ी चिन्ता इस बात की है कि युवकों के हृदय से करुणा का स्रोत सूख रहा है, धर्म की भावना कम हो रही है। प्रधानमंत्री भी ठीक इसी भाषा में बोल रहे हैं।'

इस कथन की पुष्टि में प्रधानमंत्री ने कहा–'धर्म के मामले में हम नेहरूजी के विचारों से हटकर गांधीजी की दृष्टि से सोचते हैं। हमारे लिए धर्म के मार्ग पर चलना जरूरी है, इसलिए हमने गांधीजी का मार्ग अपनाया।'

• २ जनवरी १९८८। दूरदर्शन के उपमहानिदेशक श्री मधुकर लेले, निदेशक श्री राजमणिराय, प्रोड्यूसर श्री डी.के. आनन्द आदि कई अधिकारी व्यक्ति आए। उनके साथ वार्तालाप हुआ। वे प्रत्येक रविवार को दूरदर्शन पर प्रेक्षाध्यान के बारे में कुछ सामग्री देना चाहते हैं। इस विषय में युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में सामग्री तैयार की जा रही है। आगन्तुक महानुभावों ने हमारी कलात्मक वस्तुओं का निरीक्षण किया। उन्हें देखकर वे मुग्ध हो गए।

व्यवस्था परिवर्तन के साथ जरूरी है हृदय परिवर्तन

• ३ अप्रैल १९९१, जयपुर। राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंह शेखावत के साथ राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं पर वार्तालाप हुआ। मुख्यमंत्रीजी लगभग एक घंटा ठहरे। वार्तालाप के प्रसंग में वे बोले–'आज देश में इतनी गतिहीनता आ गई है कि इसे व्यवस्था परिवर्तन के बाद ही तोड़ा जा सकता है। आज की परिस्थितियों में ऐसा आभास होता है कि चुनाव के बाद कहीं लोकतंत्र से जनता की आस्था ही न उठ जाए। इस स्थिति से निपटने के लिए हमारी शिक्षा-पद्धति को बदलना जरूरी है।'

मुख्यमंत्रीजी के चिन्तन को समग्रता देने की दृष्टि से युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'समस्या हमारे सामने है। किन्तु केवल व्यवस्था परिवर्तन से काम नहीं चलेगा। व्यवस्था परिवर्तन के साथ हृदय-परिवर्तन भी हो, यह जरूरी है। रूस में जो राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं, उस सन्दर्भ में वहां की जनता का अभिमत है कि अब केवल कार्ल मार्क्स से काम नहीं चल सकता और केवल ईसा से भी काम नहीं चल सकता। अपेक्षा उस व्यक्ति की है, जो ईसा और मार्क्स का समन्वित रूप हो। जीवनविज्ञान एक जीवनपद्धति है, जो सिद्धान्त और प्रयोग का समन्वित रूप है। राजस्थान सरकार ने जिस नैतिक शिक्षा की बात की है, उसमें जीवनविज्ञान का समावेश करने से विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास संभव होगा।'

"अब केवल कार्ल मार्क्स से काम नहीं चल सकता और केवल ईसा से भी काम नहीं चल सकता। अपेक्षा उस व्यक्ति की है, जो ईसा और मार्क्स का समन्वित रूप हो।"

• २६ मई १६६१, जयपुर। आज प्रातः मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंह शेखावत आए। उस समय मैं जनता के बीच प्रवचन कर रहा था। हमारे आने में विलम्ब की बात जानकर वे बैठ गए और बोले–'कितनी ही देर क्यों न हो, मैं आचार्यश्री के दर्शन किए बिना नहीं जाऊंगा।' मैं प्रवचन सम्पन्न कर कक्ष में पहुंचा, तब तक उन्होंने युवाचार्यजी के साथ बातचीत की। मेरे आने के बाद भी अच्छी चर्चा हुई।

संस्कृत प्राकृत और प्राच्य विद्या

• १४ नवम्बर १६६२, लाडनूं। आज प्रातः भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष डॉ. मुरली मनोहर जोशी, विश्व हिन्दू परिषद के अध्यक्ष श्री विष्णु हरि डालमिया और उपाध्यक्ष श्री बद्रीप्रसाद तोषनीवाल दिल्ली से लाडनूं आए। सुधर्मा सभा में जाने से पहले डॉ. जोशी तथा श्री डालमिया के साथ हमारा सामयिक और सार्थक वार्तालाप हुआ।

औपचारिक बातचीत के बाद डॉ. जोशी बोले–'आचार्यजी! आपके यहां आगम ग्रन्थों पर अच्छा काम हो रहा है। इनका अंग्रेजी अनुवाद भी हो जाए तो कैसा रहे?' जोशीजी की बात सुनकर मैंने कहा–'आपकी भावना के अनुरूप हमारे यहां कार्य शुरू हो गया है। आचारांग का अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। तत्वार्थ सूत्र का भी अंग्रेजी अनुवाद यहीं से किया गया है। इस दिशा में और भी कार्य चल रहा है।'

जोशीजी ने बताया कि जैन दर्शन पर जर्मन विद्वान डॉ. हर्मन जेकोबी ने बहुत काम किया है। प्रस्तुत संदर्भ में मैंने कहा–'संभवतः आपको ज्ञात नहीं होगा कि डॉ. जेकोबी पूज्य कालूगणी के युग में लाडनूं आए थे। उन्होंने जैन दर्शन और तेरापंथ के संबंध में विस्तार से जानकारी प्राप्त की।' मेरी बात को आगे बढ़ाते हुए युवाचार्यजी बोले–'डॉ. शुब्रिंग और डॉ. एल्सडोर्फ ने भी अच्छा काम किया है। हमारे यहां जितना भी काम हुआ है तथा हो रहा है, वह वेतनभोगी कर्मचारी नहीं, समर्पित साधु-साध्वियां कर रहे हैं।'

युवाचार्यजी ने जोशीजी की ओर इंगित करते हुए आगे कहा–'आप भी पहले जैनधर्म और प्राचीन विज्ञान पर काम कर रहे थे?' जोशीजी बोले–'हां, मैंने पहले काम किया था। मुझे तो लगा कि संस्कृत-प्राकृत भाषा को जाने बिना प्राचीन भारतीय विज्ञान की संपूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती। खेद का विषय है कि आज इन दोनों भाषाओं को मृत भाषा कहकर उनकी उपेक्षा की जा रही है।'

जोशीजी के विचारों से अपनी सहमति प्रकट करते हुए युवाचार्यजी ने कहा–'जयपुर में प्रबुद्ध लोगों के बीच एक संगोष्ठी आयोजित की गई थी। वहां हमने प्रेक्षाध्यान में किए जा रहे प्रयोगों की चर्चा की और जीवन विज्ञान की प्रायोगिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। सुनने वाले सभी व्यक्ति आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने पूछा कि ये सारी बातें कहां से आई हैं? हमने उनको बताया कि हमारा ज्ञान आयात किया हुआ नहीं है। यह तो हमारे संस्कृत-प्राकृत के गौरवशाली ग्रन्थों में आज भी सुरक्षित है। आपके पास प्रायः आयातित ज्ञान है, जो दो-तीन शताब्दी का ही है। हमारे आगमों में अथवा प्राचीन ग्रन्थों में जो ज्ञान उपलब्ध है, वह हजारों वर्ष पुराना है। यह सही है कि संस्कृत और प्राकृत भाषा का इसी तरह अवमूल्यन होता रहा तो हमारी हजारों-हजारों वर्षों की संजोयी धरोहर नष्ट हो जाएगी।'

सिरायकी भाषा में जैन परम्परा के शब्द

• २६ मई १६६४। मध्याह्न में श्री संतोषकुमार बिड़ला तथा श्री जे.सी. बत्रा आदि वकीलों का एक समूह हमारे सान्निध्य में उपस्थित हुआ। अणुव्रत के अंतर्राष्ट्रीय प्रचार-प्रसार के संबंध में वार्ता

हुई। बिड़लाजी ने इसके लिए कुछ कार्य करने की इच्छा प्रकट की और अपनी ओर से एक योजना भी प्रस्तुत की। श्री बत्रा सुप्रीम कोर्ट के सीनियर एडवोकेट हैं। वे सिरायकी इन्टरनेशनल के संपादक भी हैं। बातचीत के दौरान महाप्रज्ञजी ने कहा–'सिन्ध से भगवान महावीर का गहरा संबंध रहा है। बाली मध्य एशिया जैन साधुओं का विहार क्षेत्र रहा है। अफगानिस्तान भी किसी जमाने में जैन श्रमणों की गतिविधियों का मुख्य केन्द्र रहा है।' श्री बत्रा ने इस कथन की पुष्टि करते हुए कहा–'हमारी भाषा सिरायकी में आज भी जैन परम्परा के कई शब्द प्रयुक्त होते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि कभी सिन्ध भी जैनधर्म का केन्द्र रहा है।'

संदर्भ शिक्षा का

• २ जून १९९४, दिल्ली। रात्रि में भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवाणी के साथ बात हुई। बातचीत का एक मुद्दा था शिक्षा। शिक्षा के बारे में उन्होंने कहा–'सही शिक्षा के बिना संस्कृति की सुरक्षा नहीं हो सकती। जब शिक्षा के माध्यम से विदेशी संस्कारों का आयात होने लगता है तो निजी संस्कारों की सुरक्षा का सवाल ही कहां है? आज जैसे हालात में भारतीय संस्कृति सुरक्षित रह सके, यह संभव नहीं लगता। इस विषय में गंभीर चिन्तन नहीं किया गया और शिक्षा को केवल सरकारी हाथों में छोड़ दिया गया तो बड़ा खतरा पैदा हो जाएगा।'

शिक्षा के संदर्भ में महाप्रज्ञजी ने अपने विचार दिए। उन्होंने कहा–'यह सही है कि शिक्षा को जब तक संस्कारों के साथ नहीं जोड़ा जाएगा, तब तक उच्छृंखलता, अप्रामाणिकता आदि निषेधात्मक भावों से बचा नहीं जा सकता। केवल पुस्तकीय ज्ञान से हम लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते। इसीलिए हमने जीवन विज्ञान के माध्यम से शिक्षा के साथ प्रयोग को जोड़ने की बात कही है।'

बदलें मनुष्य को

• ३ दिसम्बर १९९४, दिल्ली। श्रीमती मेनका गांधी अध्यात्म साधना केन्द्र आई। उसने पशु जगत की सुरक्षा के लिए किए जा रहे कार्यक्रमों की विस्तार से अवगति दी। महाप्रज्ञजी ने कहा–'पशुओं के साथ आज जो कुछ हो रहा है, वह मनुष्य के दिमाग की विकृति का परिणाम है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम यह चिन्तन आवश्यक है कि मनुष्य को कैसे बदला जाए?'

मेनका गांधी की उम्र छोटी है, पर वह कर्मठ है। जैन विचारधारा से प्रभावित है। हमने उसको मनुष्य को बदलने का गुर बताते हुए कहा–'एक बार पशुओं का बचाव कर भी लिया जाए, पर मनुष्य वैसा ही रहा तो क्या फायदा? जब तक मनुष्य के दिल से क्रूरता नहीं मिटेगी, समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। इसलिए सबसे पहले आदमी को बदलना पड़ेगा।'

• १० जनवरी १९९५, मंगलवार। आज सघन कुहासा था। एक तांत्रिक महिला आई और मिली। वह हस्तरेखा विशेषज्ञ भी कहलाती है। उसका नाम है रविमोहन। उसने हाथ देखा और कुछ बातें बतलाई। मैंने सुन लीं। इस प्रसंग में महाप्रज्ञजी अधिक प्रभावित होते हैं, जल्दी ही प्रभाव में आ जाते हैं। ऐसे विषय में मैं शीघ्रता नहीं करता। आगन्तुक महिला को जैनधर्म और तेरापंथ की जानकारी दी। वह भक्ता बन गई। उसने अपने पूरे परिवार के साथ गुरुधारणा की और धन्यता का अनुभव किया।

"शिक्षा को जब तक संस्कारों के साथ नहीं जोड़ा जाएगा, तब तक उच्छृंखलता, अप्रामाणिकता आदि निषेधात्मक भावों से बचा नहीं जा सकता। केवल पुस्तकीय ज्ञान से हम लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते। इसीलिए हमने जीवन विज्ञान के माध्यम से शिक्षा के साथ प्रयोग को जोड़ने की बात कही है।"

लोकतंत्र का प्रशिक्षण

● १४ जनवरी, १९९५। लोकसभा अध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल आए। भारतीय लोकतंत्र की भावी दिशाओं के बारे में गहरा विचार-विमर्श हुआ। वार्तालाप का उपसंहार करते हुए मैंने कहा–'राजनीति में तपे-तपाए लोगों की कमी हो गई है। आज भी देश में अनेक अच्छे व्यक्ति हैं। पर वे राजनीति में आना नहीं चाहते।' महाप्रज्ञजी ने अपनी ओर से एक सुझाव देते हुए कहा–'पाटिल साहब! आप महाराष्ट्र में जो साधना केन्द्र स्थापित करने जा रहे हैं, उसमें लोकतंत्र के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए।' श्री पाटिल ने जल्दी ही उस योजना को मूर्त रूप देने का संकल्प व्यक्त किया।

समाधान विश्व समस्या का

● १७ दिसम्बर १९९५। अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा एवं विश्व शांति सम्मेलन के उद्घाटन सत्र की संपन्नता के बाद हम भिक्षु विहार कक्ष में पहुंचे। संयुक्त राष्ट्र संघ के उपमहासचिव श्री जोसेफ वर्नर रीड भी वहां आ गए। औपचारिक वार्तालाप के बाद मैंने कहा–'विश्वशांति व अहिंसा की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ अच्छा प्रयत्न कर रहा है। महासचिव श्री बुतरस घाली भी इस दिशा में सक्रिय हैं। अभी-अभी उन्होंने राष्ट्राध्यक्षों में सामंजस्य स्थापित करने की बात कही, उसके लिए हम उन्हें साधुवाद देना चाहते हैं।'

मेरे विचार सुनकर श्री जोसेफ बोले–'मैं वहां जाकर श्री घाली साहब को आपका सन्देश दूंगा। उन्होंने जब मुझे यहां आने के लिए नियुक्त किया, उस समय जो कुछ कहा, उससे स्पष्ट है कि वे आपके कार्यों से बहुत प्रभावित हैं।'

प्रत्यक्षतः मिलन और विचार-विमर्श न होने पर भी श्री घाली के मन पर हमारे कार्यों के प्रभाव की जानकारी पाकर मैंने कहा–'इस अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में वे स्वयं पहुंचते तो बहुत शुभ होता। यहां हो रहे कार्यों, प्रयोगों और प्रयत्नों को वे स्वयं देखते तो कितना अच्छा होता।'

आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'आप संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जिस प्रकार आप लोग राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक आदि-आदि विषयों पर विश्व को गहन चिन्तन देते रहते हैं, वैसे ही अहिंसात्मक दृष्टि से भी आपको कार्य करना चाहिए। मैं तो चाहता हूं कि आपके वहां अहिंसात्मक चिन्तन करने का एक विंग हो, जो सब राष्ट्रों को चिन्तन और व्यवस्था दोनों दे सके। दूसरी बात, आज अच्छे समाज के बारे में अधिक सोचा जा रहा है और अच्छे संचालक के विषय में कम। दृष्टिकोण का यह विपर्यास सफलता में बाधा है।'

श्री जोसेफ द्वारा उक्त चिन्तन को सही बताने पर महाप्रज्ञजी पुनः बोले–'यदि ऐसा नहीं हुआ तो अपराध बढ़ते जाएंगे। हम अणव्रत के माध्यम से अच्छे व्यक्तियों का निर्माण करना चाहते हैं, जो विश्व-व्यवस्था के संतुलन को बनाए रख सकता है। यह भी तभी संभव है, जब हम उनको मस्तिष्कीय प्रशिक्षण देंगे। इसके लिए हमें शिक्षा के साथ प्रयोग को जोड़ना होगा। अन्यथा जो बदलाव हम देखना चाहते हैं, वह संभव नहीं होगा। यदि मस्तिष्क के दोनों पटलों का संतुलित विकास नहीं होगा तो विश्व-समस्या का समाधान नहीं होगा। आर्थिक अपराध भी समाप्त नहीं होंगे। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान इस अंतराल को मिटाने का राजमार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।'

व्यसन-मुक्त समाज

● २ जून १९९६। आज प्रातः पुलिस महानिदेशक श्री देवेन्द्रसिंह, उपमहानिदेशक श्री हरीश मीणा, जिला पुलिस अधीक्षक श्री नरेन्द्र पाटनी दर्शन करने आए। पुलिस महानिदेशक ने हमारे गंगाशहर-प्रवास के लिए प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा–'आचार्यजी! आपके आगमन से गंगाशहर पुलिस स्टेशन व्यसनमुक्त बन गया, यह उल्लेखनीय बात है।'

देश में बढ़ते हुए अपराधों की चर्चा करते हुए श्री सिंह ने कहा–'छोटी-छोटी बातों को लेकर आवेश इतना बढ़ जाता है कि झगड़े तो क्या, हत्याएं भी हो जाती हैं। धर्म करने के बावजूद पता नहीं मनुष्य में परिवर्तन क्यों नहीं आ रहा है?'

श्री सिंह की जिज्ञासा को समाहित करने के लिए महाप्रज्ञजी बोले–'व्यक्ति किसी भी महकमे का हो, सबसे पहले उसे परिवर्तन का लक्ष्य बनाना होगा। बिना लक्ष्य के कोई काम पूरा नहीं हो सकता। हमने बहुत वर्षों पहले पुलिस अकादमी, जयपुर में अणुव्रत एवं प्रेक्षाध्यान के शिविर लगाए थे। दस दिनों के प्रयोग से जो परिवर्तन आए, सबको आश्चर्य में डालनेवाले थे। जिन लोगों ने शिविर में भाग लिया, उनका शिविर से पहले और शिविर के बाद में भी विधिवत परीक्षण किया गया। शारीरिक और मनोवैज्ञानिक रिपोर्ट वास्तव में ही प्रगति की सूचक थी। उस शिविर में भाग लेने वाले कई पुलिस अधिकारी आज भी मिलते हैं तो कहते हैं–'आपने हमारी दिशा बदल दी और हम सदा-सदा के लिए व्यसनमुक्त हो गए।' हमें आज भी यह आवश्यक प्रतीत होता है कि पुलिस के लिए निर्धारित प्रशिक्षण के साथ अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान का भी प्रशिक्षण दिया जाए ताकि श्रेष्ठ पुलिस व्यक्तित्वों का निर्माण हो सके।'

महाप्रज्ञजी की बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा–'गंगाशहर का पुलिस स्टेशन हमारे अत्यधिक निकट है। वह व्यसनमुक्त बना, यह अनुकरणीय कार्य है। अभी कुछ समय पहले लाडनूं में पुलिसकर्मियों का प्रशिक्षण शिविर था। उसके परिणाम भी बहुत सुखद रहे। प्रेक्षाध्यान और अणुव्रत के ये शिविर विभिन्न वर्गों के लिए लाडनूं, दिल्ली और अजमेर में चलाए जा रहे हैं। यद्यपि मानव-मस्तिष्क को बदलना एक चुनौतीभरा काम है, क्योंकि सारे अपराध मानव-मस्तिष्क की ही उपज होते हैं, जिन्हें बदलने का पुरुषार्थ करना हमारा दायित्व है। प्रसन्नता की बात है कि हमें अच्छी सफलता मिल रही है।'

मैं और मेरे गुरु

"आप लोग राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक आदि-आदि विषयों पर विश्व को गहन चिन्तन देते रहते हैं, वैसे ही अहिंसात्मक दृष्टि से भी आपको कार्य करना चाहिए। मैं तो चाहता हूं कि आपके वहां अहिंसात्मक चिन्तन करने का एक विंग हो, जो सब राष्ट्रों को चिन्तन और व्यवस्था दोनों दे सके। दूसरी बात, आज अच्छे समाज के बारे में अधिक सोचा जा रहा है और अच्छे संचालक के विषय में कम। दृष्टिकोण का यह विपर्यास सफलता में बाधा है।"

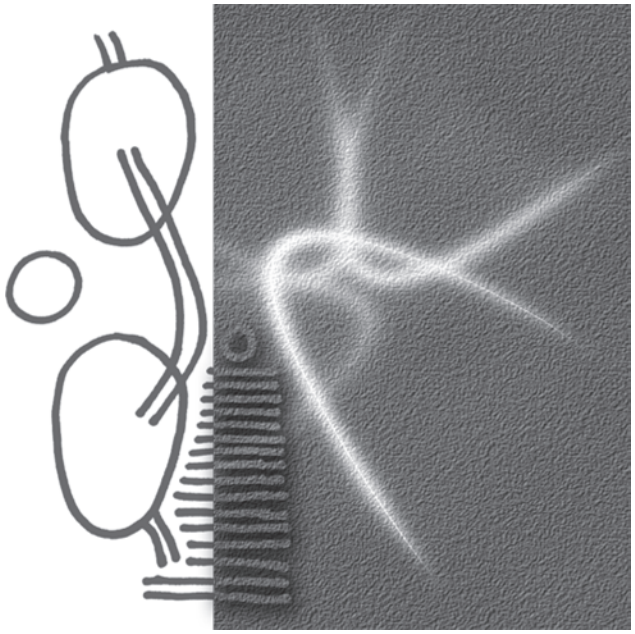

१२

स्वतंत्र विहार और मिलन

गुरुदेव की यात्रा जन सम्पर्क, विद्वत् सम्पर्क आदि दृष्टियों से बहुत प्रभावक होती थी। अणुव्रत यात्रा से जनता ही लाभान्वित नहीं हुई, हम भी लाभान्वित हुए। अनेक विद्वानों से सम्पर्क, विचारों का आदान-प्रदान, नया चिन्तन, नई कल्पना–ये सब विकास के हेतु बने। उस यात्रा में धर्मसंघ के साधु-साध्वियों की अध्ययनशीलता और सृजनशीलता भी जन-समूह के सामने आई, तेरापंथ समाज की बहुत प्रभावना हुई। मैं प्रायः गुरुदेव के साथ रहता था। कभी प्रेक्षाध्यान शिविर के लिए और कभी आगम सम्पादन के लिए पृथक् विहार आवश्यक हो जाता था। मैं नहीं चाहता था कि मैं गुरुदेव से अलग रहूं। गुरुदेव भी नहीं चाहते थे कि मैं उनसे अलग रहूं। पर कार्य की प्रधानता को ध्यान में रखकर वैसा करना आवश्यक होता।

स्मृति रणथम्भौर किले पर

पौष शुक्ला ५, वि.सं. २००६। आचार्यवर भगवतगढ़ के समीपवर्ती गांवों की यात्रा करते हुए रणथम्भौर किले पर पधारे। मुझे परीक्षार्थी साधु-साध्वियों के अध्ययन की दृष्टि से सुनारी गांव में रखा। रणथम्भौर किले पर रचित गीत में इसका हृदयस्पर्शी उल्लेख है–

• हमारे साथ कुछ परीक्षार्थी साधु-साध्वियां थीं। परीक्षा के लिए निर्धारित समय निकट था। यात्रा करते-करते उस समय तक अध्ययन पूरा करना संभव नहीं लगा। उस स्थिति में मैंने मुनि नथमलजी के साथ कुछ साधुओं तथा कुछ साध्वियों को 'सुनारी' छोड़ दिया। रणथम्भौर के किले पर चढ़े तब सहज ही उनकी स्मृति हो आई। उसके आधार पर गीत में पद्य रच दिया–

लोक सैकडां भार बह्यो सिर माथे हो, मन समता भाव,
सन्त-सत्यां कइ लारै रहग्या याद किया घणां।
सदिया-साथी संत-सत्यां रह्या लारै हो, आ इचरज बात,
कदिया होग्या साथी किल्लै रणथंभोर कै।
भावी रो बल प्रबल न को स्वीकारै हो, आ इचरज बात,
बालक कइ, कइ बुढिया चढिया धैर्य बटोर कै॥

मेवाड़ में पृथक् विहार के कुछ प्रसंग

• अक्षय तृतीया, वि.सं. २०१७। राणकपुर से हमें सायरा जाना था। मुनि नथमलजी को स्वास्थ्य लाभ और आगम कार्य की दृष्टि से राजसमंद भेजना था। रात्रि के समय उनके साथ काफी समय तक अंतरंग बातें हुई। दूसरे दिन नौ संतों से मुनि नथमलजी को कांकरोली की ओर विहार करा दिया।

• सन् १९६०। सुचिन्तित निर्णय के अनुसार उस वर्ष सम्पूर्ण मेवाड़ का चातुर्मास राजसमंद क्षेत्र में था। मुनि नथमलजी आदि कुछ साधु चिकित्सा की दृष्टि से बाल मन्दिर (किशोर नगर) में रहे।

• मार्च १९६१। गोढवाल और सिवांची-मालाणी की यात्रा में मुनि नथमलजी हमारे साथ नहीं रहे। मैंने उनको पाली से सीधे जोधपुर जाने का निर्देश दे दिया। उस यात्रा में उनका रहना भी आवश्यक था। क्योंकि गोढवाल संभाग में तेरापंथ की मान्यताओं के बारे में अनेक प्रकार की भ्रांतियां फैली हुई थीं। उनके निराकरण में मुनि नथमलजी के यौक्तिक वक्तव्यों का बहुत बड़ा उपयोग था, किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था आगमों का। उस समय वे 'ठाणं' सूत्र का काम कर रहे थे। गांवों में आगम कार्य करने में कठिनाई थी। इसलिए चिन्तनपूर्वक उनको जोधपुर भेज दिया।

• २८ मई १९६१ को हम हनुमानजी के बाड़िए में ठहरे। आगम कार्य की दृष्टि से जोधपुर में प्रवासी मुनि नथमलजी ने वहां दर्शन किए।

• वि.संवत् २०१९। उदयपुर में चतुर्मास। पंचायती नोहरे के नजदीक अम्बालालजी पगारिया का मकान भी हमने काम में ले लिया। वहां आगम अनुसंधान का काम करने वाले मुनि नथमलजी, मुनि मीठालालजी (संघमुक्त) आदि साधुओं को रखा। इस प्रकार दो स्थानों पर हमारे आवास की व्यवस्था अच्छी तरह से जम गई।

• १३ जनवरी १९६३। हम मजेरा से केलवाड़ा गए। मुनि नथमलजी आदि सोलह संत सीधे कुंभलगढ़ के ऐतिहासिक किले पर गए। वहां कवि गोष्ठी हुई।

• २८ मार्च १९६३। 'मुनि नथमलजी आदि कुछ साधु आगम कार्य के लिए राजनगर रहे थे। २८ मार्च को वे भी लावासरदारगढ़ आ गए। उनके यहां रहने से समय-समय पर अनेक प्रसंग चलते रहते हैं। मन को स्फूर्ति मिलती है। वैसे इनको भी मेरे साथ रहने में आनन्द की अनुभूति होती है।

"
गोढवाल संभाग में तेरापंथ की मान्यताओं के बारे में अनेक प्रकार की भ्रांतियां फैली हुई थीं। उनके निराकरण में मुनि नथमलजी के यौक्तिक वक्तव्यों का बहुत बड़ा उपयोग था, किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था आगमों का। उस समय वे 'ठाणं' सूत्र का काम कर रहे थे। गांवों में आगम कार्य करने में कठिनाई थी। इसलिए चिन्तनपूर्वक उनको जोधपुर भेज दिया।
"

आगम कार्य की दृष्टि से

• हमने बिना पूर्व घोषणा के १८ जून १९६३ को प्रातः छापर से सुजानगढ़ के लिए विहार कर दिया। हमारे विहार से पहले ही मातुश्री का विहार सुखपाल द्वारा हो चुका था। सुखपाल वहन करने में चालीस साध्वियां नियुक्त की थीं। उनकी निश्रा का बोझ-भार साधुओं को दे दिया। नौ साधु पहले दिन ही बोझ लेकर गुलेरिया चले गए और दूसरे दिन शीघ्रता से सुजानगढ़ पहुंच गए। वहां मुनि नथमलजी आदि सात साधु प्रवास कर रहे थे। उन्हें आगम-कार्य की दृष्टि से वहां रखा गया था। सुजानगढ़ में प्रवासी तथा बोझ लेकर पहुंचने वाले साधुओं ने मिलकर सुखपाल वहन करने वाली साध्वियों के लिए रास्ते में पानी-पेय आदि की व्यवस्था की। गांधी आश्रम से गुलेरिया तक पानी की व्यवस्था होने से यात्रा सुगम हो गई।

• ३० जुलाई १९६३। उत्तराध्ययन का समीक्षात्मक अध्ययन लिखने के लिए कुछ विशेष ग्रन्थों की अपेक्षा थी। वे लाडनूं में उपलब्ध नहीं हुए। उनके लिए मुनि नथमलजी आदि कुछ साधु सुजानगढ़ गए। चतुर्मास का समय होने के कारण रात्रि में वहां रुकना संभव नहीं था। पुस्तकें लेकर सायंकाल तक लाडनूं पहुंच गए।

• १० नवम्बर १९६३। सुजानगढ़ से विहार कर हम गांधी आश्रम पहुंचे। आगम कार्य की दृष्टि से मुनि नथमलजी आदि कुछ साधुओं को सुजानगढ़ रखा। मातुश्री वदनांजी को भी वहीं रहने का निर्देश दिया। परीक्षार्थी साधु-साध्वियों को अध्ययन के लिए वहीं छोड़ा। २७ दिनों की एक छोटी-सी यात्रा पूरी कर ७ दिसम्बर को हम पुनः सुजानगढ़ पहुंच गए।

दिल्ली में चतुर्मास

• १५ जून १९६४। दिल्ली से हमारे विहार की घोषणा के बाद वहां अणुव्रत-कार्य को संभालने की दृष्टि से मैंने दो संतों को बुलाया और कहा–'तुम दोनों में से किसी एक को दिल्ली रखना है। उस संदर्भ में मुनि नथमलजी को तैयार रहने का इंगित दिया गया तो दूसरे संत के मन में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। यह चिन्तन क्यों? कैसे? और किसलिए? इस बात को लेकर वे आए और बोले–'गुरुदेव! यह निर्णय मेरे लिए सम्मानजनक नहीं होगा।'

मैंने कहा–'इसमें मान-सम्मान की क्या बात है? यह तो आचार्य के अधिकार की बात है। मुनि नथमलजी दिल्ली रहते हैं तो तुम हमारे साथ रह जाओ।' और कोई रास्ता न देखकर वे बोले–'फिर अमुक मुनि को भी साथ ही रखना है।' मैंने कहा–'इसमें मुझे क्या बाधा है?'

• १९ जून १९६४, दिल्ली। मैंने अपने विदाई संदेश में कहा–'मैं अब यहां से जा रहा हूं, पर मुनि नथमलजी आदि सन्तों को यहां छोड़ रहा हूं। कार्यकर्ता एवं सन्त–सब मिलकर काम करेंगे और अणुव्रत के व्यापक प्रसार में सहभागी बनेंगे।'

दिल्ली हमारा कार्यक्षेत्र बन चुका है। यहां रहकर काम करने का विशेष महत्त्व भी है। इस समय का वातावरण भी दिल्ली में चातुर्मास करने के लिए दबाव डाल रहा था, पर दीर्घकालिक दृष्टि से इस समय यहां रहने में लाभ कम लगा। इस आधार पर मैंने कुछ व्यक्तियों के साथ बैठकर चिन्तन किया। उन सबकी पूरी सहमति मेरे साथ नहीं थी, पर फिर भी मेरे विचार पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगा। मैंने त्वरित निर्णय लिया और दिल्ली से विहार कर दिया। मुनि नथमलजी को दिल्ली रहने का निर्देश दिया। उनकी भावना कुछ दिन

हमारे साथ रहने की थी। उन्हें दो-चार दिन साथ रखने में कोई कठिनाई भी नहीं थी, पर दिल्ली में चालू कार्य को अव्यवहित रूप से चलाने के लिए उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

● २० जून १९६४। मुनि नथमलजी नांगलोई तक हमारे साथ आए। नांगलोई से उनको दिल्ली के लिए रवाना कर दिया। मुनि सुखलाल को भी उनके साथ रख दिया। संगठन व कार्यकर्ता-निर्माण में उसकी अच्छी अभिरुचि रहती है। दिल्ली में यह सब काम करना ही था, इसलिए उसे भी रख दिया। कुल आठ साधु हो गए। उस वर्ष दिल्ली में कुछ कामों को स्थायित्व देना था और कुछ नए ठोस काम करने थे, इस दृष्टि से मैंने सब संकेत उनको दे दिए। मुनि नथमलजी का अलग रहना उनको तो अखरा ही, कुछ अन्य व्यक्तियों को भी अखरा। हमारे यहां जो विशिष्ट कार्यक्रम चलते रहते हैं, उन पर भी इस निर्णय का असर आएगा, पर आवश्यकतावश वैसा करना पड़ा। मेरा चिन्तन यह था कि उस क्रम से उनका दिल्ली का अनुभव बढ़ेगा, दिल्ली का अंतरंग वातावरण शुद्ध होगा और अणुव्रत विहार आदि कार्यक्रमों को बल मिलेगा।

● १८ अक्टूबर १९६४। **'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः'**–अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर उसके परिपार्श्व में आपसी वैर-विरोध समाप्त हो जाता है, यह ग्रन्थों में पढ़ा हुआ सत्य है। उस सत्य का आंशिक रूप में साक्षात्कार हुआ। वर्षों से विरोधी विचार रखने वाले व्यक्ति निकट हो गए, आपस में मिल गए। इसे मैं अपनी समता वृत्ति की परिणति के रूप में देखता हूं। मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) उस वर्ष मेरे साथ नहीं थे। उनका चातुर्मासिक प्रवास दिल्ली था। वहां ये संवाद सुनकर उनको भी प्रसन्नता होगी, ऐसा विश्वास है।

● उस वर्ष (सन् १९६४) दिल्ली का काम संभालने के लिए वहां मुनि नथमलजी को रखा था। उन्होंने अच्छे ढंग से व्यवस्थित रूप से कार्यक्रम चलाए। इससे वहां के वातावरण में बहुत असर हुआ। 'अणुव्रत-विहार' के बारे में लोग आशान्वित हो गए। चतुर्मास के बाद मुनि नथमलजी को दर्शन करने का निर्देश दिया। उनका वहां से विहार हो गया। उनके पहुंचने तक लाडनूं के आसपास रहने का मानस बना लिया। २० दिसम्बर १९६४ को मुनि नथमलजी लाडनूं पहुंचे। उनकी अगवानी में नौ साधुओं को भेजा। मैं स्वयं चाहता था कि कुछ कदम सामने जाकर उनका सम्मान करूं, पर वैसा जानबूझकर नहीं किया। रात को उनके साथ काफी देर तक बातचीत की। दिल्ली की स्थिति को समझा। वहां की समस्याओं का अध्ययन किया। मुनि नथमलजी ने प्रवचन के समय दिल्ली की स्थिति का अच्छे शब्दों में चित्रण किया। मैंने भी सब साधुओं को उनके द्वारा किए गए कार्य के लिए साधुवाद दिया।

● २१ दिसम्बर १९६४ को सायंकाल लाडनूं से विहार कर गणपतजी सरावगी के बंगले में प्रवास किया। रात्रि के समय मुनि नथमलजी एवं शुभकरण दसानी के साथ लम्बी चर्चा की। चर्चा के मुख्यतः दो बिन्दु थे–१. आगामी वर्ष में दक्षिण-भारत की यात्रा। २. मुनि नथमलजी को शीघ्र ही पुनः दिल्ली भेजना।

दिल्ली में जो काम चल रहा है, उसे आगे बढ़ाने के लिए मुनि नथमलजी का वहां जाना आवश्यक लगा। वहां की अपेक्षा तथा वातावरण के आधार पर ही हमें अपना अगला कार्यक्रम निश्चित करना था। यात्रा आवश्यक है। उसके लिए मन में उत्साह भी है, किन्तु उस समय यात्रा को स्थगित रखने का ही मानस था। उसके दो कारण थे–१. दिल्ली में 'अणुव्रत-विहार' के कार्य को प्रमुखता देना। २. राष्ट्र की अंतरंग स्थितियों का चिन्तनीय बनना।

"मुनि नथमलजी का अलग रहना उनको तो अखरा ही, कुछ अन्य व्यक्तियों को भी अखरा। हमारे यहां जो विशिष्ट कार्यक्रम चलते रहते हैं, उन पर भी इस निर्णय का असर आएगा, पर आवश्यकतावश वैसा करना पड़ा। मेरा चिन्तन यह था कि उस क्रम से उनका दिल्ली का अनुभव बढ़ेगा, दिल्ली का अंतरंग वातावरण शुद्ध होगा और अणुव्रत विहार आदि कार्यक्रमों को बल मिलेगा।"

२४ जून १९६५। आज हम गुड़गांव से घिटोरनी गए। वहां दिल्ली प्रवासी मुनि नथमलजी आदि संत मिले।

स्मृति का सौभाग्य

हिसार महोत्सव के बाद हम लोग दिल्ली चले गए। गुरुदेव श्रीगंगानगर क्षेत्र की यात्रा कर रहे थे। उस समय गीता का अध्ययन किया गया। जहां अनुसंधान या शोध का प्रसंग होता वहां मैं गुरुदेव की स्मृति में आ जाता, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं।

● २९ मार्च १९६६। हमारे सान्निध्य में चलने वाले आगम-अनुसंधान कार्य की गति काफी धीमी थी। उससे मुझे संतोष नहीं था। उसमें गति लाने के लिए विशेष प्रयत्न की अपेक्षा का अनुभव हुआ। मुनि नथमलजी उन दिनों दिल्ली में थे। वहां तीन सप्ताह का अणुव्रत-साधना-शिविर चल रहा था। शिविर के बाद उनके इधर आने से इस कार्य को सहज ही बल मिल जाएगा।

● २१ मई १९६६ को प्रातः धनासर से विहार कर हम ब्रह्मसर गए। यात्रा में भी अध्ययन-अध्यापन का क्रम बराबर चलता है। उस दिन भगवद्गीता का ग्यारहवां अध्याय चला। उसका 'शांकर भाष्य' बहुत वैदुष्यपूर्ण तरीके से लिखा गया है। उसमें शब्दों के अर्थ सटीक और सुन्दर मिलते हैं। मुनि नथमलजी इस अध्ययन में साथ नहीं हैं। वे भाष्य पढ़कर कितने ही नए अर्थ खोज लेते। क्योंकि वे खोजी हैं।

संसारपक्षीया मां के लिए

● दिसम्बर १९६६। श्रीडूंगरगढ़। निकाय-सचिव मुनि नथमलजी की संसारपक्षीया माता बालूजी उन दिनों गंगाशहर थीं। वृद्धावस्था के कारण उनका विहार संभव नहीं था। दो वर्ष से वे उधर ही थीं। उनसे मिलने और उन्हें उपासना कराने की दृष्टि से कुछ दिन के लिए मुनि नथमलजी को गंगाशहर के लिए विहार कराया।

१ जनवरी १९६७। मुनि नथमलजी भी गंगाशहर से लाडनूं पहुंच गए।

अनुरोध के कारण

● ९ अप्रैल १९६८। धारवाड़ विद्वानों का गढ़ है। अनेक विद्वानों ने अनुरोध किया कि हम वहां कुछ दिन ठहरें। कर्नाटक विश्वविद्यालय के अधिकारियों का निवेदन था कि हम एक बार विश्वविद्यालय का निरीक्षण करें। उधर दस अप्रैल को हमारा हुबली पहुंचना निश्चित था। हमारे सामने दुविधा की स्थिति थी। हमने चिन्तन किया और एक दिन के लिए मुनि नथमलजी को धारवाड़ में रहने का निर्देश देकर वहां से प्रस्थान कर दिया।

● २१ फरवरी १९६९। मदुरै। मध्याह्न में स्थानीय मठ के मठाधीश श्री सोमसुन्दरम ज्ञानसंबन्द मिले। वे आत्मा, पुनर्जन्म, कर्म आदि विषयों पर रिसर्च कर रहे हैं। उनकी विद्वत्ता का स्थानीय लोगों पर अच्छा प्रभाव है। उनके अनुरोध पर मुनि नथमलजी को रात्रि-प्रवास के लिए मठ में भेजा।

● २४ नवम्बर १९६९। बैंगलोर। मध्याह्न में दो बजे हमने वल्लभ-निकेतन से सानन्द विहार कर दिया। मुनि नथमलजी आदि तेरह साधु कुछ समय के लिए आश्रम में ही रहे।

● ११ अप्रैल १९७०। भदंत आनन्द कौशल्यायन नागपुर में रहते हैं। वे हमसे मिलना चाहते थे। पर अचानक अस्वस्थ हो जाने से आ नहीं सके। मैंने मुनि नथमलजी आदि छह साधुओं को उनके निवास-

स्थान पर भेजा। वे उनके दीक्षा-मैदान में रात भर रहे। जैनधर्म, बौद्धधर्म तथा समसामयिक विषयों पर अच्छी काम की बातें हुईं।

● ४ मई १९७०। हमारे लिए उड़ीसा की यात्रा अपरिहार्य है, इसलिए हमारा कार्यक्रम उसी रूप में निर्धारित किया गया। हमारे साथ मुनि नथमलजी हैं। वे आगम-सम्पादन के कार्य में संलग्न हैं। यात्रा के कारण उनके कार्य का प्रवाह कभी रुकता नहीं, पर मंद तो हो ही जाता है। इस दृष्टि से मुनि नथमलजी आदि नौ सन्तों को भिलाई से रायपुर जाने का निर्देश दिया।

मातृ ऋण से उऋण

● १२ अप्रैल १९७१। मुनि नथमलजी का जो सहयोग संघ को, शासन को मिल रहा है, वह अपूर्व है। उनकी भाषणशैली बहुत गंभीर है। उनके पास आगम का अगाध ज्ञान है। वे दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान हैं। शासन में अच्छी ख्याति पा रहे हैं। उनकी संसारपक्षीय माता साध्वी बालूजी वयोवृद्ध हैं, विहार करने में असमर्थ हैं। उन्हें दर्शन देने के लिए मुनि नथमलजी गंगाशहर जा रहे हैं। जाने, आने और कुछ समय वहां रहने में डेढ़ महीना लग जाएगा। उनके साथ काफी साधु-साध्वियों का विहार हो गया।

● २० मई १९७१। मुनि नथमलजी को गंगाशहर भेजा था, उस समय यह संभावना थी कि डेढ़ महीने में दर्शन देकर आ जाएंगे। किंतु लगता है कि उनको यहां आने में शायद अब भी कुछ समय लगेगा। क्योंकि साध्वी बालूजी काफी अस्वस्थ होती जा रही हैं। मैंने उनको निर्देश दिया है कि वे वहां की स्थिति देखकर जैसा उचित समझें, वैसा ही करें।

● जून १९७१ के अंतिम सप्ताह में मैं आचार्यवर की सन्निधि में पहुंच गया।

● २३ जुलाई १९७१ को मुनि नथमलजी की संसारपक्षीया माता साध्वी बालूजी का स्वर्गवास हो गया। अच्छा समाधिमरण हुआ। उनकी स्मृति में आयोजित सभा को संबोधित करते हुए मैंने कहा–'साध्वी बालूजी बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थीं, पर अपनी आत्मसाधना में बहुत सजग थीं। उनके जीवन में संयम था, इसलिए वे पण्डिता थीं। इन वर्षों में उनकी वृत्ति और भी विलक्षण बन गई थी। उन्होंने विवेकख्याति–आत्मा भिन्न है व शरीर भिन्न है–इस तत्त्व को बहुत गहराई से समझा था। विगत कुछ वर्षों से वे काफी अस्वस्थ थीं। अस्वास्थ्य की स्थिति में भी उन्होंने काफी ऊंचे मनोबल का परिचय दिया और अंत तक वे गहरी मानसिक समाधि में रहीं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने हमें एक ऐसे बालक (मुनि नथमलजी) को दिया है, जो अपनी प्रज्ञा व प्रतिभा से शासन की अच्छी सेवा कर रहा है। मुनि नथमलजी सचमुच भाग्यशाली हैं, जो अपनी माता के ऋण से उऋण हो गए। अभी कुछ समय पूर्व ही गंगाशहर जाकर उनके मन में समाधि उपजाकर आए हैं।' उस प्रसंग में मैंने साध्वी बालूजी के प्रति एक सोरठा रचकर सुनाया–

मुनि नथमल री मात, बालू श्रमणी बलवती।
समझी सहज सुजात, तन चेतन री भिन्नता॥

● २४ दिसम्बर १९७४ को हम रोहतक पहुंचे। मुनि नथमलजी आदि कुछ साधुओं और कुछ साध्वियों को रोहतक में रहना पड़ा। क्योंकि वे मौसम के प्रभाव से अस्वस्थ हो गए। अस्वस्थता में चलने से समस्या बढ़ने की संभावना थी। कुछ दिन वहां विश्राम कर वे सीधे रास्ते से हांसी पहुंच सकेंगे।

"
यात्रा में भी अध्ययन-अध्यापन का क्रम बराबर चलता है। उस दिन भगवद्गीता का ग्यारहवां अध्याय चला। उसका 'शांकर भाष्य' बहुत वैदुष्यपूर्ण तरीके से लिखा गया है। उसमें शब्दों के अर्थ सटीक और सुन्दर मिलते हैं। मुनि नथमलजी इस अध्ययन में साथ नहीं हैं। वे भाष्य पढ़कर कितने ही नए अर्थ खोज लेते। क्योंकि वे खोजी हैं।

• २ जून १९७८। मुनि नथमलजी को शिविर का दायित्व सौंपकर प्रातः हमने जैन विश्व भारती से विहार किया और ५ जून को हम बीदासर पहुंच गए।

अनुरोध सुखपाल का

• १५ जनवरी १९७९। मोमासर में चार दिन ही रहना हुआ। हाथ में समय कम था। महोत्सव के लिए राजलदेसर पहुंचना जरूरी था। माघ कृष्णा नवमी वहां पहुंचने की तिथि घोषित थी। रास्ता रेतीला था। मुनि नथमलजी उस समय लाडनूं थे। मुनि किशनलाल उनके साथ था। वह वहां से विहार कर मोमासर पहुंचा। मुनि नथमलजी ने मुनि किशनलाल के साथ एक नया प्रस्ताव भेजा। उसका तात्पर्य था–'चढ़ाव-उतारवाले रेतीले टीलों में सुखपाल का प्रयोग करना चाहिए। यह कोई नई बात नहीं है। सौ वर्ष पहले जयाचार्य ने सुखपाल का प्रयोग किया था। लाला भैरूंदानजी सींधड़ के विशेष अनुरोध पर जयाचार्य लाडनूं से जयपुर पधारे थे। वे सुखपाल से ही पधारे थे। उस इतिहास को पुनरुज्जीवित करना चाहिए। क्योंकि रेतीले टीलों में चढ़ते-उतरते समय आपको काफी तकलीफ होती है।' मेरी मानसिकता सुखपाल का प्रयोग करने की नहीं थी, पर सब साधु पीछे पड़ गए। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने विशेष बल लगाया। एक बार मैंने सबकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी। किन्तु आखिर 'घण जीत' वाली कहावत सिद्ध हुई। साधु-साध्वियों का बहुमत प्रबल था। अपने मन को गौण करके दूसरों का मन रखना पड़ा। साधुओं ने सुखपाल तैयार किया। एक कलापूर्ण सुखपाल का निर्माण हो गया। २० जनवरी को प्रातः मोमासर से विहार किया। रास्ते में जहां-जहां उतार-चढ़ाव का प्रसंग आया, अनेक बार सुखपाल का प्रयोग हुआ। मन में संकोच बहुत रहा। पर सन्तों का उत्साह अवर्णनीय था।

जन्मभूमि में

• १९ फरवरी १९७९। हमने चूरू से विहार किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ भी हमारे साथ थे। राजगढ़ पहुंचने के दो रास्ते हैं। एक रास्ता सीधा है, दूसरा टमकोर होकर है। टमकोर महाप्रज्ञ की जन्मभूमि है। टमकोरवासी लोगों की प्रार्थना थी कि हम महाप्रज्ञ को साथ ले टमकोर होते हुए राजगढ़ जाएं। पर स्वास्थ्य की दृष्टि से कच्चा रास्ता अनुकूल नहीं होने से हम सीधे सड़क पथ से राजगढ़ के लिए चले तथा युवाचार्य महाप्रज्ञ को टमकोर जाने का निर्देश दिया। दूधवाखारा से नौ सन्तों तथा सात साध्वियों के साथ युवाचार्यजी टमकोर गए। गांववासियों को बहुत प्रसन्नता हुई। २३ फरवरी को युवाचार्यजी राजगढ़ आ गए। प्रायः सभी सन्त उनकी अगवानी में गए। प्रवास स्थल पर पहुंचते ही मैंने भी गले लगाकर उनका स्वागत किया। मधुर मिलन के उस दृश्य को देखकर जनता भावविभोर हो गई। प्रवचन सभा में अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त करते हुए मैंने कहा–'युवाचार्य महाप्रज्ञ दो दिनों की संक्षिप्त यात्रा कर आ गए हैं। मैं अधूरा राजगढ़ आया था। आज हम पूरे हो गए हैं। पहले मैं अकेले काम करता था। अब हम दो हो गए हैं। 'एक-एक सो एकलो दो मिल बावन वीर।' मुझे विश्वास है कि मानव जाति के लिए ये मुझसे सवाया काम करेंगे।

• ८ अप्रैल १९७९। महावीर जयंती के संदर्भ में प्रवचन करने के बाद मैंने कहा–'दिल्ली का मासिक प्रवास कार्यकारी रहा। अब अधिक समय यहां लगाने से पंजाब की पूरी संभाल नहीं हो सकेगी। इस दृष्टि से आप मुझे और रुकने का आग्रह न करें। आपकी भावनाओं और कार्य की संभावनाओं को देखते हुए मैं युवाचार्य महाप्रज्ञ को कुछ समय के लिए यहां छोड़ रहा हूं।' इस निर्णय से दिल्ली के लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई।

• ५ जुलाई १९७९। लुधियाना में चातुर्मासिक प्रवेश। हमने नौलखा कॉलोनी जाने के लिए प्रस्थान किया। उधर दिल्ली से विहार कर युवाचार्य महाप्रज्ञ लुधियाना पहुंचे। मार्ग में ही आचार्य-युवाचार्य के मिलन का मनोहारी प्रसंग उपस्थित हो गया। पंजाबी श्रावक समाज की प्रसन्नता में चार चांद लग गए।

• १४ अगस्त से २३ अगस्त १९७९ तक दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन था। शिविर का स्थान सिविल लाइन में था। शिविर के प्रथम दिन मैं स्वयं वहां उपस्थित रहा। युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में शिविर चल रहा था, इसलिए उनको दस दिन तक वहीं रहना पड़ा। शिविर में लगभग एक सौ बहन-भाई संभागी थे। अधिसंख्य शिविरार्थी प्रबुद्ध और ग्रहणशील थे। उन्होंने सैद्धान्तिक और प्रायोगिक, दोनों प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

स्वतंत्र मर्यादा महोत्सव

• ६ नवम्बर १९७९। चातुर्मास सम्पन्न होने पर युवाचार्य महाप्रज्ञ को लुधियाना से सीधा लाडनूं की ओर विहार करा दिया। प्रेक्षाध्यान शिविर, आगम सम्पादन आदि कुछ कार्य करने की दृष्टि से ऐसा किया गया। पंजाब के श्रद्धालु लोगों की प्रार्थना थी कि मर्यादा-महोत्सव पर युवाचार्यजी को साथ ही रखा जाए, किन्तु विशेष अपेक्षा समझकर चिन्तनपूर्वक उक्त निर्णय लिया गया। इस आधार पर युवाचार्यजी को पहला महोत्सव स्वतंत्र रूप में करने का मौका मिल सकेगा।

• १३ अप्रैल १९८०। हम देवाणी से चले, उधर युवाचार्य महाप्रज्ञ सुजानगढ़ से चले। दो भिन्न दिशाओं से दो प्रवाह चले। दोनों का केन्द्र बिन्दु था गुलेरिया नाम का गांव। गांव के बाहर सड़क के निकट बालू रेत का ऊंचा टीला था। प्राकृतिक रूप में रमणीय उस टीले पर हमारा मिलन हुआ। विनय और वात्सल्य का आकर्षक दृश्य जनता की आंखों में समा गया। गंभीर जयघोषों से दिशाएं निनादित हो उठी। लाडनूं, सुजानगढ़, छापर, चाड़वास, बीदासर आदि अनेक क्षेत्रों के श्रद्धालु जन वहां उपस्थित थे। युवाचार्यजी को साथ लेकर मैं टीले से नीचे उत्तरा। हमारे पीछे साधु-साध्वियों और भाई-बहिनों का एक बड़ा काफिला था। ऐसा लगा, मानो कोई उत्ताल लहरोंवाला दरिया अपनी सीमा से आगे बढ़ रहा है। गांव के डागा भवन में पहुंचकर उस मिलन प्रसंग को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देते हुए मैंने कहा–

गुलेरिया के रेतीले टीले पर मधुर मिलाप हुआ,
युवाचार्य आचार्य युगल का आपस में आलाप हुआ।
जंगल में मंगल का दृश्य अनोखा अद्भुत लगी बहार,
सदा फूलता फलता खिलता श्री भैक्षव गणवन गुलजार॥

प्रेक्षाध्यान शिविर और आगम कार्य

१९ अप्रैल १९८१ को सवाई माधोपुर की ओर प्रस्थान किया तब युवाचार्य महाप्रज्ञ आदि कुछ साधु-साध्वियों को जयपुर छोड़कर गए थे। जयपुर में युवाचार्यजी के निर्देशन में वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों का प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित किया गया। राजस्थान पुलिस अकादमी में समायोजित उस शिविर में अनेक पुलिसकर्मियों तथा अधिकारियों ने भाग लिया। शिविर का समापन २० मई को था। उस दिन हम भी अपनी अन्तरिम यात्रा संपन्न कर जयपुर पहुंच गए। शिविर समापन का कार्यक्रम हमारे सान्निध्य में सवाई मानसिंह स्टेडियम में रखा गया।

“दो भिन्न दिशाओं से दो प्रवाह चले। दोनों का केन्द्र बिन्दु था गुलेरिया नाम का गांव। गांव के बाहर सड़क के निकट बालू रेत का ऊंचा टीला था। प्राकृतिक रूप में रमणीय उस टीले पर हमारा मिलन हुआ। विनय और वात्सल्य का आकर्षक दृश्य जनता की आंखों में समा गया। गंभीर जयघोषों से दिशाएं निनादित हो उठीं।”

• ११ अक्टूबर १९८१। प्रातःकाल हम सब्जी मण्डी से चले और घूमते-घूमते सवा दस बजे अणुव्रत भवन पहुंच गए। उधर दिल्ली के श्रद्धाशील श्रावक भगतराम जैन का सार्वजनिक अभिनंदन किया गया। उस कार्यक्रम में हमने युवाचार्य महाप्रज्ञ को भेजा। अच्छा प्रभाव रहा।

• १७ नवम्बर १९८१। फरीदाबाद से १३ किमी. का विहार करके जिन्दल स्कूल आ गए। सायंकाल पांच किमी. चले, महरौली स्थित अध्यात्म साधना केन्द्र पहुंचे। दिन भर में बाईस किमी. का विहार हो गया। साधना केन्द्र में युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में प्रेक्षाध्यान शिविर चल रहा है। हम वहां दो दिन रहे।

• १७ मार्च से २७ मार्च १९८२। लाडनूं में प्रेक्षाध्यान का शिविर था। शिविर के लिए युवाचार्य महाप्रज्ञ १७ मार्च को लाडनूं पहुंच गए थे। शिविर में डेढ़ सौ साधक साधना करनेवाले थे। युवाचार्यजी को बीच में प्रतिश्याय और ज्वर हो गया। इस कारण कुछ अवरोध भी आया, फिर भी कुल मिलाकर अच्छा क्रम चला। शिविर समापन का उपक्रम प्रभावी रहा। शिविरार्थियों के अनुभव काफी प्रेरक लगे।

• ११ अप्रैल १९८२। जैन विश्व भारती का अपना समृद्ध ग्रंथागार है। वहां शैक्षिक और साहित्यिक काम आसानी से हो सकता है। आगम सम्पादन का काम भी पूरी सुविधा से हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर युवाचार्य महाप्रज्ञ को वैशाख और जेठ दो महीने जैन विश्व भारती लाडनूं में रहने का निर्देश दिया। गर्मी का समय है, दिन बड़े हैं, अन्य कोई विशेष काम सामने नहीं है, इसलिए आगम कार्य सुचारु रूप से हो सकेगा।

• ३० जून १९८२। सात किमी. का रास्ता पार कर राणावास स्टेशन पर पहुंचे। उधर लाडनूं से सीधे रास्ते यात्रा कर युवाचार्य महाप्रज्ञ भी स्टेशन पर पहुंच गए। दोनों गले मिले। आचार्य-युवाचार्य के मधुर मिलन के दृश्य को देखकर जनता ने कृतार्थता का अनुभव किया।

• ४ जुलाई १९८२। युवाचार्य महाप्रज्ञ सिरियारी गए। हमारे सिरियारी प्रवास के दौरान वे साथ नहीं थे, इसलिए एक दिन के लिए वे वहां चले गए।

स्वास्थ्य की दृष्टि से

• १५ मई १९८३। युवाचार्य महाप्रज्ञ को अभी अहमदाबाद रहने का निर्देश दिया है। क्योंकि उन्होंने अन्न और जल बन्द करके पर्पटी ली है। अभी तक पानी शुरू नहीं किया। ऐसी हालत में विहार कैसे संभव है? एक महीना यहां ठहरकर विहार करना ठीक रहेगा। वैद्य गोविन्दप्रसादजी का चिन्तन भी ऐसा ही था। फलतः उन्हें अभी यहां छोड़ने का निर्णय लिया। वे एक महीना बाद माउण्ट आबू के रास्ते से विहार करेंगे और बालोतरा पहुंचने से पहले ही हमारे साथ हो जाएंगे, ऐसी संभावना है। इस रास्ते से उन्हें १५० किमी. कम पड़ेगा। तब तक गर्मी भी शायद कम हो जाएगी। सभी दृष्टियों से चिन्तन करने पर यही मार्ग ठीक लगा।

• १७ जुलाई १९८३। समुचित स्वास्थ्य-लाभ होने के बाद युवाचार्य महाप्रज्ञ का विहार आबू के रास्ते से हुआ। वहां उनके निर्देशन में प्रेक्षाध्यान का शिविर भी लगा। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हमारा और युवाचार्यजी का चातुर्मासिक प्रवेश साथ ही होना था। उस हिसाब से वे चले और चातुर्मास के लिए प्रवेश करने से पूर्व ही हमारे पास पहुंच गए। १६ मई को हमने अहमदाबाद से विहार किया था। उसके ठीक दो महीने बाद १७ जुलाई को आचार्य-युवाचार्य का मधुर मिलन हो गया। वह प्रसंग भी जनता के लिए किसी उत्सव से कम नहीं था। उस अवसर पर मैंने एक दोहा कहा–

चले अहमदाबाद से, करते निज-निज कार्य।
आज मिले बालोतरा, युवाचार्य आचार्य॥

● जसोल के श्रावकों की प्रार्थना थी कि चातुर्मास प्रारम्भ होने से पहले हम एक बार वहां आएं। मेरा जाना तो संभव नहीं हुआ, पर २१ जुलाई १९८३ को प्रातः युवाचार्य महाप्रज्ञ को वहां भेजा। वे लगभग दो घंटे जसोल में रहे। उन्होंने वहां प्रवचन किया और दस बजे तक पुनः बालोतरा आ गए।

● ५ मार्च १९८४ को मध्याह्न में युवाचार्य महाप्रज्ञ को संघीय सम्मान के साथ लाडनूं जाने के लिए विदाई दी। प्रवास-स्थल से बाहर तक हम स्वयं उन्हें पहुंचाने के लिए गए। बड़ा दर्शनीय दृश्य बन गया। ज्ञातव्य है कि युवाचार्यजी आगम कार्य तथा प्रेक्षाध्यान शिविर के लिए अभी कुछ महीने लाडनूं में प्रवास करेंगे।

● १७ मई १९८४। प्रातः हम छापर से विहार कर सुजानगढ़ पहुंचे। शहर से बाहर भंसाली भवन में ठहरे। उधर युवाचार्य महाप्रज्ञ लाडनूं से विहार कर सुजानगढ़ आ गए। आचार्य-युवाचार्य का मधुर मिलन हुआ। स्थानीय लोगों का उत्साह बढ़ गया।

अवधान और आचार्य हस्तीमलजी से मिलन

● २ सितम्बर १९८४। युवाचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में मुनि महेन्द्रकुमार के अवधान का कार्यक्रम था। इसके लिए उन्हें बाहर जाना था। मैंने महाप्रज्ञजी से कहा–'तुम उधर कार्यक्रम के लिए जा रहे हो। उससे कुछ आगे पावटा में स्थानकवासी आचार्य हस्तीमलजी महाराज चातुर्मास कर रहे हैं। तुम्हें वहां जाना चाहिए। यद्यपि तेरापंथ के प्रति उनकी अनुकूलता कम है, फिर भी हमें अपना काम करना है।'

युवाचार्यजी पावटा गए। सैकड़ों श्रावक उनके साथ थे। मुमुक्षु बहनें थीं। ग्यारह साधु थे। वहां लगभग एक घंटा समय लगा। अनायोजित आयोजन-सा हो गया। आचार्यजी भी अच्छा बोले। पूरे कार्यक्रम में उपस्थित रहे। उनके साधु युवाचार्यजी के सामने गए तथा पहुंचाने आए। वातावरण अच्छा रहा, बहुत अच्छा रहा।

मध्याह्न में टाउन हॉल में बौद्धिक लोगों की विशेष उपस्थिति में अवधान का सफल प्रयोग रहा। युवाचार्य महाप्रज्ञ का प्रेक्षाध्यान के बारे में प्रभावी भाषण रहा। दोनों कार्यक्रमों का सफल समायोजन कर सायंकाल युवाचार्यजी लौट आए। जाने-आने में चौदह किमी. चलना हुआ। सबको प्रसन्नता रही।

यात्रा और स्वास्थ्य

● २६ मार्च १९८५। घुटनों का दर्द कम नहीं हुआ। उसे देखते हुए यात्रा का क्रम बदलना पड़ा। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार कटार से बदनोर, शंभूगढ़ और पड़ासोली जाना था। उस कार्यक्रम को स्थगित किया और दूसरे दिन हम कटार में ही रहे। उधर युवाचार्य महाप्रज्ञ को भीम से बुलाया। उन्हें इन क्षेत्रों में जाने का निर्देश दिया, ताकि लोगों के मन में निराशा न आए।

● ३१ मार्च १९८५ को प्रातः हम आसीन्द पंचायत समिति भवन में थे। युवाचार्य महाप्रज्ञ पड़ासोली से वहीं पहुंचनेवाले थे। हमने उनकी प्रतीक्षा की। वे पहुंच गए। आचार्य-युवाचार्य का मिलन हो गया। युवाचार्यजी को साथ लेकर हमने आसीन्द शहर की ओर प्रस्थान किया।

"जैन विश्व भारती का अपना समृद्ध ग्रंथागार है। वहां शैक्षिक और साहित्यिक काम आसानी से हो सकता है। आगम सम्पादन का काम भी पूरी सुविधा से हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर युवाचार्य महाप्रज्ञ को वैशाख और जेठ दो महीने जैन विश्व भारती लाडनूं में रहने का निर्देश दिया। गर्मी का समय है, दिन बड़े हैं, अन्य कोई विशेष काम सामने नहीं है, इसलिए आगम कार्य सुचारु रूप से हो सकेगा।"

• १० जून १९८५ को रायपुर से विहार कर बोराणा जाने का कार्यक्रम था। उपाध्यायजी तथा स्थानीय श्रावकों के विशेष अनुरोध पर दिन-दिन वहीं रहना स्वीकार किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ को बोराणा भेजा। इन दिनों हम मेवाड़ के छोटे-छोटे गांवों में रह रहे हैं।

• १८ जून १९८५ को अपराह्न में ऊमरी से विहार कर कूंदवा गए। दूसरे दिन पारड़ी जाना था। गांववासियों ने प्रातःकालीन प्रवचन के लिए आग्रह किया। उनका आग्रह मानकर युवाचार्य महाप्रज्ञ को पारड़ी जाने का निर्देश दिया। हमारा प्रवचन कूंदवा में हुआ। प्रवचन के बाद लोगों ने अनेक संकल्प ग्रहण किए। सायंकाल वहां से पारड़ी गए।

अकेलेपन का अनुभव

• ३० नवम्बर १९८५ को प्रातः युवाचार्य महाप्रज्ञ ने राजसमंद के लिए विहार किया। गांव के बाहर एक तिबारी और उसके पास एक चौकी। उस पर हम खड़े हो गए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने विहारोचित वन्दना की। फिर खड़े हुए। मैंने उन्हें गले लगाया और कहा–'अब तुम्हारा अलग विहार करना अच्छा नहीं लग रहा है। अकेलेपन का अनुभव हो रहा है। पर जहां अपेक्षा है, वहां सब कुछ करना होगा। हमने कुछ दूर पहुंचाकर उनको विदा किया। राजसमंद में 'तुलसी साधना शिखर' पर शिविरों का आयोजन होने वाला है। एक शिविर राजकीय अध्यापकों का तथा दूसरा शिविर प्रशिक्षकों का होने जा रहा है। दोनों शिविरों में महाप्रज्ञजी का निर्देशन रहेगा, इसलिए वहां रहना आवश्यक हो गया।

जनता को धार्मिक चेतना जगाने का संदेश देते हुए हम २१ दिसम्बर १९८५ को रेलमगरा पहुंचे। युवाचार्य महाप्रज्ञ लावासरदारगढ़ से राजसमंद गए थे। शिविर संपन्न होने पर वे वहां से चले और २२ दिसम्बर को रेलमगरा पहुंच गए। देवली चबूतरे पर आचार्य-युवाचार्य का मिलन हुआ। हजारों आंखों ने मिलन के नयनाभिराम दृश्य को देखा। प्रभावकारी वातावरण बना।

• १३ जनवरी १९८६। चित्तौड़ में प्रवास का अंतिम दिन। अस्सी-पचासी किमी. का चक्कर स्वीकार करके हम चित्तौड़ आए, पर वह अखरा नहीं। चित्तौड़ आने और वहां की सारी स्थितियों का आकलन करने के बाद मन में आया कि ऐसा जानते तो श्रावक सम्मेलन कानोड़ में नहीं, चित्तौड़ में करते। युवाचार्य महाप्रज्ञ हमारे साथ नहीं हैं। उन्हें कानोड़ से सीधा भेज दिया था। यदि वे भी साथ होते तो अच्छा रहता।

२० जनवरी १९८६ को हम थामला गए। वहां आचार्य-युवाचार्य का मिलन हुआ।

• २८ फरवरी १९८६ को प्रातः चौदह किमी. चलकर कड़िया गांव में पहुंचे। वहां से युवाचार्यजी ने सीधे रास्ते गोगुंदा के लिए विहार किया। उदयपुर से गोगुंदा केवल पैंतीस किमी. की दूरी पर है। किन्तु हम एक सौ पैंतीस किमी. का रास्ता तय करके वहां पहुंचेंगे।

९ मार्च को अरावली की उच्चतम चोटियों को पैरों से मापते हुए हम गोगुंदा पहुंचे।

• ४ अप्रैल १९८६। युवाचार्यजी रींछेड़ से अंटालिया गए। वहां से केलवा होते हुए सीधे राजनगर पहुंचेंगे। १० अप्रेल तक उन्हें पहुंचना ही है। क्योंकि वहां एक शिविर लग रहा है। १६ अप्रैल को हम राजनगर पहुंचे।

• ४ जुलाई १९८६। वर्माजी के घर से विदा होकर हम सुजानगढ़ पहुंच गए। जनता का उत्साह दर्शनीय था। युवाचार्य महाप्रज्ञ को लाडनूं ही रखा गया है। हम स्वयं पांच दिन सुजानगढ़ रहकर पुनः लाडनूं जाने वाले हैं। सुजानगढ़ के लोग हमारे लाडनूं पहुंचने से पहले ही प्रार्थना करने लगे थे। अन्य क्षेत्रों के लोग भी हमारे प्रवास के लिए उत्सुक थे। पर मेरा विचार कम था, इसलिए सबको समझा दिया। फिर संयोग ही कुछ ऐसा बना कि अप्रत्याशित रूप में हमने पांच दिन के लिए यहां आने का मानस बनाया। इससे लोगों को अतिरिक्त प्रसन्नता हुई।

• १० सितम्बर १९८६। रात्रिकालीन कार्यक्रम सरावगी वास में रखा गया है। रात्रिप्रवास वहां करना होगा। युवाचार्य महाप्रज्ञ को ज्वर हो गया। इसलिए वे जैन विश्व भारती में ही रहेंगे।

• २१ दिसम्बर १९८६। बीदासर प्रवास के आखिरी दिनों में युवाचार्य महाप्रज्ञ आदि आठ साधुओं को लाडनूं के लिए विहार करा दिया। वहां प्रेक्षाध्यान का शिविर है, इसलिए जाना आवश्यक हो गया।

• २ जनवरी १९८७। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने लाडनूं से विहार कर दिया। १ जनवरी को वे सुजानगढ़ थे। २ जनवरी को वहां से विहार कर प्रातः कोठारी कुंज में विश्राम किया। मध्याह्न में कोठारी कुंज से चले और तीन बजे के बाद छापर पहुंच गए। हम थोड़ी दूर सामने गए, मिले और साथ साथ चलकर आए। जनता की अच्छी खासी भीड़ हो गई। संक्षिप्त वक्तव्यों के बाद सभा विसर्जित कर दी गई।

• १६ जुलाई १९८७। युवाचार्य महाप्रज्ञ अणुव्रत भवन से अशोक विहार गए। वहां अग्रसेन भवन में प्रेक्षाध्यान साधना शिविर लग रहा है।

• २५ सितम्बर १९८७। युवाचार्य महाप्रज्ञ आज नौ साधुओं के साथ यहां से ग्रीनपार्क गए। वहां प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन है। उन्हें दस दिन वहीं रहना होगा।

एकांतवास के लिए

• १८ फरवरी १९८८ को मध्याह्न में हमने भिवानी से विहार किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ वहीं रुके। वे भिवानी से सीधे हांसी पहुंचेंगे।

• २१ फरवरी १९८८ को हम हांसी पहुंचे। युवाचार्य महाप्रज्ञ भी भिवानी से चलकर यहां पहुंच गए। हांसी में हम दो दिन रहे। दूसरे दिन मध्याह्न में सभा भवन से सात किमी. का विहार कर प्रेमचंद जैन की फैक्ट्री में रहे। युवाचार्य महाप्रज्ञ हांसी में रहे। वे वहां से सीधे हिसार जाएंगे। इधर हम हरियाणा के गांवों की यात्रा करेंगे, उधर युवाचार्यजी हिसार में मौन व ध्यान की विशेष साधना करेंगे। विशेष साधना में इक्कीस दिनों का एक अनुष्ठान किया जाएगा।

१५ मार्च १९८८। इक्कीस दिनों की एकांत साधना के बाद युवाचार्य महाप्रज्ञ से हमारा मिलन हुआ।

• २६ मार्च १९९० को युवाचार्य महाप्रज्ञ ने बड़ी खाटू के लिए विहार किया। हम वहां नहीं जा सकेंगे, इसलिए इनका जाना जरूरी है। वहां जाने से आगे की मंजिल भी कुछ हल्की हो गई।

१० जून १९९० को हम गादाणा पहुंचे। गादाणा में हम दो दिन रहे। दूसरे दिन सायंकाल युवाचार्य महाप्रज्ञ को चेलावास भेज दिया। हम यहीं रहे।

> “गांव के बाहर एक तिबारी और उसके पास एक चौकी। उस पर हम खड़े हो गए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने विहारोचित वन्दना की। फिर खड़े हुए। मैंने उन्हें गले लगाया और कहा–‘अब तुम्हारा अलग विहार करना अच्छा नहीं लग रहा है। अकेलेपन का अनुभव हो रहा है। पर जहां अपेक्षा है, वहां सब कुछ करना होगा।”

• २८ नवम्बर १९९०। सायंकाल नीमली से विहार कर हम बड़ी गांव चले गए। युवाचार्य महाप्रज्ञ और महाश्रमण मुदितकुमार वहीं रहे। दूसरे दिन प्रातः हम बड़ी से चले और युवाचार्य नीमली से चले। हमने ढाई किमी. का रास्ता तय किया और युवाचार्यजी चार किमी. चलकर आए। राणावास के रास्ते में ठाकुरवास में हमारा मिलन हुआ। आनन्द ही आनन्द हो गया। उस अवसर पर मैंने एक दोहा कहा–

बड़ी नीमली से चले, निपटा निज-निज कार्य।
मिले आमने-सामने, युवाचार्य आचार्य॥

• १८ दिसम्बर १९९०। युवाचार्य महाप्रज्ञ सायंकाल सिरियारी से विहार कर वोपारी गांव चले गए। हमारा रात्रिकालीन प्रवास वहीं रहा।

• ७ जून १९९१। प्रातः ग्रीन हाउस, सी-स्कीम से विहार कर बनीपार्क पहुंचे। पूनमचन्दजी भूतोड़िया (लाडनूं) के यहां कुछ देर ठहरे। प्रातःकालीन गोचरी की। युवाचार्य महाप्रज्ञ को रात्रिकालीन प्रवास के लिए वहीं रहने का निर्देश दिया। हम वहां से आगे चले। अणुव्रत के सक्रिय कार्यकर्ता निर्मलकुमार सुराणा के नए मकान में रहे। दोनों परिवारों को प्रसन्नता हुई।

जैन विश्व भारती के लिए

• ५ फरवरी १९९३। चाड़वास में हम दो दिन रहे। वहां मुनि महेन्द्र लाडनूं से आए। उन्होंने जैन विश्व भारती के बारे में अवगति दी। वहां की आवश्यकता के अनुसार युवाचार्यजी को लाडनूं भेजने का निर्णय लिया। उनको लाडनूं के लिए विहार करा दिया। वे अब सरदारशहर में ही मिल सकेंगे।

• ८ मार्च १९९३, सोमवार, सरदारशहर। जैन विश्व भारती का सतरह दिवसीय प्रवास सम्पन्न कर युवाचार्य महाप्रज्ञ आज मध्याह्न में लम्बे जुलूस के साथ यहां आ गए। हमने श्रीसमवसरण के दरवाजे तक जाकर उनकी अगवानी की। जनता में विशेष हर्षोल्लास हुआ। स्वागत कार्यक्रम को प्रसन्नता कार्यक्रम का रूप मिल गया। युवाचार्यजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'यह स्वागत का नहीं, प्रसन्नता का कार्यक्रम होना चाहिए। आचार्यवर के दर्शन हुए, यह सौभाग्य का क्षण है। आचार्यवर से दूर रहना बहुत अटपटा-सा लगता है। इसका अनुभव दूर रहनेवाला ही कर सकता है।' प्रस्तुत सन्दर्भ में मैंने कहा–'सचमुच ही यह प्रसन्नता का समारोह है। दूर रहना युवाचार्यजी को अटपटा लगा तो हमें भी अधूरा-अधूरा सा लगा। आज पूर्णता का अनुभव हो रहा है।'

सुंदर और शुभंकर क्षण

• १६ मार्च १९९४, जयपुर। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को बनीपार्क में रहने का निर्देश देकर हम वहां से चले और सी-स्कीम पहुंचे।

• २० मार्च १९९४। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी बनीपार्क का पंचदिवसीय प्रवास सम्पन्न कर ग्रीन हाउस आए। मैंने अपने विश्राम कक्ष से बाहर आकर उनका स्वागत किया। हमारे मिलन का दृश्य देखकर जनता ने धन्यता का अनुभव किया। महाप्रज्ञजी के हाथ का सहारा लेकर मैं मंच पर पहुंचा। हजारों श्रावक-श्राविकाओं ने एक स्वर से वन्दना की। स्वागत का कार्यक्रम चला। अनेक वक्ता बोले। कुछ गीतों का संगान हुआ।

कोई भी कार्यक्रम होता है तो मैं प्रायः अन्त में बोलता हूं। इस क्रम को बदलते हुए मैंने कहा– 'आज मैं अन्त में कैसे बोलूं? आज मुझे अपने द्वारा प्रतिष्ठित युवाचार्य का आचार्य के रूप में स्वागत

करना है। कैसा सुन्दर मौका है। वह पिता अपने आपको धन्य मानता है, जिसके सामने उसका पुत्र सब कुछ बन जाता है। मैंने भी जो आशाएं कीं, इन्होंने सब दृष्टियों से सम्पन्नता प्राप्त कर मुझे निश्चिन्त बनाया है। सचमुच ही मेरे लिए यह सुंदर एवं शुभंकर क्षण है। किसने कल्पना की थी इस अपूर्व कार्य की, अभूतपूर्व कार्य की। मेरे जीवन का क्रम कुछ अपूर्व ही रहा है। कभी पहले कुछ सोचता हूं और कभी नहीं भी सोचता। किन्तु समय पर कुछ अपूर्व घटित हो जाता है। लगता है कि मेरी जन्मकुंडली में सुन्दर सुयोग है।'

आचार्य पद के विसर्जन की अपूर्व घटना को जयपुर की जनता के सामने प्रस्तुत करते हुए मैंने कहा– 'यह कार्य इतना अप्रत्याशित था कि किसी के कानों में भनक तक नहीं थी। केवल संघ-महानिदेशिका, महाश्रमणी से परामर्श किया था। क्योंकि ये हकदार हैं और एक बड़े समुदाय का प्रतिनिधित्व करती हैं। किन्तु ये भी समझ नहीं सकीं। क्योंकि ऐसा कुछ घटित होने की कल्पना ही नहीं थी। पर महाश्रमणीजी! मैं धारूं और वह करूं नहीं, ऐसा हो नहीं सकता।'

इस प्रसंग का उपसंहार करते हुए मैंने कहा–'इस अभूतपूर्व घटना की जो प्रतिक्रिया हुई, वह भी अद्‌भुत है। मैं उस दिन से निश्चिन्त बन गया। मैंने साधु-साध्वियों की सभा आमंत्रित कर कहा–'अब तुम लोगों का दायित्व है कि जैसा मुझे समझते हो, वैसा ही इनको समझो। अपनी श्रद्धा-भक्ति इनमें उंडेल दो। अब सारा कार्य ये करेंगे। इन्हें कार्य करना सिखाना नहीं पड़ेगा। ब्रह्मा को कौन सिखाता है? इनकी अंतर्दृष्टि जागृत है। बंधुओ! ऐसे शिष्य का मिलना भी सौभाग्य की बात है।'

• १२ अप्रैल १९९४, जयपुर। प्रातः डॉक्टर एस. आर. मेहता के घर गए। प्रवचन किया। उधर महाप्रज्ञजी जेल में कैदियों को ध्यान कराने गए। लगभग एक हजार कैदी व्यवस्थित रूप में बैठे थे। प्रोग्राम अच्छा रहा।

दिल्ली में पृथक् विहार के अवसर

• १३ दिसम्बर १९९४। मध्याह्न में दो बजकर पन्द्रह मिनट पर हम अध्यात्म साधना केन्द्र से चलकर ग्रीन पार्क पहुंचे। यह सूचना जिन्दल हाउस पहुंची तो ओमप्रकाशजी जिन्दल तत्काल दर्शन करने आए। उन्होंने रात्रि-प्रवास अपनी कोठी पर करने का अनुरोध किया। यद्यपि हम ग्रीन पार्क में रात्रिकालीन प्रवास की बात सोचकर चले थे। पर जिन्दल साहब के प्रबल अनुरोध को टाला नहीं जा सका। हम वहां से विहार कर सवा चार बजे उनकी कोठी पर पहुंच गए। महाप्रज्ञजी प्रातःकाल ही वहां पहुंच चुके थे। अब दोनों को एक साथ पाकर जिन्दल परिवार को बहुत खुशी हुई।

१४ दिसम्बर १९९४। कार्यक्रम सम्पन्न कर हम ग्रीन पार्क आ गए। प्रकाशजी गेलड़ा के यहां रहे। सायं वहां से चले और साधना केन्द्र पहुंच गए। महाप्रज्ञजी वहीं रहे। वे अणुव्रत भवन में एक रात रहकर यहां पहुंचेंगे, ऐसा सोचा गया है।

१८ दिसम्बर १९९४, रविवार। महाप्रज्ञजी साधना केन्द्र पहुंच गए। पर प्रवचन मैंने ही किया।

• ८ फरवरी १९९५। आचार्य महाप्रज्ञ अध्यात्म साधना केन्द्र से लाजपतनगर गए थे। वहां दिल्ली प्रवासी, मोमासर निवासी मोहनलालजी सेठिया के मकान में रात्रिकालीन प्रवास व प्रवचन किया। वे भी आज अणुव्रत भवन आ गए।

"आज मैं अन्त में कैसे बोलूं? आज मुझे अपने द्वारा प्रतिष्ठित युवाचार्य का आचार्य के रूप में स्वागत करना है। कैसा सुन्दर मौका है। वह पिता अपने आपको धन्य मानता है, जिसके सामने उसका पुत्र सब कुछ बन जाता है। मैंने भी जो आशाएं कीं, इन्होंने सब दृष्टियों से सम्पन्नता प्राप्त कर मुझे निश्चिन्त बनाया है।"

• ११ फरवरी १९९५। प्रातः हम सब्जी मंडी स्थित कठोतिया भवन में गए। महाप्रज्ञजी मध्याह्न में कठोतिया भवन से आगे बढ़ गए। उन्होंने रात्रिकालीन प्रवास शालीमार बाग में किया। बीच में कई उपनगरों का स्पर्श किया। हम रात्रि में कठोतिया भवन में रहे। १३ फरवरी, रविवार को हम प्रीतमपुरा पहुंचे। महाप्रज्ञजी भी आ गए।

मूर्तिमान विनय और वात्सल्य

• ३१ दिसम्बर १९९६। पूर्व घोषित कार्यक्रम के अनुसार आज मध्याह्न में लगभग सवा तीन बजे महाप्रज्ञजी को विहार करना था। विहार की सूचना लोगों तक पहुंच चुकी थी। आसपास के गांवों से काफी लोग आ गए। जैन विश्व भारती के परिसर में उत्सुकताभरी हलचल थी। महाप्रज्ञजी तीन बजे से कुछ क्षण पहले ही उस कक्ष में आ गए, जहां मैं बैठा था। उस समय मैं ध्यान में अवस्थित था। ध्यान सम्पन्न हुआ। मैंने देखा, महाप्रज्ञजी बद्धांजलि पट्ट पर आसीन हैं। मैंने उनकी यात्रा के प्रति मंगलकामना करते हुए संस्कृत भाषा में दो श्लोक बनाकर सुनाए–

शुभास्ते सन्तु पन्थानः, प्रशस्ताः सन्तु ते दिशः।
स्वास्थ्यं विकासमाप्नोतु, यशो विस्तारमाप्नुयात्॥१॥

आचार्य महाप्रज्ञ! तुम्हारी यात्रा कल्याणकारी हो, दिशाएं प्रशस्त हों, स्वास्थ्य और अधिक स्वस्थ हो तथा सुयश फैलता रहे।

संघ संघसमोऽस्माकम्, तीर्थं तीर्थचतुष्टयम्।
महाप्रज्ञो महाप्रज्ञः, स्मरामि विस्मरामि किम्॥

हमारा धर्मसंघ वास्तव में जैसा संघ होना चाहिए, वैसा ही है। यह चतुर्विध तीर्थ वास्तव में तीर्थ है। आचार्य महाप्रज्ञ वास्तव में महाप्रज्ञ हैं। मैं किसे याद करूं और किसे भूलूं।

मैं पद्यों का उच्चारण कर रहा था। सामने बैठी महाश्रमणी उसे कलमबद्ध कर रही थी और चतुर्विध धर्मसंघ उत्सुकता के साथ सुन रहा था। उस स्थिति का चित्रण करते हुए मैंने एक श्लोक फिर कहा–

प्रवक्ताऽहम् प्रवक्ताऽयम्, लेखिका कनकप्रभा।
सर्वे उत्कन्धरा लोकाः, द्रष्टुं श्रोतुं समुत्सुकाः॥

कभी मैं बोलता हूं और कभी आचार्य महाप्रज्ञ बोलते हैं। हमारे संवाद को साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा लिपिबद्ध कर रही है। इस दृश्य को देखने और हमारे संवाद को सुनने के लिए सब लोग उद्ग्रीव हो रहे हैं।

मैंने तत्काल श्लोक बनाकर सुनाए तो महाप्रज्ञजी पीछे कैसे रहते। उन्होंने अपनी श्रद्धासिक्त भावना अग्रांकित सद्यः रचित श्लोक में व्यक्त की–

धन्यं तद् दिवसं भावि, यस्मिन् प्राप्स्यामि दर्शनम्।
रक्षणीयं सदा देव! शिष्यत्वं मे स्मृतौ वरम्॥

मेरे लिए वह दिन धन्य होगा, जिस दिन मैं आपके दर्शन करूंगा। देव! मेरे श्रेष्ठ शिष्यत्व को सदा स्मृति में रखें।

ठीक तीन बजकर पन्द्रह मिनट पर भिक्षु विहार से हम साथ-साथ चले। वर्षा-संजय (संवर) गेस्ट हाउस के बरामदे में ऊंचे स्थान पर हम परस्पर गले मिले। सानन्द विदा किया। विनय और वात्सल्य मूर्तिमान

हो उठे। दृश्य दृश्य था। जनता की भीड़ दर्शक थी। महाप्रज्ञजी ने वन्दना की। मैंने मंगलपाठ का उच्चारण किया। महाप्रज्ञजी हमसे विदा लेकर चले। रात्रिकालीन प्रवास लाडनूं के ऊपर वाले वास में निहालचन्दजी-भागचन्द बरड़िया के 'भाग्यश्री' भवन में किया। जुलूस लम्बा और दर्शनीय था। रातभर वहां रहे। प्रातः सुजानगढ़ के लिए प्रस्थान किया। वहां से लौटकर आने वाले सन्तों के साथ उन्होंने पत्र प्रेषित किया।

यात्रा : ध्वनि और प्रतिध्वनि

● १२ जनवरी १९९७। महाप्रज्ञजी ने अपना सुजानगढ़ का प्रवास सानन्द सम्पन्न कर लिया। बहिर्विहारी साधु-साध्वियों का आगमन जारी है।

१६ जनवरी १९९७। महाप्रज्ञजी छापर पहुंच गए हैं। अब वहां से चाड़वास जाना है और मर्यादा महोत्सव आयोजित करना है। हम यहीं जैन विश्व भारती में हैं। अभी यहीं रहने का विचार है।

२१ जनवरी १९९७, मंगलवार। छापर में महाप्रज्ञजी सानंद प्रवास कर रहे हैं। आज वहां वर्द्धमान महोत्सव मना रहे हैं। अच्छा क्रम चल रहा है। सुन-सुनकर सबको प्रसन्नता होती है। उनका आचार्य रूप में अलग रहने का पहला ही अवसर है। पूरे व्यस्त रहते हैं। स्वस्थ भी हैं। आनंद, आनंद, आनंद।

● २३ जनवरी १९९७। महाप्रज्ञजी आज मध्याह्न में मर्यादा महोत्सव के लिए चाड़वास में प्रवेश कर रहे हैं। बहुत लोग आ-जा रहे हैं। लगता है कि बड़ा भव्य प्रवेश होगा। छोटा गांव है। उत्साह बहुत है। उत्साह में कहीं सीमा का अतिक्रमण न हो जाए, इसलिए पहले से ही सतर्क कर दिया गया है।

● ३१ जनवरी १९९७। इस वर्ष १३३वां मर्यादा महोत्सव चाड़वास में आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में आयोजित होने जा रहा है। चाड़वासवासियों के लिए महापर्व प्रेरणास्रोत बना। उन्होंने १३३ की संख्या को प्रतीक मानकर आध्यात्मिक अनुष्ठान करने का लक्ष्य बनाया। लक्ष्य के अनुसार १३३ व्यक्तियों ने एक दिन उपवास किया। १३३ व्यक्ति जप के विशेष अनुष्ठान में सम्मिलित हुए। १३३ व्यक्ति प्रारंभिक तत्त्वज्ञान की परीक्षा में संभागी बने। इस प्रकार एक नया उपक्रम चलाया गया। सामूहिक उपवास के दिन उपवास करनेवाले १३३ व्यक्ति दर्शन करने के लिए जैन विश्व भारती आए। मैंने उनको उपासना के लिए कुछ समय दिया। पर इन दिनों प्रायः विश्राम में रहने के कारण अधिक समय नहीं दे पाया। महाश्रमणी कनकप्रभा ने कहा–'चाड़वासवासियों ने एक अच्छा उपक्रम शुरू किया है। इसी शृंखला को आगे बढ़ाने के लिए १३३वें मर्यादा महोत्सव के उपलक्ष्य में चाड़वास के १३३ व्यक्ति श्रावक-संबोध कंठस्थ करने का संकल्प स्वीकार करें।' अनेक भाई-बहिनों ने उत्साह के साथ श्रावक-संबोध सीखने का संकल्प व्यक्त किया।

● ७ फरवरी १९९७, शुक्रवार। विश्रुतविभा आदि चार साध्वियां चाड़वास से यहां आईं। वहां से कुछ कागजात लेकर आईं, उन्हें देखा। आचार्य महाप्रज्ञ के पदाभिषेक दिवस के उपलक्ष्य में सन्देश दिया। वह दस्तावेज बन गया। चाड़वास से आने वाली साध्वियां सन्देश लेकर गईं।

● ११ फरवरी, मंगलवार। बसंत पंचमी से मर्यादा महोत्सव का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। चाड़वास से प्राप्त सूचना के अनुसार महाप्रज्ञजी ने १३३वें मर्यादा महोत्सव की घोषणा करते हुए कहा–'पूज्य गुरुदेव का साक्ष्य है। उनका परम अनग्रह मुझे प्राप्त है। धर्मचक्र मेरे आगे-आगे चल रहा है। यद्यपि आज तक जितने मर्यादा महोत्सव मनाए, पूज्य गुरुदेव के चरणों के नैकट्य में मनाए। आज क्षेत्रीय दूरी अवश्य है, किन्तु आत्मीय नैकट्य है। इस निकटता के साथ आज मर्यादा महोत्सव मनाने की उद्घोषणा कर रहा हूं।'

"
छापर में महाप्रज्ञजी सानंद प्रवास कर रहे हैं। आज वहां वर्द्धमान महोत्सव मना रहे हैं। अच्छा क्रम चल रहा है। सुन-सुनकर सबको प्रसन्नता होती है। उनका आचार्य रूप में अलग रहने का पहला ही अवसर है। पूरे व्यस्त रहते हैं। स्वस्थ भी हैं। आनंद, आनंद, आनंद।
"

• १२ फरवरी, बुधवार, माघ शुक्ला षष्ठी। आज चाड़वास में आचार्य महाप्रज्ञ के पदाभिषेक समारोह का कार्यक्रम चला। यहां से प्रेषित सन्देश उचित समय पर पढ़ा गया। वह प्रभावी बन गया।

• १३ फरवरी १९९७। ज्यों-ज्यों मर्यादा महोत्सव का समय आ रहा था, चतुर्विध धर्मसंघ की उत्सुकता और व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। भावनात्मक स्तर पर मैंने भी उसको अनुभव किया। फलतः मैंने साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं के नाम विशेष सन्देश देने का निर्णय किया। इस निर्णय की क्रियान्विति से पहले की तैयारी में भागीदार बनी एकमात्र साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा। सारा कार्य इतने गोपनीय तरीके से हुआ कि चौबीस घंटों में अठारह-बीस घंटे मेरे निकट रहने वाले संतों को भी इसकी भनक तक नहीं पड़ी। मर्यादा महोत्सव के दिन नौ बजे मैंने चार साध्वियों (साध्वी कल्पलता, साध्वी शुभ्रयशा, साध्वी स्वस्तिकाश्री और साध्वी शशिप्रभा) को गोपालपुरा के रास्ते से सन्देश लेकर चाड़वास जाने का निर्देश दिया। साध्वियों ने लाडनूं से विहार किया, तब तक कुछ साधु-साध्वियों और कुछ श्रावक श्रावकों के अतिरिक्त यह बात किसी को ज्ञात नहीं थी। मैं स्वयं यही चाहता था कि महोत्सव के कार्यक्रम के मध्य आकस्मिक रूप में पहुंचकर सन्देश सुनाया जाए।

चाड़वास में आचार्य महाप्रज्ञ की सन्निधि में सुनियोजित रूप में मर्यादा महोत्सव का कार्यक्रम चल रहा था। वहां किसी को कल्पना भी नहीं थी कि लाडनूं से कोई सन्देश आ सकता है। लाडनूं से चलकर बहुमध्य महोत्सव में कल्पलता आदि साध्वियां एक बजकर ग्यारह मिनट पर मर्यादा समवसरण में पहुंची और वन्दे आचार्यवरम् की ध्वनि हुई तो सारी सभा स्तब्ध रह गई। हजारों आंखों ने ध्वनि की दिशा में निहारा। चार साध्वियां दिखाई दीं। स्तब्धता विस्मय में परिणत हुई। साध्वियों ने वन्दना-विधि सम्पन्न कर हमारे द्वारा प्रदत्त दोनों सन्देश तथा चोलपट्टा, पछेवड़ी, कलात्मक प्याला आदि वस्तुएं महाप्रज्ञजी को समर्पित कीं। अयाचित सन्देश पाकर साधु-साध्वियों के चेहरों पर नैसर्गिक पुलकन उतर आई।

मुझे जानकारी मिली कि दोनों सन्देश सुनते समय सभा चित्रलिखित-सी हो गई। प्रायः सब लोगों ने पूरी एकाग्रता से सन्देश सुने और अकल्पित परितोष का अनुभव किया। यहां से जाने वाली साध्वियां दूसरे दिन चाड़वास से प्रस्थान कर लाडनूं पहुंच गईं। उन्होंने वहां के संवाद सुनाए। साध्वियों का उत्साह उल्लेखनीय रहा। मैंने चारों साध्वियों को इकतालीस-इकतालीस कल्याणक से पुरस्कृत किया।

महोत्सव के मुख्य कार्यक्रम के समय कार्यकर्ताओं ने ऐसी व्यवस्था की थी, जिससे जैन विश्व भारती में दिया गया वक्तव्य चाड़वास में सुनाई दे सके। इस व्यवस्था के पीछे संभवतः एक कारण यह रहा हो कि वहां मेरी अनुपस्थिति को कुछ क्षणों के लिए उपस्थिति जैसा अहसास कराया जाए, पर यंत्रों की खराबी के कारण वैसा नहीं हो पाया। कुछ भी हो, मर्यादा महोत्सव सफल रहा। विजय-दुन्दुभि बज गई। जनता की समझ में आने लगा कि हम चाड़वास क्यों नहीं गए।

२० फरवरी १९९७। बीदासर में हेम दीक्षा द्विशताब्दी के कार्यक्रम में अच्छी धूमधाम से दीक्षा दी गई। निर्विघ्न और निर्विरोध दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हुआ। बाद में जोधपुर हाईकोर्ट का फैसला भी आ गया, बहुत अनुकूल फैसला आया। उस फैसले के अनुसार जैन दीक्षा में उम्र की कोई बाधा नहीं है।

संदेश अमूल्य निधि बन गए

• २७ फरवरी १९९७, लाडनूं। आज लम्बे समय के बाद हमारे लिए नया दिवस आया है। अब हम यहां से विहार कर रहे हैं।

इस बार यहां लाडनूं में हम नए सन्दर्भ में रहे। महाप्रज्ञजी का नए तरीके से रहना हुआ। शासन की बड़ी प्रभावना रही।

मेरा यह कदम अब सबकी समझ में आ गया। अच्छा हुआ, अच्छे के लिए हुआ।

● ५ अप्रैल १९९७, शनिवार। आज हम छापर से चलकर चाड़वास पहुंचे। जहां अभी-अभी मर्यादा महोत्सव हुआ था। बड़ा रमणीय स्थल बन गया है। गेस्ट हाउस के ऊपर भी मकान बन गया है। हमने ऊपर चढ़कर देखा। बहुत भव्य रूप लगा। स्वागत समारोह में श्रावक-श्राविकाओं के मीठे-मीठे उपालम्भ सुने। क्योंकि महोत्सव पर हम यहां नहीं आए थे। महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ, इसकी लोगों को प्रसन्नता भी है। चाड़वास में स्थिरवासी मुनि जंवरीमलजी बोले। महोत्सव के अवसर पर हमने जो सन्देश दिए थे, उनको प्रिंट करवाकर अच्छी फ्रेमिंग कर दी गई। फ्रेम किए गए दोनों सन्देश भेंट किए गए।

मैंने अपने प्रवचन में कहा–'चाड़वास अब सचमुच चारुवास बन गया है। यहां मर्यादा महोत्सव जैसा व्यापक कार्यक्रम होने से इसकी गणना शहरों की पंक्ति में होने लगी है। यहां के लोगों ने महोत्सव को सफल बनाने में अपनी सूझबूझ और कर्तृत्व का भरपूर उपयोग किया। पहले यह विश्वास नहीं था कि चाड़वास के लोग इस तरह की सुव्यवस्थाएं इतने कौशल से कर पाएंगे। अब इनका मुकाबला भारी पड़ेगा, ऐसा प्रतीत होता है। कुल मिलाकर चाड़वास का मर्यादा महोत्सव सफल महोत्सव रहा।'

'जिस समय मर्यादा महोत्सव की घोषणा हुई थी, यहां के लोगों को कल्पना नहीं थी कि मैं नहीं आऊंगा। हमने न आने का निर्णय कर लिया। चाड़वासवासियों को यह निर्णय कैसा-कैसा ही लगा। हमारे साधु-साध्वियों को भी अजीब-सा लगा। पर हमारा निर्णय सुचिन्तित था। हमने इसे रहस्य ही बनाए रखा। साधु-साध्वियों ने भी इस संदर्भ में जानने की चेष्टा की। पर मैंने कहा कि अभी इसे रहस्य ही रहने दो। भाइयो! मैं यहां आ जाता तो ये कीमती सन्देश आपको कैसे मिलते। ये सन्देश आपके लिए अमूल्य निधि बन गए हैं। आपने भी इन्हें सुन्दर ढंग से प्रकाशित कर ऐतिहासिकता दी है।'

'मैंने पद का विसर्जन किया, वह नाम मात्र का विसर्जन नहीं किया। विसर्जन सही माने में विसर्जन बने, इसका यह प्रयत्न था। तेरापंथ धर्मसंघ महान् धर्मसंघ है। लाखों-लाखों श्रावक-श्राविकाएं और सैकड़ों-सैकड़ों साधु-साध्वियां हैं। इन्हें नेतृत्व देना बहुत बड़ी बात है। हमारे पट्टधर शिष्य महाप्रज्ञजी ने इस माने में अच्छा कार्य किया, यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। चाड़वासवासी चाहते थे कि मैं यहां आऊं, उनकी भावना आज साकार हो गई है।'

अंतरात्मा का मिलन

● २८ अप्रैल १९९७। हमने जैन विश्व भारती से विहार कर रात्रि प्रवास ऋषभद्वार में किया। वहां रात को वर्षा आई। आज २८ अप्रैल को उदासर के निकट आए हैं। यहीं वर्षा हो रही है। कैसा योग है। अब महाप्रज्ञजी सामने दीख रहे हैं।

● १ मई १९९७। कल प्रातः दो ध्रुवों का संगम हो रहा है। चार मास की दूरी सिमट रही है। मिलन का क्षण बिल्कुल निकट आ रहा है। स्थान निर्णीत हो गया है। जनता उमड़ रही है। क्या देखेंगे? क्या नया होगा? पता नहीं जन-जन के मन में उत्सुकता क्यों भरी है? ऐसा लगता है कि अब वह क्षण आ ही गया है।

"कल प्रातः दो ध्रुवों का संगम हो रहा है। चार मास की दूरी सिमट रही है। मिलन का क्षण बिल्कुल निकट आ रहा है। स्थान निर्णीत हो गया है। जनता उमड़ रही है। क्या देखेंगे? क्या नया होगा? पता नहीं जन-जन के मन में उत्सुकता क्यों भरी है? ऐसा लगता है कि अब वह क्षण आ ही गया है।"

• २ मई १९९७, शुक्रवार। प्रातः लगभग साढ़े सात बजे का समय। वृद्धजन भ्रमणपथ के निकट बना एक मंच। मंच के आसपास का मैदान जनसंकुल हो रहा था। इधर से साधु-साध्वियों के साथ हम मंच पर पहुंचे, उधर से महाप्रज्ञजी आए। निर्धारित समय पर हमारा मिलन हुआ। जयनारों से आकाश गूंज उठा। साध्वियों के वर्धापना गीत रंग बरसै रे म्हारै रंग बरसै–के बोलों ने वातावरण को सजीव कर दिया। महाप्रज्ञजी ने नीचे बैठ वन्दना की। मैंने दोनों हाथों से थामते हुए उनको सीने से लगा लिया। विनय और वात्सल्य का दृश्य मूर्तिमान हो उठा। अद्‌भुत या अभूतपूर्व दृश्य था वह। जनता की अपार भीड़। दर्शक उस दृश्य को देखकर भावविभोर हो उठे। साधु-साध्वियों के चेहरे आनन्द से खिल उठे।

महाप्रज्ञजी ने नवदीक्षित साधु-साध्वियों (मुनि देवार्य, मुनि कीर्ति, मुनि विश्रुत, साध्वी उदितयशा, साध्वी मलयश्री और साध्वी राजश्री) को समर्पित किया। जनता को सम्बोधित करते हुए मैंने कहा–गुरु और शिष्य का मिलन अन्तरात्मा का मिलन है। आज का यह मिलन गौतम और केशीकुमार श्रमण के मिलन की स्मृति को ताजा बना रहा है। विनय और वात्सल्य से भीगे ये क्षण जन-जन को प्रेरणा देने वाले हैं, पक्ष एवं प्रतिपक्ष की भावना से जकड़े राष्ट्र को युगबोध देने वाले हैं और अनेक समस्याओं के समाधायक हैं। मैं आशा करता हूं कि इस मिलन से राष्ट्र एक नई सीख लेगा।'

महाप्रज्ञजी ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा–'मैंने जब लाडनूं से विहार किया तब से गुरुदेव का परोक्ष सान्निध्य मिलता रहा है। गुरुदेव! आपने मुझे प्रस्थान के समय शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा–'धर्मचक्र सदा तुम्हारे आगे-आगे चलता रहेगा। धर्मचक्र और आशीर्वाद का अहसास मुझे प्रतिदिन होता रहा। हमने इस यात्रा में कुछ भी नहीं किया, बस सब कुछ होता रहा। यह सब कैसे हुआ, मैं नहीं जानता। प्रत्यक्ष सान्निध्य प्राप्त कर मन कहना चहता है–

शब्द से सान्निध्य तो मिलता रहा पर आज शब्दातीत है।
आज मधु मधु दूध में नवनीत का संगीत है॥

ऐसे महान् गुरु का साक्षात्कार होना दुर्लभ है। मैं चाहता हूं कि गुरु का गौरव और प्रसाद मुझे सदा मिलता रहे और मेरा शिष्यत्व बढ़ता रहे।'

मिलन का संक्षिप्त कार्यक्रम सम्पन्न कर ठीक आठ बजे हमने वहां से गंगाशहर में प्रवेश करने के उद्देश्य से प्रस्थान किया। लगभग सात किमी. का रास्ता, चारों ओर जनता ही जनता। हमारा साधन चल रहा था। महाप्रज्ञजी कहीं पदयात्री और कहीं साधनयात्री बनकर चल रहे थे। रास्ते में स्थान-स्थान पर छतों, दुकानों तथा सड़क पर खड़े दर्शकों की भारी भीड़ थी। लगभग आठ बजे प्रारंभ हुआ जुलूस करीब ग्यारह बजे तेरापंथ भवन पहुंचा। भवन के परिसर में निर्मित प्रज्ञा समवसरण में जुलूस सभा के रूप में परिणत हो गया। विशाल पंडाल खचाखच भर गया। हजारों लोग पंडाल से बाहर खड़े थे। स्थानाभाव के कारण कुछ लोग वहां से लौट भी गए।

महाप्रज्ञ की महाकीर्ति

महाप्रज्ञजी ने अपने वक्तव्य में कहा–'पूज्य गुरुदेव ने मुझे चार महीने तक अलग क्यों रखा? यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। इन चार महीनों की अवधि में पत्रों के आदान-प्रदान से मिलना हुआ पर उसमें साक्षात्कार का सुख कैसे हो सकता है। एक व्यक्ति, जो सदा साथ रहता है, एक अन्तराल के बाद जब गुरु

के दर्शन होते हैं, उस समय उसे कितना सुख होता है, यह वही अनुभव कर सकता है। इस दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि आज मुझे असीम आनन्द की अनुभूति हो रही है।'

मैंने अपने प्रवचन का प्रारम्भ करते हुए कहा–'आज महाप्रज्ञजी हमारे मेहमान बने हैं। चार महीनों से मैं महाप्रज्ञजी की महाकीर्ति सुन रहा था। जहां-जहां इनका प्रवास हुआ, वहां होनेवाले कार्यक्रमों की ख्याति इतने दिन दूर बैठा लोगों द्वारा सुनता रहा। महाप्रज्ञजी में क्षमता है, चिन्तन की मौलिकता है। इस बार इन्हें कार्य करने का खुलकर मौका मिला। इन्होंने अपनी क्षमता का भरपूर उपयोग जनकल्याण के लिए किया, इसकी मुझे प्रसन्नता है। आज का उल्लासभरा वातावरण और जनता का जमाव जिसने भी देखा, उसकी आंखों में आश्चर्य उतर आया। हम प्रभु के सन्देशवाहक हैं, इसलिए जिस पथ से निकलते हैं, जिन लोगों के मध्य बैठते हैं, सब हमारे साथ हो जाते हैं।'

दुर्लभ योग

मैं आचार्य तुलसी के साथ सड़सठ वर्ष तक रहा। श्रद्धा, विनय और समर्पण का जीवन जीया। आचार्यवर का अमित विश्वास और अपरिमेय वात्सल्य पाया। मैंने आचार्यवर के साथ चौसठ वर्षावास किए। मेरी सदा यह अभिलाषा रही–मैं आचार्यवर के साथ रहूं। आचार्यवर की भी सदा यही भावना रही। फिर भी कभी आवश्यकता अथवा किसी कार्य की दृष्टि से पृथक् विहार के अवसर आ जाते। पृथक् विहार के क्षणों में भी आत्मिक नैकट्य का अहसास निरंतर बना रहता। अनेक बार अकेलेपन और अपूर्णता का अनुभव होता। जीवन के उत्तरार्द्ध में, युवाचार्य मनोनयन के बाद यह अनुभूति अनेक बार अभिव्यक्त भी हुई।

तुलसी महाप्रज्ञ का युग बार-बार नहीं आएगा, गुरुदेव ने इस वाक्य को अनेक बार दोहराया और डायरी में उसकी विस्तृत व्याख्या भी की–

● अब हमारे लिए पैदल चलना कठिन हो गया। साधन का प्रयोग करना ही पड़ेगा। हम दोनों ही–मैं और युवाचार्यजी अकेले रहना नहीं चाहते। पता नहीं क्या हो गया, एक के बिना दूसरा अपूर्णता का अनुभव करता है। दोनों साथ रहने से पूर्णता लगती है। यह वास्तविकता है।

● १० अक्टूबर १९८३। मेरा और महाप्रज्ञ का इस रूप में योग एक नियति है और वह बहुत शुभ है, ऐसा प्रतीत हो रहा है। उनके बिना मैं और मेरे बिना वे एकाकीपन या अधूरापन अनुभव करते हैं। एक दुर्लभ योग बना है। यह कब तक बना रहता है, देखना है। जब तक शासन-सेवा का योग है, तब तक बना रहेगा। फिर चिन्ता भी क्या है, होने का काम होता रहेगा। हम दोनों का योग है, यह आत्मतोष का विषय है।

युवाचार्य महाप्रज्ञ के पास दार्शनिक चिन्तन और बुद्धि वैभव अपूर्व है। इनकी तुलना में बहुत कम व्यक्ति आ पाएंगे। इनके पास प्रज्ञा है, प्रतिभा है और नव-नव उन्मेष लानेवाली मेधा है। समझाने का तरीका ऊंचा है। वैज्ञानिक दृष्टि है। वक्तव्य है। साधना है। एक व्यक्ति में अनेक उपलब्धियां हैं। विरल व्यक्तित्व है। ऐसे युवाचार्य को पाकर मैं अपने आपको गौरवशाली मानता हूं। इनके कारण तेरापथ धर्म संघ की प्रभावना बहुत वृद्धिंगत हुई है। इन्होंने उच्च कोटि का साहित्य-सृजन किया है। प्रसिद्ध कवि दिनकर आदि ने इनको विवेकानन्द का स्थान ठीक ही दिया है।

> "
> गुरु और शिष्य का मिलन अन्तरात्मा का मिलन है। आज का यह मिलन गौतम और केशीकुमार श्रमण के मिलन की स्मृति को ताजा बना रहा है। विनय और वात्सल्य से भीगे ये क्षण जन-जन को प्रेरणा देने वाले हैं, पक्ष एवं प्रतिपक्ष की भावना से जकड़े राष्ट्र को युगबोध देने वाले हैं और अनेक समस्याओं के समाधायक हैं। मैं आशा करता हूं कि इस मिलन से राष्ट्र एक नई सीख लेगा।
> "

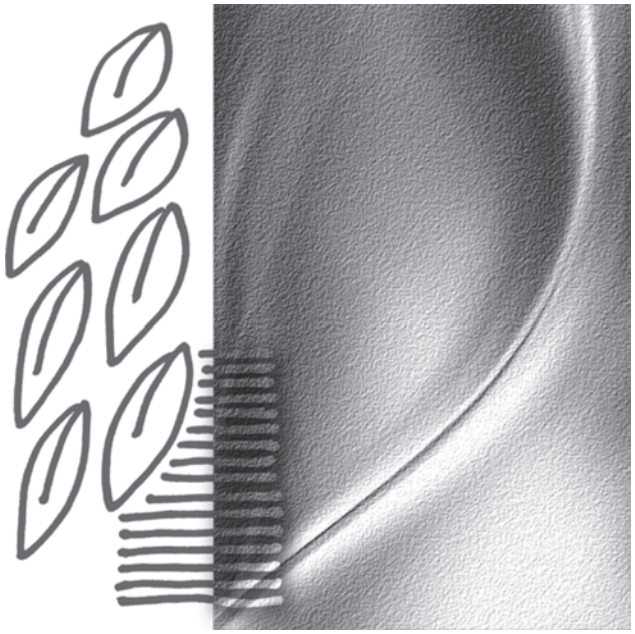

१३

स्वास्थ्य

मेरे स्वास्थ्य में उतार-चढ़ाव आता रहता था। मैं स्वास्थ्य के प्रति जागरूक था। मेरा आहार-संयम प्रशस्त था। सात्त्विक और सुपाच्य भोजन करता था। वही खाता, जो साधना और स्वास्थ्य–दोनों में उपयोगी होता। भोजन-विवेक से मेरा स्वास्थ्य प्रायः स्वस्थ रहा। मेरा शरीर कभी गंभीर और जटिल बीमारी से आक्रांत नहीं बना। नब्बेवें वर्ष में भी मेरी इन्द्रियां कार्य क्षम और प्राण-शक्ति प्रवर बनी हुई है।

मेरे सामने लक्ष्य रहा–साहित्य, साधना और आगम-सम्पादन। पूज्य गुरुदेव चाहते थे–मेरी शक्ति इन कामों में लगी रहे। इसलिए जब कभी मैं अस्वस्थ बनता, गुरुदेव चिन्तित हो जाते। यह कहना प्रासंगिक होगा कि मेरे स्वास्थ्य की गुरुदेव जितनी चिन्ता करते थे, शायद मैं उतनी नहीं करता था।

मैं कब कब अस्वस्थ हुआ, यह मेरी स्मृतियों में संचित नहीं रहा किन्तु वह पूज्य गुरुदेव की दैनंदिनी में अंकित हो गया। उस अंकन में गुरु की गुरुता और अपरिमेय वात्सल्य का साक्षात् होता है।

● २५ अगस्त १९६२। मुनि नथमलजी का ब्लडप्रेशर कम हो गया। उस कारण कुछ कमजोरी भी आ गई। थोड़ी चिन्ता-सी हो गई। गुरुकृपया सर्वं सुन्दरं भविष्यति।

विरल प्रसंग

जनवरी १९६३। सेवाभावीजी अपने शरीर की संभाल के लिए उदयपुर रहे थे। सेवाभावीजी की अनुपस्थिति में मेरे आहार और औषधि आदि की व्यवस्था मुनि नथमलजी संभाल रहे थे। सेवाभावीजी ने आते ही अपना काम संभालकर उनको दायित्व से मुक्त कर दिया।

• २८ मार्च १९७०। हिंगनघाट। वहां मुनि नथमलजी कुछ अस्वस्थ हो गए, इसलिए दो दिन रुके। दूसरे दिन अपराह्न में छह किमी. का विहार किया।

• ६ दिसम्बर १९८०। युवाचार्य महाप्रज्ञ को ज्वर हो गया। उनके सब काम स्थगित हो गए। सुजानगढ़ में एक सप्ताह रहने का कार्यक्रम था। ज्वर के कारण दो दिन के लिए विहार भी रोकना पड़ा। सुजानगढ़ में सात दिन के नौ दिन हो गए। अच्छा हुआ।

• ११ मार्च १९८३ को १०२ टैंपरेचर था। मेरा मनोबल ठीक था, पर पैदल चलने के लिए न डॉक्टर की सहमति थी और न सन्तों की। आखिर निरवद्य साधन (हस्तचालित वाहन) से दो दिन विहार किया। तीसरे दिन युवाचार्य महाप्रज्ञ को ज्वर हो गया। उनको साधन से चलाया और हम पैदल चले।

पर्पटी का प्रयोग

• ३ मई १९८३। भारत के ख्यातिलब्ध अनुभवी वैद्य गोविन्दप्रसादजी ने युवाचार्य महाप्रज्ञ के स्वास्थ्य की जांच की। उन्होंने आमवात का दोष बताया। अन्न और पानी बन्द करके चिकित्सा करने की बात कही। पर्पटी देने का सुझाव दिया। वैद्यजी की बात सुनकर मैंने कहा–'यह अहमदाबाद है। यहां काम करना होगा, बोलना होगा और चलना भी होगा। पानी बिना काम कैसे चलेगा?' वैद्यजी बोले–चिकित्सा की ऐसी व्यवस्था की जाएगी कि पानी न पीने पर भी कोई कठिनाई नहीं होगी। वैद्यजी के कथन पर आश्चर्य हुआ। किन्तु उनके प्रति इतना अधिक विश्वास था कि चिकित्सा प्रारम्भ कर दी गई। लगभग पैंतालीस दिनों तक पानी बिल्कुल बन्द रहा। पानी के स्थान पर डाभ का पानी, मौसम्मी का रस और आम का रस पथ्य के रूप में काम आता रहा। पर्पटी की दृष्टि से दही का मट्ठा लेना जरूरी था। मट्ठे की मात्रा बढ़ाते-बढ़ाते पांच किलो तक पहुंचाने का लक्ष्य था। पर चार किलो तक ही बढ़ पाई। कुछ वजन भी बढ़ा। श्रम के अनुपात से वह चिकित्सा ठीक ही रही, ऐसा अनुभव हुआ।

• ३० अक्टूबर १९८५। स्वास्थ्य की स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है। ऐलोपैथिक दवा बिल्कुल बन्द है। आयुर्वेदिक औषधि चल रही है। उसमें भी केवल जवाहरमोहरा और एक रस दिया जा रहा है। मुझे अनुभव हो रहा है कि स्वास्थ्य पहले से काफी ठीक है। युवाचार्य महाप्रज्ञ को भी ज्वर हो गया था। अब ठीक है। सब काम व्यवस्थित रूप में चल रहे हैं।

• २० जुलाई १९८६। चातुर्मासिक चतुर्दशी का उपवास किया। मौसम कुछ ठंडा हुआ है। काफी साधु-साध्वियों के उपवास है। युवाचार्य के उपवास कठिन होता है।

• १० जुलाई १९८७। चातुर्मासिक चतुर्दशी का उपवास किया। साध्वियों के अधिसंख्य उपवास हैं। साधुओं में कुछ कम हैं। महाप्रज्ञजी से उपवास नहीं होता। उनकी शारीरिक स्थिति ऐसी ही है।

• १२ फरवरी १९८८। आजकल मैं और युवाचार्यजी दोनों साधन से चल रहे हैं। युवाचार्यजी के पैर भी दर्द करने लग गए। तीन दिन से लगातार हम दोनों एक ही साधन का उपयोग कर रहे हैं।

"मैं कब कब अस्वस्थ हुआ, यह मेरी स्मृतियों में संचित नहीं रहा किन्तु वह पूज्य गुरुदेव की दैनंदिनी में अंकित हो गया। उस अंकन में गुरु की गुरुता और अपरिमेय वात्सल्य का साक्षात् होता है।"

पहला दिन

६ अक्टूबर १९८९ को युवाचार्य महाप्रज्ञ को ज्वर था। योगक्षेम वर्ष के आठ महीनों में पहला अवसर था, जब उन्होंने प्रातःकालीन प्रवचन नहीं किया। कफ बढ़ जाने से बुखार हुआ है। विश्राम करना आवश्यक है। इसलिए उनको सुधर्मा सभा में आने की मनाही कर दी।

इनकी नाड़ी तो बालक जैसी है

९ अक्टूबर १९९०, मंगलवार। प्राकृतिक चिकित्सक श्री रतनचंद पहाड़ी जैनविश्वभारती देखकर पाली आए। वे देश-विदेश में खूब घूमे हैं, पर उन्होंने जैन विश्व भारती जैसा परिसर नहीं देखा। वे उससे काफी प्रभावित हैं। उन्होंने हमें चिकित्सा कराने का परामर्श दिया। मैंने कहा–'हम तो स्वस्थ हैं। केवल श्वास भारी होता है और कोई बीमारी नहीं है।' युवाचार्य महाप्रज्ञ की नाड़ी देखकर रतनजी बोले–'मैंने बीस वर्ष पहले इनको देखा था। मेरा विचार था कि अब तो वृद्ध हो गए होंगे, किन्तु देखा तो लगा कि ये सही मायने में युवाचार्य हैं। इनकी नाड़ी तो बालक जैसी है।' यह बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

उपवास

• २५ जून १९९१, बृहस्पतिवार। चातुर्मासिक चतुर्दशी का दिन। आज उपवास है। लगभग साधु-साध्वियों के उपवास हैं। महाप्रज्ञजी को उपवास नहीं कराया। उनकी अपनी साधना चलती है।

• १९ अगस्त १९९१। मेरा स्वास्थ्य गड़बड़ हो गया। काम में रुकावट आ गई। स्वास्थ्य-लाभ के बाद पुनः प्रयत्न करना ही होगा। महाप्रज्ञजी भी ज्वरग्रस्त हो गए। सब कुछ ठीक होगा, होना ही है। गुरुदेवः शरणमस्तु।

• २४ सितम्बर १९९१। अभी यहां प्रेक्षाध्यान का शिविर लगा है। शिविर में अस्सी से अधिक बहन-भाई भाग ले रहे हैं। मध्याह्न में प्रवचन महाश्रमण मुदित चला रहा है। युवाचार्यजी को बीमारी कुछ भी नहीं है, फिर भी कार्य स्थगित हो रहा है। शरीर में कृशता तो है ही, दुर्बलता भी है। थोड़े में ही अवरोध आ जाता है। मैं बार-बार उन्हें सक्रिय रखने का प्रयत्न करता हूं। इसीलिए स्वयं खटता हूं, फिर भी अवरोध आ ही जाता है।

• १६ दिसम्बर १९९१। शनिवार। महाप्रज्ञजी को ज्वर हो गया। महाश्रमणी को भी ज्वर है। औदारिक शरीर है। कब क्या हो जाए, कहना कठिन है।

• १७ अगस्त १९९३। आज महाप्रज्ञ, महाश्रमणी और महाश्रमण तीनों ही अस्वस्थ हो गए हैं। कैसा योग मिला है। जल्दी ही ठीक हो जाएंगे, ऐसी आशा है। मैं जैसा हूं, वैसा ही हूं। स्वस्थ या अस्वस्थ, कुछ भी हूं, कोई विशेष बात नहीं है।

• १ अक्टूबर १९९३। इन दिनों महाश्रमणी कनकप्रभा, महाश्रमण मुदितजी और युवाचार्य महाप्रज्ञजी, सबका ही स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। अब ठीक है, आगे भी ठीक रहेगा, ऐसा विश्वास है।

चक्षु परिष्कार

• १९ दिसम्बर १९९४, सोमवार। महाप्रज्ञजी की आंख में मोतिया का प्रवेश हो गया। डॉक्टर जैन (एम. के. सुराणा) ने ऑपरेशन कराने का परामर्श दिया है। आजकल कच्चे मोतिया का भी ऑपरेशन होता है।

• २१ दिसम्बर १९९४, बुधवार। महाप्रज्ञजी की एक आंख का ऑपरेशन हो गया। थोड़ा-सा मोतिया आया था। डॉ. एम. के. सुराणा बड़ा कुशल है। कच्चे मोतिया का ऑपरेशन कर दिया। पट्टी भी खोल दी गई।

• २२ दिसम्बर १९९४। महाप्रज्ञजी चक्षु-परिष्कार करा कर अध्यात्म साधना केन्द्र पहुंच गए। मूल पर्याय पाने में अभी दो-तीन दिन का समय लगेगा।

• २ जनवरी १९९५, सोमवार। आज महाप्रज्ञजी ने अपनी दूसरी आंख का ऑपरेशन डॉ. एम. के. सुराणा से करवाया। नई विधि से ऑपरेशन होता है। उसी दिन छुट्टी दे देते हैं। मशीनी काम है। अच्छा है। दिल्ली में दोनों आंखें बिल्कुल ठीक हो जाएंगी। अच्छा रहेगा। कुछ दिन पढ़ना बन्द रहेगा। कोई बात नहीं। डॉ. महेन्द्रकुमार सुराणा नेत्र विशेषज्ञ हैं, जैन हैं और सहज श्रद्धालु हैं। दूसरी आंख का ऑपरेशन होने के बाद उसी दिन रात्रि में डॉक्टरों की एक गोष्ठी रखी गई। उसमें दिल्ली के प्रतिष्ठित बीसों डॉक्टर उपस्थित थे। गोष्ठी में महाप्रज्ञजी ने तनावमुक्ति और मन को एकाग्र बनाने के लिए प्रेक्षाध्यान के सिद्धान्तों की विस्तार से चर्चा की। डॉक्टर बहुत प्रभावित हुए। मेरे पास जब यह सूचना पहुंची तो कुछ अटपटा-सा लगा। ऑपरेशन के दिन ही इतनी देर बोलने की बात समझ में नहीं आई। पर गोष्ठी डॉक्टर की उपस्थिति में ही थी, इसलिए चिन्ता छोड़ दी।

३ जनवरी १९९५, मंगलवार का दिन है। महाप्रज्ञजी डॉ. सुराणा की क्लीनिक में ऑपरेशन करवा कर अध्यात्म साधना केन्द्र आ गए। कल उन्होंने काफी श्रम किया। आंख ठीक है। डॉक्टर सुराणा ने आज फिर आंखों की जांच की और सब कुछ ठीक बताया।

चिन्तित बना दिया एक बार

• २३ मार्च १९९५। प्रातःकाल हम चौदह किमी. कर विहार कर ढाढर पहुंचे। कल चूरू पहुंचना है। वहां कार्यक्रमों को लेकर व्यस्तता रहेगी, इस स्थिति को ध्यान में रखकर आज केशलोच कराने का निर्णय लिया। इधर मेरा लोच हो रहा था, उधर महाप्रज्ञजी का भी लोच होने लगा। अचानक महाप्रज्ञजी अस्वस्थ हो गए। शायद वायु का प्रकोप हुआ हो। कुछ क्षणों के लिए वे बेहोशी की स्थिति में चले गए। मुझे सूचना मिली। लोच हो रहा था, उसे बीच में बन्द कर मैं अविलम्ब वहां पहुंचा। एक बार तो महाप्रज्ञजी ने मुझे चिन्तित बना दिया। फिर जल्दी ही ठीक हो गए। सायंकाल ढाढर में पांच किमी. चलकर रेलवे क्वार्टर में आ गए। अच्छा रहा।

• ३१ अगस्त १९९५। आज प्रातः खमतखामणा का प्रयोग बहुत अच्छा रहा। महाप्रज्ञजी कुछ अस्वस्थ रहे। बाकी सब ठीक-ठाक रहा। अस्वस्थता के कारण महाप्रज्ञजी खमतखामणा के कार्यक्रम में नहीं आ सके। इसलिए प्रासंगिक प्रवचन मैंने किया।

• ३ दिसम्बर १९९६, मंगलवार। महाप्रज्ञजी को जुकाम और ज्वर हो गया, अतः व्याख्यान मैंने शुरू कर दिया। प्रातः और सायं दोनों समय प्रतिक्रमण भी प्रज्ञालोक में कर रहे हैं। कफ बढ़ा है। डॉ. घोड़ावत ने इंजेक्शन लगाया। एक-दो दिन तो कफ का असर रहा। अब कम है। ४ और ५ दिसम्बर को स्वास्थ्य का क्रम ठीक ही रहा।

“महाप्रज्ञ कभी-कभी अस्वस्थ हो जाते हैं तब मेरी नींद उचट जाती है। सामने अंधेरा-सा दीखने लगता है। ये ठीक हो जाते हैं तब संतोष मिलता है। मेरा किसी व्यक्ति के प्रति कोई मोह कभी नहीं रहा, भले वह मेरा निकट-से-निकट ज्ञाति भी क्यों न हो। मेरा आकर्षण वैशिष्ट्य के प्रति होता है।”

• ८ दिसम्बर १९९६, रविवार। इन दिनों महाप्रज्ञजी ज्वरग्रस्त, कफ का प्रकोप बढ़ गया। अतः प्रवचन आदि सब मैंने स्वयं किए। उनको विश्राम मिल गया। मैं सक्रिय हो गया। अच्छा रहा।

२१ दिसम्बर १९९६, रविवार। दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में महाप्रज्ञजी को ज्वर हो गया था। स्वास्थ्य-लाभ में पन्द्रह-बीस दिन लग गए। अब वे स्वस्थ हुए हैं।

प्रसंग अंतर्वेदना का

पूज्य गुरुदेव के स्वास्थ्य के संदर्भ में मैं बहुत जागरूक रहता था। गुरुदेव आहार-संयम के जो प्रयोग करते, उससे पूर्व मुझसे चिन्तन और परामर्श अवश्य करते। गुरुदेव का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता था। जब कभी गुरुदेव अस्वस्थ होते तब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। जब कभी कुछ अप्रिय बात सुनता तब मेरा मन उद्वेलित हो जाता। गुरुदेव ने इस संदर्भ में एक प्रसंग का रेखांकन किया है–

३० अगस्त १९८५। आज उदयपुर से गुप्तचर विभाग के एक अधिकारी आए और बोले–'एस. पी. साहब ने कहा है कि आचार्यजी का नाम हिट लिस्ट में है, अतः वहां सुरक्षा का प्रबंध रखना जरूरी है।' अधिकारी की बात सुनकर मैंने कहा–'यह तो हमने तब ही समझ लिया, जब लोंगोवाल को याद किया था। खैर, इस स्थिति को लेकर हमारे मन में किसी प्रकार का भय नहीं है। हम अभय हैं और अभय होकर रहेंगे।' इस पर वे बोले–'आपके मन में भय नहीं है, फिर भी आपकी सुरक्षा-व्यवस्था हमारा दायित्व है। इस मामले में हमें सावधानी रखनी ही होगी। क्योंकि हमें ऊपर से आदेश है।' मैंने अधिकारी महोदय की बात का कोई प्रतिवाद नहीं किया। उन्होंने जाते समय पुनः कहा–'आपके यहां से भी अच्छा प्रबंध रहना चाहिए। सोने, बाहर जाने आदि में पूर्ण सजगता रहनी चाहिए।'

विशेष परिस्थिति में सरकार अपनी ओर से व्यवस्था करती है, यह उसका दायित्व है। अपनी ओर से भी सजगता का प्रबंध रखना होगा। इस विषय में युवाचार्य महाप्रज्ञ सबसे अधिक चिन्तित हैं। वैसे श्रावक लोग भी सजग हो गए हैं। रात्रि के समय साधुओं की एक छोटी गोष्ठी बुलाई। साधुओं को सारी स्थिति से अवगत किया गया। गोष्ठी में यह भी कहा गया कि सहजता और सजगता रखी जाए। भय की जरूरत नहीं है, पर प्रमाद नहीं होना चाहिए। बस, इतना काफी है। मूल में सबसे बड़ी चिन्ता महाप्रज्ञजी को दिखाई देती है। वे बोले–'दिन भर मन नहीं लगा। कुछ काम भी नहीं हुआ।' जब कभी मेरे बारे में कुछ ऐसी-वैसी बात सुन लेते हैं तो वे नर्वस हो जाते हैं।

यह सुयोग बना रहे

गुरुदेव के स्वास्थ्य के संदर्भ में मैं चिन्ता करता, उससे कहीं अधिक गुरुदेव मेरे स्वास्थ्य के प्रति चिन्तित रहते। मेरा स्वास्थ्य गुरुदेव के संतोष का कारण बनता और अस्वास्थ्य चिन्ता का। डायरी का यह पृष्ठ कितना मार्मिक और हृदयस्पर्शी है–

• २६ मार्च १९९२, गुरुवार। आचार्य भिक्षु युवाचार्य भारमलजी के लिए अनेक महत्त्वाकांक्षी साधुओं के कोपभाजन बने रहे। जयाचार्य युवाचार्य मघवा के लिए तात्कालिक अनेक साधुओं के कोपभाजन बने। वैसे ही आचार्य तुलसी भी युवाचार्य महाप्रज्ञ के लिए अनेक साधुओं के आक्रोश के निमित्त बने, यह तथ्य है। पर इसमें भारमल, मघवा और महाप्रज्ञ का क्या दोष? यह तो आचार्यों की अपनी-अपनी पसन्द है।

धर्मसंघ का बड़ा दायित्व उन पर होता है। वे किसी के आक्रोश या कोप के कारण अपने दायित्व को गौण नहीं कर सकते। कोप/आक्रोश करनेवाले भले अपने जीवन को बरबाद कर दें।

युवाचार्य भारमलजी और युवाचार्य मघराजजी अपने युग के विशिष्ट व्यक्तित्व हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर महाप्रज्ञ इस युग में एक विलक्षण व्यक्तित्व हैं। आज का युग विचित्र है। हर किसी को मान्यता देता ही नहीं। बड़ा जटिल जमाना है। महाप्रज्ञ को इस युग ने मान्य कर लिया, यह असामान्य बात है। मैं इसे संघ का भाग्य मानता हूं। नहीं, अपना भाग्य भी मानता हूं कि मुझे ऐसे शिष्य मिले। असाधारण प्रतिभा। अतीन्द्रिय ज्ञान का अजस्र स्रोत। विनम्र, अनुशासित, प्रेक्षाध्यान के प्रणेता और सूझबूझ के धनी। यों तो प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ कमी देखी जा सकती है। पर वैशिष्ट्य में कमी धूमिल हो जाती है।

महाप्रज्ञ कभी-कभी अस्वस्थ हो जाते हैं तब मेरी नींद उचट जाती है। सामने अंधेरा-सा दीखने लगता है। ये ठीक हो जाते हैं तब संतोष मिलता है। मेरा किसी व्यक्ति के प्रति कोई मोह कभी नहीं रहा, भले वह मेरा निकट-से-निकट ज्ञाति भी क्यों न हो। मेरा आकर्षण वैशिष्ट्य के प्रति होता है। वर्तमान में महाप्रज्ञ, महाश्रमणी और महाश्रमण, ये तीन त्रिवेणी-संगम की तरह मुझे मिले हैं। मैं इसे अपने गुरुजनों की परम कृपा मानता हूं और अपना सुयोग मानता हूं। इस सुयोग ने हमारे संघ को वह स्थान दिला दिया, जो हर एक को दुष्प्राप्य है। संघ की नियति है, अच्छा भविष्य है। मेरे जीवन के आखिरी समय तक यह सुयोग बना रहे, ऐसी कामना, शुभाशंसा और मंगलभावना करता हूं। गुरुदेवः शरणमस्तु, गुरुदेवः शरणम्, शरणम्।

“महाप्रज्ञ को इस युग ने मान्य कर लिया, यह असामान्य बात है। मैं इसे संघ का भाग्य मानता हूं। नहीं, अपना भाग्य भी मानता हूं कि मुझे ऐसे शिष्य मिले। असाधारण प्रतिभा। अतीन्द्रिय ज्ञान का अजस्र स्रोत। विनम्र, अनुशासित, प्रेक्षाध्यान के प्रणेता और सूझबूझ के धनी। यों तो प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ कमी देखी जा सकती है। पर वैशिष्ट्य में कमी धूमिल हो जाती है।”

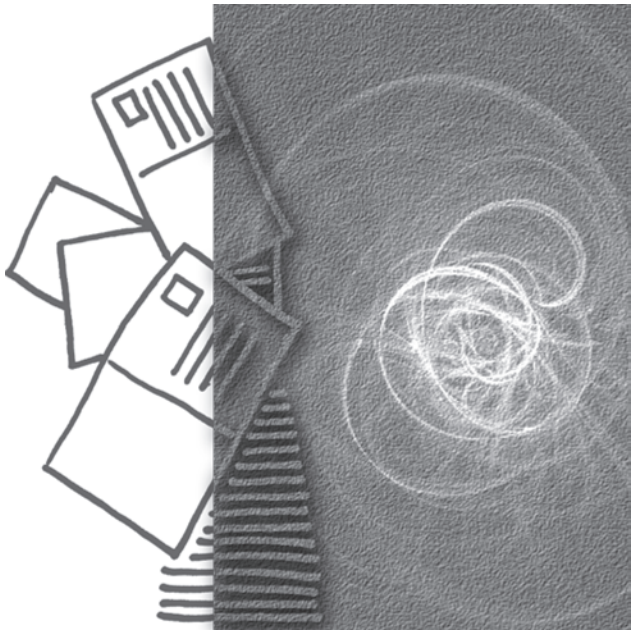

१४

पत्र : परोक्ष का प्रत्यक्षीकरण

'प्रत्यक्षं ज्येष्ठं प्रमाणम्'–प्रत्यक्ष सब प्रमाणों में ज्येष्ठ है। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों की दूरी को मापना संभव नहीं है। परोक्ष का स्थान दूसरा है। कारण बहुत साफ है–जो साक्षात् में होता है वह व्यवधान में कैसे होगा।

मनुष्य ने परोक्ष को प्रत्यक्ष बनाने के लिए अनेक उपाय खोजे हैं, उनमें एक है पत्राचार। साहित्य की विधाओं में पत्र-साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मेरा अधिकांश जीवन आचार्य तुलसी की सन्निधि में बीता। इसलिए हमारा पत्राचार कोई बड़ा ग्रंथ नहीं बन सकता। दूसरी समस्या यह है कि हम गृहस्थों के माध्यम से पत्राचार नहीं कर सकते। मैं कभी-कभी आचार्यवर से दूर रहा हूं। उस स्थिति में कभी मैंने आचार्यवर को पत्र लिखे, कभी आचार्यवर ने मेरे लिए पत्र लिखे। उन्हें साधु-साध्वियों के माध्यम से यथास्थान पहुंचाया गया।

साक्षात् साक्षात् होता है, सामीप्य सामीप्य होता है। कभी-कभी शब्दों का साक्षात् और सामीप्य इतना अद्भुत होता है कि वह साक्षात् का अतिक्रमण कर आगे बढ़ जाता है।

(१)

स्वास्थ्य के संदर्भ में

• सन् १९६० में मैं चिकित्सा हेतु राजनगर के बाल विद्या निकेतन में प्रवासित था। आयुर्वेद पद्धति के अनुसार पंचकर्म-चिकित्सा का प्रयोग चल रहा था। उस समय आचार्य तुलसी केलवा में विराज रहे थे। राजनगर से केलवा मात्र चौदह किलोमीटर दूर है। दूरी दूरी ही होती है। जो साक्षात् में होता है, वह दूरी में नहीं होता। किन्तु हमारे पास दूरी को साक्षात् करने का एक साधन है–शब्द। इस माध्यम का मैंने उपयोग किया और मेरे अन्त:करण की बात आचार्यवर तक पहुंचा दी।

महते यात्रिणे यात, भावा:! शब्दाश्च सम्प्रति।
सद्वैद्याय शिवाढ्याय, तुलसीप्रवराय मे॥

हे मेरे भावो! शब्दो! तुम अभी मेरे गुरु आचार्यप्रवर तुलसी के पास जाओ। वे महान् यात्री, सद्वैद्य और कल्याणसंपन्न हैं।

यस्योच्चैस्त्वं शिखरिशिखरं लङ्घयित्वाऽभियाति,
यस्य प्रेम स्पृशति हृदयं नावृतं मानवानाम्।
यस्याश्वासो दिशति सुदिशं त्राणचिन्तारतानां,
चेतो! याहि प्रकृतिपुरुषं तं प्रणन्तुं महान्तम्॥

अयि चित्त! तुम उन महान् प्रकृतिपुरुष तुलसी को प्रणाम करने के लिए जाओ, जिनकी उच्चता पर्वतों के शिखरों को लांघकर प्रयाण कर रही है, जिनका अनावृत प्रेम मनुष्यों के हृदय का स्पर्श कर रहा है और जिनका आश्वासन रक्षा की चिन्ता में लगा हुआ प्राणियों को सही दिशा दे रहा है।

दृष्टिप्रेक्षा भवति निकटं दूरतो नापि वार्ता,
कायस्पर्श: सविधविषयो दूरता दूरतैव।
अग्रे पृष्ठे भवति करणं दूरदेशे हि चेतो,
यत्सान्निध्यं जनयति निजैर्ज्ञातमज्ञातमन्यै:॥

जो निकट होता है, उसे दृष्टि से देखा जा सकता है। जो दूर होता है उससे बात भी नहीं की जा सकती। निकट होने से कायस्पर्श-चरणस्पर्श भी हो सकता है। दूरी दूरी ही होती है। दूर देश में आगे-पीछे केवल एक चित्त ही साधन होता है, जो अपने निजी व्यक्तियों से सामीप्य स्थापित करता है। इसे दूसरे नहीं जान पाते।

नोपादानं व्रजति मनुजो नाम पश्यन्निमित्तं,
शाब्दे लोके व्यवहृतिपरे शब्द एव प्रमाणम्।
भावालोका: प्रकृतिपटवो यात शब्दास्तदर्थं,
देवार्याय ज्ञपयत परां वन्दनां नम्रभावाम्॥

निमित्त कारण को देखता हुआ मनुष्य उपादान कारण को प्राप्त नहीं करता। इस व्यवहारपरायण शब्दलोक में शब्द ही प्रमाण है। इसलिए भावना के आलोक से आलोकित तथा प्रकृति से पटु शब्दो! तुम

> “साक्षात् साक्षात् होता है, सामीप्य सामीप्य होता है। कभी-कभी शब्दों का साक्षात् और सामीप्य इतना अद्भुत होता है कि वह साक्षात् का अतिक्रमण कर आगे बढ़ जाता है।”

अपनी प्रमाणता को सिद्ध करने के लिए देवार्य आचार्य तुलसी के पास जाओ और हमारी विनम्रभावों से युक्त परम वन्दना को ज्ञापित करो।

यस्य स्वास्थ्ये निहितमतुलं स्वास्थ्यमूर्ध्वं जनानां,
तस्मै पुण्यं ज्ञपयत सुखप्रश्नमिष्टं नितान्तम्।
शब्दाधीना वयमिह यतः साम्प्रतं दूरदेशे,
तद् युष्माभिः समुचितविधिप्रातिनिध्यं विधेयम्॥

जिनके स्वास्थ्य में जनता का सम्पूर्ण और अतिशय स्वास्थ्य निहित है, उन पूज्यपाद तुलसी के पास जाकर तुम सदा हमारी ओर से पवित्र और अभीष्ट सुखपृच्छा ज्ञापित करना, क्योंकि अभी हम यहां दूर देश में स्थित होने के कारण शब्दों के अधीन हैं। इसलिए शब्दो! तुम हमारा समुचित विधि से प्रतिनिधित्व करो।

सानन्दाः स्मो वयमिह तव प्राप्य वाणीं प्रशस्तां,
सोल्लासाः स्मो वयमिह मनःस्वास्थ्यमासेवमानाः।
सोद्योगाः स्मो वयमिह तनुस्वास्थ्यमुच्छ्वासयन्तः,
सोत्साहाः स्मो वयमिह सदा लेखिनीं संस्पृशन्तः॥

गुरुदेव! हम यहां आपकी प्रशस्त वाणी को प्राप्त कर आनन्दित हैं। हम यहां मानसिक स्वास्थ्य को धारण करते हुए उल्लसित हैं। हम यहां शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारने लिए प्रयत्नशील हैं और हम यहां लेखनी का संस्पर्श कर (आपको कुछ लिखते हुए) सदा उत्साहित हैं।

कार्यं किञ्चित् प्रगतिमगमत्तेन तुष्याम एव,
कार्यं किञ्चिन्न कृतमपि तत्पूर्तिमानेतुमुत्काः।
गन्तव्ये स्मो वयमिह गतास्तत्र यास्यन्ति पूज्याः,
गन्तव्योऽयं विधिरतितरां नास्ति गन्तव्यमन्यत्॥

कार्य में कुछ प्रगति हुई है, इसलिए हमें सन्तोष है। अभी कुछ कार्य नहीं भी हुआ है, उसकी पूर्ति करने के लिए हम उत्सुक हैं। हम यहां गन्तव्य पर पहुंच गए हैं और पूज्यश्री भी यहीं आएंगे। यह विधि ही सर्वथा गन्तव्य है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई गन्तव्य नहीं है।

कष्टापातः प्रथममभवत् पञ्चकर्मप्रथायां,
स्नेहप्राप्तिः क्व खलु सुलभा स्वेदनं क्वास्ति लभ्यम्।
यत्प्राप्तानां भवति वमनं कष्टमामाशयाय,
शुद्धः पक्वाशय इह विना स्यान्न वा रेचनेन॥

आयुर्वेद चिकित्सा में मैंने पंचकर्म परिपाटी का प्रयोग किया है। इसमें पहले बहुत कष्ट हुआ। स्नेह की प्राप्ति कहां सुलभ है? स्वेदन भी कहां प्राप्त होता है? इन दोनों के प्राप्त होने पर वमन होता है, जो आमाशय के लिए कष्टदायी है। रेचन के बिना पक्वाशय शुद्ध नहीं होता।

उत्तीर्णोऽयं जलधिरधुना तीरमस्मि श्रितोऽहं,
कल्पारम्भो भवति नवमीवासरे पुण्ययोगे।
सेवाभावो मुनिगणगतः कल्पनादुर्लभोऽसौ,
साध्वीयोगात् सुविधिरभवत्तन्निदानं सुदृक् ते॥

अब मैं पञ्चकर्मरूप समुद्र को पार कर किनारे पर आ पहुंचा हूं। नवमी के दिन पुण्य-योग में कल्प का प्रारम्भ हो रहा है। सहयोगी मुनिजनों में सेवाभाव कल्पना से दुर्लभ है। (इस विषय में मुनिजनों ने जो सेवा की है, वह दुर्लभ है।) साध्वियों के योग से उचित व्यवस्था रही है। इन सब में आपकी शुभदृष्टि ही हेतुभूत बनी है।

आचार्यश्रीप्रवरतुलसीपुण्यसान्निध्यमाप्ताः,
चम्पालालप्रभृतिमुनयो वन्दनीया यथार्हम्।
अत्रत्यानां मनसि लषितं ते विदन्तु प्रयोग्यं,
तत्रत्यानां मनसि लषितं नेयमस्माभिरिष्टम्॥

आचार्यप्रवर श्रीतुलसी के पुण्य सामीप्य को प्राप्त करने वाले मुनि चम्पालालजी (सेवाभावी) आदि मुनियों को यथायोग्य वन्दना। यहां स्थित मुनियों के मन में विद्यमान वन्दना-सुखपृच्छा की भावना को वहां यथायोग्य जान लें और वहां स्थित मुनियों की मानसिक अभीष्ट भावना को हम यहां प्राप्त कर लेंगे।

(वि. सं. २०१७, ज्येष्ठ शुक्ला नवमी, ४ जून, १९६०, राजनगर, मेवाड़)

आगम-संपादन और साहित्य के संदर्भ में

● आगम-संपादन और साहित्य सृजन का एक विशाल कार्य हमारे हाथ में था। उस कार्य के लिए कभी-कभी हमें गुरुदेव एक केन्द्र में रख देते। एक बार हम जोधपुर रहे और गुरुदेव आसपास के क्षेत्रों में विहार करते रहे। आचार्यवर के मन में आगम-संपादन और साहित्य सृजन के प्रति आंतरिक प्यास थी। आचार्यवर के सामने अनेक कार्य थे–जन-सम्पर्क, जैन दर्शन, अणुव्रत आदि का प्रयोग और प्रसार तथा एक नेतृत्व वाले बड़े संघ का संचालन। पर आगम संपादन के प्रति जितना आन्तरिक आकर्षण था उतना आकर्षण किसके प्रति था यह अनुसंधान का विषय है। आचार्यश्री की दैनन्दिनी (डायरी) इस खोज में सहायक हो सकती है। इसका एक स्रोत सन् १९६१ और सन् १९६३ के पत्र हैं–

“आचार्यवर के सामने अनेक कार्य थे–जन-सम्पर्क, जैन दर्शन, अणुव्रत आदि का प्रयोग और प्रसार तथा एक नेतृत्व वाले बड़े संघ का संचालन। पर आगम संपादन के प्रति जितना आन्तरिक आकर्षण था उतना आकर्षण किसके प्रति था यह अनुसंधान का विषय है।”

अर्हम्

शिष्य मुनि नथमलजी से सुखपृच्छा!

इस बार तुम्हारा जोधपुर रहना साहित्य सृजन की दृष्टि से काफी सफल रहा होगा। यद्यपि संवाद समय-समय पर मिलते रहे हैं। साहित्य समृद्धि के लिए मेरे मन में जो तड़फ है व्यक्त नहीं कर सकता। आज अनेक मुनि इस कार्य में लगे हुए हैं। यह प्रसन्नता का विषय है। मैं चाहता हूं यह धारा निराबाध रूप से चलती रहे। इस कार्य-सहयोग के लिए मैंने शिष्य सोहनलालजी सुजानगढ़ को भेजा था और अब भी काम की दृष्टि से मुनि सोहन सरदारशहर को यहां से भेज रहे हैं। ये यहां से एकादशी को विहार कर तीज तक पहुंच रहे हैं। सो जानना। शेष सभी सन्तों से सुखपृच्छा। सभी आनंद में होंगे। साहित्य कार्य की प्रगति सभी के योग से ही संभव है। हम भी सकुशल शीघ्र ही पहुंच रहे हैं। शेषं मंगलम्।

जसोल
८.५.६१
सोमवार

आचार्य तुलसी

अर्हम्

शिष्य मुनि नथमलजी आदि स्यूं सुखपृच्छा विदित हो। अपरंच तुम्हारा स्वास्थ्य अब ठीक है, जानकर प्रसन्नता हुई। स्वास्थ्य का सतत ध्यान रखना चाहिए।

हमने आगम सम्पादन के जिस गुरुतर काम को हाथ में लिया है, उसके लिए जिन-जिन तत्त्वों की अपेक्षा है उन्हें शीघ्र जुटाना है। इस काम में वेग लाना है। मुझे रात दिन इसके लिए बेचैनी रहती है।

काम अच्छा है, बहुत अच्छा है। इसमें कमी केवल साधन सामग्री की ही रही है। जैसे तैसे उसे जुटाकर तत्परता से संलग्न होना है। वैशाली या महासभा की बात मुझे इतनी गहरी नहीं लगती जितनी कार्य सम्पादन की लगती है।

इस कार्य में जिन किन्हीं का जिस किसी तरह सहयोग मिले वह लेना है। क्षण-क्षण इसी सत् चिन्तन सहित कार्य में संलग्न रहना है। श्रीचंदजी रामपुरिया का जो सहयोग रहा है, उसे तो छोड़ना है ही नहीं। बल्कि औरों के सहयोग का अन्वेषण करना है। इस चतुर्मास में उत्तराध्ययन का काम अवश्य सम्पन्न कर देना है। ध्यान में रहे। स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना।

आचार्य तुलसी

८ जून १९६३
वि. सं. २०२० आषाढ़स्य प्रथम दिवसे चारुवास।

पत्र संस्कृत भाषा में

• पूज्यपाद आचार्यश्री तुलसी ने वि. सं. २०२० का चतुर्मास और मर्यादा-महोत्सव लाडनूं में किया। चतुर्मास की सम्पन्नता के पश्चात् आचार्यवर का आगमन सुजानगढ़ में हुआ। पुनः मर्यादा-महोत्सव के लिए लाडनूं आना था और सुजानगढ़ मध्यवर्ती शहर था। इस चिन्तन से आचार्यवर ने मुझे तथा मेरे सहयोगी साधुओं को आगम कार्य के लिए सुजानगढ में रख दिया। परीक्षार्थी साधु-साध्वियों को तथा मातुश्री वदनांजी को भी वहीं रहने का निर्देश दे दिया। आचार्यप्रवर सताईस दिनों की अल्पकालीन यात्रा पर 'राजलदेसर' की ओर प्रस्थान कर गए। मैंने अत्रजन्य समाचारों को संस्कृत में गुम्फित कर सन्तों के साथ प्रेषित किया। वह पत्र इस प्रकार है–

अर्हम्

परमश्रद्धास्पदं विश्ववन्द्याः आचार्यप्रवराः!

विनम्रा वयं सर्वे प्रणताः स्मः चरणकमलयोः। अभिलषामहे प्रतिपलं मनःस्वास्थ्येन सहारोग्यमनवरतं शारीरिकं कुशलञ्च सर्वेषामपि युष्मच्चरणमूले सान्निध्यं स्पृहयतां सतां तथैव साध्वीनाञ्च।

अत्र सर्वेऽपि वयमानन्दमनुभवामो युष्मद्दृष्टिदृष्टाः सृष्टानुशासनैकप्रतिष्ठाः। मातृप्रवरवदनाजीप्रभृतयः साध्व्योऽपि सन्ति सानन्दाः। आचार्यप्रवराणां प्रत्यागमनस्य कञ्चिद् विलम्बमनुलक्ष्य मातृप्रवरया प्रोक्तम्–इयतां दिनानामनुमितिरपि नासीत्। आचार्यैः सन्दिष्टं कतिचित् दिनानि विहृत्य सद्य एव पुनरागमिष्यामः। परन्तु प्रलम्बो जायमानोऽस्ति विलम्बः। प्रतीक्षा कियत्यधीरा भवतीति साक्षाद् दृष्टमस्माभिः।

परीक्षाप्रारम्भाय पौषकृष्णा पञ्चमी प्रवरास्ति। ततः प्रागेवात्र वयमाशास्महे पुनरागमनमार्याणाम्। यद्यपि सर्वत्र समवसरणमभिवाञ्छन्ति मानवाः प्रवरभाग्यविलसितमिवार्यचरणानां तथापि विद्यार्थिसाधुसाध्वीनां परीक्षाप्रवणं चेतो दीर्घां प्रतीक्षां कर्तुं नोत्साहं गमिष्यतीति संगम्यम्। परीक्षार्थिनामध्ययनादिकं सम्यक् प्रवर्तमानमस्ति सन्ततम्। अन्यापि परीक्षोचिता प्रवृत्तिरभूत् प्रपूर्णा।

उत्तराध्ययनस्य त्रिंशदध्ययनानामवशिष्टानि टिप्पणानि पूर्णतां गतानि। अन्यदपि तत्संबन्धिकार्यं जायमानमस्ति यथावकाशम्।

आन्तरिकं बलं प्रगुणयतां बहिस्तनं कष्टं न स्पृष्टमिव भाति तद् ध्यानमहिमैव युष्माकम्। प्रतिभाति सुस्पष्टं ध्यानमेवास्मिन् कोलाहलसमाकुले जगति समाधायकम्। एकस्मिन् दिवसे मातृप्रवरायाः पार्श्वे ध्यानचर्चा प्रवृत्ता। अन्ते सखेदमुक्तं बहुधा–कथं नास्मिन् विषये कदाचिदपि ज्ञापिताऽहम्? निवेदयिष्याम्याचार्यचरणेभ्यः कथं न ज्ञायतेऽसौ विषयः साध्वीभ्यः? अध्यात्मे समा रुचिरस्ति सर्वेषामिति महदाश्चर्यम्।

बाह्यजगतो घटनाचक्रे सम्प्रति महत्त्वपूर्णा घटनास्ति राष्ट्रपतिकेनेडी-मृत्युः। मरणधर्मणि संसारे मृत्युर्नाश्चर्यकारी। किन्तु मानवजातेः स्वतन्त्रतायाः प्रहरी नो जीवितुमपि लभतेऽधिकारमितीव तन्मृत्युरजनीति संवेगास्पदम्। तस्य राष्ट्रपतेरादर्शपदमिदमासीत्–'स्वतन्त्रतायाः सर्वोपरि महत्त्वमयति स एव यस्य दृष्टौ समास्ति सकला मनुष्यजातिः'।

आचार्यचरणानां आशिषं प्राप्य प्रवरां सर्वे लोकाः आलोकमभिगच्छेयुरात्मनि, स्वीयं स्वातन्त्र्यं सुरक्षयेयुरपरेषां नापहरन्तस्तत्। भौतिकजगतः परिणामान् पश्यतामध्यात्ममेव महदालम्बनं भवति। पुनः प्रणामाः श्रीचरणयोः।

मुनिः नथमलः

(वि. सं. २०२०, मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी, २५ दिसम्बर, १९६३, सुजानगढ़)

परम श्रद्धास्पद विश्ववन्द्य आचार्यप्रवर!

हम सब आपके चरणकमलों में विनम्रभाव से प्रणत हैं। हम मानसिक स्वास्थ्य के साथ आपके शारीरिक स्वास्थ्य की प्रतिपल कामना करते हैं और आपके चरण-मूल में सान्निध्य की स्पृहा करने वाले सभी साधु-साध्वियों के कुशल-क्षेम की अभिलाषा करते हैं।

यहां हम सभी आपकी दृष्टि से दृष्ट होकर और एकमात्र अनुशासन की प्रतिष्ठा से युक्त होकर आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। मातृश्रेष्ठा वदनाजी आदि साध्वियां भी यहां सानन्द हैं। आचार्यप्रवर के वापस आने में कुछ विलम्ब हो रहा है। उसे देखकर मातृप्रवरा साध्वी वदनांजी ने कहा है–इतने दिनों का विलम्ब होगा, यह अनुमान भी नहीं था। आचार्यवर ने मातुश्री को सन्देश दिया था कि हम कुछ दिन विहरण कर शीघ्र ही पुनः यहां आ जाएंगे। परन्तु प्रलम्ब विलम्ब हो रहा है। प्रतीक्षा कितनी अधीर होती है, यह हमने साक्षात् देखा है।

परीक्षा के प्रारम्भ के लिए पौषकृष्णा पंचमी श्रेष्ठ है। हम आशा करते हैं कि उससे पहले ही आर्यवर का यहां पुनः आगमन हो जाए। यद्यपि सर्वत्र लोग शुभ भाग्योदय से होने वाले आर्यचरणों के आगमन की आकांक्षा करते हैं, फिर भी विद्यार्थी साधु-साध्वियों का परीक्षा में संलग्न चित्त दीर्घ प्रतीक्षा करने लिए

"हमने आगम सम्पादन के जिस गुरुतर काम को हाथ में लिया है, उसके लिए जिन-जिन तत्त्वों की अपेक्षा है उन्हें शीघ्र जुटाना है। इस काम में वेग लाना है। मुझे रात दिन इसके लिए बेचैनी रहती है। काम अच्छा है, बहुत अच्छा है। इसमें कमी केवल साधन सामग्री की ही रही है। जैसे तैसे उसे जुटाकर तत्परता से संलग्न होना है।"

उत्साहित नहीं होगा, यह उचित है। परीक्षार्थियों का अध्ययन आदि निरन्तर सम्यक् रूप से चल रहा है। परीक्षोचित अन्य प्रवृत्तियां भी परिपूर्ण हो गई हैं।

(आगम-सम्पादन में) उत्तराध्ययन के तीस अध्ययनों के अवशिष्ट टिप्पण पूर्ण हो गए हैं। उससे संबंधित अन्य कार्य भी अवकाश के अनुरूप हो रहा है।

आन्तरिक शक्ति को विकसित करने वाले व्यक्तियों को बाहरी कष्ट मानो स्पर्श ही नहीं करता, यह आपकी ध्यान-साधना की ही महिमा है। यह सुस्पष्ट प्रतिभासित हो रहा है कि कोलाहल से परिपूर्ण इस जगत् में ध्यान ही समाधान देने वाला है। एक दिन मातृश्रेष्ठा वदनाजी के पास ध्यान की चर्चा चली। चर्चा के अन्त में उन्होंने बार-बार खेदपूर्वक कहा–इस विषय में क्यों नहीं मुझे कभी बताया गया? मैं आचार्यप्रवर से निवेदन करूंगी कि साध्वियों ने इस विषय को क्यों नहीं जाना? अध्यात्म में सबकी समान रुचि है, यह महान् आश्चर्य है।

बाह्यजगत् के घटनाचक्र में इस समय राष्ट्रपति कैनेडी की मृत्यु महत्त्वपूर्ण घटना है। इस मरणधर्मा संसार में मृत्यु आश्चर्यकारी नहीं है, किन्तु मानवजाति की स्वतन्त्रता के रक्षक को मानो जीने का भी अधिकार प्राप्त नहीं है, इस प्रकार उनकी मृत्यु हुई, यह क्षोभजनक है। उस राष्ट्रपति कैनेडी का यह आदर्श वाक्य था–'वही व्यक्ति स्वतन्त्रता का सर्वोपरि महत्त्व आंक सकता है जिसकी दृष्टि में सम्पूर्ण मनुष्यजाति समान होती है।'

आचार्यचरणों का प्रवर आशीर्वाद प्राप्त कर सभी लोग आत्म-आलोक के प्रति उन्मुख बनें, जिससे वे दूसरों की स्वतन्त्रता का अपहरण न करते हुए अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सकें। भौतिक जगत् के परिणामों को देखने वालों के लिए अध्यात्म ही महान् आलम्बन होता है। पुनः श्रीचरणों में प्रणाम।

मुनि नथमल

(वि. सं. २०२०, मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी, २५ दिसम्बर, १९६३, सुजानगढ)

दिल्ली चतुर्मास के सदंर्भ में

● आचार्यवर दिल्ली प्रवास कर रहे थे। चातुर्मास के लिए बीकानेर जाना था। एक विशेष परिस्थिति बनी और मुझे दिल्ली में रखा। आचार्यवर मुझे दिल्ली में रखना नहीं चाहते थे, मैं वहां रहना नहीं चाहता था। पर मुनि नगराजजी के 'एक शब्द' ने आचार्यवर के चिन्तन में आन्दोलन पैदा कर दिया, फलतः मुझे दिल्ली चतुर्मास का निर्देश मिला। दिल्ली से नांगलोई तक मैं आचार्यवर के साथ गया। वहां से हम पांच मुनि वापस नया बाजार आ गए। हमारे साथ रहनेवाले तीन मुनि भादरा से हमारे पास आ रहे थे। उनके साथ गुरुदेव ने एक पत्र भेजा, जो हमारे लिए कार्य-दिशा का सूचक बन गया।

अर्हम्

साधक! अन्तेवासी! मुनि नथमलजी!

सुखपृच्छा। वर्षों से चतुर्मासार्थ रहने का काम पड़ा है। देहली के कार्य जितने भी हों, सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित हों। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए। इस बार विशेष उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य हमारे सामने है। मेरा खयाल है काफी हद तक हम पूरा कर पाएंगे। पर उसमें विशेष साधना, कठिन परिश्रम करने की अपेक्षा है। तीन काम प्रमुखतया सामने हैं–

१. अध्यात्म की ऊंची साधना।

२. आगम तथा अन्य साहित्य की साधना।

३. अणुव्रत तथा जैनत्व का प्रचार।

इन तीनों में यथासंभव जिस समय जिसकी विशेष आवश्यकता हो, प्राथमिकता देकर काम करना है। देहली में कार्यक्रम व्यवस्थित होता है तो इसका सर्वत्र अच्छा असर होगा। कार्यकर्ताओं को भी संभालना है, बनाना है। इस काम को भी महत्त्वपूर्ण समझकर करना है। मैं विश्वास करता हूं कि जैसी अपेक्षा है वे सारे काम यथेष्ट संपन्न होंगे।

सब साधुओं से सुखपृच्छा। सारे अत्यंत आत्मीयता-सहृदयता से विनय और अनुशासन को आत्मगत रखते हुए कार्य करेंगे, ऐसी आशा है।

यहां से शिष्य श्रीचंद, दुलहराज, विमल तीनों आ रहे हैं। सब मिलकर अच्छी तरह काम करेंगे।

हम राजगढ़ की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। गर्मी भयंकर है। पर हम पूर्ण स्वस्थ रूप में ससंघ अपनी गति से चल रहे हैं। निश्चिन्त रहें। शेषं कुशलम्।

वि.सं. २०२१ आषाढ़ कृष्णा ५ **आचार्य तुलसी**
२२ जून १९६४
हिसार

व्रत अभेदोपासना का

● वि. सं. २०२१, बालोतरा में मर्यादाशताब्दी महोत्सव का आयोजन। वि. सं. १९२१ में श्रीमज्जयाचार्य ने तेरापंथ धर्मसंघ में मर्यादा-महोत्सव का सूत्रपात कर एक नया कार्य किया। प्रथम मर्यादा-महोत्सव बालोतरा की पुण्यधरा पर मनाया गया। आचार्य तुलसी ने इतिहास को दोहराते हुए उसकी शताब्दी मनाने का निर्णय लिया। लूणी नदी के विशाल मैदान में उसका भव्य आयोजन हुआ। चतुर्मासों की घोषणा करते हुए आचार्यप्रवर ने मुझे (मुनि नथमल) दिल्ली की ओर विहार करने का आदेश दिया। बालोतरा से विहार कर मैं सहयोगी सन्तों के साथ पचपदरा पहुंचा। वहां मैंने अपने भाव संस्कृत में गुम्फित कर आचार्यप्रवर तक पहुंचाए।

अर्हम्

प्रभो!

शतं प्रणामाः विनयाभिरामाः। मुहुर्मुहुः कुशलानुयोगाः। तव चरणमहीरुहस्य तले याऽतुला शान्तिरनुभूयते, सा क्व सुलभाऽन्यत्र यत्र तत्र?

यदा यदा ध्यानधारणासमाधिवार्ता विततता भवति तदा तदा संवेद्यते विजनत्वमपि जनसमुदयेऽपि। तव सान्निध्यमस्ति सुनिश्चितमात्मोपलब्धिहेतुः। येनात्मा लब्धस्तेन नान्यदस्ति किञ्चिल्लभ्यम्। मन्येऽहं प्रत्ययजगदिदमस्ति भ्रामकम्। मान्यताजगदिदमस्ति व्यामोहकारकम्। केवलं स्वानुभूतिरेव यथार्थपदवीमापद्यते।

तव प्रेरणास्रोतः प्रवहमानमजस्रं प्लावयति मानसमविरलमनेकेषाम्। एकस्य कस्यापि स्यादात्मोपलब्धिः साऽनिर्वचनीयमहत्त्वा।

“एक दिन मातृश्रेष्ठा वदनांजी के पास ध्यान की चर्चा चली। चर्चा के अन्त में उन्होंने बार-बार खेदपूर्वक कहा—इस विषय में क्यों नहीं मुझे कभी बताया गया। मैं आचार्यप्रवर से निवेदन करूंगी कि साध्वियों ने इस विषय को क्यों नहीं जाना? अध्यात्म में सबकी समान रुचि है, यह महान् आश्चर्य है।”

योगिवर!

तव योगेन योगित्वमावहन्ति बहवो जनाः। अस्मिन् संयोगबहुले विश्वे न नाम योगोऽस्ति सुलभः। अस्माकं जैनपरम्परायां या विच्छिन्नप्राया पद्धतिरस्ति योगस्य, सा पुनरुज्जीवनं प्राप्ता भवेदिति चिरं प्रबलाभिलाषा।

अद्यानेके जनाः सुचिरसमाधिमिच्छवो यत्र तत्र परिवीक्षन्ते। तेषामाशास्थानमस्ति तव चरणसन्निधिः। क्रमेणान्तर्मुखत्वमापद्यमाना वृत्तिस्तव प्रेरयति परान् यत् महाधिकारसम्पन्नोऽपि न तोषमेति बहिर्मुखत्वे, तत् कोऽल्पाधिकारस्तत्र तुष्येत्? वयमकारणं क्वचित् तुष्यामः क्वचिद् रुष्यामः। सत्योपलब्धिरस्ति तोषरोषादन्यत्र।

क्षेत्रस्य दूरत्वं परिवर्धयमाना अपि वयं निरन्तरं तव निकटतामनुभवाम इति वृणुमो वरम्।

भावेन सन्निहितानामस्माकमानन्दो भविष्यति सहचारीति संज्ञायते। तव सन्निधिः सत्यस्य सन्निधिः, सत्यस्य सन्निधिस्तव सन्निधिरिति, नात्रास्ति कोऽपि भेदः। तवोपलब्धिरात्मोपलब्धिः, आत्मोपलब्धिस्तवोपलब्धिरिति नात्र कोऽपि भेदः। भेदाभेदात्मके जगति न वयं भेदमेव गृह्णीमः इति अभेदोपासनाव्रतमाददमहे।

विनयावनतः

मुनिः नथमलः

(वि. सं. २०२१, माघ शुक्ला एकादशी, १२ फरवरी, १९६५, पचपदरा)

प्रभो!

विनयरम्य शत-शत प्रणाम। पुनः पुनः कुशल-पृच्छा। आपके चरणपादप के तले जिस अतुल शान्ति का अनुभव होता है वह अन्यत्र यत्र तत्र कहां सुलभ हो सकती है?

जब जब ध्यान, धारणा और समाधि की वार्ता विस्तृत होती है तब तब जनसमूह में भी जन-शून्यता–एकान्त का अनुभव होता है। आपका सान्निध्य निश्चितरूप से आत्मोपलब्धि का हेतु है। जिसने आत्मा को पा लिया, उसके लिए अन्य कुछ भी प्राप्य नहीं है। मैं मानता हूं कि प्रत्यय का यह जगत् भ्रम उत्पन्न करने वाला है, मान्यता का यह संसार व्यामोह का कारक है, केवल अपनी अनुभूति ही यथार्थ मार्ग को प्राप्त करा सकती है।

आपकी प्रेरणा का निरन्तर प्रवहमान स्रोत अनेक व्यक्तियों के मन को सघन-रूप से आप्लावित कर रहा है। यदि किसी एक को भी आत्मोपलब्धि होती है तो वह अनिवर्चनीय महत्त्व वाली बन जाती है।

योगिवर!

आपके योग से बहुत से लोग योगी बन जाते हैं। इस संयोगबहुल विश्व में योग सुलभ नहीं है। हमारी जैनपरम्परा में योग की जो पद्धति प्रायः विच्छिन्न हो गई है उसे पुनः नया जीवन प्राप्त हो, यह चिरकालीन प्रबल अभिलाषा है।

आज अनेक व्यक्ति स्थायी समाधि के इच्छुक होकर यत्र तत्र देख रहे हैं। उनकी आशा का एकमात्र स्थान आपके चरणों की सन्निधि है। क्रमशः अन्तर्मुखी बनती हुई आपकी वृत्ति दूसरों को प्रेरित कर रही है। जब बहिर्मुखता में महान् अधिकार सम्पन्न व्यक्ति भी संतुष्ट नहीं है, तब अल्प अधिकारवाला

कौन व्यक्ति उसमें संतुष्ट हो सकता है? हम अकारण ही कहीं तुष्ट होते हैं, कहीं रुष्ट होते हैं। सत्य की उपलब्धि तोष और रोष से परे होती है।

क्षेत्रीय दूरी बढ़ जाने पर भी हम निरन्तर आपकी निकटता का अनुभव करते रहें, ऐसा वर आपसे वरण करना चाहते हैं।

भाव से हम आपके निकटस्थ हैं, इसलिए आनन्द हमारा सहचारी रहेगा, ऐसा हम अनुभव करते हैं। आपकी सन्निधि सत्य की सन्निधि है, सत्य की सन्निधि आपकी सन्निधि है, इसमें कोई भी भेद नहीं है। आपकी उपलब्धि आत्मा की उपलब्धि है, आत्मा की उपलब्धि आपकी उपलब्धि है, इसमें भी कोई भेद नहीं है। इस भेद-अभेदात्मक जगत् में हम भेद को ही ग्रहण नहीं करते, अभेद की उपासना का व्रत भी स्वीकार करते हैं।

विनयावनत

मुनि नथमल

(वि. सं. २०२१, माघशुक्ला एकादशी, १२ फरवरी, १९६५, पचपदरा)

ध्वनि : प्रतिध्वनि

● आचार्यश्री तुलसी ने वि. सं. २०२२ का मर्यादा-महोत्सव हिसार में किया। उस अवसर पर चार निकायों की व्यवस्था धर्मसंघ में महान् उपलब्धि थी। मुझे निकाय सचिव बनाया गया। महोत्सव संपन्न कर आचार्यवर डाबड़ी पधारे। मुझे बुद्धिजीवियों के शिविर-संचालन के लिए दिल्ली, (महरौली साधना केन्द्र) जाना था। फाल्गुन कृष्णा छठ (दस फरवरी १९६६) को मैंने गुरुवर का आशीर्वाद लेकर दिल्ली की ओर विहार कर दिया। हिसार पहुंचने पर मैंने संस्कृत-भाषा में पत्र प्रेषित किया–

अर्हम्

महाप्रभो!

तवानुग्रहानुगृहीतानामस्माकं समस्ति शिवम्। वयं प्रार्थयामहे शिवमनवरतं श्रीचरणयोः। यत्र विनयावनतशिरोभिः सर्वैरपि मुनिभिरभिवन्द्यतेऽपि चाभिनन्द्यते। अपि च काम्यते शीघ्रं प्रत्यक्षानुभूतिः। क्षेत्रीयं दविष्ठभावमनुभवन्तोऽपि वयं शृणुमः प्रतिपथं तव यशोगाथाम्। हिसारस्तु साम्प्रतमपि मर्यादामहोत्सवकालीननिवासेन समस्ति सुप्रभावितम्। गुञ्जायमानोस्ति नैकेषु स्वरेषु तवैव स्वरः। विगतरात्रौ गोष्ठ्यां नैकेषु जनेषु श्रुतोऽस्माभिः। विश्वासमाश्रयन्ति लोका नूनमणुव्रतं नवीनां जीवनपद्धतिं करिष्यति सुस्थिराम्। सम्भावयाम्यहं यदि वयं सामयिकान् लघून् प्रश्नान् समादधतोऽपि मुख्यत्वेन शाश्वतिकान् प्रश्नान् समाधातुं यतामहे तर्हि महत् कार्यं स्यात्। मयानुभूतमिदमपि दशवार्षिकस्य प्रयत्नस्य उदारदृष्टिकोणस्येदानीं प्राप्ताः सन्ति परिणामाः, तान् वीक्ष्य साश्चर्याः सन्ति सततमनुयायिनोऽपि। आशासेऽहं दिल्लीसंभविशिविरे तव भविष्यति काचिद् विशिष्टा दृष्टिः केन्द्रिता यज्ज्योतिरालोकं नेष्यते पन्थानमस्माकम्।

सोहनलालजीस्वामी डाबडीं प्रति प्रस्थितः, बच्छराजजी इदानीमपि न पूर्णं स्वास्थ्यलाभं प्रतिलब्धः, दुलहराजस्यापि सैव स्थितिः, अन्ये अमोलकचन्द्र-शुभकरण-सुखलालप्रभृतयो विहारं चिकीर्षवो दिल्लीं प्रति। एतत् पत्रं प्राप्स्यति प्रभोः हस्तस्पर्शं तावदमी समाचाराः मन्येऽहं भविष्यन्ति पूर्वमेव संविदितास्तथापि न लेखनी वर्तमानं क्वचिदुपेक्षितुमर्हति।

“जब बहिर्मुखता में महान् अधिकार सम्पन्न व्यक्ति भी संतुष्ट नहीं है, तब अल्प अधिकार वाला कौन व्यक्ति उसमें संतुष्ट हो सकता है? हम अकारण ही कहीं तुष्ट होते हैं, कहीं रुष्ट होते हैं। सत्य की उपलब्धि तोष और रोष से परे होती है।”

अत्रेदानीं सन्ति साध्व्योऽपि बहव्यः। छगनांजीसाध्व्याः मनःस्थितिः विचित्रा दृष्टा। निद्रानाशमाप्तास्ति दशदिनतः। अद्य प्रबोधिता। साध्वी पिस्तांजी सम्यक् सेवामाचरति। अद्य मया निद्रागुटिकादानाय कथितम्। स्यात् निद्रागमेन शान्तिः प्राप्ता।

अत्रत्याः सर्वेऽपि मुनयः पुनरभिनन्दनमभिवन्दनञ्च कर्तुकामा विपुलमुल्लासमनुभवन्ति।

विनयावनतः

मुनिः नथमलः

(वि. सं. २०२२, फाल्गुन कृष्णा एकादशी, १५ फरवरी, १९६६, हिसार, हरियाणा)

महाप्रभो!

आपके अनुग्रह से अनुगृहीत हम सबके मंगल है। हम निरन्तर श्रीचरणों की मंगल-कामना करते हैं। यहां हम सभी मुनि विनय से सिर झुकाकर आपकी अभिवन्दना और अभिनन्दना करते हैं और शीघ्र प्रत्यक्षानुभूति–दर्शन की भी कामना करते हैं। क्षेत्रीय दूरी का अनुभव करते हुए भी हम आपकी यशोगाथा को पथ-पथ पर सुन रहे हैं। हिसार अभी भी आपके मर्यादा-महोत्सवकालीन प्रवास से सुप्रभावित है। अनेक स्वरों में आपका ही स्वर गुञ्जायमान है। कल रात्रिकालीन गोष्ठी में हमने अनेक व्यक्तियों से यह स्वर सुना। लोगों का विश्वास है कि निश्चित ही 'अणुव्रत' एक नवीन सुस्थिर जीवनपद्धति देगा। मैं संभावना करता हूं यदि हम सामयिक छोटे प्रश्नों को समाहित करते हुए भी मुख्यरूप से शाश्वत प्रश्नों का समाधान करने के लिए प्रयत्न करते हैं तो बहुत बड़ा कार्य हो सकता है। मैंने यह भी अनुभव किया है कि दश वर्ष के उदार दृष्टिकोण के प्रयत्न का अब परिणाम प्राप्त हो रहा है। उन परिणामों को देखकर हमारे अनुगामी (श्रावक) भी सतत आश्चर्ययुक्त हैं। मैं आशा करता हूं कि दिल्ली में होने वाले शिविर में आपकी कोई विशेष दृष्टि केन्द्रित होगी, जिससे हमारा पथ ज्योति के आलोक को प्राप्त करेगा।

मुनि सोहनलालजी स्वामी ने 'डाबडी' की ओर प्रस्थान कर दिया है, बच्छराजजी अभी भी पूर्णरूप से स्वस्थ नहीं हुए हैं, दुलहराजजी की भी वही स्थिति है। मुनि अमोलकचन्दजी, शुभकरणजी और सुखलालजी आदि दिल्ली की ओर विहार करने के इच्छुक हैं। यह पत्र आचार्यवर के हाथ में पहुंचेगा, उससे पहले ही ये समाचार आपश्री को मालूम हो जाएंगे, ऐसा मैं मानता हूं, फिर भी लेखनी वर्तमान को कभी उपेक्षित नहीं कर सकती।

अभी यहां साध्वियां भी बहुत हैं। साध्वी छगनांजी की मनःस्थिति विचित्र देखी। वह दश दिन से नींद नहीं ले रही है। आज हमने उनको समझाया। साध्वी पिस्तांजी उनकी अच्छी सेवा कर रही है। मैंने आज उनको नींद की गोली लेने के लिए कहा। शायद निद्रा आने से शान्ति हो जाए।

यहां रहने वाले सभी मुनि पुनः अभिनन्दन और अभिवन्दन करते हुए अत्यधिक उल्लास का अनुभव करते हैं।

विनयप्रणत

मुनि नथमल

(वि. सं. २०२२, फाल्गुन कृष्णा एकादशी, १५ फरवरी, १९६६, हिसार, हरियाणा)

वर्धापना आगम-कार्य की

अर्हम्

तिविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा–नाणाराहणा दंसणाराहणा चरित्ताराहणा

आगम शोधकार्य ज्ञान की बहुत बड़ी आराधना है। इसमें संलग्न साधु-साध्वियां बड़ी निष्ठा से कार्य कर रहे हैं। मुझे बहुत-बहुत प्रसन्नता है। अब की बार बीदासर में यह कार्य अच्छी गति से चला। हमारा विश्वास है कि पचीसवीं वीर निर्वाण शताब्दी तक इस काम को काफी अंशों में सफल बनाएंगे।

यह भगवान महावीर और उनके शासन की बहुत बड़ी सेवा होगी।

आचार्य तुलसी

सं. २०२३ दीपावली बीदासरमध्यलिखितम्।

मैं और मेरे गुरु

निवेदन साक्षात्कार की साधना के लिए

● कभी-कभी सामीप्य में भी पत्र व्यवहार हो जाता है। यद्यपि मैं अपने मन की बात साक्षात् रख सकता था और रखता भी था, फिर भी कभी-कभी अंतर्मन के उद्गार पत्र के माध्यम से आचार्यवर के सामने रख देता था। उसका उदाहरण है वि.सं. २०२३ का एक पत्र। इसमें आध्यात्मिक साधना के शिखर को छूने की उत्कंठा आचार्यवर के सामने प्रस्तुत की गई।

अर्हम्

२०२३ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा
बीदासर

तपःपूत गुरुदेव! न जाने कियच्चिरमन्तःकरणे पालिता पोषिता भावना शब्द-जगति प्राकट्यमायाति। स्मरामि १९८७ माघ शुक्लाया दशम्या दिनम्, यस्मिन् दिवसे एकादशवर्षीयोहं परमपूजनीयश्रीकालूगणिनो विमलाभ्यां करकमलाभ्यां दीक्षितो भवं, मात्रा सह, तेरापंथ शासने। स्मरामि तद्दिनम्, यस्मिन् दिवसे (दशमी-दिवसे एव) श्रीकालूगणिना शिक्षार्थं समुपढौकितोहं तव चरणयोः।

स्मरामि तद्दिनम्, यस्मिन् दिवसे श्रीडूंगरगढ़ चातुर्मास्ये (२००२) षोडशवर्षीयमध्ययनं तव चरणयोः संवर्तमानं समापनमनयम्। स्मरामि तानि-तानि दिनानि, येषु दिवसेषु बहुविधासु प्रवृत्तिषु प्रवर्तितोऽहं तव कल्याणमय्या दृशा।

मन्येऽहं–न केवलं भगवता विद्यां प्रापितोऽहं, किन्तु–'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्–इति भावनाशिखरमपि समारोहितोऽस्मि।

मन्येऽहं–न केवलं भगवता शास्त्राभ्यासे प्रवणमतिः कृतोऽहं किन्तु शास्त्र-साक्षात्कारायापि प्रेरितोऽस्मि।

मम मनसि चिरकालतः काचिदेका प्रबला प्रोत्कण्ठा प्रचकास्ति। शृणोम्यहं–अस्ति खल्वात्मनि अनन्तं ज्ञानम्, अनन्त आनन्दः, अनन्तं वीर्यम्–किमिदं शब्द-बोध्यं परोक्षमेव, उताहो प्रत्यक्षीकर्तुमपि शक्यम्? विश्वसिमि चाऽहं, प्रत्यक्षीकर्तुं शक्यमिदम्।

"आगम शोधकार्य ज्ञान की बहुत बड़ी आराधना है। इसमें संलग्न साधु-साध्वियां बड़ी निष्ठा से कार्य कर रहे हैं। मुझे बहुत-बहुत प्रसन्नता है। अब की बार बीदासर में यह कार्य अच्छी गति से चला। हमारा विश्वास है कि पचीसवीं वीर निर्वाण शताब्दी तक इस काम को काफी अंशों में सफल बनाएंगे। यह भगवान महावीर और उनके शासन की बहुत बड़ी सेवा होगी।"

एतदर्थं समयस्य विशिष्टं नियोजनमपेक्ष्यते। पूर्वं ममेच्छासीत् पञ्चचत्वारिंशद् वर्षेभ्यः पश्चात् एतत् कर्तुं निवेदयिष्यामि भगवते। किन्तु आगमसंपादनादिकार्याणि सम्मुखमागतानि, तेन तथाविधः प्रयत्नो दुःशको जातः। इदानीमहमिच्छामि–एकपञ्चाशद्वर्षानान्तरं तस्मिन् प्रयत्ने स्यामहं नियोजितः।

तदा साहित्यजगति समुच्छ्वसतो मम पञ्चविंशतिवर्षाणि समतिक्रान्तानि भविष्यन्ति। सहजतृप्तस्य तथा भगवतः कृपादृष्ट्या सुपरितृप्तस्य मम नास्ति काचिदपूर्णात्वानुभूतिः। अनुभवामि बहुवारम्–

पूर्णमिदं पूर्णमदः, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते॥

अहं बहू समुत्सुकोस्मि साक्षात्कारसाधनां (प्रत्यक्षीकरणप्रयोगान्) कर्तुमिह। सा मया आदृतव्या भगवतः प्रसादपूर्वकम्। अनुभवाम्यहं–एतदर्थं भगवतो मनसि चापि महती तृष्णा विद्यते।

तस्या विधिमहममूदृशमभिलषामि–अहोरात्रे घंटाचतुष्टयं साहित्यसाधनायै तथाऽपरस्मै स्याद् व्यतीतं, शेषसमयः साक्षात्कारायैव।

यद्यपि तेरापंथसंघेन सह मम गाढं प्रेम विद्यते। शैशवादेव कश्चिदचिन्तनीयः सहजोनुरागोस्ति। एतादृशस्य संघस्यास्तित्वं प्रति मम हार्दिकी शुभाशंसास्ति। अहं खल्वेतेन संघेन तावान् उपकृतोस्मि यावान् शब्दराशिरस्ति तमुपकारं व्यक्तिं नेतुम्। तत्रापि परमवन्दनीयकालूगुरोर्भगवतश्च तवानिर्वचनीयोस्ति मयि समुपकारः। नीतोस्मि भगवता संघेन च विशिष्टां स्थितिम्–तथापि एकत्वसाधनामभिलषामीति विचित्रमिव प्रतिभातं भवति। परन्तु विधिरसौ संघस्य निश्रेयसाय भविष्यति तथास्मिन् वैज्ञानिक-बौद्धिकयुगे अनुसन्धानप्रिये जने-जने स एव धर्मसंघः स्थैर्यं प्राप्स्यति वा अस्तित्वं लप्स्यस्यते, यस्य पृष्ठभूमौ धर्मस्य साक्षात्कारपद्धतिः स्पष्टा भविष्यति, भविष्यति च प्रयोगपरिपुष्टा प्रकटानुभूतिः। अस्मिन् प्रसंगेहं तानपि मुनिवरान् प्रति निवेदयितुमिच्छामि, ये नियमेषु आदरं ख्यापयन्तोऽपि क्वचिदहिंसां विस्मृतिं नयन्ति। ते आत्मसाधनायै कांश्चिद् विशिष्टान् प्रयोगाननुसरेयुः–अनेन विधिना न तेषां क्षोभो न च गणेऽपि कश्चित् क्षोभः स्यात्। सम्प्रदायस्य स्थितिः संप्रदायरीत्यैव भविष्यति। व्यवहारमार्गातिक्रमेण सम्प्रदायो नात्मानं धर्तुं क्षमेत। तेन विशिष्टसाधनामिच्छवः साम्यपूर्वकमेव तस्या मार्गश्चयनीयः।

ममेच्छासंपूर्तौ पञ्चवर्षाणि सन्त्यवशिष्टानि तथापि पूर्वनिवेदनस्य प्रयोजनमिदम्–भगवता एतादृशी व्यवस्था सृष्टा स्यात्, येन तदानींतनः क्रमः सुखं संपादितः स्यात्।

२०२३ विनयावनतः
कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा **मुनि नथमलः**
बीदासरः

अर्हम्

तपःपावन गुरुदेव! पता नहीं, कितने समय से मेरे अन्तःकरण में पालित और पोषित भावना शब्द-जगत् में प्रकट हो रही है। मैं स्मरण करता हूं वि.सं. १९८७ माघ शुक्ला दशमी का दिन, जिस दिन मैं

ग्यारह वर्ष की अवस्था में माता (बालूजी) के साथ तेरापंथ शासन में परम पूजनीय श्री कालूगणी के पवित्र करकमलों से दीक्षित हुआ।

मुझे वह दिन भी याद है, जिस दिन (दशमी के दिन ही) श्री कालूगणी ने शिक्षा के लिए मुझे आपके चरणों में सौंपा।

मुझे स्मरण है वह दिन, जिस दिन श्रीडूंगरगढ़ (२००२) चतुर्मास में मैंने अपने सोलह वर्षों से चल रहे अध्ययन का आपके चरणों में समापन किया था।

स्मरण करता हूं मैं उन उन दिनों को, जिन दिनों आपकी कल्याणमयी दृष्टि ने मुझे अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों में नियोजित किया था।

मैं मानता हूं–पूज्यवर आपने मुझे केवल विद्या ही प्राप्त नहीं कराई, किन्तु 'अध्यात्म विद्या विद्याओं की जननी है'–इस भावना शिखर का भी आरोहण कराया है।

मेरा मानना है–पूज्यश्री ने केवल मेरी मति को शास्त्रकार्य में संलग्न नहीं किया, किन्तु शास्त्र-साक्षात्कार के लिए भी मुझे प्रेरित किया है।

मेरे मन में चिरकाल से एक प्रबल और उत्कृष्ट उत्कण्ठा है। मैं सुनता हूं–आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति है। क्या वह शब्द बोध्य और परोक्ष ही रहेगा अथवा प्रत्यक्ष भी किया जा सकता है? मेरा विश्वास है–इसे प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

इसके लिए समय का विशेष रूप से नियोजन करना अपेक्षित है। पहले मेरी इच्छा थी कि पैंतालीस वर्षों के पश्चात् ऐसा करने के लिए मैं पूज्यश्री से निवेदन करूंगा, किन्तु आगम-सम्पादन आदि कार्य सम्मुख आ गए, इसलिए उस प्रकार का प्रयत्न करना कठिन हो गया। अब मेरी इच्छा है कि इक्यावन वर्षों के पश्चात् मैं उस प्रयत्न में नियोजित बनूं, तब साहित्य जगत् में कार्य करते हुए मेरे पचीस वर्ष बीत जाएंगे। वैसे सहज संतुष्ट पूज्यश्री की कृपादृष्टि से मैं पूर्णतया संतुष्ट हूं। मुझे कोई अपूर्णता की अनुभूति नहीं होती। मैं अनेक बार अनुभव करता हूं।

'यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण निकलता है–प्रकट होता है। पूर्ण का पूर्ण लेकर पूर्ण ही अवशिष्ट रहता है।'

मैं अब साक्षात्कार की साधना (प्रत्यक्षीकरण के प्रयोग) करने के लिए अति समुत्सुक हूं। आपश्री के अनुग्रह से वह मुझे मिल सकती है। मैं अनुभव करता हूं कि इसके लिए आपश्री के मन में भी तीव्र तृष्णा है।

मैं उसकी विधि इस रूप में चाहता हूं–रात-दिन में चार घंटे साहित्य साधना तथा दूसरे कार्यों के लिए व्यतीत हों, शेष समय साक्षात्कार के लिए ही लगे।

यद्यपि तेरापंथ संघ के साथ मेरा गहरा प्रेम है। बचपन से ही कोई अचिन्त्य सहज अनुराग है। ऐसे संघ के अस्तित्व के प्रति मेरी हार्दिक शुभाशंसा है। मैं इस संघ से उतना उपकृत हूं जितनी शब्द राशि उस उपकार को व्यक्त कर सकती है। उसमें भी परम वन्दनीय कालूगुरु और पूज्यश्री आपका मेरे पर अनिर्वचनीय उपकार है। मैंने आपश्री और संघ से विशेष स्थिति को प्राप्त किया है, फिर भी मैं एकाकी साधना की कामना करता हूं, यह विचित्र-सा लगता है। परन्तु यह विधि संघ के कल्याण के लिए होगी। वैसे इस अनुसन्धानमय वैज्ञानिक और बौद्धिक युग में वही धर्म जन-जन में स्थिरता को प्राप्त कर सकेगा अथवा अस्तित्व को पा

"इस अनुसन्धानमय वैज्ञानिक और बौद्धिक युग में वही धर्म जन-जन में स्थिरता को प्राप्त कर सकेगा अथवा अस्तित्व को पा सकेगा, जिसकी पृष्ठभूमि में धर्म की साक्षात्कार पद्धति स्पष्ट होगी और प्रयोगों से परिपुष्ट प्रत्यक्षानुभूति होगी।"

सकेगा, जिसकी पृष्ठभूमि में धर्म की साक्षात्कार पद्धति स्पष्ट होगी और प्रयोगों से परिपुष्ट प्रत्यक्षानुभूति होगी। इस प्रसंग में मैं उन मुनिवरों को भी निवेदन करना चाहता हूं, जो नियमों में आदर दिखाते हुए भी कभी अहिंसा को भुला देते हैं, उन्हें भी आत्मसाधना के लिए कुछ विशिष्ट प्रयोगों का अनुसरण करना चाहिए। इस विधि से न उनको असंतोष हो सकता है और न गण में भी कोई असंतोष। सम्प्रदाय की स्थिति सम्प्रदाय की रीति से ही होगी। व्यवहार मार्ग को छोड़ कर सम्प्रदाय आत्मा को धारण करने में समर्थ नहीं हो सकता, इसलिए विशिष्ट साधना के इच्छुक साधकों को समतापूर्वक ही साधना का मार्ग चुनना चाहिए।

मेरी इच्छा संपूर्ति में पांच वर्ष अवशिष्ट हैं, फिर भी पूर्व निवेदन का प्रयोजन यह है–आपश्री के द्वारा ऐसी व्यवस्था का सृजन हो, जिससे उस समय यह क्रम सुखपूर्वक सम्पादित हो सके।

२०२३, कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा — विनयावनत
बीदासर — **मुनि नथमल**

संदेश नवमासिक प्रयोग पर

● वि.सं. २०३३ का एक प्रसंग। आचार्यश्री ने कहा–तुम ध्यान का विशेष प्रयोग करना चाहते हो, इस बार उसकी विशेष योजना बना लो। मैंने नव-मासिक योजना प्रस्तुत की। आचार्यवर ने उसे चिन्तनपूर्वक स्वीकृति दे दी। मैं कुछ साधुओं के साथ विहार कर सुजानगढ़ से लाडनूं चला गया। शुभ मुहूर्त्त देखा। उसके अनुसार फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को साधना का प्रारम्भ होना था।

त्रयोदशी का सूर्योदय हो रहा था। मैं साधना के लिए मानसिक स्तर पर तैयारी कर रहा था। उसी समय शुभकरणजी दसानी और श्रीचंदजी बैंगानी आए और उन्होंने आचार्यवर के सन्देश की प्रतिलिपि मेरे हाथ में थमा दी।

अर्हम्

मुनि नथमलजी!

अभी रात की ठीक दस बजे हैं। शुभकरण दसानी मेरे पास बैठा है, श्रीचन्द बैंगानी भी। प्रसंग चल पड़ा तुम्हारा। तुम कल सवेरे (फा. सुद १३) लाडनूं जैन विश्व भारती के शुभ प्रांगण में साधना का एक विशिष्ट प्रयोग प्रारंभ कर रहे हो। इसके लिए मैं कुछ लिखूं। क्या लिखूं? अभी इतना ही कि तुम्हारा प्रयोग सफल हो। तुम्हारी भावना सफल हो। इसके लिए मेरी अनेक-अनेक शुभकामना।

सुनो, तुम्हारा प्रयोग केवल तुम्हारा नहीं, मेरा प्रयोग है, संघ का प्रयोग है। इससे समूचा संघ लाभान्वित होगा। इसी विश्वास के साथ पुनः मंगलकामना।

२०३३ फा.सु. १२ रात, २ मार्च १९७७ — **आचार्य तुलसी**
दसानी गेस्ट हाउस, सुजानगढ़

कार्य की एकात्मकता

● मैं प्रायः आचार्यश्री के साथ रहता था, कभी-कभी कार्यवश पृथक् विहार में भी रह जाता था। वि.संवत् २०३५ के चतुर्मास के पश्चात् प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन जैन विश्व भारती में था। शिविर-

संचालन के लिए मुझे लाडनूं जाने का निर्देश मिला। हम दोनों के बीच में केवल भावात्मक तादात्म्य ही नहीं था, कार्य की एकात्मकता भी चलती थी। १९७८ का एक पत्र उसका स्वयंभू प्रमाण है–

महाप्राण! ज्योतिपुंज! आचार्यप्रवर!

तुम्हारी सतत प्रवाही करुणा और आशीर्वाद से प्रसन्न और प्रणत हम सब श्रीचरणों में वंदना और कुशल पृच्छा संप्रेषित करते हैं।

हम मंगल कामना करते हैं–तुम्हारी शक्ति की अजस्र धारा हजारों-हजारों में शक्ति का संचार करे।

तुम्हारी स्वस्थता केवल इस महान् संघ की स्वस्थता ही नहीं है, अध्यात्म की धारा में त्राण खोजने वाली समूची मानव जाति की स्वस्थता है। उसके लिए मंगलकामना करते हैं और उसके प्रति उपेक्षा न हो, यह अनुरोध भी।

उपस्थित सभी मुनिजनों के प्रति हम सबकी समादर पूर्वक यथायोग्य वंदना और सुखपृच्छा।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी से सुखपृच्छा। तुम्हारा स्वास्थ्य अब ठीक होगा। स्वास्थ्य के प्रति उपेक्षा न बरतें। उपस्थित सभी साध्वियों से सुखपृच्छा।

श्री चरणों के अनुग्रह से हम सब कुशल हैं।

१. प्रेक्षा-शिविर

शिविरों का क्रम श्रीडूंगरगढ़ से शुरू हुआ, वह आज ३१ दिसम्बर को संपन्न हो रहा है। यह दिसम्बर का महीना हमारे लिए शिविरों का महीना रहा। तीसरे शिविर में जितने प्राध्यापक आने वाले थे, वे सब नहीं आ सके, फिर भी इस शिविर की दो विशिष्ट उपलब्धियां हैं–

१. भावक्रिया का व्यापक स्वरूप में प्रतिपादन।

२. एक नई विद्या-शाखा की परिकल्पना।

• २५ दिसम्बर को प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा के पांच सूत्रों की मैं व्याख्या कर रहा था। टांटियाजी उपस्थित थे। उनका ध्यान भावक्रिया तथा प्रतिक्रिया विरति इन दो सूत्रों पर गया और उन्होंने २६ दिसम्बर के सूर्योदय होते-होते आकर कहा–मेरे हाथ में एक ऐसा मानदंड आ गया है, जिसके आधार पर सब साधना पद्धतियों और दर्शनों की समीक्षा की जा सकती है। इस विषय में उनके दो वक्तव्य हो गए, दो और संभव हैं।

• २८ दिसम्बर की रात को भार्गव जी का प्रश्न था–नैतिक शिक्षा के विषय में बहुत उलझन भरा। मैंने उसका समाधान किया पर मैंने उसे पूरा समाधान नहीं माना। २९ दिसम्बर के प्रातःकाल ध्यान के समय उसका समाधान सूझा, वह सबके सामने रखा, सबमें एक नई उत्सुकता जाग गई और उस समाधान के कारण तुलसी अध्यात्म नीडम् पर एक बहुत बड़ा नया दायित्व आ गया है। मुझे विश्वास है तुम्हारी शक्ति से हम उस दायित्व का भलीभांति निर्वाह करेंगे और शिक्षा के क्षेत्र में धर्म, अध्यात्म या नैतिकता की नई दिशा उद्घाटित होगी। पूरी रूपरेखा दर्शन होने पर प्रस्तुत करेंगे। तुम्हारा आशीर्वाद उपलब्ध होने पर उसकी क्रियान्विति होने लगेगी।

मुनि किशनलालजी और मुनि महेन्द्रजी का शिविर संचालन में बहुत सहयोग रहता है, उसे मैं शिविर की सफलता और मेरे श्रम को घटाने की दिशा में बहुत मूल्यवान मानता हूं।

“
तुम कल सवेरे (फा. सुद १३) लाडनूं जैन विश्व भारती के शुभ प्रांगण में साधना का एक विशिष्ट प्रयोग प्रारंभ कर रहे हो। इसके लिए मैं कुछ लिखूं। क्या लिखूं? अभी इतना ही कि तुम्हारा प्रयोग सफल हो। तुम्हारी भावना सफल हो। इसके लिए मेरी अनेक-अनेक शुभकामना। सुनो, तुम्हारा प्रयोग केवल तुम्हारा नहीं, मेरा प्रयोग है, संघ का प्रयोग है। इससे समूचा संघ लाभान्वित होगा।
”

२. आगम कार्य

प्रथम शिविर के पश्चात् मैं एक से चार बजे तक स्वास्थ्य निकेतन (भिक्षु विहार) में जाने लगा। वहां सूत्रकृतांग के टिप्पणों के पुनर्निरीक्षण और शब्द सूची के चिंतनीय संस्कृत सूत्रों को देखने का कार्य शुरू किया, वह चल रहा है। मुनि श्रीचंदजी और मुनि दुलहराजजी तत्परता से यह कार्य कर रहे हैं। मुनि सुमेरमलजी पाठ मिलाने का कार्य कर रहे हैं।

सूत्रकृतांग की संस्कृत छाया और अनुवाद धारने का कार्य लगभग पूरा हो जाएगा।

३. आगम कोश

यह कार्य साध्वी कनकश्रीजी, यशोधराजी और अशोकश्रीजी एक-दो दिन में शुरू कर रही हैं। टांटियाजी और बनर्जी के साथ बैठकर उसकी रूपरेखा बना ली गई है।

४. अध्ययन गोष्ठियां

सत्यरंजन बनर्जी के पांच वक्तव्य भाषा विज्ञान और प्राकृत पर हुए। काफी अच्छे रहे।

सूत्रकृतांग पर मुझे दो वक्तव्य देने थे, एक हो चुका है। पातंजल-योग-दर्शन पर भी एक हो चुका है, एक शेष है।

५. डॉ. नथमलजी टांटिया का ज्ञान बहुत व्यापक है। उनका लाभ हमें उठाना चाहिए। वे स्वयं काम नहीं कर सकते। उनसे काम लिया जा सकता है। उनकी प्रकृति को समझकर एक व्यवस्था की गई है। तदनुसार–

मुनि दुलहराजजी 'जैन न्याय का विकास' का अंग्रेजी अनुवाद उनसे करवा रहे हैं। एक घंटा।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी और निर्वाणश्रीजी जैन सिद्धान्त दीपिका का अंग्रेजी अनुवाद। एक घंटा।

साध्वी कनकश्रीजी और यशोधराजी आचारांग और बौद्ध पिटकों का तुलनात्मक कार्य। उसकी अंग्रेजी में संस्था की तीन बहनें। एक घंटा।

मुनि महेन्द्रजी दशवैकालिक अंग्रेजी अुनवाद। समय एक घंटा।

विश्वकोश–संस्था की तीन बहनों, दो साध्वियों को अभी इस कार्य में लगना है।

इस व्यवस्था की क्रियान्विति आज से शुरू हो गई है।

६. मुनि राजेन्द्रजी द्वारा भिक्षुशब्दानुशासनम् के चौथे अध्याय का कार्य पूरा हो रहा है।

७. बनर्जी से निर्युक्ति-संपादन के विषय में बात हुई है। दर्शन होने पर उसे निर्णायक रूप मिलना जरूरी है।

८. प्रेक्षाध्यान के विषय में एम.ए. के अध्ययन का क्रम शुरू हो गया। दो साध्वियां, दो बहनें, मंजू चौपड़ा उस क्रम में अध्ययन प्रारंभ कर रही हैं।

९. साध्वी कनकश्रीजी भगवती की संस्कृत छाया और साध्वी यशोधराजी आचार-चूला का कार्य कर रही हैं।

१०. अध्यापन का कार्य साध्वियों ने शुरू किया है पर अंग्रेजी पढ़ाने की व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। भार्गवजी प्रमाण मीमांसा पढ़ा रहे हैं।

सभी साधु-साध्वियां अपने-अपने कार्य में व्यवस्थित रूप से संलग्न हैं। साध्वी कस्तूरांजी का भी काफी सहयोग रहा है।

सभी छोटे-बड़े मुनि बहुत विनयभाव से कार्य कर रहे हैं और संकेत मात्र से किसी भी कार्य में लग जाते हैं, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं।

वह दिन धन्य होगा, जिस दिन श्रीचरणों का साक्षात् होगा।

३१ दिसम्बर १९७८ — विनयावनत

जैन विश्व भारती, लाडनूं — **मुनि नथमल**

सुखपाल : इतिहास की पुनरावृत्ति

● आचार्यवर गांव-गांव की यात्रा करते हुए मोमासर पधारे। वहां से मर्यादा महोत्सव के लिए राजलदेसर पधारना निश्चित था। मुझे पता चला कि आचार्यवर का स्वास्थ्य कुछ कमजोर है। रास्ता कच्चा है। पधारने में काफी दिक्कत होगी। उस समय मैंने मुनि किशनलालजी के साथ एक पत्र लिखकर भेजा। उस पत्र में थी एक प्रार्थना। मुझे विश्वास था आचार्यवर मेरी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे। आचार्यवर ने उसे स्वीकार किया, इसका मुझे बहुत संतोष है।

अर्हम्

युगप्रधान गुरुदेव!

'तुलसी अध्यात्म नीडम्' तपोभूमि बन रहा है। नित नए लोग आते हैं और उसकी परिकल्पना से बहुत प्रभावित होते हैं। लगता है एक दिन (जो बहुत दूर नहीं) वह अध्यात्म चेतना के जागरण का मुख्य केन्द्र होगा। इसलिए तुम युगप्रधान हो, तुमने युग चेतना को अध्यात्मचेतना में बदलने का वैसा स्वप्न संजोया है, जैसा बहुत कम लोग संजो पाते हैं। ऐसा बीजवपन करो, जिससे हम उस स्वप्न को साकार करने में सक्षम बनें।

जीवन विज्ञान की कल्पना ने अनेक प्रोफेसरों का ध्यान आकर्षित किया है और वे इस कार्य में अपनी सेवा देने का अनुरोध कर रहे हैं। 'विज्ञान और अतीन्द्रियज्ञान' इस शीर्षक से एक बहुत सुन्दर पुस्तक आई है।

हमारा संघ अध्यात्म चेतना के जागरण में अगुआ बने और उसे तुम्हारा नेतृत्व और पथदर्शन मिलता रहे। हम सबकी यह मंगलकामना स्वीकार करो, श्रद्धा प्रणत वंदना और सुखपृच्छा।

मेरे सहयोगी मुनि किशनलालजी, धर्मेन्द्रजी को साथ लिए आचार्यवर के दर्शनार्थ आ रहे हैं। वे हमारे संवाद-संवाहक हैं फिर पत्र द्वारा संवाद संप्रेषित करना आवश्यक नहीं लगता। फिर भी एक बात, एक छोटी सी प्रार्थना किए बिना रह नहीं सका, इसलिए पत्र लिखना आवश्यक लग रहा है।

मैंने सुना कि कालू से श्रीडूंगरगढ़ आते समय कच्चा रास्ता कुछ असुविधाजनक रहा। मोमासर से प्रस्थान करने पर फिर कच्चा रास्ता आता है। आचार्यवर ने जयाचार्य के इतिहास को बहुत दोहराया है फिर 'सुखपाल' के इतिहास की पुनरावृत्ति क्यों नहीं होनी चाहिए? यह 'सुखपाल' का प्रयोग कोई दीर्घकालीन

"आचार्यवर ने जयाचार्य के इतिहास को बहुत दोहराया है फिर 'सुखपाल' के इतिहास की पुनरावृत्ति क्यों नहीं होनी चाहिए? यह 'सुखपाल' का प्रयोग कोई दीर्घकालीन प्रयोग नहीं है, केवल कच्चे रास्ते के लिए, सिर्फ ७ कोस के लिए। आचार्यवर का स्वास्थ्य मानवजाति की अमूल्य धरोहर है। उसके लिए इतनी छोटी-सी प्रार्थना अस्वीकृत नहीं होगी, यह मुझे विश्वास है।"

प्रयोग नहीं है, केवल कच्चे रास्ते के लिए, सिर्फ ७ कोस के लिए। आचार्यवर का स्वास्थ्य मानवजाति की अमूल्य धरोहर है। उसके लिए इतनी छोटी-सी प्रार्थना अस्वीकृत नहीं होगी, यह मुझे विश्वास है।

इसमें न कोई अव्यावहारिकता है, न कोई समालोचना है और न कोई अतिरिक्तता। यह केवल समयोचित बात है इसलिए इसमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। 'सुखपाल' का प्रयोग बहुत छोटी बात है, स्वास्थ्य का ध्यान बहुत बड़ी बात है।

साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी से सुखपृच्छा।

तुम भी मेरी इस प्रार्थना में सहयोग करोगी, ऐसा मैं चाहता हूं।

मैंने यह अभ्यर्थना केवल भावनावश नहीं की है, एक यथार्थ के रूप में की है। फिर आचार्यवर जैसा देश, काल, भाव उचित समझेंगे वैसा ही करेंगे।

८.१.१९७९ श्रद्धाप्रणत

जैन विश्व भारती, लाडनूं **मुनि नथमल**

अभी-अभी तीन बजे श्रीचंद ने एक अंग्रेजी के प्रोफेसर की नियुक्ति कर दी है। एक कमी थी जिसकी ओर आचार्यवर ने संकेत किया, वह पूरी हो गई है। लुधियाना से आए हुए भूतपूर्व प्रिंसिपल हैं। इससे एक समस्या हल हो जाएगी।

श्रीचंद ने जयाचार्य की शताब्दी और साहित्य-संपादन की चर्चा की। तीन दिन पहले ही मैंने इस विषय में लिखा, वह बताया। आचार्यवर के दर्शन होने पर इस विषय में निर्णय हो सकेगा।

शालीनता और संघनिष्ठा का परिचय

● आचार्यवर ने राजलदेसर मर्यादा महोत्सव पर मुझे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर युवाचार्य महाप्रज्ञ बना दिया। आचार्यवर वहां से दिल्ली होते हुए पंजाब पधारे। मुझे कुछ मास दिल्ली प्रवास कर लाडनूं जाना था। दिल्ली प्रवास के मध्य मुनि रूपचंद्रजी संघ से बहिर्भूत हो गए। आचार्यवर का प्रस्तुत संदर्भ में एक सन्देश प्राप्त हुआ।

अर्हम्

हमने अपने धर्मसंघ की विधि के अनुसार रूपचन्द्र को वात्सल्य देकर संभालने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। अणुव्रत विहार पहुंचने पर युवाचार्य महाप्रज्ञ ने भी अपनी ओर से पूरा-पूरा वात्सल्य दिया और अपनी ओर से आश्वस्त किया। फिर भी जब उसने अपनी तरफ से एकतरफा कार्यवाही करके संघ से अलग होने की घोषणा कर दी, ऐसी स्थिति में अब हमारे लिए क्या करना बाकी रहता है? यह कहना कि मैंने अपनी समस्या आचार्यश्री के सामने रख दी है। किन्तु मेरे सामने ऐसी कोई समस्या नहीं आई है, जिसका समाधान न किया जा सके। यह कैसे संभव है कि समस्या हो और समाधान न हो। अब जबकि संघ से अपना संबंधविच्छेद कर ही लिया तो आगे की कार्यवाही पर उसके ही सोचने की बात है। महाप्रज्ञ युवाचार्य अपने रविवारीय प्रवचन में श्रावक समाज को सारी स्थिति से अवगत करा दें।

मुनि मुदितकुमार ने इतनी छोटी अवस्था में भी जिस शालीनता और संघनिष्ठा का परिचय दिया है, वह सब बाल साधुओं के लिए अनुकरणीय है। महाप्रज्ञ उसके प्रशिक्षण आदि की समुचित व्यवस्था कराएं,

और भी जितने विद्यार्थी साधु हैं, उनके शिक्षण और साधना की व्यवस्था कराएं। सबको आध्यात्मिक संस्कार से संस्कारित किया जाए।

१२ मई १९७९ **आचार्य तुलसी**

अमलोह

यात्रा पथ में परिवर्तन

आचार्यवर ने दिल्ली से लुधियाना की ओर विहार कर दिया। मैं दिल्ली में रहा। आचार्यवर की इच्छा थी कि मैं चातुर्मास जैन विश्व भारती में करूं। पर प्रयोजनवश उस चिन्तन में परिवर्तन हुआ और मुझे सन्देश मिला कि तुम लुधियाना आ जाओ।

अर्हम्

महाप्रज्ञ!

क्षेत्र स्पर्शना बलवती होती है। शुरू से ही जैन विश्व भारती के प्रांगण में ही तुम्हें रखने की इच्छा थी पर लगता है चतुर्मास हमारे साथ ही होना नियति को मान्य है अतः तुम हांसी से विहार कर पंजाब आ जाओ। शासन की प्रभावना होगी, बड़ा आनन्द रहेगा। लाडनूं मुनि महेन्द्रजी को जाना है। बड़े धैर्य व चिन्तन के साथ वहां के काम को वह गति दे। मिठास और प्रेम से सबको जीते। और किसी को उधर (लाडनूं) भेजना या रखना जरूरी समझो तो वैसा कर लेना।

साध्वी मालूजी, कमलश्रीजी आदि तथा कनकश्री, यशोधराजी आदि तुम्हारी वहां प्रतीक्षा करती होंगी पर तुम इधर आ रहे हो ठीक है। सब अच्छे के लिए हो रहा है, ऐसा मानना चाहिए।

तुम्हारे यहां आने से हमको काफी सहारा मिलेगा।

लुधियाना के धर्मपालजी, श्रीपालजी ओसवाल बड़े सम्पन्न व्यक्ति हैं। उन्होंने जैन योग पढ़ा है, प्रवचन के टेप सुने हैं। उनके मन में बड़ा आकर्षण है। अन्य लोगों की भी काफी भावना रही अतः इधर बुलाना ही ठीक समझा है।

वि.सं. २०३६, आषाढ़ कृष्णा १ **आचार्य तुलसी**

“क्षेत्र स्पर्शना बलवती होती है। शुरू से ही जैन विश्व भारती के प्रांगण में ही तुम्हें रखने की इच्छा थी पर लगता है चतुर्मास हमारे साथ ही होना नियति को मान्य है अतः तुम हांसी से विहार कर पंजाब आ जाओ। शासन की प्रभावना होगी, बड़ा आनन्द रहेगा।”

दो भावपूर्ण पत्र

• युवाचार्य की नियुक्ति के पश्चात् पहला चतुर्मास लुधियाना में हुआ। चतुर्मास की सम्पन्नता हुई। आचार्यवर ने मर्यादा महोत्सव संगरूर करने की स्वीकृति दी और मुझे मर्यादा महोत्सव के लिए लाडनूं भेजा। मैंने आचार्यवर के निर्देशानुसार लाडनूं के लिए प्रस्थान किया। आचार्यवर मेरे विहार में सहभागी बने और काफी दूर तक मुझे पहुंचाने के लिए पधारे।

वह नीम का वृक्ष, जिसकी स्मृति आज भी प्रत्यक्ष से अधिक स्पष्ट हो रही है। उस नीम के पेड़ के नीचे मैंने आचार्यवर को वंदना की। आचार्यवर ने वंदना करते समय मुझे दोनों हाथों से उठा लिया और अपने गले लगा लिया। कुछ क्षणों तक हम उसी मुद्रा में रहे। हम दोनों भाव-विभोर थे। विदा के क्षणों में न तो आचार्यप्रवर कुछ कह सके और न मैं बोल सका। गुरुदेव अपने प्रवास-स्थल की ओर पधार गए। मैंने सहयोगी सन्तों और

श्रावक-समाज के साथ आगे के लिए प्रस्थान कर दिया। अग्रनगर पहुंच कर मैंने आचार्यप्रवर को पत्र लिखा। मुनि गुलाबचन्दजी निर्मोही उसे लेकर गुरुदेव के चरणों में पहुंचे और पत्र उपहृत कर दिया। आचार्यवर ने मुनि पूनमचंदजी (गंगाशहर) के साथ पत्र भेजा। उस समय आचार्यवर और मेरी क्या मनःस्थिति थी उसका वर्णन मैंने आचार्यवर को संप्रेषित पत्र में तथा आचार्यवर ने मुझे संप्रेषित पत्र में किया है–

अर्हम्

परम पावन आचार्यवर!

प्रतीक्षे तद् दिनं पुण्यं, बालसूर्यारुणप्रभम्।
साक्षात्कारस्तवाक्षिभ्यां, यस्मिन् लब्धो भविष्यति॥

मैं बालसूर्य के समान अरुणप्रभा वाले उस पुण्य दिन की प्रतीक्षा करता हूं, जिस दिन इन आंखों से आपका साक्षात्कार होगा।

निर्निमेषं यदा चक्षुः, यदा वाग् मौनमाश्रिता।
निर्विकल्पमभूच्चित्तं, वन्दनीयः क्षणोऽस्ति मे॥

विदा लेते समय जिस क्षण मेरे नेत्र अनिमेष हो गए, वाणी मौन हो गई, चित्त निर्विकल्प हो गया, वह क्षण मेरे लिए वन्दनीय है।

निम्बस्य शीतला छाया, स्पर्शस्ते शीतलो महान्।
साधूनामथ साध्वीनां, तापं हरतु सन्ततम्॥

नीम के वृक्ष की शीतल छाया। उस छाया में मैंने गुरुदेव को वन्दना की। आचार्यवर ने मुझे अपनी बाहों में भरकर अपनी छाती से लगा लिया। आपका वह शीतल स्पर्श मेरे लिए महान् हो गया। वह शीतल स्पर्श साधु-साध्वियों के ताप का निरन्तर हरण करता रहे।

अनुरोधो न मे युक्तः, स्मर्तव्योऽस्मि यदा कदा।
स्मृतौ स्थितं प्रपश्यामि, त्वामहं सफलोऽस्म्यहम्॥

आप मुझे यदा कदा याद करते रहें, ऐसा अनुरोध करना मेरे लिए उचित नहीं है। मैं आपको अपनी स्मृति में सदा स्थित देखता रहूं, बस इतने मात्र से मैं सफल हो जाऊंगा।

वि. सं. २०३६, मार्गशीर्ष कृष्णा प्रथमा षष्ठी **महाप्रज्ञः**
९ नवम्बर, १९७९, लुधियाना, अग्रनगर

अर्हम्

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ!

सादर सुखपृच्छा। धर्मपालजी की कोठी से जब हमने चतुर्विध संघ के साथ विदा किया तब उस नीम के नीचे हम दोनों के कंठ अवरुद्ध थे। विशेष बोल नहीं पाए, पर अत्यन्त उल्लासपूर्ण वातावरण में विदाई हुई। प्रसन्नता। मार्ग में स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए सानंद विहार करना और लाडनूं विश्वभारती में यथासमय सानंद पहुंच जाना।

तुम हमारे संघ की निधि हो। मेरे मन में तुम्हारे प्रति जो हार्दिक वात्सल्य भाव है वह न वाणी का विषय है, न लेखनी का। वैसे तुम्हारे मन में भी जो श्रद्धाभाव है वह भी वैसा ही है, अनिर्वचनीय है। बस वैसा ही दोनों का भाव प्रवर्धमान रहे। हम मिले जुले प्रयत्न से शासन की दीर्घकाल तक सेवा करें, शासन को शिखर पर चढ़ाएं, यही अनंत मंगलकामना है।

शिवाः सन्तु ते पन्थानः।

९ नवम्बर १९७९ प्रातः **आचार्य तुलसी**

फिल्लोर

कार्य और मूल्यांकन

• लुधियाना से प्रस्थान कर हमने पंजाब की यात्रा की। उस यात्रा की मध्यावधि में क्षेत्र संबंधी और संघीय व्यवस्था संबंधी जो-जो प्रकल्प और अनुभव सामने आए, उन्हें मैंने गुरुदेव के सामने पत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया। उससे अनेक तथ्यों का प्रकटीकरण होता है।

अर्हम्

पूज्य गुरुदेव!

प्रज्ञा प्रजागृतिं नीता, चेतो विनिर्मलीकृतम्।
नमामि गुरवे तस्मै, अभिन्नाय ममात्मने॥

'तू कर्ता मैं तेरी कृति हूं' वर्षों पूर्व लिखित इस पंक्ति की सार्थकता अब जितनी समझ में आ रही है उतनी तब समझ में नहीं आई थी, जब जोधपुर चतुर्मास में लिखी थी।

विनम्र वंदना श्रीचरणयोः! कुशलमभिकांक्षे निरंतरम्! सर्दी का मौसम है। स्वास्थ्य के प्रति विशेष जागरूकता। सुना है अमृतसर में एक बार कुछ श्वास का भारीपन हुआ। पुनः स्वस्थता का संवाद मिला। आपकी स्वस्थता समूचे संघ की स्वस्थता है, इसलिए स्वास्थ्य की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

मैं स्वस्थ हूं, सहवर्ती सभी साधु स्वस्थ हैं। आचार्यवर के अनुग्रह से यात्रा सानन्द चल रही है। लुधियाना से रामामंडी तक मैंने अनुभव किया–फिलोर से सिरसा, टोहाना से अहमदगढ़–यह पूरा थली का विभाग बन सकता है। मंडिया काफी समृद्ध हैं, लोग सम्पन्न हैं। व्यापक श्रद्धा है। सभी प्रकार की सुविधाएं हैं। औषध भी सुलभ है। यदि सघन कार्य किया जाए तो अगले दशक में एक अध्यात्म क्षेत्र बन सकता है।

जगराओ में मुनि गुलाबचंदजी का, बरनाला में साध्वी सुंदरजी का, रामपुराफूल में साध्वी मोहनकुमारीजी का कार्य मैंने प्रत्यक्ष देखा है। उससे मुझे संतोष हुआ। हमारे साधु-साध्वियां कितना श्रम करती हैं, जनता कितनी प्रभावित होती है–यह देखने से ही पता चलता है। रामपुराफूल वाले कहते हैं–इतना बड़ा उत्सव और इतना बड़ा आयोजन किसी भी सम्प्रदाय का यहां नहीं हुआ। रामामंडी वालों का भी यही अनुमान है। रामा में तो ऐसा लगता है जैसे सारी मंडी ही अगवानी करने आ गई। हजारों हजारों की भीड़ में जैनधर्म और आचार्य तुलसी के जयघोष प्रसारित हो रहे हैं। जगराओ कुछ बड़ा है फिर भी वहां कुछ ऐसा ही था।

"तुम हमारे संघ की निधि हो। मेरे मन में तुम्हारे प्रति जो हार्दिक वात्सल्य भाव है वह न वाणी का विषय है, न लेखनी का। वैसे तुम्हारे मन में भी जो श्रद्धाभाव है वह भी वैसा ही है, अनिर्वचनीय है। बस वैसा ही दोनों का भाव प्रवर्धमान रहे। हम मिले जुले प्रयत्न से शासन की दीर्घकाल तक सेवा करें, शासन को शिखर पर चढ़ाएं, यही अनंत मंगलकामना है।"

मुझे लगता है हमारे पास कुछ देने को है। हमारे साधु-साध्वियों में संघ-संघपति के प्रति निष्ठा, आचारनिष्ठा, तत्त्वज्ञान, वक्तृत्व, अनुशासन, मर्यादामय जीवन आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो दूसरों को आकर्षित करती हैं। भीखी और जेतो का साक्षात् नहीं किया, पर साध्वी मंजूश्रीजी और चारित्रश्रीजी ने वहां भी अच्छा कार्य किया, यह लोगों से पता चला। बहुत आग्रह रहा वहां के लोगों का, पर वहां जाना संभव नहीं था।

मैंने देखा—नए विचारों, अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के प्रति जनता में अत्यन्त आकर्षण है। सभी लोग बड़ी जागरूकता के साथ इस नई धारा को देख रहे हैं और उसके प्रति आकर्षित हो रहे हैं। भटिंडा के सेठ सोहनलालजी, जिनकी धर्मशाला में ठहरे थे, ने कहा—धर्म का यह विचार भटिंडा में आज तक सुना नहीं, हरिद्वार में भी बहुत रहा हूं वहां भी नहीं सुना। यहां चातुर्मास करें, सारी व्यवस्था मैं करूंगा, फिर देखिए कितने लोग आते हैं और क्या होता है।

आचार्यवर का ऐसा ही कोई आशीर्वाद है जो हमारे हाथों में कोई नई शक्ति आई है और उसका भविष्य बहुत उन्नत है। यदि प्रत्येक क्षेत्र में एक-एक सप्ताह रहना होता तो बहुत ही कार्य संभव होता। अब आचार्यवर इन क्षेत्रों में कुछ समय लगाएं तो बहुत ही अच्छी संभावनाएं हैं।

जेतो, रामा, कालांवाली, रामपुराफूल, बरनाला, भटिंडा इनमें चातुर्मास निरन्तर हो तो विकास की संभावना है। तपा भी अच्छी नगरी है पर स्थान की सुविधा नहीं है। इसलिए वहां शेषकाल में रहना हो तो वह भी विकसित हो सकती है।

हमारा मार्ग बहुत लम्बा निकला। पहले २८० मील बताया था। हिसाब करने पर पता चला है कि लगभग ४०० मील का है। सारा क्रम ठीक चल रहा है।

आचार्यवर के सहवर्ती सभी साधु-साध्वियों के स्वास्थ्य की मंगलकामना करता हूं।

मर्यादा महोत्सव के अवसर पर मैं निकट नहीं रह पाऊंगा, यह मुझे खलता है। क्षेत्रीय दूरी आंतरिकता के बीच में नहीं आती, फिर भी कुछ कार्य नहीं किए जा सकते, जो क्षेत्रीय सन्निधि में किए जा सकते हैं।

आज बहुत आवश्यक लगता है साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों को प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण देना। मर्यादा महोत्सव के अवसर पर कभी ऐसा बड़ा शिविर संभव हो सकेगा। मैं एक बार फिर मंगलकामना करता हूं उन सबके प्रति जो आचार्यवर के चरणों में रहकर मर्यादा महोत्सव के क्षणों का लाभ लेंगे।

२८ नवम्बर १९७९

विनम्रः श्रीचरणयोः

महाप्रज्ञ

● जब मैं आचार्यवर के साथ होता तो सहचिन्तन की सुविधा होती, जब कभी अन्यत्र विहार की स्थिति आती तब वह स्थिति बदल जाती। उस समय पत्र के माध्यम से आचार्यवर अपने विचार प्रकट करते। वह पत्र मेरे लिए केवल दिशादर्शक ही नहीं होता, कर्मजा शक्ति को शतगुणित करनेवाला भी होता।

प्रस्तुत पत्र में स्थान-स्थान पर आचार्यवर की प्रसन्नता की अभिव्यक्ति, प्रोत्साहन, कर्तव्य-निर्देश, दायित्व-बोध आदि का आकर्षक रेखांकन है।

अर्हम्

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ!

तुम्हारा लाडनूं पहुंचना उतना जल्दी नहीं हो सका, जितना चाहते थे। कुछ तो रास्ता लम्बा। कुछ लोगों का अत्यंत आग्रह। विहार भी बहुत लम्बे-लम्बे करने पड़े। पर रास्ते के सभी क्षेत्रों में एक नया धर्मचक्र प्रवर्तन का सा काम किया। एक अभिनव धर्मक्रांति का प्रवाह सा बहाया। यह सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। पीछे से मैं जहां भी गया हूं–तुम्हारे प्रवास की, प्रवचनों की, कार्यक्रमों की अच्छी प्रतिक्रिया जन-जन में हो रही है। यह आह्लाद का विषय है। इससे आज के उद्भ्रांत या दिग्भ्रांत मानव को कुछ राहत मिल रही है, सुख की श्वास लेने का मौका मिल रहा है। यह भी हमारे लिए एक संतोष का विषय है।

अब तुम २० जनवरी को लाडनूं पहुंच रहे हो, ठीक उसी दिन हम संगरूर मर्यादा महोत्सव के लिए पहुंच रहे हैं।

तुमने भी देखा है–पंजाब कैसा उर्वर प्रदेश है। यहां धर्म प्रभावना एवं संघ प्रभावना की कितनी अच्छी संभावना है। क्या करें? आगामी कार्यक्रमों के कारण शीघ्रता करनी पड़ रही है। वरना एक दो वर्ष पंजाब में और लगाए जाते तो अच्छा प्रभावकारी काम होता। और क्या, आज जहां हम बैठे हैं यह भटिंडा भी पंजाब का एक अच्छा केन्द्र बन सकता है। यहां चौमासा तक किया जा सकता है। लोग तैयार हैं। पर.... समय नहीं है। खैर, अब तुम लाडनूं में सभी कार्यों को स्थिरता गंभीरता से देखना। वहां की स्थिरता और सुव्यवस्था हमारे संघ को ही नहीं, मानवता को त्राण देगी, ऐसी आशा है।

पिछले वर्ष वहां के कार्य को नहीं संभालने से जो समस्याएं बढ़ी हैं, उन सबका एक-एक करके समाधान करना है। बहुत शालीनता से काम को आगे बढ़ाना है। विशेष क्या लिखूं? तुम स्वयं विज्ञ हो, जानते हो, स्वयं दायित्व निर्वाह में सक्षम हो। इस बात की मुझे बहुत बहुत प्रसन्नता है। इस नाते मैं अपने आपको हल्का महसूस कर रहा हूं।

पुनश्च, अणुव्रत की विशेष योजना विचाराधीन है। अणुव्रत अंतर्राष्ट्रीय एवं अणुव्रत समाज संरचना का चिंतन चल रहा है। पंजाब में ही इसका प्रथम प्रयोग किया जाए, यह भी विचार आ रहा है। देखें क्या निर्णय होता है। संगरूर मर्यादा महोत्सव पर अणुव्रत सम्मेलन रखा गया है, उसी पर आखिरी निर्णय होना है। सो ज्ञात रहे। परम प्रसन्नता में रहना। स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखना। सब संतों को सीख सन्मति देते रहना। शेषं कुशलम्।

जयाचार्य साहित्य के बारे में जल्दी निर्णय करना है कि कितने विभागों में और किस रूप में प्रकाश में लाना है। शिष्य नोरतन इस विषय में काफी श्रम कर रहा है।

शिष्य महेन्द्र आदि ने भी अच्छा योग दिया है विश्व भारती के काम में। सब संतों से सुखपृच्छा।

कनकप्रभा आदि सभी साध्वियां सानंद हैं। शिष्या भत्तुजी (सरदारशहर) के साथ यह पत्र भेज रहे हैं। सब संवाद ये सुनाएंगी।

आचार्य तुलसी

भटिंडा

२.१.१९८०

“रास्ते के सभी क्षेत्रों में एक नया धर्मचक्र प्रवर्तन का सा काम किया। एक अभिनव धर्मक्रांति का प्रवाह सा बहाया। यह सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। पीछे से मैं जहां भी गया हूं–तुम्हारे प्रवास की, प्रवचनों की, कार्यक्रमों की अच्छी प्रतिक्रिया जन-जन में हो रही है।”

● सन् १९८० में हम जैन विश्व भारती, लाडनूं में थे। आचार्यवर पंजाब की यात्रा सम्पन्न कर लाडनूं की दिशा में पधार रहे थे। उस मध्यवर्ती समय में मैंने आचार्यवर की सेवा में साध्वियों के साथ एक पत्र संप्रेषित किया। उसमें जैन विश्व भारती की संभावना का विवरण है।

अर्हम्

महाप्राण! ज्योतिपुंज! गरुदेव!

विनम्र वंदना, कुशल कामना, मंगलभावना।

पंजाब की यात्रा सम्पन्न हो चुकेगी तब तक, जब यह पत्र पहुंचेगा श्रीचरणों की सन्निधि में।

पंजाब यात्रा अनेक दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। उसके संवाद भी कुछ सुखद लगते हैं। संगरूर मर्यादा महोत्सव की विशिष्टता सबको आकर्षित करने वाली रही है। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि आचार्यवर ने पंजाब में धर्मसंघ की भावी समुन्नति के लिए पर्याप्त ध्यान दिया है। राजस्थान की यात्रा में लाडनूं तथा जैन विश्व भारती का प्रांगण भी धन्य होगा, हम सब भी धन्य होंगे। यहां दीर्घ प्रवास की अपेक्षा है।

जैन विश्व भारती की प्रवृत्तियां उन्मेष ले रही हैं। पर दीर्घकालीन, स्थिर और सूक्ष्म चिंतन की मांग को गौण नहीं किया जा सकता। अतः तत्काल सब कुछ ठीक हो जाएगा, ऐसी मृगमरीचिका में मैं नहीं जाता, पर मुझे भरोसा है कि आचार्यवर के आगमन से पूर्व ही सभी व्यवस्थाएं लिखित रूप में बहुत स्पष्ट और स्थायी हो जाएंगी। जो भी निर्णय लिए जा रहे हैं, वे सब आचार संहिता के रूप में लिपिबद्ध किए जा रहे हैं। बड़ी संस्था के विकास के लिए ठोस आधार और स्पष्ट परिकल्पनाएं, व्यवस्थाएं आवश्यक होती हैं।

कार्यक्रम अब ठीक चल रहे हैं। शिविर प्रारंभ करना है। साहित्य का कार्य चल रहा है। जयाचार्य निर्वाण शताब्दी का कार्य अभी शुरू करना है। रामपुरियाजी के आने पर चिंतन प्रारंभ करना है। धर्मचंद चोपड़ा भी आएगा, तब उस पर कार्य दिशाएं निश्चित रूप में तैयार होकर आचार्यवर को निवेदित होंगी। कार्य की गुरुता है और समय की अल्पता, फिर भी विश्वास है–कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण होगा।

यहां हम सब सानन्द हैं। आचार्यवर के अनुग्रह से सब स्वस्थ हैं और प्रसन्न हैं।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी आदि सभी श्रमणियां तथा सभी श्रमणों से सुखपृच्छा। आचार्यश्री की उपासना में सब अनवरत संलग्न हैं, इसीलिए सभी कृतपुण्य हैं।

मैं भी चाहता हूं–इस पुण्य में सहभागी बनूं।

फा. कृ. ११ — विनयावनतः श्री चरणयोः

१२ फरवरी १९८० — **महाप्रज्ञः**

लाडनूं, जैन विश्व भारती

● आचार्यवर संगरूर में मर्यादा महोत्सव को सम्पन्न कर महावीर जयन्ती के लिए सरदारशहर पधारे। मैं उस समय लाडनूं में था। आचार्यवर ने उस अवसर पर एक सन्देश दिया। वह मेरे लिए एक प्रयोग बन गया और आगे बढ़ने का नया मार्ग खुल गया।

अर्हम्

महावीर जयन्ती का पुण्य पर्व देश भर में मनाया जा रहा है। यही पर्व लाडनूं जैन विश्व भारती में युवाचार्य महाप्रज्ञजी के सान्निध्य में भी अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनाया जाएगा। यह भी एक प्रयोग और विशिष्ट योग है। भगवान महावीर का जीवन विविधताओं से, विशिष्टताओं एवं विलक्षणताओं से भरा हुआ है। इसका जितना अध्ययन किया जाता है उससे नये नये उन्मेष आविष्कृत होते हैं। भगवान महावीर के जीवन की अन्यान्य विशेषताओं को एक तरफ रखकर केवल योग साधना की विशेषता को हम देखते हैं जिसका कि महाप्रज्ञजी विशेष अनुसंधान कर रहे हैं और प्रयोग भी कर रहे हैं, वह भी मानवता के लिए अथवा सम्पूर्ण मानव जाति के लिए कल्याण का पथ-दर्शन है। मेरा विश्वास है युवाचार्यजी इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे और लाडनूं जैन विश्व भारती एवं सुधर्मा सभा के माध्यम से जन-जन को नया सन्देश देंगे। इसमें हमारा पूर्ण सहयोग और आशीर्वाद उनके साथ है। भाई कन्हैयालाल फूलफगर के द्वारा वहां की प्रगति के विशेष समाचार सुनकर यहां बहुत संतोष की अनुभूति है। यहां के सब समाचारों को सुनकर वहां आनंदानुभूति होगी।

चैत्र शुक्ला द्वादशी — **आचार्य तुलसी**

वि.सं. २०३७

सरदारशहर

● महावीर जयंती के पश्चात् आचार्यश्री तुलसी ने लाडनूं की ओर विहार किया। मैंने अगवानी के लिए कुछ सन्तों को पड़िहारा भेजा। 'रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं दैवतं गुरुम्'–इस सूक्ति की भावना के साथ मैंने संस्कृत में पद्य-निबद्ध पत्र प्रेषित किया।

अर्हम्

सदा दृष्टाः सदा ज्ञाताः, सदानन्दाः स्वभावतः।
वन्द्यन्तेऽद्य सदा वन्द्याः, परं प्राप्तुमुपाश्रिताः॥

आप मेरे द्वारा सदा दृष्ट हैं, सदा ज्ञात हैं और स्वभाव से सदा आनन्दमय हैं। आप सदा वन्दनीय हैं और परम-पद को पाने के लिए संलग्न हैं। मैं यहां से आपकी वन्दना करता हूं।

सदा कुशलसंकायाः, सदा सौभाग्यशालिनः।
आचार्या अद्य पृच्छ्यन्ते, कुशलप्रश्नमीक्षया॥

आप सदा प्रसन्न और नीरोग शरीर संपन्न हैं और सदा सौभाग्यशाली हैं। फिर भी मैं यहां से अपनी दृष्टि से आचार्यप्रवर को कुशल-मंगल पूछ रहा हूं।

सदा विजयिनी यात्रा, ससंघं जायते शुभा।
सर्वे यत्र प्रमोदन्ते, तौ पादौ पुण्यशालिनौ॥

जिनकी ससंघ विजयी यात्रा सदा कल्याणमयी हो रही है और जहां सभी सहयात्री प्रमुदित हैं, वे चरण पुण्यशाली हैं।

निष्पत्तिर्गीयते लोकैः, सा जैन विश्वभारती।
अस्ति कामं प्रतीक्षायां, पूर्त्तौ धन्या भविष्यति॥

"भगवान महावीर के जीवन की अन्यान्य विशेषताओं को एक तरफ रखकर केवल योग साधना की विशेषता को हम देखते हैं जिसका कि महाप्रज्ञजी विशेष अनुसंधान कर रहे हैं और प्रयोग भी कर रहे हैं, वह भी मानवता के लिए अथवा सम्पूर्ण मानव जाति के लिए कल्याण का पथ-दर्शन है।"

जिसको लोग आपकी निष्पत्ति–अवदान मान रहे हैं, वह 'जैन विश्व भारती' आपकी अत्यधिक प्रतीक्षा कर रही है। उस प्रतीक्षा की संपूर्ति होने पर वह धन्य हो जाएगी।

स्वप्नः सार्थकतां यातः, कल्पो यातः कृतार्थताम्।
साक्षात्कारे समापन्ने, साक्षात् श्रीगुरुदैवते॥

साक्षात् पुष्यनक्षत्र के समान आपका साक्षात्कार होने पर हमारा स्वप्न सार्थक बने, हमारी कल्पना कृतार्थ हो।

(वि. सं. २०३७, वैशाख कृष्णा षष्ठी, ६ अप्रैल, १९८०, जैन विश्व भारती, लाडनूं)

संवाद और संदेश

● मैं आचार्यप्रवर की सन्निधि में रहता तब आवश्यक कार्य सहचिन्तन के साथ किया जाता। आचार्यवर से मैं जब कभी पृथक् प्रवास करता, उस समय जो कार्य करता उसका संवाद आचार्यश्री तक पहुंचा देता। आचार्यवर जैन विश्व भारती से प्रस्थान कर राणावास चातुर्मासिक प्रवास के लिए पधार गए थे। मैं जैन विश्व भारती में था। वहां जो कार्य प्रारंभ किए, उनकी सूचना समणी नियोजिका स्मितप्रज्ञा के माध्यम से आचार्यवर तक पहुंचाई गई–

पूज्य गुरुदेव!

जैन विश्व भारती में हम सब आपश्री के अनुग्रह से कुशल-मंगल हैं। कार्य सम्यक् चल रहा है। आचार्यवर के ध्यानार्थ समणी स्मितप्रज्ञा के साथ कार्य-संवाद निवेदित किए जा रहे हैं–

शिक्षण संस्था का अधिकांश कार्य समणियों के द्वारा ही व्यवस्थित किया गया है।

जैन विश्व भारती की अंतरंग व्यवस्था समणीवृंद संभाल सके इसीलिए कुछ विभागों को समणियों में इस प्रकार विभाजित किया गया है।

साधना विभाग–समणी स्थितप्रज्ञा

शिक्षा विभाग–समणी स्मितप्रज्ञा, समणी सुप्रज्ञा

शोध विभाग–समणी कुसुमप्रज्ञा

इन्होंने इन विभागों के कार्य भी शुरू कर दिए हैं।

मुमुक्षु बहिनों व समणियों के लिए एम.ए. का नवीन पाठ्यक्रम बनाया गया है, जिसमें तीन विषयों का चयन किया गया है–

१. जैन आगम २. जैन योग ३. जैन दर्शन।

इस पाठ्यक्रम से 'जैन आगमों में योग' विषय से संबंधित योग के कई ग्रंथ तैयार हो जाएंगे।

जैन विश्व भारती का कार्य ठीक चल रहा है। जौहरीजी का प्रश्न भी समाहित हो चुका है। अध्यक्ष के संबंध में ऐसा चिंतन है कि वह अधिक लचीला और समन्वयात्मक नीति वाला होना चाहिए।

२४ मई से 'समर स्कूल' का कार्य प्रारंभ हो चुका है। डॉ. टाटिया के तीन वक्तव्य हो चुके हैं। डॉ. डिगे भी यहां पहुंच गए हैं। डॉ. प्रेमसुमन जैन आने वाले हैं।

२५ मई से अध्यापकों का शिविर प्रारम्भ हो रहा है। यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

मुनि मुदितकुमारजी डॉ. टाटियाजी के पास नियमित रूप से अंग्रेजी पढ़ने व विश्वकोश का कार्य करने के लिए जाते हैं।

थली के आसपास के क्षेत्रों की स्थिति ठीक है। डूंगरमल कोठारी अभी १० दिनों से सेवा में है। बात करने से काफी बातें स्पष्ट हुई। उसने बताया था कि पूर्व परिचय के कारण ऐसे ही चला गया था। कोई विशेष बात नहीं है। लाडनूं में भी ५-१० आदमी काफी सक्रिय लग रहे हैं जैसे रूपचंदजी बैद आदि.....।

यदि उन लोगों का चातुर्मास यहां हो तो हमारा चातुर्मास वहां होना अधिक ठीक रह सकता है। ऐसा नथमलजी स्वामी एवं सभी का चिंतन है।

चातुर्मास वहां पर होना उचित होगा क्योंकि एक तो साथ में रहने की प्रबल भावना और दूसरे में वह स्थिति।

मुनि बुद्धमलजी को विहार से पूर्व सारी स्थिति समझा दी जाएगी।

यदि उनका चातुर्मास लाडनूं हो तो लाडनूं चातुर्मास के लिए विशेष चिन्तन अपेक्षित रहेगा। तारानगर में यद्यपि चातुर्मास की नियुक्ति हो चुकी है फिर भी वहां की परिस्थितियों का अंकन करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ विशेष चिन्तन करना अधिक अपेक्षित है।

मुनि सुमेरमलजी व मुनि किशनलालजी के चातुर्मास के बारे में शिविर के बाद उपयोगिता के आधार पर चिन्तन किया जाएगा।

जैन विश्व भारती, लाडनूं **महाप्रज्ञ**
२४ मई १९८२

समणी स्मितप्रज्ञा के साथ संप्रेषित संवाद आचार्यवर ने पढ़े और उसकी समीक्षा के बाद आचार्यवर ने जो संदेश दिया, वह मेरे लिए मननीय था–

महाप्रज्ञजी!

शिक्षण संस्था की शिक्षा और जैन विश्व भारती की अंतरंग व्यवस्था समणीवृंद के द्वारा कराई जाए और इस विषय में जो कार्य प्रारंभ किया है वह सही दिशा में प्रयाण है। किन्तु इसके लिए समणियों को प्रशिक्षित करना काफी अपेक्षित रहेगा। यह कार्य करना ही होगा।

मुमुक्षु बहिनों और समणियों के नवीन पाठ्यक्रम का चिंतन भी सुन्दर लगा। इसके आधार पर जैन योग एवं आगम ग्रंथ तैयार हो जाएंगे। यह योजना शायद अधिक श्रमसाध्य नहीं होगी, ऐसा लगता है।

'समर स्कूल' की कैसी उपलब्धि रहेगी, यह बाद में ज्ञात होगा। डॉ. भाटिया और डॉ. गुप्ता क्या निर्णय लेकर जा रहे हैं–यह भी ज्ञातव्य है और तदनुरूप व्यवस्था भी करनी होगी।

खासकर तुम्हारा वहां रहना काफी लाभप्रद रहा। भविष्य में भी रहना होता है तो काम की संभावना तो है ही किन्तु वह प्रश्न तो चिन्तनीय ही है जिसका संकेत किया गया है। इसलिए फिलहाल वहां रखने का निर्णय नहीं किया जा सकता। अभी कुछ दिन थोड़ा और सोच लेते हैं।

"तुम्हारा जैन विश्व भारती में रहना जितना जरूरी है तो यहां रहना भी कम जरूरी नहीं है। कुछ काम यहां के यहीं हो सकते हैं। इसीलिए यहां बुलाने का ही ध्यान है। पर एक बात है मौसम बहुत कड़ा आ गया है। हम लोग तो बहुत ठण्डक में आ गए हैं पर अब दिल्ली, पंजाब वाली सी मौसम की स्थिति है। यह थोड़ा विचार आ रहा है और इसीलिए थोड़ा मन बुलाने में हिचक रहा है।"

तुम्हारा जैन विश्व भारती में रहना जितना जरूरी है तो यहां रहना भी कम जरूरी नहीं है। कुछ काम यहां के यहीं हो सकते हैं। इसीलिए यहां बुलाने का ही ध्यान है। पर एक बात है मौसम बहुत कड़ा आ गया है। हम लोग तो बहुत ठण्डक में आ गए हैं पर अब दिल्ली, पंजाब वाली सी मौसम की स्थिति है। यह थोड़ा विचार आ रहा है और इसीलिए थोड़ा मन बुलाने में हिचक रहा है।

अगर वे लोग वहां चातुर्मास करते हैं तो मुनि बुद्धमलजी को वहीं कराना है। 'सागर' सरदारशहर, 'संघमित्रा' चूरू, 'डूंगर' राजलदेसर, 'सोहनलालजी' पड़िहारा, पानकंवरजी–जो सरदारशहर हैं–का रतनगढ़। इस तरह का चिन्तन है। अगर वे बदलते हैं तो हम भी सोच लेंगे। अभी इनको आउट नहीं करना है। केवल तारानगर का दूसरा कोई बैठा नहीं है। बाकी वहां से जो चिंतन आएगा, सोच लेंगे।

उधर संतों के सिंघाड़े हैं, और अपेक्षा हो तो मुनि किशनलाल, मुनि सुमेर आदि का यथासंभव उपयोग किया जा सकता है। सभी साधु-साध्वियां संघनिष्ठ हैं, संघ संघपति के प्रति समर्पित हैं और शासन हित के लिए वे सब कुछ करने को तैयार हैं, अतः जैसा तुम्हें जचे वैसा उपयोग के लिए सोचा जा सकता है। वे जहां चतुर्मास करें वहां मुनि बुद्धमलजी तो प्रस्तुत हैं ही, दूसरे क्षेत्रों में जहां जरूरत लगे, गहराई से सोच लिया जाए। मूलतः कोई किसी कारण से बंध जाए, उसका निकलना मुश्किल हो जाता है। बंधे नहीं ऐसा प्रयत्न हो। यहां की यात्रा अत्यधिक सानन्द चल रही है।

यहां सब स्थितियां अनुकूल हैं। जैसा सोचते थे उससे भी अधिक अनुकूल है।

सुधरी

आचार्य तुलसी

२८ मई १९८२

● अहमदाबाद की सफल यात्रा के बाद आचार्यवर ने बाव की ओर विहार किया और मुझे माउण्ट आबू भेजा। वहां प्रेक्षाध्यान का शिविर था। समणी स्मितप्रज्ञा व समणी मधुरप्रज्ञा दोनों हमारे साथ थी। वे दोनों वाव आचार्यश्री के दर्शन करने गई। उन्होंने आबू शिविर के सारे संवाद आचार्यवर के सामने प्रस्तुत किए। शुभकरण सुराणा भी समणियों के साथ था। आबू के सारे संवादों को सुनकर आचार्यवर ने समणीद्वय को अपने विचार लिखवाए। उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण बिन्दु थे–

अर्हम्

युवाचार्य महाप्रज्ञ!

अहमदाबाद में तुम्हारा पीछे रहना स्वास्थ्य की दृष्टि से और कार्य की दृष्टि से अच्छा रहा। दादा भगवान् जैसे कई अच्छे व्यक्ति सम्पर्क में आए। जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान केन्द्र की स्थापना हो गई, अच्छा हुआ। अब तुम यात्रा में हो। स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। विशेष सावधानी रखना।

समणीद्वय द्वारा वहां की सब स्थिति ज्ञात हुई, कुछ सुराणाजी के द्वारा भी। समणियों की विदेश यात्रा ३ महीने की तय की गई। ठीक है। इनका प्रथम अवसर है। विश्वास है कि इनकी यात्रा काफी सफल रहेगी। ये दोनों ही समणियां अत्यन्त निष्ठाशील, उत्साह और मनोबल से परिपूर्ण हैं फिर भी हमारे द्वारा इनका मनोबल समय-समय पर बढ़ाया जाए।

मीठालालजी वहां मिलेंगे, उनको याद दिलाना है कि जिस समय वे साधना के लिए लाडनूं से चले थे हमने अत्यन्त स्नेहिल भाव से उनकी साधना की शुभकामना की थी और एक बात कही थी कि उनकी साधना की कोई उपलब्धि हो और वह जब भी हो उसका लाभ सर्वप्रथम संघ को मिलना चाहिए। क्योंकि संघ हमारा परम उपकारी है। वे आज भी कृतज्ञता के भाव से गहरे जुड़े हुए हैं और जब भी यहां की बात करते हैं उनकी आंखें न चाहने पर भी छलछलाने लगती हैं। अब उनका आगे का कोई प्रोग्राम है या नियति पर ही है। जानकारी करना। उनकी साधना के प्रति हमारी ओर से शुभाशंसा व्यक्त करना।

साथ के सभी संत सानन्द, सकुशल और कर्मशील बने रहें।

अहमदाबाद का यह केन्द्र कैसे शक्तिशाली बने और सतत जागरूक रहे, इसके बारे में सोचते रहना है। आबू का शिविर विशेष सफल रहे, इसके लिए मुनि किशनलाल आदि को विशेष श्रमशील रहना है।

१५ जून १९८३ **आचार्य तुलसी**

वाव

संघीय व्यवस्था के संदर्भ में

● माउण्ट आबू का शिविर संपन्न कर हम आचार्यवर की दिशा में आ रहे थे। उस समय मुझे पत्र मिला। उसका संबंध व्यवस्था के साथ था। आचार्यवर के निर्देशानुसार व्यवस्था सम्पन्न की गई। मैं व्यवस्था के साथ लम्बे समय से जुड़ा हुआ था। इसलिए व्यवस्था के संपादन में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती थी।

अर्हम्

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी से सादर सुखपृच्छा।

तुम बाव में प्रेक्षाध्यान शिविर का सफल समायोजन कर इधर आ रहे हो, प्रसन्नता की बात है। स्वास्थ्य का सब तरह से ध्यान रखना है।

जालोर में शिष्य मुनि विनयकुमार मिलेगा। वह उदयपुर चतुर्मास के लिए मेवाड़ जाएगा।

उसके साथ शिष्य कुलदीप को भेजना है क्योंकि यहां से दो ठाणे विहार करके आ रहे हैं। मुनि कुलदीप अच्छी तरह से विनयकुमार के साथ जाए और उदयपुर में शासन प्रभावना में पूरा सहयोग करे।

शेषं शुभम्।

किशनगढ़ **आचार्य तुलसी**

४.७.१९८३

अर्हम्

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ!

लाडनूं जैन विश्व भारती में कुशलक्षेमपूर्वक हो। प्रसन्नता। हम आज प्रातः १०.३० बजे सानन्द सकुशल रतनगढ़ पहुंच गए हैं। पड़िहारा की यात्रा आशानुरूप सफल रही। क्षेत्र में अपूर्व उत्साह परिलक्षित हुआ। कमी केवल आपश्री की रही। नवदीक्षित मुनि पृथ्वीराज को भेज रहे हैं। 'भवितव्यं भवत्येव' के अनुसार इच्छा न होने के बावजूद इनको भेजना ही पड़ा। कभी नियति भी अपना काम करती है। पृथ्वी

> "अहमदाबाद में तुम्हारा पीछे रहना स्वास्थ्य की दृष्टि से और कार्य की दृष्टि से अच्छा रहा। दादा भगवान् जैसे कई अच्छे व्यक्ति सम्पर्क में आए। जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान केन्द्र की स्थापना हो गई, अच्छा हुआ। अब तुम यात्रा में हो। स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। विशेष सावधानी रखना।"

बहुत विवेकी एवं समर्पित साधु है। पहुंचने पर बोरावड़ की ओर विहार करा देना। पहुंचने की व्यवस्था ठीक हो जाए। मुनि रवीन्द्र इसको साथ लेकर अहमदाबाद की ओर विहार कर देगा। अशोक इधर आ जाएगा। बचपन का ही परिचय दिया। खैर! सब संतों से साध्वियों से सुखपृच्छा। विश्व भारती का यह प्रवास विशेष उद्देश्य से और आकस्मिक हुआ है उसकी सार्थकता और सफलता की भूयो भूयो मंगलभावना।

रतनगढ़ **आचार्य तुलसी**

१७.२.१९९३

● आगम सम्पादन कार्य के लिए अनेक बार मुझे आचार्यवर से पृथक् विहार करना पड़ा, कभी-कभी जैन विश्व भारती के लिए भी। बीदासर मर्यादा महोत्सव के बाद मैं कार्यवश जैन विश्व भारती में गया। वहां जो प्रवृत्तियां चल रही थी, उनका संक्षिप्त विवरण मैंने गुरुदेव के सामने प्रस्तुत किया।

अर्हम्

महाप्राण पूज्य गुरुदेव!

श्रीचरणों में विनम्र वंदना, सुखपृच्छा। आचार्यवर का स्वास्थ्य हम सबके लिए स्वास्थ्य-सन्निधि बने।

आचार्यवर के अनुग्रह से हम सब सानंद हैं। जो करणीय था, उसका गति-क्रम ठीक हो रहा है। कार्य बहुत गुरु और विशाल है, वह सहसा संपन्न हो जाए तो कोई चमत्कार ही मानना होगा। आपके आशीर्वाद से कभी-कभी चमत्कार की कल्पना की जा सकती है।

डॉ. देवासिया का पत्र आया है–श्रद्धापूर्ण और तथ्यपूर्ण। जून में लंदन में 'अध्यात्म और विज्ञान' विषय पर एक मासिक कार्यशाला सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक काप्रा की सन्निधि में आयोजित हो रही है। उसमें देवासिया भाग लेंगे। अपने यहां का दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करेंगे, ऐसा संभव है। जैन विश्व भारती मान्य विश्वविद्यालय में भी 'अध्यात्म विज्ञान' विषय पर एक संगोष्ठी भारत सरकार के सहयोग से आयोजित हो रही है।

यहां सब साधु-साध्वियां, समणियां, समण अपने अपने कार्य में संलग्न हैं।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी से सुखपृच्छा।

स्वास्थ्य ठीक रहे। आचार्यवर की सेवा का स्वर्ण अवसर मिला हुआ है, उसके लिए सौभाग्यपूर्ण साधुवाद।

महाश्रमण मुनि मुदितकुमार से सुखपृच्छा। भगवती भाष्य का कार्य व्यवस्थित रूप में चले। स्वास्थ्य का ध्यान रहे।

आचार्यवर की उपासना में तल्लीन सभी साधुओं और साध्वियों से सुखपृच्छा। सबके स्वास्थ्य, प्रसन्नता की मंगल कामना।

फा.कृ. १४ वि. संवत् २०४९ विनयावनत

२१ फरवरी १९९३ **महाप्रज्ञ**

जैन विश्व भारती, लाडनूं

• अध्यात्म साधना-केन्द्र में २२ अक्टूबर को रात्रि में पूज्य गुरुदेव उस प्रकोष्ठ में पधारे, जहां मैं बैठता था। आचार्यवर ने उस रात्रि में अपने अंतर्मन के उद्‌गार लिपिबद्ध कराए। गुरुदेव बोलते गए और मैं लिखता गया। आचार्यवर ने मेरे अनुरोध पर उस आलेख को पुनः अपने हाथों से लिखा। वह पत्र मेरे लिए सब कुछ है। उसमें आशीर्वाद है, दायित्व बोध है, प्रेरणा है, प्रोत्साहन है और शुभ भविष्य की सारी गाथाएं उत्कीर्ण हैं–

अर्हम्

मेरे अंतर मन के उद्‌गार

मैंने जो अपने आचार्यपद का विसर्जन किया है वह वास्तविक विसर्जन है। उसको औपचारिक मानने की भूल कोई न करे। स्वयं आचार्य महाप्रज्ञ तो करे ही नहीं। इससे भविष्य के चिन्तन में निश्चिन्तता रहेगी। किसी प्रकार का मानसिक संकोच रहा तो वह चिंतन सही नहीं होगा। इसीलिए मेरा पुनः पुनः आवेदन है, प्रवेदन है, निवेदन है कि संघ के शुभ भविष्य का संपूर्ण दायित्व तुम पर है। महाप्रज्ञ! आप पर है। ये शब्द इसलिए कह रहा हूं–मुझे अनुभव हो रहा है कि कभी-कभी (तुम) आशंकित रहते हो। यह मेरे विसर्जन को दुर्बल बनाता है। इसलिए मानसिक संकल्प करो–मैं अपने दायित्व को गंभीरता से लूंगा और उसी रूप में उसके निर्वाह का नितांत प्रयत्न रखूंगा।

मैं (तुलसी) स्वयं भारहीन और अपने दायित्व से निश्चिन्त रहता हुआ संघीय विकास तथा अध्यात्म और अहिंसा को व्यापक बनाने में अपना समुचित श्रम लगाता रहूंगा।

मैं अपने जीवनकाल में महाप्रज्ञ को मेरे से भी अधिक यशस्वी आचार्य देखना चाहता हूं। इसमें मेरा परामर्श और मार्गदर्शन जहां भी जरूरी समझोगे वह निश्चित उपलब्ध रहेगा।

संघ के मौलिक स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए उसे नया रूप देना, नये इतिहास का निर्माण करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य लग रहा है। इसमें अपनी अंतर्दृष्टि और जागृत प्रज्ञा का निस्संकोच प्रयोग करना है।

इस मेरे विसर्जन से जो मुझे यश और ख्याति मिली है, उसमें भी मेरे उत्तराधिकारी को मैं सहभागी बनाना चाहता हूं।

तुम अधिक स्वस्थ रहो। क्योंकि जीना जानते हो। जीने की कला तुम्हें प्राप्त है। प्राप्त ही नहीं, उसका सतत उपयोग कर रहे हो। इसीलिए मैं अपनी ओर से शुभाशंसा करता हूं कि तुम स्वस्थ रहो, ताकि हमारा संघ युग-युग तक इस जाग्रत प्रज्ञा का उपयोग कर धन्यता का अनुभव करे और जैन जैनेतर पूरे मानव समाज का सही पथदर्शन होता रहे।

वास्तव में यह दुर्लभ क्षमता हमारे संघ को पूर्वाचार्यों की संचित तपस्या से सहज प्राप्त है। इसका जितना अच्छा उपयोग हो, मानव जाति का उतना ही भला होगा।

जैन धर्म और उसका समर्थ प्रतिनिधि 'तेरापंथ' हमें विरासत में मिला है। उसके साथ अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान जैसे व्यापक कार्यक्रम भी हमारे हाथ में आए हैं। उनका उपयोग अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रारंभ हो गया है। यह मानवता के शुभ भविष्य का सूचक है।

तेरापंथ प्रबोध के इस सूक्त को हमेशा सामने रखो–'शुभ भविष्य है सामने।'

" गुरुदेव बोलते गए और मैं लिखता गया। आचार्यवर ने मेरे अनुरोध पर उस आलेख को पुनः अपने हाथों से लिखा। वह पत्र मेरे लिए सब कुछ है। उसमें आशीर्वाद है, दायित्व बोध है, प्रेरणा है, प्रोत्साहन है और शुभ भविष्य की सारी गाथाएं उत्कीर्ण हैं। "

यह आलेख आज–वि.सं. २०५१ कार्तिक कृष्णा ३, ईस्वी सन् १९९४, दिनांक २२ अक्टूबर शनिवार रात्रि के ८.३० बजे। अध्यात्म साधना केन्द्र के एक प्रकोष्ठ जिसमें महाप्रज्ञ बैठते हैं। मैंने लिखाया। शुभं भवतु।

गणाधिपति तुलसी

अर्हम्

तेरापंथ समाज–

शुभ भविष्य है सामने॥

'मेरे अन्तर्मन के उद्गार' यह आलेख मैंने सहजभाव से रात को लिखाया जो पिछले पृष्ठों में पढ़ा जा सकता है।

महाप्रज्ञ के अनुरोध पर उसी आलेख को अपनी लेखनी से लिखकर उन्हें समर्पित कर रहा हूं।

दिनांक ५ फरवरी १९९५ रविवार। माघ शुक्ला ६, वि.सं. २०५१। अध्यात्म साधना केन्द्र। नई दिल्ली। छत्तरपुर रोड़

गणाधिपति तुलसी

गमनागमन पत्रों का

● गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी प्रयोगधर्मा आचार्य थे। उन्होंने संघविकास के लिए अनेक प्रयोग किए। उनमें एक प्रयोग था–चाड़वास में स्वतंत्र मर्यादा-महोत्सव। ३० दिसम्बर, १९९६ को मैंने गुरुदेव से आशीर्वाद लेकर भिक्षु विहार, जैन विश्व भारती से प्रस्थान किया। गुरुदेव भी स्वयं चलकर संजय-वर्षा सदन तक पधारे। वहां मैंने गुरुदेव को वन्दना की। गुरुदेव ने मुझे उठाते हुए अपनी बांहों में भरते हुए छाती से लगाकर विदाई दी। अनेक साधु-साध्वियां और सैकड़ों श्रावक उस दृश्य के साक्षी थे। मैंने प्रथम रात्रि प्रवास निहालचंदजी भागचन्दजी बरड़िया के 'भाग्यश्री' भवन में किया। ३१ दिसम्बर को मैंने लौटने वाले संतों के साथ गुरुदेव को संस्कृत भाषा में पत्र भेजा। वह इस प्रकार है–

अर्हम्

परमपावनलेश्याः गुरुवराः!

धन्योऽस्मि तव शिष्यत्वं समासाद्य।

तवानन्तकृपां वक्तुं, शब्दास्तु स्वल्पतां गताः।

पूतानुभूतिरेवात्र, पश्य तां परमात्मना॥

साध्वीप्रमुखाः सततं सेवायां जागरूकाः, मधुकरप्रभृतयो मुनयोऽपि। सर्वे स्वस्था गुरुवराणां आराधनापरायणाः सुखं तिष्ठन्तु।

प्रणतः

महाप्रज्ञः

(वि.सं. २०५३, पौष कृष्णा पंचमी, ३१ दिसम्बर १९९६, भाग्यश्री भवन, लाडनूं)

परम पावन लेश्यासंपन्न गुरुवर!

आपके शिष्यत्व को पाकर मैं धन्य हूं।

आपकी अनन्त कृपा को कहने के लिए शब्द तो बहुत छोटे पड़ गए हैं। यहां उसकी पवित्र अनुभूति ही है। उसे आप परमात्मभाव से देखें।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी सतत आपकी सेवा में जागरूक हैं, वैसे ही मुनि मधुकरजी आदि सभी सन्त स्वस्थ रहते हुए गुरुवर की सेवा में तत्पर होकर सुखानुभूति करते रहें।

प्रणत

महाप्रज्ञ

(वि.सं. २०५३, पौष कृष्णा पंचमी, ३० दिसम्बर १९९६, भाग्यश्रीभवन, लाडनूं)

● प्रत्यक्ष में दर्शन अधिक काम करता है, शब्द मौन रहते हैं। परोक्ष में दर्शन मौन हो जाता है, शब्द सक्रिय बन जाते हैं। हमारा बहुत सारा व्यवहार शब्दों के आधार पर चलता है। संवाद, समाचार और पत्र लेखन की परम्परा इसीलिए स्थापित हुई कि हम परोक्ष को भी प्रत्यक्ष बना सकें। सुजानगढ़ में साधु-साध्वियों का गमनागमन और पत्रों का गमनागमन प्रारंभ हो गया। यह सिलसिला चाड़वास मर्यादा-महोत्सव तक चलता रहा। सर्वप्रथम साध्वी जिनप्रभाजी आदि कुछ साध्वियां गुरुदेव के दर्शन करने गईं। वे आते समय पत्र लेकर आईं। उसका प्रथम भाग साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने लिखा। उसके परिशेष में गुरुदेव का उदान था। प्रवचन के समय पत्र पढ़ा गया। वह सचमुच श्रद्धासिक्त था। उसने एक मानसिक आह्लाद पैदा किया। गुरुदेव के उदान में दायित्व-बोध की वह भाषा थी जिसने एक साथ सिहरन, पुलकन और अनुभव का आत्म-तोष पैदा कर दिया। पत्र का अविकल पाठ इस प्रकार है–

परम श्रद्धेय, परम प्रतीक्ष्य आचार्यप्रवर!

श्रद्धासिक्त अन्तहीन प्रणतियां।

तेरापंथ धर्मसंघ अत्यधिक गौरवशाली है, जिसे गणाधिपति गुरुदेव और आचार्यप्रवर का युगपत् नेतृत्व उपलब्ध है। आपश्री के सक्षम अनुशासन में हमारा धर्मसंघ विकास के नित नए क्षितिज उन्मुक्त कर रहा है। हम सब आध्यात्मिक विकास के उन्नत शिखरों को छू सकें, इस दृष्टि से आप अहर्निश प्रयत्नशील हैं। आपने अनिर्वचनीय कृपा कर मुझे परमाराध्य गुरुदेव की सेवा का अवसर प्रदान किया, इसके लिए कृतज्ञता ज्ञापन की बात बहुत छोटी पड़ती है। यहां गुरुदेव की मंगल सन्निधि में सब साधु-साध्वियां सानन्द हैं। अपने-अपने दायित्व के प्रति जागरूक हैं। पर गुरुदेव और आचार्यवर को एक साथ देखने की अभ्यस्त हमारी आंखें एक प्रकार से खालीपन का अनुभव कर रही हैं। वह प्रभात अधिक आह्लाददायक होगा जिस दिन आपश्री गुरुदेव का साक्षात् सान्निध्य प्राप्त करेंगे और हम अपनी आंखों एवं मन के खालीपन को भर पाएंगे।

आपश्री के प्रस्थान के बाद परमाराध्य गुरुदेव को प्रतिश्याय, श्वास-प्रकोप और हलका-सा ज्वर हो गया। श्रम तो कारण था ही, संभवतः कुछ भावनात्मक प्रभाव भी था। अब स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर गति है। प्रतिश्याय का असर अब तक है। आपश्री और संपूर्ण धर्मसंघ की मंगल भावनाओं से पूज्यवर शीघ्र ही पूर्ण आरोग्य का वरण करेंगे, ऐसा विश्वास है।

“प्रत्यक्ष में दर्शन अधिक काम करता है, शब्द मौन रहते हैं। परोक्ष में दर्शन मौन हो जाता है, शब्द सक्रिय बन जाते हैं। हमारा बहुत सारा व्यवहार शब्दों के आधार पर चलता है। संवाद, समाचार और पत्र लेखन की परम्परा इसीलिए स्थापित हुई कि हम परोक्ष को भी प्रत्यक्ष बना सकें।”

यह समय आपश्री के लिए अतिरिक्त श्रम का समय है। सही समय पर भोजन और विश्राम नहीं होता होगा। प्रवचन, जनसंपर्क, अध्यापन, साधु-साध्वियों की अंतरंग संभाल आदि बहुत कार्य सामने रहते हैं। स्वास्थ्य की उपेक्षा न हो, यह प्रार्थना है। आज जिनप्रभाजी आदि साध्वियां सुजानगढ़ से यहां आईं। आपके सुख-संवाद पाकर प्रसन्नता हुई। आप समय-समय पर मुझे भी दिशादर्शन और प्रेरणा देने की कृपा करते रहें। मेरे योग्य कोई सेवाकार्य हो तो दिशा-निर्देश दिलाते रहें।

आदरास्पद महाश्रमणजी को आपश्री की सेवा में रहने का सौभाग्य मिला है। उनका समर्पण और विनम्रभाव सबके लिए अनुकरणीय है। महाश्रमणजी आदि सभी संतों को वंदना एवं सुखपृच्छा ज्ञात हो।

यहां से साध्वी कल्पलताजी आदि सब साध्वियों की ओर से हार्दिक भाव से वंदना।

लाडनूं **कनकप्रभा**

७ जनवरी, १९९७

मैंने पत्र लिखकर परमाराध्य गुरुदेव को निवेदन किया तो आपने फरमाया कि मेरी ओर से भी कुछ पंक्तियां लिख दो। गुरुदेव के शब्दों को मैं यहां अंकित कर रही हूं–'पुनः-पुनः सुखपृच्छा और अनेकानेक शुभकामनाओं के साथ महाप्रज्ञजी से आवेदन–सुना है कि कार्य की व्यस्तता के कारण नियमित दिनचर्या में कुछ व्यवधान हुआ है। नैसर्गिक नियमित व्यक्तियों के जीवन में ऐसा कैसे हुआ? व्यस्तता होती है, बढ़ती है, बढ़ती रहे पर उससे नियमितता में कमी नहीं आनी चाहिए।

महाप्रज्ञजी! अभी तुम्हारे स्वास्थ्य पर बहुत कुछ क्या, सब कुछ निर्भर है। इसके लिए सूचित करना लगता तो अनावश्यक ही है। फिर भी मन में आया तो महाश्रमणी को लिखने के लिए प्रेरित कर दिया।'

● साध्वी जिनप्रभाजी के विहार में संभवतः कुछ विलंब हो गया। गुरुदेव ने विलंब पर ध्यान दिया और तत्काल वहां पहुंचने की प्रेरणा दी। उस प्रेरणा को तीन श्लाकों में गूंथ दिया। उस गुंफन में आशीर्वाद और निर्देश–दोनों की बोधि भी प्राप्त हुई–

व्याख्याने श्रावयिष्यन्ति, त्वद्दलं भक्तिभावितं।
पश्चाद् गतेन तत् किं स्यात्, अत एव द्रुतं व्रजेत॥
स्वस्थाः सन्तः महाप्रज्ञाः, महाश्रमणसंयुताः।
प्रतिक्षणं प्रचेष्टंतां, धर्मसंघसमृद्धये॥
यातायातोऽविधातव्यः, निर्हेतुकं पुनः पुनः,
व्यवधानं न कार्ये स्यात्, अत्र तत्र सुखं स्थिताः॥

तुम्हारे भक्तिभावित पत्र को व्याख्यान में सुनाया जाएगा इसलिए जल्दी जाओ, व्याख्यान संपन्न होने के बाद पहुंचने से क्या होगा?

महाश्रमण मुदित सहित महाप्रज्ञ स्वस्थ रहें। धर्मसंघ की समृद्धि के लिए प्रतिक्षण चेष्टा करते रहें।

निर्हेतुक बार-बार यातायात (साधु-साध्वियों का गमनागमन) न किया जाए। कार्य में व्यवधान नहीं होना चाहिए। यहां-वहां सब सुख में स्थित रहें।

• शासन-गौरव मुनि ताराचंदजी सुजानगढ़ से आचार्यवर के दर्शन के लिए जा रहे थे। मैंने उनके साथ दो पत्र प्रेषित किए।

प्रथम पत्र

अर्हम्

परम पावन पूज्य गुरुदेव!

अनुग्रह और आशीर्वाद का फल प्रतिफलित हो रहा है, प्रतिपल उसका अनुभव हो रहा है।

प्रणत वंदना और सुखपृच्छा।

हम सब सानन्द हैं। कार्यक्रम व्यवस्था के साथ चल रहा है। हमारा धर्मसंघ बहुत अनुशासित और विनीत है। इसलिए कार्य सहज-सरल हो जाता है। ऐसा धर्मसंघ सौभाग्य से ही मिलता है। आप जैसे महान् गुरु का नेतृत्व संघ को मिल रहा है, यह परम सौभाग्य है।

आंतरिक एकता और निकटता होने पर भी क्षेत्रीय दूरी आखिर दूरी ही है।

आप मेरे श्रम की चिन्ता करते हैं और मुझे लग रहा है कि गुरुदेव के अधिक श्रम का निमित्त मैं भी बना हूं।

स्वास्थ्य और श्रम की सापेक्षता सदा अपेक्षित है। गुरुदेव का स्वास्थ्य पूरे संघ के स्वास्थ्य की संजीवनी है।

हमारा सुजानगढ़ का प्रवास प्रायः संपन्न हो रहा है। काफी सुखद रहा है। साधु-साध्वियों को भी सुविधा का अनुभव हुआ है। महाश्रमण मुदितकुमार पूरी निष्ठा से सहयोगी हैं। व्यवस्था कार्य भी सम्यक् चल रहा है।

साध्वियां अपने-अपने दायित्व का सम्यक् निर्वाह कर रही हैं। मेरी दैनिक चर्या नियमित रूप से चल रही है। कभी-कभी दिन में विश्राम में व्यवधान हो जाता है।

गुरोः प्रसादः कुशलानुवादः।

प्रणत

सुजानगढ़ **महाप्रज्ञ**

९/१/१९९७

द्वितीय पत्र

अर्हम्

परमाराध्य पूज्य गुरुवर!

श्रीचरणयोः विनम्रवंदना मम, अत्रस्थितानां सर्वेषां साधूनां साध्वीनां च। सुखानुभूति निश्चयः।

१. प्रसादः पत्रसिद्धोऽसौ, लब्धो लब्धाश्च पंक्तयः।
अनुभूतं क्षणं ताभिः साक्षात्कारोऽत्र साधितः॥

"महाप्रज्ञजी! अभी तुम्हारे स्वास्थ्य पर बहुत कुछ क्या, सब कुछ निर्भर है। इसके लिए सूचित करना लगता तो अनावश्यक ही है। फिर भी मन में आया तो महाश्रमणी को लिखने के लिए प्रेरित कर दिया।"

२. पंथा दर्शयितव्योऽस्ति, येन प्रगतिरुत्तमा।
शासनस्य विकासार्थं, अव्याबाधा भवेद् मम॥

सर्वे साधवः सर्वाश्च साध्व्यः गुरुवरस्य उपासनायामासीनाः सुखप्रश्नेन प्रष्टव्याः।

प्रणतः

सुजानगढ़ **महाप्रज्ञ**

९/१/१९९७

परमाराध्य पूज्य गुरुदेव!

श्री चरणों में मेरी, यहां स्थित सभी साधु-साध्वियों की विनम्र वंदना, सुखानुभूति का निश्चय।

१. जिस क्षण मैंने पत्र-सिद्ध प्रसाद को प्राप्त किया, कृपापूर्ण पंक्तियों को पढ़ा, उस क्षण अनुभव किया मानो साक्षात्कार साध लिया है।

२. आप वह पथ दिखाएं, जिससे शासन के लिए मेरी उत्तम एवं अव्याबाध प्रगति हो।

गुरुदेव की उपासना में आसीन सब साधु-साध्वियां से सुखपृच्छा।

प्रणत

महाप्रज्ञ

● मुनि ताराचंदजी तीन दिन गुरुदेव की उपासना में रहे। वापस गुरुदेव का संदेश-पत्र लेकर आए। वह पत्र स्वयं गुरुदेव ने अपने हाथों से लिखा–

अर्हम्

सर्वं समर्पितं यस्मै, किं पत्रं तत्र प्रेष्यते।
तथापि व्यवहारोऽयं, निर्वाह्योस्ति यदा कदा॥

महाप्रज्ञाः समुदिताः, मुदितास्तत्र आसते।
श्रुत्वा मोदामहेऽत्यर्थं, वयं विवृतचेतनाः॥

मेरे परम विनीत पट्टशिष्य! धर्मसंघ के प्रभावी आचार्य महाप्रज्ञ!

सादर साभिवादन शतशः सुखपृच्छा।

शिष्य ताराचंद आदि के द्वारा वहां के सुख-संवाद तथा संदेश-पत्र प्राप्त कर सात्त्विक आनन्दानुभूति और आत्मगौरव का अनुभव हुआ।

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा का अंकन यथार्थता का अंकन है। समूचा धर्म-परिवार यहां सानंद स्वस्थ है। वहां भी ऐसा ही है। सुविदित है।

महाप्रज्ञजी!

वहां जैसी एक रिक्तता लगती है, यहां भी वैसी ही रिक्तता है। पर यह रिक्तता भी अतिरिक्त आनन्दप्रद रहेगी, ऐसा विश्वास है, क्योंकि सुचिंतित है।

यत्र-तत्र-सर्वत्र सात्त्विक स्वास्थ्य की कामना। उभयत्र प्रतिदिन सुखद संवाद प्राप्त होते रहते हैं।

तत्रस्थ सभी साधु-साध्वियों से सुखपृच्छा।

शुभं श्वोवसीयसं।

लाडनूं **गणाधिपति तुलसी**

११-१-१९९७

पुनश्च–यहां आपके विहार के बाद जैन विश्व भारती, विश्वविद्यालय के अधिकारियों, कर्मचारियों, प्राध्यापकों, अध्यापकों की गोष्ठी प्रारंभ हो गई है। यह सिलसिला चालू रहेगा।

लाडनूं की ज्ञानशाला भी कल से चालू की जा रही है। सभी सक्रिय काम होने शुरू हो गए हैं। ज्ञात रहे–अणुव्रत ग्रामों का काम भी चालू है। आप लोग निश्चिन्त रहें।

शेषं कुशलम्

महाश्रमण मुदितकुमार आदि सभी साधु-साध्वियां आचार्य महाप्रज्ञ के इंगित की आराधना करें।

गणाधिपति तुलसी

• सुजानगढ़ प्रवास में हमने ईस्वी सन् १९९६ को संपन्न कर १९९७ में प्रवेश किया। तेरह दिवसीय प्रवास योगक्षेम के साथ बीता। हम सुजानगढ़ से छापर की ओर प्रस्थान कर रहे थे। साधु-साध्वियों के कुछ सिंघाड़े थली की ओर से आए। वे गुरुदेव के दर्शन करने के लिए लाडनूं की ओर जा रहे थे। उनके साथ मैंने एक पत्र प्रेषित किया। वह संस्कृत में लिखा–

अर्हम्

परमपूज्य गुरुदेव!

विनम्रा वंदना श्रीचरणयोः। सुखपृच्छा।

गुरुवरस्य अंतरात्मोद्गताः उद्गाराः ममात्मानमांदोलयन्ति।

असीमानुकंपां प्रति नास्ति काचिद् वक्तव्यता मम सन्निधौ।

गुरुदेवस्यानुग्रहात् सर्वत्र सफलता। एतदेवाशीर्वादं इच्छामि–मम विनम्रता निरंतरं प्रवर्द्धमाना भवेत्। साध्वीप्रमुखाद्याः सर्वाः साध्व्यः मुनि मधुकरप्रभृतयः सर्वे साधवः उपासनायामालीनाः नितांतमामोदमनुभवन्तु।

इदानीं स्मृतिरेव प्रसादः। पुनः प्रणतयः श्रीचरणयोः।

सुजानगढ़ **प्रणतः महाप्रज्ञः**

१२-१-१९९७

परमपूज्य गुरुदेव!

श्रीचरणों में विनम्र वंदना, सुखपृच्छा। गुरुदेव के अंतरात्मा से निकले हुए उद्गार मेरी आत्मा को आंदोलित कर रहे हैं। आपकी असीम अनुकंपा के प्रति कहने के लिए मेरे पास कोई वक्तव्यता नहीं है।

"जिस क्षण मैंने पत्र-सिद्ध प्रसाद को प्राप्त किया, कृपापूर्ण पंक्तियों को पढ़ा, उस क्षण अनुभव किया मानो साक्षात्कार साध लिया है।"

गुरुदेव के अनुग्रह से सर्वत्र सफलता मिल रही है। मैं गुरुदेव से यही आशीर्वाद चाहता हूं कि मेरी विनम्रता निरंतर प्रवर्धमान रहे।

साध्वीप्रमुखा आदि सर्व साध्वियां, मुनि मधुकर आदि सर्व साधु गुरुदेव की उपासना में आलीन रहते हुए नितांत आमोद का अनुभव करें।

इस समय मेरे लिए तो स्मृति ही गुरुदेव का प्रसाद है। एक बार फिर गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करता हूं।

प्रणत महाप्रज्ञ

गुरुदेव के दर्शन कर संत छापर लौट आए। गुरुदेव ने संतों के साथ भावपूर्ण पत्र संप्रेषित किया। उसमें साध्वीप्रमुखा के उल्लास की अभिव्यक्ति है, सेवा में लीन संतों की जागरूकता का अंकन है और चाड़वास मर्यादा-महोत्सव की सफलता की भविष्यवाणी है।

अर्हम्

महाप्रज्ञजी!

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को तुमने यहां रखा, इससे उसके मन में कितना उल्लास है, वह समय-समय पर प्रकट हो रहे उसके उल्लास भरे उद्‌गारों से जाना जा सकता है। तुम्हारा सौंपा हुआ काम वह सजगता से कर रही है। मुनि मधुकरजी आदि सभी अपने-अपने दायित्व का वहन पूरी जागरूकता से कर रहे हैं। तुम निश्चिंत रहना।

महोत्सव बहुत हुए हैं और होते रहेंगे। चाड़वास जैसे छोटे-से गांव में जिस हर्षोत्फुल्ल वातावरण में महोत्सव की आयोजना हो रही है, विलक्षण है। गांव के छोटे-बड़े सभी लोगों का उत्साह उल्लेखनीय है।

१४ जनवरी १९९७

● हम मर्यादा महोत्सव के लिए चाड़वास पहुंचे। मर्यादा महोत्सव की व्यवस्था की। मर्यादा महोत्सव की व्यवस्था में मैं प्रतिवर्ष गुरुदेव के साथ रहता। कुछ वर्षों से व्यवस्था का काम सम्पादित करने का दायित्व मुझ पर था। चाड़वास की स्थिति भिन्न थी। आचार्यवर की अनुपस्थिति में सारा कार्य करना था। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की अनुपस्थिति में सारा कार्य करना था। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी आचार्यवर की सेवा में थी। महाश्रमण हमारे साथ थे। हमने व्यवस्था का सारा कार्य सम्पादित किया। साध्वियों की व्यवस्था का दायित्व साध्वी विमलप्रज्ञा और साध्वी विश्रुतविभा पर था। उन दोनों ने दक्षता के साथ कार्य का सम्पादन किया। पूर्ण व्यवस्था सम्पादित हो गई। उसे आचार्यवर के सामने प्रस्तुत करना मैंने मेरा धर्म समझा। न कोई निर्देश, न कोई संकेत, फिर भी मैं चाहता था गुरुदेव का पथ-दर्शन लिया जाए।

मेरा एक पत्र और व्यवस्था पत्र लेकर साध्वी विश्रुतविभा कुछ साध्वियों के साथ गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुईं। पूर्ण सामग्री का निवेदन किया। पत्र की भाषा यह है–

अर्हम्

परम महनीय पूज्य गुरुदेव!

श्रद्धाभिषिक्त वंदना, शतशः सुखैषणा। चाहता हूं निकट रहूं, पर कोई योग क्षेत्रीय दूरी बनाए हुए है।

आपका धर्मचक्र मेरे साथ है, इसलिए मैं दूरी में भी सामीप्य का अनुभव कर रहा हूं।

मर्यादा महोत्सव का कार्य सानंद संपन्न हो रहा है। गुरुदेव का अनुग्रह सर्वत्र परिलक्षित है।

क्या लिखूं, कितना लिखूं, जो कुछ है, हो रहा है, वह सब गुरु परम्परा, शासन और प्रत्यक्षतः गुरुदेव की अनुकम्पा का प्रतिफल है।

वह दिन प्रतीक्ष्य है, जिस दिन साक्षात् दर्शन होगा।

आपके नेतृत्व में हमारे धर्मसंघ ने बहुत विकास किया है और बहुत करना है।

युग की समस्या का समाधान देने की जो कला हम सबको आपने दी है, उसका चिन्तन जरूरी है। उसका अधिकतम उपयोग आवश्यक है। हमारा सार्वभौम चिन्तन तेरापंथ को अधिक तेजस्वी बनाएगा।

स्वास्थ्य के विषय में कभी-कभी चिन्तन और अनुप्रेक्षा अति आवश्यक है। भावनाएं बहुत हैं, पर सीमित शब्द शक्ति और समय अभिव्यक्ति में सक्षम नहीं है।

मुनि मधुकरजी आदि सभी साधुओं तथा सभी साध्वियों से सुखपृच्छा।

गुरुदेव की उपासना में रहने वाले सभी धन्यता का अनुभव करें।

साध्वीप्रमुखाजी स्वयं स्वस्थ रहें और गुरुदेव के स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहें।

प्रणतः

६ फरवरी १९९७ महाप्रज्ञ

पुनश्च–

चाड़वास का श्रावक समाज जिस निष्ठा से कार्य कर रहा है, वह विलक्षण है। परिपार्श्व के सभी व्यक्ति श्रद्धापूर्वक भाग ले रहे हैं।

यहां महाश्रमण मुनि मुदितकुमारजी आदि संत तथा कमलूजी आदि साध्वियां कुशल और प्रसन्न हैं।

● आचार्यवर ने उस पत्र और चातुर्मासिक व्यवस्था से संबद्ध सामग्री को पढ़कर जो सन्देश दिया उसे मैं एक धरोहर मानता हूं।

अर्हम्

महाप्रज्ञजी!

चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति के क्षेत्र में मेरी दृष्टि में तुम पूर्णरूप से सक्षम हो, फिर भी यहां सूचियां भेजीं, यह अनपेक्षित काम क्यों किया? तुम्हारा परम विनय और समर्पण भाव ही ऐसा है, जो तुम्हें अत्यधिक ऊंचाई दे रहा है।

तुम्हारे द्वारा प्रेषित परिपत्र देखे, बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत व्यवस्थित काम हुआ है। यहां से चिन्तन लेने की कोई अपेक्षा ही नहीं थी। हमें ऐसी कल्पना ही नहीं थी कि तुम वहां से सब बातें इस रूप में सूचित करोगे। चिन्तन की दृष्टि से कुछ बिन्दुओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है–

१. साध्वी गोरांजी काफी अस्वस्थ हैं। सुना है, मनोबल भी कुछ कमजोर हुआ है। उनको जोधपुर बुलाया, अच्छा किया। साध्वी मोहनांजी वृद्ध हैं। अधिक चलना उनके लिए मुश्किल है। फिर भी उनकी

“चाहता हूं निकट रहूं, पर कोई योग क्षेत्रीय दूरी बनाए हुए है। आपका धर्मचक्र मेरे साथ है, इसलिए मैं दूरी में भी सामीप्य का अनुभव कर रहा हूं।”

इच्छा है कि धीरे-धीरे चलकर भी एक बार गोरांजी से मिल लें। वहां किसी प्रकार की बाधा न हो तो इन्हें मौका दे देना चाहिए। मोहनांजी और गोरांजी–दोनों अच्छी साध्वियां हैं। अभी चातुर्मास्य के लिए क्षेत्र का नाम नहीं खोलना ठीक रहेगा।

परिपत्र के अनुसार साध्वी मोहनांजी का नाम बीदासर, समाधिकेन्द्र की सेवा में है। इन्हें जोधपुर की ओर भेजने से सेवा के लिए दूसरे सिंघाड़े की अपेक्षा होगी। और कोई व्यवस्था आसानी से बैठ जाए तो ठीक, अन्यथा मेरा चिन्तन है कि साध्वी सुप्रभा को यह मौका दे दिया जाए। अच्छा क्षेत्र है। काम करने और तैयार होने का अवसर मिलेगा। यह चिन्तन है, निर्णय नहीं। इसलिए जैसा उचित लगे, वैसा करना।

२. साध्वी मानकुमारी (सुजानगढ़) पक्षाघात से पीड़ित है। उसे केन्द्र में रखना है। सबसे अच्छा तरीका तो यही है कि उनके साथ एक ही साध्वी रहे। दो-तीन साध्वियों के रहने से व्यवस्था प्रभावित होती है। एक सक्षम साध्वी साथ में है। अपेक्षा होने पर सेवा करने वालों का सहयोग रहेगा ही। बीदासर या राजलदेसर जहां भी उचित समझो, उसे रखा जा सकता है। साध्वी कल्याणमित्रा को रखना अनिवार्य ही हो तो एक वर्ष चाकरी वालों के साथ रखा जा सकता है। आगे के लिए पहले से ही मानसिकता बनाना ठीक रहेगा। साध्वी लिछमांजी विहार करने की स्थिति में हो तो किसी सिंघाड़े के साथ रखा जा सकता है। विहार में कठिनाई हो तो लाडनूं या श्रीडूंगरगढ़ किसी भी केन्द्र की व्यवस्था हो सकती है।

३. बीदासर में दीक्षित होने वाले जिन साधु-साध्वियों को गुरुकुलवास में रखना है, उन्हें यहां भेजना जरूरी नहीं है, जैसा उचित समझो, किया जा सकता है।

४. श्रीडूंगरगढ़ में चार समणियों को दीक्षा देना अपेक्षित लगे तो दी जा सकती है।

उपर्युक्त बिन्दुओं पर जो जो चिन्तन दिया गया है, उसे अन्तिम नहीं समझा जाए। निर्णायकता सारी वहां की रहेगी। जैसा उचित लगे, किया जाए।

८.२.१९९७ **गणाधिपति तुलसी**

अर्हम्

आचार्य महाप्रज्ञजी!

सादर सुखपृच्छा।

शिष्य विनयकुमार आया। मैंने कहा है कि जहां महाप्रज्ञजी स्वेच्छा से भेजे वहीं जाना तुम्हारे लिए हितकर है। मेवाड़ अच्छा क्षेत्र है। अणुव्रत विश्व भारती का केन्द्र है। अच्छा कार्य किया जा सकता है, जबकि योजना बद्ध कार्य हो। साधारणतया चिकित्सा आज कल कहीं भी मिल सकती है। बाकी संघीय मर्यादाएं नीति रीति, केन्द्र की दृष्टि को ध्यान में रखकर कार्य किया जाए। उसने भी कहा–जैसी महाप्रज्ञजी की, आपकी दृष्टि होगी, वैसा ही करना है। अतः इसे मेवाड़ की ओर भेजना ठीक ही लगता है।

शेषं कुशलम्।

महाप्रज्ञजी आदि सभी साधु साध्वियों से सुखपृच्छा।

जैन विश्व भारती **गणाधिपति तुलसी**

६ मार्च १९९७

• ५ फरवरी १९९५ को पूज्य गुरुदेव ने मेरा 'आचार्य पद' पर विधिवत् अभिषेक किया। द्वितीय पदाभिषेक समारोह गुरुदेव की सन्निधि में आयोजित हुआ। तृतीय पदाभिषेक समारोह का आयोजन चाड़वास में था। पूज्य गुरुदेव लाडनूं में थे। आचार्यवर ने साध्वी विश्रुतविभा आदि साध्वियों के साथ 'आचार्य पदाभिषेक' समारोह के लिए भावपूर्ण संदेश प्रेषित किया। उसमें अनिर्वचनीय आत्म-तोष और अतिशय आह्लाद की अभिव्यक्ति है–

अर्हम्

मेरे परम विनीत पट्टधर शिष्य! और धर्मसंघ के प्राणवान् आचार्य महाप्रज्ञ!

५ फरवरी सन् १९९५ (वि.सं. २०५१ माघ शुक्ला ६) दिल्ली का ऐतिहासिक दिन। पदाभिषेक का भव्य समारोह। उमड़ता हुआ जन सैलाब, भीतर और बाहर अनूठा उत्साह। तेरापंथ धर्मसंघ का वह अभूतपूर्व दिन। उसके लिए 'न भूतो न भविष्यति' कहा जा सकता है। उस समारोह के दृश्य एक-एक कर आंखों के सामने आ रहे हैं।

१२ फरवरी १९९७ को चाड़वास दिल्ली बन रहा है। सबका मन प्रसन्न है। मेरा मन हर्षातिरेक से आप्लावित है। इस बार मैं दूर बैठे तुम्हारे कर्तृत्व की अनुगूंज सुन रहा हूं। तुम्हें नेतृत्व की असीम ऊंचाइयों पर देख रहा हूं। मुझे बार-बार कहा जा रहा है कि मैं वहां जाऊं, पर इस दूरी से तुम्हारी सुयश-गाथा सुनकर मुझे जिस अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव हो रहा है, उसे मैं ही जानता हूं।

महाप्रज्ञजी!

तुम पर भिक्षुशासन तेरापंथ का ही दायित्व नहीं है। आज सम्पूर्ण धर्म परम्परा और मानव जाति को मार्गदर्शन की अपेक्षा है। विश्व की इन जटिल परिस्थितियों में हमें सबको पथ दर्शन देना है।

तुम्हारी आत्मा में दर्शन, ज्ञान और चारित्र की त्रिवेणी हिलोरें ले रही है। उससे पूरा धर्मसंघ रोमांचित और उल्लसित है। इस त्रिवेणी की धाराओं से समूचे संघ को अभिष्णात करना है।

लिखते-लिखते मन में आता है कि यह सब किसके लिए लिख रहा हूं? जहां अद्वैत है, अभिन्नता है, उसके बारे में क्या लिखूं? और क्यों लिखूं? अद्वैत की स्थिति में कुछ भी लिखना कितना कठिन है, तुम स्वयं अनुभव करते ही हो। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त पत्र में इस सचाई का साक्षात्कार किया जा सकता है।

मैं जैन विश्व भारती के भिक्षु विहार में बैठा-बैठा तुम्हारे भाल पर भावनात्मक तिलक लगाकर तुम्हें वर्धापित कर रहा हूं–

चंदेसु निम्मलयरा
आइच्चेसु अहियं पयासयरा
सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु

तृतीय पदाभिषेक दिन की मंगल बेला में मेरी ओर से शुभकामनाएं स्वीकार करो....

सुचिरं जयतात् तात! चिरंजीवी तथा भव।
तेरापंथस्य संघस्य, भद्रं भूयान्निरन्तरम्॥

८ फरवरी १९९७ — **गणाधिपति तुलसी**
जैन विश्व भारती, लाडनूं

"इस बार मैं दूर बैठे तुम्हारे कर्तृत्व की अनुगूंज सुन रहा हूं। तुम्हें नेतृत्व की असीम ऊंचाइयों पर देख रहा हूं। मुझे बार-बार कहा जा रहा है कि मैं वहां जाऊं, पर इस दूरी से तुम्हारी सुयश-गाथा सुनकर मुझे जिस अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव हो रहा है, उसे मैं ही जानता हूं।"

नोट–१२ फरवरी १९९७ के पदाभिषेक दिन के उपलक्ष्य में.....

• १ फरवरी १९९७ को मर्यादा महोत्सव का मुख्य कार्यक्रम था। कार्यक्रम के मध्य साध्वी कल्पलताजी आदि चार साध्वियां पूज्य गुरुदेव के सन्देश के साथ पहुंची। साध्वियों ने वंदना विधि संपन्न कर गुरुदेव द्वारा प्रदत्त संदेश तथा चोलपट्टा, पछेबड़ी, कलात्मक प्याला आदि वस्तुएं उपहृत की। पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त संदेश तेरापंथ धर्मसंघ की अमूल्य निधि बन गए।

साधु-साध्वियों के नाम प्रदत्त विशेष सन्देश

आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में समायोजित १३३वें मर्यादा महोत्सव में समवेत साधु-साध्वियो!

तुम सब सैकड़ों किलोमीटर की पदयात्रा कर आए। मर्यादा महोत्सव में सम्मिलित होकर नई ऊर्जा पाने के लिए आए। वहां मेरी अनुपस्थिति तुमको कैसी-कैसी ही लगती होगी। पर मैं सबको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि अंतरात्मा से मैं वहीं उपस्थित हूं।

साधु-साध्वियो!

समूचे धर्मसंघ में मेरे प्रति आस्था की प्रखर अभिव्यंजना मुझे वहां आने के लिए आकृष्ट कर रही है। यह तो एक सुचिन्तित निर्णय की क्रियान्विति है, अन्यथा तुम सबके आत्मीय आवेदन पर मैं वहां पहुंचे बिना रह ही नहीं पाता। साध्वीप्रमुखा भी महाप्रज्ञजी द्वारा मेरी सेवा में नियुक्त नहीं की जाती तो वहां आए बिना कैसे रह सकती थी। महाश्रमणी के मन में साध्वी समाज के प्रति जो आत्मीय भाव और वात्सल्य है, उसे मैं भी नहीं बता सकता। मैं क्या बताऊं, सब साध्वियों की अन्तरात्मा इस बात की साक्षी है।

मेरे मन में चतुर्विध धर्मसंघ के प्रति जो आन्तरिक लगाव और अनन्य आत्मीय भाव है, उसे शब्दों से अभिव्यक्ति देना संभव नहीं लगता। मैं तो यहां तक कह सकता हूं कि ऐसा विनीत और अनुशासित जो धर्मसंघ हमें मिला है, अन्यत्र दुर्लभ है। धर्मसंघ में आचारनिष्ठा, समर्पण, विनय, भक्ति, सेवा, निस्पृहता, मर्यादानिष्ठा, गुरुदृष्टि की आराधना आदि के जो सात्त्विक भाव हैं, उनसे हमारे धर्मसंघ को बहुत ऊंचाई मिली है। मैं चाहता हूं कि ये विधायक भाव सदा प्रवर्धमान रहें। सबका चिन्तन और क्रियाकलाप संघहित में रहे। संघ की पवित्रता, तेजस्विता और गरिमा की वृद्धि के लिए सब जागरूक रहें। हमें अपने धर्मसंघ को नई ऊंचाइयां देनी हैं। उसमें सबका सहयोग आवश्यक है।

आचार्य महाप्रज्ञ हम दोनों के समवेत रूप में वहां उपस्थित हैं। उनकी उपासना मेरी उपासना है। उनके इंगित और आज्ञा की आराधना मेरी आराधना है। जहां महाप्रज्ञ वहां तुलसी, जहां तुलसी वहां महाप्रज्ञ–इस अद्वैत की अनुभूति में तुम सब सहायक बनो।

इस युग में ऐसा संघ मिला, यह हमारा सौभाग्य है। इस उपलब्धि पर प्रसन्नता का अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति–हमारे कर्तव्य की इयत्ता यही नहीं है। अन्तिम सांस तक धर्मसंघ की अभिवृद्धि के लिए प्रयास करना हमारी नैसर्गिक वृत्ति बने।

हमारा आचार और व्यवहार देखकर जन-जन की आत्मा बोले–साधना हो तो ऐसी हो। सेवा हो तो ऐसी हो। समर्पण हो तो ऐसा हो और संघ हो तो ऐसा हो।

चाड़वास मर्यादा महोत्सव के ऐतिहासिक अवसर पर विशेष पाथेय पाकर लौटते समय सभी संभागी साधु-साध्वियां नई आस्था, नए संकल्प और नए पुरुषार्थ की त्रिवेणी में अवगाहन करें और मर्यादा पुरुषोत्तम आचार्य भिक्षु की स्मृतियों से सराबोर होकर गहरी निष्ठा के साथ सहसंगान करें–

विघनहरण मंगलकरण, स्वाम भिक्षु रो नाम।
गुण ओळख सुमिरण करै, सरै अचिन्त्या काम॥

जैन विश्व भारती, लाडनूं
१३ फरवरी १९९७

गणाधिपति तुलसी

चतुर्विध धर्मसंघ के नाम प्रदत्त विशेष सन्देश

जय-जय शासन : जय मर्यादा

मेरा अभिन्न आत्मीय धर्मपरिवार चतुर्विध संघ!

उत्साह का प्रतिरूप छोटा-सा गांव चाड़वास। आचार्य महाप्रज्ञ का सान्निध्य। विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति। १३३वें मर्यादा महोत्सव की आयोजना। सर्वांगीण सफलता के लिए बहुत-बहुत मंगलकामना।

⊙ तेरापंथ धर्मसंघ का एक परम पवित्र पर्व है–मर्यादा महोत्सव।

⊙ अनुशासित और मर्यादित जीवन की सीख देनेवाला अद्वितीय उत्सव है–मर्यादा महोत्सव।

⊙ आचार्य भिक्षु और जयाचार्य की समन्वित दूरदर्शितापूर्ण सूझबूझ का फलित है–मर्यादा महोत्सव।

⊙ मर्यादा महोत्सव की मंगल बेला में आचार्य भिक्षु, श्रीमज्जयाचार्य के साथ-साथ अष्टमाचार्यश्री कालूगणी तक सभी पूर्वाचार्यों के प्रति अन्तर्मन की असीम आस्था का समर्पण।

क्या ही अच्छा होता, समग्र जैनशासन अनुशासन और संगठन की डोर से आबद्ध रहकर सम्पूर्ण मानव जाति के सामने एक उदाहरण उपस्थित कर पाता। आज तक जो नहीं हो सका, उसे अब किया जा सकता है, इस विश्वास के साथ जैनशासन की एकता के लिए हमें सतत प्रयत्नशील रहना है।

जैनशासन जनशासन बने, यह हमारा सपना है। इसके लिए जनता के जीवन-स्तर को उन्नत बनाना होगा, उसे जीने की कला का प्रशिक्षण देना होगा। जीने की कला सिखानेवाला भारत राष्ट्र आज औरों का मुहताज क्यों बन रहा है? एक समय था, जब अनुशासन एवं चरित्र के प्रति आस्था और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा–ये राष्ट्र की अस्मिता के प्रतीक थे। आज उन्हीं पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं। इस विषय में चिन्तन करते समय मन बेचैन हो उठता है। भारत क्या, पूरे विश्व की स्थिति यही है। संकट के बादल सम्पूर्ण मानव जाति पर मंडरा रहे हैं। ऐसी स्थिति में हम तटस्थ होकर देखते रहेंगे तो मानवता को बचाने का प्रयत्न कौन करेगा?

हमारे पास व्यापक दृष्टिकोण है और रचनात्मक कार्यक्रम है। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान, अहिंसा का प्रशिक्षण आदि सभी उपक्रम राष्ट्र की सफेद चादर पर लगे स्याह धब्बों को धो सकते हैं, बशर्ते इनको जीवन के साथ जोड़ा जाए। राष्ट्रीय चरित्र के दुर्ग को मजबूत रखने के लिए एक विशेष नीति निर्धारित करने की अपेक्षा है। मैं आचार्य महाप्रज्ञ से कहना चाहता हूं कि वे मर्यादा महोत्सव के अवसर पर हमारी ओर से ऐसा उद्‌बोधन दें, ऐसा कार्यक्रम प्रस्तुत करें, जो उस नीति का आधार बन सके।

“धर्मसंघ में आचारनिष्ठा, समर्पण, विनय, भक्ति, सेवा, निःस्पृहता, मर्यादानिष्ठा, गुरुदृष्टि की आराधना आदि के जो सात्त्विक भाव हैं, उनसे हमारे धर्मसंघ को बहुत ऊंचाई मिली है। मैं चाहता हूं कि ये विधायक भाव सदा प्रवर्धमान रहें।”

आगामी वर्ष हमारे सामने दो प्रमुख कार्यक्रम रहें–जैनशासन की एकता और मानवीय मूल्यों का उन्नयन। हमारा समूचा संघ इन कार्यों में पहले से संलग्न है। अब उसे सुनियोजित रूप से अपनी शक्ति का उपयोग करना है। जिन-जिन व्यक्तियों या संगठनों का इन कार्यों में विश्वास है, उनको भी सहभागी बनाना है। इसके लिए एक उपसमिति का गठन आवश्यक है, जो समग्रता से पूरा प्रारूप तैयार करे। मुझे विश्वास है कि ये कार्यक्रम जैन एकता और स्वस्थ समाज की दिशा में नए मानक स्थापित कर सकेंगे।

जैन विश्व भारती, लाडनूं — **गणाधिपति तुलसी**

१३ फरवरी १९९७

● गुरुदेव के इन तीन भावपूर्ण पत्रों के संदर्भ में मैंने लाडनूं की ओर जाने वाले संतों के साथ एक पत्र संप्रेषित किया। यह कल्पना नहीं थी कि यह मेरे जीवन का पूज्य गुरुदेव को संप्रेषित अंतिम पत्र होगा। किन्तु २३ जून १९९७ को गुरुदेव का महाप्रयाण हो गया और यह गुरुदेव को संप्रेषित अंतिम पत्र बन गया।

अन्तिम पत्र

अर्हम्

परम महनीय महामहिम पूज्य गुरुदेव!

विनम्र वंदना, सुखाशंसा।

आपका अनुग्रह शब्द-शब्द में बोल रहा है। भावात्मक तिलक सतत मन को आह्लाद दे रहा है। साध्वीप्रमुखा की विनम्रता की सुवास पूरे वातावरण में महक रही है। विनय, अनुशासन और आत्म-नियंत्रण ही हमारे संघ के चिरजीवी प्राण हैं।

गुरुदेव का सन्देश लेकर साध्वी कल्पलताजी आदि साध्वियां आई। मर्यादा-महोत्सव के पर्यावरण में एक नई पुलकन, थिरकन सी हो गई। सबने गुरु की गुरुता का अनुभव किया।

साध्वीप्रमुखा तथा मुनि मधुकरजी आदि संत सब सजग हैं, यह मेरे लिए प्रसन्नता का विषय है। सबसे सुखानुयोग और मंगलभावना।

प्रणत

१४ फरवरी १९९७ — **महाप्रज्ञ**

चाड़वास

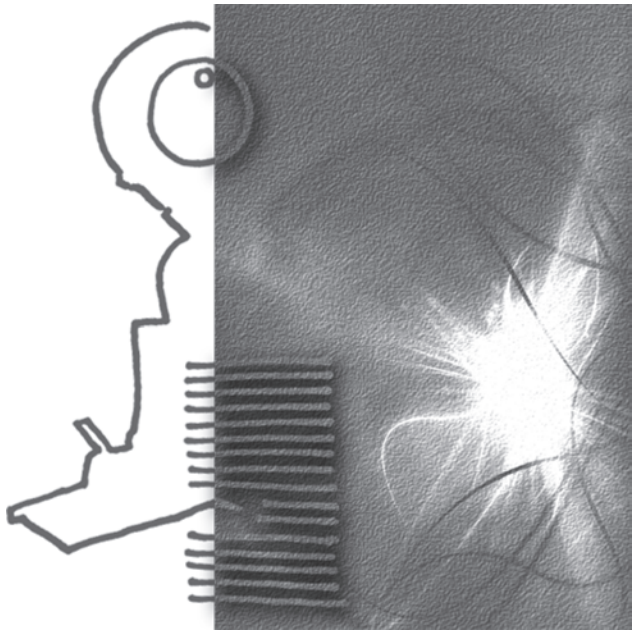

१५

आलेख : साक्षात्कार

पूज्य गुरुदेव मेरे जीवन-निर्माता और भाग्यविधाता थे। उन्होंने जितना मुझे दिया, उतना किसी गुरु ने अपने शिष्य को दिया हो, यह अन्वेषण का विषय है। उन्होंने अपने शिष्य के बारे में जितना कहा और लिखा, उतना शायद भारतीय इतिहास में किसी गुरु ने अपने शिष्य के बारे में नहीं कहा, नहीं लिखा। शिष्य की ख्याति को उन्होंने अपनी ख्याति माना, शिष्य के उत्कर्ष को अपने उत्कर्ष के रूप में स्वीकार किया। उनके आंतरिक उद्‌गारों में उनकी उदारता, महानता और प्रमोद भावना का पद पद पर साक्षात्कार होता रहा। उन्होंने न केवल अपनी डायरी में अपने भावोद्‌गार प्रकट किए अपितु कुछ विशिष्ट प्रसंगों पर आलेख भी लिखे। युवाचार्य मनोनयन और आचार्य पद पर नियुक्ति के संदर्भ में लिखे इन आलेखों में ऊर्ध्वारोहण की गाथा का सजीव चित्रण है।

“
गुरुदेव तुलसी ने शिष्य की ख्याति को अपनी ख्याति माना, शिष्य के उत्कर्ष को अपने उत्कर्ष के रूप में स्वीकार किया। उनके आंतरिक उद्‌गारों में उनकी उदारता, महानता और प्रमोद भावना का पद पद पर साक्षात्कार होता रहा।
”

युवाचार्य महाप्रज्ञ : मेरी दृष्टि में

दृष्टि वह पारदर्शी स्फटिक है, जिसके सामने से गुजरने वाला हर व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब वहां छोड़ देता है। बार-बार छोड़े गए बहुरूपी प्रतिबिम्ब एक रंग-बिरंगे गुलदस्ते के रूप में स्थिर हो जाते हैं और उनके आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विश्लेषण होता रहता है। युवाचार्य महाप्रज्ञ का व्यक्तित्व भी मेरी दृष्टि पर इस प्रकार से अंकित हो चुका है, जिससे लगभग पांच दशकों के संस्मरण अपनी व्यापक प्रस्तुति के लिए उतावले हो रहे हैं। उन सबका व्यक्तिकरण या लिपिकरण न तो संभव है और न अपेक्षित ही है। फिर भी मेरे मन में जिस स्थिति की अमिट छाप है, वह है 'अचिन्तित रूपान्तरण।' एक व्यक्ति अपने समर्पण, अपने संकल्प और अपनी साधना से कितना बदल जाता है कहां से कहां पहुंच जाता है, इसका प्रत्यक्ष निदर्शन है हमारे युवाचार्य महाप्रज्ञ, जिनकी इस यात्रा का प्रारंभ मुनि नथमल के रूप में होता है।

मुनि की भूमिका

वि.सं. १९८७, शीतकाल का समय, मर्यादा-महोत्सव का उल्लास और माघ शुक्ला दशमी का दिन। स्वर्गीय गुरुदेव पूज्य कालूगणीजी ने एक साढ़े दस वर्षीय बालक नथमल को दीक्षित कर मुझे सौंप दिया। यह सौंपना एक शैक्ष मुनि को साधु-जीवन का प्रारंभिक अवबोध कराने या अध्ययन कराने की दृष्टि से ही नहीं था, इसमें निहित थी जीवन के सर्वांगीण विकास की संभावनाओं को उभार देने की एक व्यापक दृष्टि। उस दिन से लेकर अब तक मुनि नथमलजी एक समर्पित शिष्य के रूप में मेरे पास रहे और मैं भी उनके सर्वात्मना समर्पित जीवन के रेखाचित्र में अपेक्षित रंग भरता रहा। मुनि नथमलजी की ग्रहणशीलता और मेरी सृजनधार्मिता के अन्योन्याश्रित सुयोग ने उनको युवाचार्य महाप्रज्ञ की भूमिका तक पहुंचा दिया, जिसकी मैंने उस समय कोई कल्पना ही नहीं की थी।

कालूगणी की कृपा

महाप्रज्ञ अपने मुनि जीवन के प्रारंभिक वर्षों में बहुत भोले थे। इन्होंने अपने खाने-पीने, घूमने-फिरने, बैठने-सोने, पहनने-ओढ़ने आदि के संबंध में कभी सोचने-विचारने का प्रयत्न ही नहीं किया। मैं जो कुछ कहता, उसे ये सहजभाव से कर लेते। भोजन कब करना है और क्या करना है? इस दैनंदिन कार्य में ये मेरे निर्देश की प्रतीक्षा करते रहते। वस्त्र कब सिलाने हैं और कब पहनने हैं, यह काम भी ये अपने आप नहीं करते थे। शीतकाल में स्वाध्याय करते-करते बिना ही वस्त्र ओढ़े तब तक सोते रहते, जब तक मैं इन्हें जगाकर वस्त्र ठीक ढंग से ओढ़ाकर नहीं सुला देता। इनकी गति भी विलक्षण थी। कालूगणी बहुत बार इन्हें अपने सामने दस-बीस कदम चलने के लिए कहते और जब ये टेढ़े-मेढ़े कदम भरते हुए गुरुदेव के

निकट से गुजरते तो आपको बड़ा अच्छा लगता। कालूगणी भोले-भाले मुनियों को बहुत वात्सल्य देते थे। महाप्रज्ञ भी उन भद्र मुनियों की पंक्ति में थे, जिन्हें गुरुदेव का अतिशायी स्नेह प्राप्त था। इन्हें वे बंगू, शंभू, वल्कलचीरी, हाबू या नाथू कहकर पुकारते थे।

स्थितिपालकता

महाप्रज्ञ ने अपने सहपाठी मुनि बुद्धमलजी के साथ मेरे पास अध्ययन शुरू किया। इनके अध्ययन के प्रारंभिक क्रम में मैं स्वयं इनके साथ बैठता और आधा-आधा घण्टा तक इनके साथ-साथ पद्यों का उच्चारण करता। ऐसा करने का मेरा एक ही उद्देश्य था कि इनका उच्चारण अशुद्ध न रहे। याद करने की क्षमता इनमें शुरू से ही ठीक थी, पर उस समय समझ विकसित नहीं थी। बुधमलजी इनसे अच्छा समझते थे। मेरे मन में कई बार आता था कि ये छोटी-छोटी बात को ही नहीं समझते हैं तो आगे जाकर क्या करेंगे? मैं बहुत बार इन्हें समझाने का प्रयत्न करता पर सफलता नहीं मिली। तीन साल तक ये मुझे बराबर असफल करते रहे।

अप्रत्याशित बदलाव

महाप्रज्ञ की दीक्षा के तीन-चार साल बाद कालूगणी जोधपुर की यात्रा पर थे। वहां इनकी आंखें बहुत अधिक खराब हो गईं। पहले भी आंखों की पीड़ा कई बार हो जाती थी। कभी आंखों में दाने हो जाते, कभी आंखें दुखने लगतीं, कभी कुछ और हो जाता। इनकी आंखें ठीक करने के लिए मैंने बहुत प्रयत्न किए। कभी पिप्पली, कभी नींबू का रस, कभी शहद तो कभी कुछ, पर विशेष लाभ नहीं हुआ। उस समय गर्मी का मौसम था। कालूगणी को जसोल, बालोतरा आदि क्षेत्रों की ओर जाना था। मैंने गुरुदेव से निवेदन किया–...नथमलजी की आंखें बहुत दुःख रही हैं, इन्हें यहीं छोड़ दिया जाए तो ठीक रहेगा। कालूगणी ने इनको वहां मुनिश्री हेमराजजी के पास छोड़ दिया। जोधपुर कालूगणी वापस पधारे तब तक ढाई महीनों का समय लग गया। यह समय इनके जीवन में एक बहुत बड़े रूपान्तरण का समय था। वह क्षेत्र परिपाकी क्षयोपशम था या अवस्था परिपाकी क्षयोपशम, कुछ कहा नहीं जा सकता। पर जब हम आए तो वे हमें सर्वथा बदल हुए मिले। यह बदलाव बाहर और भीतर दोनों ओर से घटित हुआ था। उस ढाई मास के छोटे से काल में इनकी समझ काफी विकसित हो गई। जो कुछ पहले का सीखा हुआ था, उसे पक्का, शुद्ध और व्यवस्थित कर लिया गया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि ये एक अबोध शिशु की भूमिका से ऊपर उठकर आत्म-बोध की भूमिका तक पहुंच गए थे।

> “एक व्यक्ति अपने समर्पण, अपने संकल्प और अपनी साधना से कितना बदल जाता है कहां से कहां पहुंच जाता है, इसका प्रत्यक्ष निदर्शन है हमारे युवाचार्य महाप्रज्ञ, जिनकी इस यात्रा का प्रारंभ मुनि नथमल के रूप में होता है।”

मेरी पाठशाला के प्रथम छात्र

नथमलजी, बुद्धमलजी आदि मेरी छोटी-सी पाठशाला के प्रथम छात्र थे। धीरे-धीरे छात्रों की संख्या में वृद्धि होती रही। कई मुनि उस क्रम में आए और चले गए पर महाप्रज्ञ बराबर बने रहे। उस समय इनके बारे में मेरी यह कल्पना नहीं थी कि इनमें कोई विलक्षणता है। उस समय न तो इनमें प्रतिभा का इतना निखार था और न ही इनके बारे में कोई संभावना थी। मेरे मन पर इनकी किसी बात का कोई प्रभाव था तो वह था इनका सहज समर्पण। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इनके निर्माण में इनके अपने समर्पण का स्थान सर्वोपरि रहा है। जैसा कहें वैसा करना, इस एक सूत्र ने इनको विकास की दिशा में अग्रसर किया। जोधपुर चातुर्मास के बाद मुझे भी इनसे कुछ आशा बंधी, जो उदयपुर और गंगापुर, इन दो चातुर्मासों में फलित होती हुई सामने आई।

गंगापुर-चातुर्मास के प्रारंभ तक ये अविच्छिन्न रूप से मेरे पास रहे। उसके बाद पूज्य गुरुदेव कालूगणी का स्वर्गवास होने के बाद मेरी स्थिति बदल गई। अब ये सेवाभावी मुनि चम्पालालजी की देखरेख में रहने लगे। वे इनकी संभाल पूरी करते थे, फिर भी ये अनमने-से हो गए। इन्हें अकेलापन-सा अनुभव होने लगा। इस कारण सहज ही ये उदास रहने लगे। मैंने एक दिन इनको अपने पास बुलाकर पूछा–तुम उदास क्यों हो? ये बोले–मेरा मन नहीं लगता। मैंने इन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि तुम मेरे पास आया करो और अपने अध्ययन के क्रम को चालू रखो। इसके बाद मैंने इनके विकास की दृष्टि से एक विशेष लक्ष्य बनाया और समय-समय पर इन्हें प्रेरणा देता रहा।

शिक्षा में नये आयाम

कालूगणी के स्वर्गवास के बाद बीकानेर-चातुर्मास में मैंने दर्शन और संस्कृत-साहित्य का विशेष अध्ययन शुरू किया। हम लोग (मैं, मुनि धनराजजी, मुनि चन्दनमलजी आदि) पण्डित रघुनन्दनजी शर्मा के पास अपना अध्ययन चलाते। भाषा और व्याकरण की दृष्टि से पंडितजी का ज्ञान विशिष्ट था, पर सैद्धान्तिक और दार्शनिक परिभाषाओं में वे रुक जाते। वहां हम लोग अपनी जानकारी का उपयोग करते। इस प्रकार एक मिले-जुले प्रयत्न से हमारी, दर्शन के संस्कृत-ग्रंथों (प्रमाण नय-तत्त्व लोकालंकार आदि) की यात्रा निर्बाध रूप से चल रही थी। उस समय मैंने महाप्रज्ञ आदि से कहा कि तुम भी अध्ययन के समय साथ रहो। कुछ समझ में आए या न आए, सुनते रहो। सुनते-सुनते एक क्रम बन गया।

वि.सं. २००१ का हमारा चातुर्मास सुजानगढ़ था, उस समय मेरे मन में आया कि हमारे धर्मसंघ में इतनी साधु-साध्वियां हैं, इनमें कोई भी उच्चकोटि का चिन्तक, लेखक और वक्ता नहीं है। काश! हमारे साधु-साध्वियां भी हिन्दी में बोल और लिख सकते। इसी बीच शुभकरण दसानी ने मुझे बताया कि कुछ मुनि हिन्दी में बहुत अच्छा लिखते हैं–कविताएं भी, निबन्ध भी, पर आपसे संकोच करते हैं, इसलिए बताते नहीं। उनमें महाप्रज्ञ भी एक थे। मैंने इनकी कविताओं को देखा, निबन्धों को पढ़ा, प्रसन्नता हुई। इसके बाद समय-समय पर संस्कृत, हिन्दी और प्राकृत भाषा में बोलने, लिखने, श्लोक बनाने का अभ्यास चलता रहा। यथासमय प्रतियोगिताओं का आयोजन, प्रोत्साहन और प्रेरणा ने थोड़े समय में अकल्पित सफलता का द्वार खोल दिया।

वि.सं. २००२ राजगढ़ चातुर्मास में एक विद्वान व्यक्ति सम्पर्क में आया। उसने तेरापंथ के बारे में साहित्य देखना चाहा। उस समय तक साहित्य-लेखन की कोई बात ध्यान में नहीं थी। छोगमलजी चोपड़ा द्वारा लिखित तेरापंथ की शार्ट हिस्ट्री नामक छोटी-सी पुस्तक हमारे धर्मसंघ का साहित्य था। मुझे एक अभाव महसूस हुआ। मैंने उसी समय इनको बुलाकर कुछ ट्रैक्ट तैयार करने के लिए कहा। 'उन्नीसवीं सदी का नया अविष्कार', 'धर्म और लोक व्यवहार', 'अहिंसा' आदि कुछ ट्रैक्ट तैयार हुए, मन को थोड़ा संतोष मिला।

वि.सं. २००२ श्रीडूंगरगढ़ चातुर्मास में धर्मदेव विद्यावाचस्पति दिल्ली से दर्शन करने आए। वे एक अच्छे वक्ता थे। उन्होंने अपने वक्तव्य में संस्कृत श्लोकों का धारावाहिक और प्रभावशाली उपयोग किया, मुझे अच्छा लगा। मैंने उसी दिन महाप्रज्ञजी आदि कुछ संतों को बुलाकर वक्तृत्व-कला के विकास तथा संस्कृत में धाराप्रवाह बोलने के लिए निरंतर अभ्यास करने का संकल्प करा दिया। अभ्यास इतना व्यवस्थित और परिपक्व हुआ कि जिसकी मुझे आशा नहीं थी।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वि.सं. २००६ तक महाप्रज्ञ इस रूप में तैयार हो गए कि हर क्षेत्र में ये मेरे सहयोगी बन गए। एक ओर ये मेरे चिन्तन के सफल भाष्यकार थे तो दूसरी ओर ये मेरे हर स्वप्न को आधार देने के लिए कटिबद्ध हो गए। यद्यपि किसी नए कार्य को प्रारम्भ करने में ये हिचकिचाते थे, किन्तु मेरे द्वारा प्रारम्भ-कार्य को परिसम्पन्नता तक पहुंचाना इनकी सहज प्रवृत्ति हो गई थी।

बीज का विस्तार

मेरे युग तक पहुंचते-पहुंचते अठारह-उन्नीस दशकों की लम्बी अवधि पार करने पर भी तेरापंथ के सिद्धान्त लोगों के गले नहीं उतर रहे थे। मैंने पाया—आचार्य भिक्षु का तत्त्व-चिन्तन मौलिक है। उनकी प्ररूपणा विलक्षण है। लोगों ने अब तक भी उसकी गहराई तक पहुंचने का प्रयास नहीं किया है। यही कारण है कि वे तेरापंथ की सैद्धान्तिक मान्यताओं का विरोध कर रहे हैं। यदि हम उन मान्यताओं को युगीन संदर्भ में प्रस्तुत कर सकें तो विरोधी वातावरण को ठीक करने में जो शक्ति और समय लगता है, उसका उपयोग किसी रचनात्मक काम में हो सकता है। मैंने अपने चिन्तन के बीज महाप्रज्ञ के सामने विकीर्ण कर दिए। उसके बाद इन्होंने उन बीजों को विस्तार दिया। भिक्षु-विचार-दर्शन तैयार होकर आ गया। प्रबुद्ध लोगों की धारणाएं बदलीं। धीरे-धीरे विरोध का कुहरा छंट गया और सत्य का सूरज दुगुने तेज से दमकने लगा।

अणुव्रत आंदोलन को लेकर भी समाज में एक तूफान खड़ा हो गया। इसकी क्या जरूरत है? अणुव्रत के नाम पर मिथ्यादृष्टि को सम्यक्दृष्टि बनाया जा रहा है, सन्त किसी आंदोलन के प्रवर्तक नहीं हो सकते आदि अनेक मुद्दों को लेकर एक हलचल हुई। नए मोड़ को लेकर भी काफी बवंडर हुआ। उस संदर्भ में मैंने अपने विचार इनको बता दिए। इन्होंने उन विचारों के साथ सैद्धान्तिक सामंजस्य स्थापित कर उन्हें संतुलित रूप में प्रस्तुत कर दिया। प्रसंग अणुव्रत का हो या अन्य किसी सिद्धान्त का, उसे तुलनात्मक दृष्टि से, व्यावहारिक दृष्टि से और सैद्धान्तिक दृष्टि से विस्तृत विवेचन के साथ प्रतिपादित कर उसका औचित्य सिद्ध कर देते। इसके बाद हमारे धर्मसंघ में जितने परिवर्तन हुए, प्राचीन धारणाओं में जितना परिमार्जन हुआ, उन सबमें ये मेरे पूरे सहयोगी रहे। किसी भी परिस्थिति में मैंने इनको अपने विचारों से प्रतिकूल होते हुए नहीं देखा।

मेरे स्वप्न साकार हुए

मैं एक स्वप्नद्रष्टा हूं। मेरे ये स्वप्न रात को नींद में नहीं आते। मैं जागृत अवस्था में सपने देखता हूं। दिन हो या रात, जब भी अवकाश मिलता है, नई कल्पनाएं करता हूं और इन्हें साकार करने के लिए महाप्रज्ञ को आमंत्रित कर लेता हूं। मेरी ये कल्पनाएं शिक्षा, साहित्य, शोध आदि अनेक विषयों से संबंधित हैं। मैं यहां कुछ कल्पनाओं को उल्लिखित कर रहा हूं—

वि.सं. २००७ की बात है। उस समय तक हमारे धर्म-संघ में एक लेख-पत्र पर प्रत्येक साधु को प्रतिदिन हस्ताक्षर करने होते थे। लेखपत्र की धाराएं बहुत उपयोगी थीं, पर वे थीं ठेठ राजस्थानी भाषा में। भाषा युगानुरूप नहीं थी। अतः उस लेखपत्र को भाषान्तरित करने की बात सूझी और वह काम इनको सौंप दिया। प्रश्न उठा कि लेखपत्र को बदलने का क्या उद्देश्य है? उद्देश्य स्पष्ट था, उसे संतों को बताकर पहले संस्कृत-भाषा में लेखपत्र का रूपान्तरण हुआ। बाद में उसे हिन्दी में कर दिया और हस्ताक्षर करने के स्थान पर प्रतिदिन प्रातःकाल उसका प्रत्यावर्तन करने का क्रम स्थिर कर दिया।

“एक ओर ये मेरे चिन्तन के सफल भाष्यकार थे तो दूसरी ओर ये मेरे हर स्वप्न को आधार देने के लिए कटिबद्ध हो गए। यद्यपि किसी नए कार्य को प्रारम्भ करने में ये हिचकिचाते थे, किन्तु मेरे द्वारा प्रारम्भ-कार्य को परिसम्पन्नता तक पहुंचाना इनकी सहज प्रवृत्ति हो गई थी।”

सामयिक साहित्य-सृजन के साथ मैंने सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक साहित्य-निर्माण की अपेक्षा अनुभव की। मैंने इनके सामने अपने मन की बात रखी। इन्होंने मेरी अनुभूति को अधिक तीव्रता से अनुभव किया और काम शुरू हो गया। मैं लिखाता गया और ये लिखते गए। लिखने के बाद उसे विस्तृत और व्यवस्थित कर दिया। जैन-सिद्धान्त-दीपिका और भिक्षु-न्याय-कर्णिका, ये दो ग्रंथ तैयार हो गए।

वि.सं. २००५ तक हमारे साधु-साध्वियों के अध्ययन हेतु कोई पाठ्यक्रम नहीं था। रूस की एक पत्रिका में मैंने वहां का पाठ्यक्रम देखा और तत्काल इन्हें बुलाकर कहा–अपने यहां भी कोई निश्चित पाठ्यक्रम होना चाहिए। मेरा संकेत इनके लिए आलम्बन था। कुछ ही समय में व्यवस्थित पाठ्यक्रम तैयार हो गया और साधु-साध्वियों ने उसके आधार पर अध्ययन शुरू कर दिया। समय-समय पर अपेक्षित संशोधन के साथ एक स्तरीय शिक्षा का क्रम चल रहा है।

महाराष्ट्र के मंचर गांव में आहार के बाद धर्मदूत नामक पत्र के पन्ने पलट रहा था। सहसा मेरा ध्यान केन्द्रित हो गया। वहां बौद्ध-पिटकों के संपादन की सूचना थी। एक क्षण का विलम्ब किए बिना मैंने इनको बुला लिया और पत्र का उल्लेख करते हुए कहा–क्या हम भी जैन-आगमों का सम्पादन नहीं कर सकते?' 'नहीं क्यों? आपकी कृपा से सब कुछ कर सकते हैं'–महाप्रज्ञ के एक वाक्य ने मुझे आश्वस्त कर दिया। फिर भी इनके धैर्य की थाह पाने के लिए मैंने कहा–काम तो बहुत बड़ा है। कैसे हो सकेगा?' बिना एक पल सोचे ये बोले–'ऐसी क्या बात है? आप जो चाहेंगे, वह काम हो जाएगा।'

उस समय आगम-सम्पादन के कार्य का न तो हमें कोई अनुभव था और न ही कोई विज्ञ व्यक्ति ही हमारे सामने था। हमने सोचा–पांच वर्ष में सारा काम हो जाएगा। उसी वर्ष काम शुरू भी कर दिया। काम करने का अनुभव जैसे-जैसे बढा, हमें लगा कि यह काम पांच क्या पचास वर्षों में भी पूरा नहीं हो सकेगा। अब तो ऐसा लगता है कि काम की कोई सीमा है ही नहीं। जितना काम करते हैं, उससे अधिक काम की नई संभावनाएं खुलती रहती हैं। ऐसा होने पर भी इनको काम भार नहीं लग रहा है। बड़ी दत्तचित्तता से आगे बढ़ रहे हैं।

साधना के क्षेत्र में भी एक अभाव-सा महसूस हो रहा था। सतरह-अठारह वर्ष पूर्व मैंने इनके सामने चर्चा की–जैनों में कोई स्वतंत्र साधना-पद्धति नहीं है। भगवान् महावीर का जीवन साधना का जीवन्त प्रतीक रहा है, किन्तु वर्तमान में कहीं भी उसका व्यवस्थित उल्लेख या प्रयोग नहीं है। क्या मैं आशा करूं कि साधना की इस अवरुद्ध धारा को हम आगे बढ़ा सकते हैं? उस दिन से एक लक्ष्य बना। अध्ययन और प्रयोग–प्रयोग और अध्ययन। निष्कर्ष के रूप में आज प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति हमारे यहां प्रचलित हो गई।

और भी अनेक घटनाएं हैं जो महाप्रज्ञ के समर्पण भाव को उजागर करने वाली हैं। उन सबके आधार पर यही कहा जा सकता है कि मैंने इनको जिस रूप में ढालना चाहा, ये ढलते गए। मैंने इनसे जो अपेक्षाएं कीं, ये पूरी करते गए। हमारे बीच में शिक्षक एवं विद्यार्थी का जो संबंध था, वह आगे जाकर गुरु-शिष्य के रूप में और फिर आगे चलकर अद्वैत रूप में स्थापित हो गया। अब मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ये मुझसे भिन्न कोई व्यक्ति हैं। जबसे मैंने इनमें अपना उत्तराधिकार नियोजित किया है, मैं इनमें अपना ही रूप देखता हूं। अपने ही प्रतिरूप को मैं प्रशस्ति की दृष्टि से देखूं, अपेक्षित नहीं लगता क्योंकि इनकी प्रशस्ति मेरा अपना आत्मख्यापन होगा। इस दृष्टि से कुछ तथ्यों की प्रस्तुति का काम पूरा कर मैं अपने अग्रिम स्वप्न संजोने में लग रहा हूं।

महाप्रज्ञ को महाप्रज्ञ ही रहना है

भारतीय साहित्य के क्षितिज पर एक द्युतिमान् नक्षत्र है 'रामायण'। अनेक भाषाओं में अनेक शब्द शिल्पियों ने रामायण की रचना की। संस्कृत के प्रखर विद्वान् महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना संस्कृत भाषा में की। मर्यादा पुरुषोत्तम राम रामायण के प्रमुख पात्र हैं। वाल्मीकि रामायण के दशरथ अपने पुत्र राम की उदात्त वृत्ति का चित्रण करते हुए कहते हैं–

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न लक्षितो मया तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥

मैंने राम को राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त करने के लिए बुलाया। वह सहज भाव से आया। परिस्थितियों ने अप्रत्याशित मोड़ लिया। उसे चौदह वर्षों का वनवास मिला। उसने स्वीकार कर लिया। ऐसा लगा मानो वह उसके लिए तैयार होकर आया हो। कहां राज्याभिषेक! और कहां वनवास! पर इन दोनों ही प्रसंगों में मैंने उसकी आकृति पर हर्ष या विषाद की छाया नहीं देखी।

श्रीराम के बारे में दशरथ का यह कथन उनकी स्थितप्रज्ञता को उजागर करता है। जैन आगमों में एक शब्द आता है ठियप्पा–स्थितात्मा। जिसकी आत्मा ज्ञान, दर्शन और चारित्र में स्थित होती है, उसे स्थितात्मा कहते हैं। महाप्रज्ञ के लिये मैं 'ठियप्पा' शब्द का प्रयोग कर रहा हूं। इनके जीवन में पग-पग पर इस शब्द के अर्थ को पढ़ा जा सकता है। इन्हें आचार्य पद के लिए आहूत किया या किसी साधारण कार्य में नियुक्त किया, इनकी मानसिकता में कोई अन्तर परिलक्षित नहीं हुआ। कठिन काम हो या सरल, अपनी रुचि का काम हो या उससे भिन्न, महाप्रज्ञ कहीं उलझे नहीं। लगता है इनकी यह वृत्ति अर्जित नहीं, नैसर्गिक है।

एक छोटे बालक या विद्यार्थी के रूप में महाप्रज्ञ मेरे पास आए, पढ़े, बढ़े और युवाचार्य बन गए। युवाचार्य के रूप में पन्द्रह वर्षों तक मेरे साथ रहे। फिर इनको आचार्य बना दिया गया। कहां एक शिशु विद्यार्थी! और कहां एक विशाल संघ के सर्वेसर्वा आचार्य! पर इनके मन में कभी हीनता या अतिरिक्तता का भाव नहीं आया। 'णो हीणे णो अइरित्ते'–आयारो के इस सूक्त को इनके जीवन-दर्पण में देखा जा सकता है।

"कहां एक शिशु विद्यार्थी और कहां एक विशाल संघ के सर्वेसर्वा आचार्य! पर इनके मन में कभी हीनता या अतिरिक्तता का भाव नहीं आया। 'णो हीणे णो अइरित्ते'–आयारो के इस सूक्त को इनके जीवन-दर्पण में देखा जा सकता है।"

विकास का प्रथम सोपान : समर्पण

समर्पण की पहली शर्त है खाली होना। जो खाली होता है, वही पाता है। जो पात्र पहले से भरा रहता है, उसमें कुछ भी नया कैसे भरा जा सकता है? समर्पण की दूसरी शर्त है ग्रहणशीलता। ढका हुआ पात्र नदी से कहे–'मैं तेरे भीतर आ रहा हूं। तू मुझे पानी देगी या नहीं?' नदी पानी देने के लिए तैयार है, पर ढक्कन खोले बिना पानी मिलेगा कैसे? पात्र ढका हुआ हो या उलटा, वह ग्रहणशील नहीं है तो उसे पानी नहीं

मिलता। खाली और ग्रहणशील हुए बिना गुरु कुछ भी नहीं दे सकता। समर्पण की नौका पर सवार होकर भी एक पैर चिन्तन की नौका पर रखने वाला शिष्य सही दिशा में आगे नहीं बढ़ पाता।

समर्पण को जानने, देखने और जीने का भी एक तरीका होता है। महाप्रज्ञ ने समर्पण को जाना है, देखा है और जीया है। इन्होंने अनुभव किया है कि विकास के शिखर तक आरोहण करने के लिए समर्पण के सोपान का सहारा लेना आवश्यक है। इसीलिए इनके चिंतन और व्यवहार के वातायन पर समर्पण की रश्मियां अठखेलियां करती रहती हैं। ये बहुत बार कहते हैं–'गुरुदेव! आप मेरे नियोक्ता हैं। आप मुझे जिस दिशा में नियुक्त करेंगे, मैं उसी दिशा में आगे बढ़ता रहूंगा।' मेरा नियोग और इनका प्रयोग। नियोक्ता और प्रयोक्ता का यह योग भी दुर्लभ है। महाप्रज्ञ के समर्पण की सैकड़ों घटनाओं का साक्षी मैं स्वयं रहा हूं। यहां कुछ प्रसंग उल्लिखित किए जा रहे हैं।

महाप्रज्ञ अपने युग के प्रखर लेखक हैं। इन्हें स्वतंत्र रूप में किसी ग्रंथ को लिखने का निर्देश दिया तो कोई भार अनुभव नहीं किया। कभी अपने पास बिठाकर कुछ डिक्टेट कराया तो यह नहीं सोचा कि इतना छोटा काम मुझसे क्यों कराया जा रहा है?

इनकी भाषण-शैली गंभीर थी। संस्कृत-प्रधान भाषा में परोसा गया तत्त्वज्ञान साधारण आदमी के पल्ले ही नहीं पड़ता था। मैंने इन्हें शैली बदलने का निर्देश दिया। उसी दिन से बदलाव का क्रम शुरू हो गया। आज ये गंभीर-से-गंभीर बात को इतनी सरलता से प्रस्तुति देते हैं कि इनके प्रवचन प्रायः सभी के लिए बोधगम्य बन रहे हैं।

प्रवचन की तरह महाप्रज्ञ का लेखन भी बहुत गंभीर होता था। लेखक लिखे और पाठक उसे न समझे तो लिखने का कोई विशेष अर्थ नहीं रहता। इनको लेखन-शैली बदलने का संकेत मिला। इस बात को इन्होंने इतना पकड़ा कि आज इनके साहित्य को कम पढ़े-लिखे लोग भी रुचि से पढ़ते हैं। लेखन-शैली सरल करने पर भी चिन्तन की गंभीरता वही है, इस कारण प्रबुद्ध लोग भी उसमें पूरा रस लेते हैं।

मुझे कोई भी प्रसंग ऐसा याद नहीं आता, जिसमें मैंने महाप्रज्ञ को किसी काम के लिए निर्देश दिया हो और इन्होंने उसकी क्रियान्विति न की हो। छोटा-बड़ा, तात्कालिक-दीर्घकालिक, सैद्धांतिक-प्रायोगिक कैसा भी काम क्यों न हो, निर्देश मिलते ही इनका ध्यान उस पर केंद्रित हो जाता है। योगक्षेम वर्ष के पूरे प्रारूप को निर्धारित करने में इनके जो चिन्तन क्षण लगे हैं, उनका मूल्यांकन विद्यार्थी कर सकेंगे।

पता नहीं क्यों, समय-समय पर ऐसे सपने बुन लेता हूं, जिनका साकार होना असंभव-सा लगता है। किन्तु नियति का योग ही कुछ ऐसा है कि देर-सबेर उनको पूरा होना ही पड़ता है। उनकी पूर्णता में अनेक व्यक्तियों का योग रहता है। उनमें प्रथम नाम महाप्रज्ञ का है। ये मेरे विचारों के भाष्यकार हैं। मेरी चिंतन-भूमि पर बिखरे हुए बीजों को अंकुरित करने में इनका योग नहीं रहता तो उन्हें इतना शीघ्र पौधों का रूप नहीं मिलता।

महाप्रज्ञ कैसा? महाप्रज्ञ जैसा

मनुष्य जो नहीं है, वैसा होने का भ्रम पालता है या अभिनय करता है। वह अपनी मौलिकता को खूंटी पर टांग देता है और नए-नए मुखौटे पहनकर समाज में प्रतिष्ठित होना चाहता है। यह एक प्रकार की मृगतृष्णा है। अपने बारे में प्रशंसा के दो बोल सुनकर मनुष्य सोचता है कि वह बहुत बड़ा आदमी बन गया

है। किसी दूसरे के बटखरों से स्वयं को तोलना अपनी निजता को भूलना है। कुछ लोगों का अभिमत है कि आज मौलिकता केवल मिथ बनकर रह गया है किन्तु यह कथन भी एकांगी है। कोई भी कालखण्ड ऐसा नहीं होता, जब मनुष्य की मौलिकता को उससे छीना जाता है। उसकी स्वयं के प्रति अप्रतिबद्धता ही उसे दूसरों जैसा होने की दिशा में अग्रसर करती है।

महाप्रज्ञ के चिन्तन और साहित्य से जो लोग परिचित हैं, वे इनके बारे में अनेक प्रकार की कल्पनाएं करते हैं। कुछ लोग कहते हैं–महाप्रज्ञजी दूसरे विवेकानन्द हैं। कुछ व्यक्ति इनकी दार्शनिक गंभीरता देखकर सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् के साथ इनकी तुलना करते हैं। विवेकानंद और राधाकृष्णन् भारत की महान् विभूतियां हुई हैं। उनके प्रति हमारे मन में आदर के भाव हैं। किन्तु तुलना के प्रसंग में मेरा यह चिंतन है कि महाप्रज्ञ को न विवेकानंद बनना है और न राधाकृष्णन्। महाप्रज्ञ कैसा? महाप्रज्ञ जैसा। इस अवधारणा में मुझे संतोष मिलता है। दो हाथों और दस अंगुलियों पर विश्वास करने वाला व्यक्ति किसी की अनुकृति क्यों बने? उसे अपने ढंग से अपने व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहिए। इसलिए महाप्रज्ञ को महाप्रज्ञ ही बने रहना है।

आगम-संपादन : एक महान् कार्य

आगम-संपादन का महान् काम हमारे सामने था। हमारा चिंतन था कि संपादन का काम प्रारंभ करने से पहले प्रबुद्ध जैन आचार्यों, मुनियों और विद्वानों की उपस्थिति में एक बार आगमों की वाचना हो जाए। विगत पन्द्रह सौ वर्षों में आगम-वाचना न होने के कारण मूल-पाठ में एकरूपता नहीं है। पाठ की एकरूपता होने के बाद काम करने में सुविधा रहेगी और संपादित आगम सब जैन सम्प्रदायों को मान्य हो सकेंगे। इस आशय का चिंतन मुनि जिनविजयजी, मुनि पुण्यविजयजी, उपाध्याय अमरमुनिजी, पण्डित बेचरदासजी, पण्डित सुखलालजी, दलसुखभाई मालवणिया आदि के पास पहुंचा। पर कहीं से भी सकारात्मक उत्तर नहीं मिला।

उपाध्याय अमर मुनि ने कहा–'आचार्य तुलसी क्या बात कर रहे हैं? वाचना कैसे हो सकती है? कितने आचार्य हैं? हमारी बात कौन मानेगा?' पंडित सुखलालजी के मन में इससे भी अधिक निराशा थी। वे बोले–'आगमों का काम हर एक के बलबूते का नहीं है। कहीं आगमों को गतरस न कर दें?' इन सब बातों को सुनकर मैंने महाप्रज्ञ से कहा–'प्रतीक्षा छोड़ो और काम करो। एक आगम दशवैकालिक का सांगोपांग सम्पादन कर उसे बाहर जाने दो। हमारा काम सही होगा तो अपने आप वाचना हो जाएगी।'

आगम कार्य के संदर्भ में मैंने साधु-साध्वियों की एक गोष्ठी में अपनी नीति स्पष्ट करते हुए कहा–'यह कार्य बहुत दायित्वपूर्ण है। हमें इसका अनुभव करना है। आगम का जो सही अर्थ है, उसे पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना है। हमारी साम्प्रदायिक परम्परा से भिन्न अर्थ होता हो तो भले हो, हमें आगम की मौलिकता को नहीं खोना है। साम्प्रदायिक परम्परा भेद को पाद टिप्पण में उल्लिखित किया जा सकता है, किंतु मूल में उसका समावेश नहीं करना है। इसी प्रकार कहीं कोई आक्षेपात्मक टिप्पणी भी नहीं करना है।' पहले से निर्धारित नीति के आधार पर काम हुआ। 'दशवैकालिक सूत्र' मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद और समालोचनात्मक टिप्पणियों के साथ प्रकाशित हुआ। वह आचार्यों, साधु-साध्वियों और विद्वानों के पास पहुंचा। उसे देखकर सबकी धारणा बदल गई।

> "
> महाप्रज्ञ ने समर्पण को जाना है, देखा है और जीया है। इन्होंने अनुभव किया है कि विकास के शिखर तक आरोहण करने के लिए समर्पण के सोपान का सहारा लेना आवश्यक है। इसीलिए इनके चिंतन और व्यवहार के वातायन पर समर्पण की रश्मियां अठखेलियां करती रहती हैं।
> "

अहमदाबाद चातुर्मास में महाप्रज्ञ पण्डित सुखलालजी से मिले। उन्होंने दशवैकालिक सूत्र के संपादन की सराहना करते हुए कहा–'आपने तो गजब कर दिया। इस आगम को देखने के बाद मेरी यह धारणा हो गई है कि आगमों का काम यदि कहीं होगा तो यहीं होगा।' मुनि पुण्यविजयजी ने दशवैकालिक सूत्र देखकर प्रसन्नता व्यक्त की। उसके बाद उनका पूरा सहयोग और समर्थन मिला। दलसुखभाई मालवणिया की प्रमोद भावना का तो कहना ही क्या? उनको ऐसा अनुभव हो रहा है कि जैन-शासन में कुछ अतिविशिष्ट काम तेरापंथ में ही हुए हैं। वे बहुत बार कहते हैं–'आगम-सम्पादन की बात आपको ही क्यों सूझी? अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान जैसे व्यापक कार्यक्रम यहीं से क्यों चलें? समण श्रेणी की स्थापना आपने ही क्यों की? जैन विश्व भारती और जैन विश्वविद्यालय यहीं क्यों बनें? आचार्य-युवाचार्य का ऐसा दुर्लभ योग तेरापंथ में ही क्यों मिला?'

अनेक काम ऐसे होते हैं, जो करने से नहीं होते। इसे तेरापंथ की नियति ही माना जाए कि उसे जैन-शासन की सेवा करने का अवसर मिला है। अन्यथा संपादन का ककहरा न जानने पर भी मेरा निर्देश पाते ही महाप्रज्ञ उसके लिए कटिबद्ध कैसे हो जाते? यहां से संपादित आगम साहित्य तथा अन्य साहित्य जैन-संप्रदायों के साथ हमारी निकटता में भी निमित्त बना है। प्रायः सभी आचार्यों और साधु-साध्वियों ने पूरी उदारता के साथ साहित्य का अध्ययन और उपयोग करना शुरू कर दिया। उसके संवाद हम तक पहुंचते रहते हैं। नए साहित्य के प्रति उनकी उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा बताती है कि तेरापंथ-साहित्य के प्रति उनका कितना आकर्षण बढ़ा है।

साहित्य के क्षेत्र में अवदान

यह भी कोई विचित्र योग था कि आगम-सम्मत होने पर भी तेरापंथ के सिद्धांत प्रारम्भ से ही विवादों के घेरे में रहे। लगभग दो शताब्दियों तक उन सिद्धांतों को लेकर काफी आक्षेप-प्रक्षेप होते रहे। पर तेरापंथ की ओर से कभी उनके बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया। हमारी यह नीति थी कि आक्षेपात्मक आलोचना का उत्तर नहीं देना। हमारे मुम्बई प्रवास (सन् १९५४) में विरोधी पक्ष द्वारा होने वाली आलोचना का स्तर बदला। वहां गुजराती भाषा के प्रमुख पत्र 'प्रबुद्ध जीवन' में पत्र संपादक परमानंदभाई कापडिया का एक लेख १५.११.१९५४ के अंक में छपा। लेख का शीर्षक था–'अहिंसा नी अधूरी समजण।' मैंने उस लेख को पढ़कर महाप्रज्ञ से कहा–'अब लेखनी उठाओ। अब तक हमारे विरोध में जो कुछ छपा, वह केवल विरोध के लिए छपा था। इस लेख में चिंतन की स्फुरणा है। हमें इसके संदर्भ में कुछ लिखना चाहिए।'

महाप्रज्ञ ने पूरी गंभीरता के साथ एक लेख लिखा–'अहिंसा की सही समझ।' जनता में फैली भ्रांतियों का निराकरण हो जाए, इस दृष्टि से यह लेख 'प्रबुद्ध जीवन' में प्रकाशित करने के लिये परमानंदभाई के पास पहुंचा। उन्होंने उस पर टिप्पणी करते हुए लिखा–'प्रस्तुत लेख के सब विचारों से मेरी सहमति जरूरी नहीं है। हो सकता है इसकी कुछ बातों का मेरे विचारों के साथ मेल न हो, फिर भी मैं इसकी शैली से प्रभावित हुआ हूं। इस लेख में एक भी शब्द ऐसा नहीं है, जिस पर आपत्ति की जा सके। इस उदात्त शैली के लिए मैं लेखक को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता। मेरी आलोचना में किसी स्थान पर थोड़ा बहुत कटाक्ष या आक्षेप मिल सकता है, पर उनकी प्रत्यालोचना में कोई कटाक्ष, आक्षेप, आवेश या असमता नहीं है।'

परमानंदभाई ने उस लेख को अपने पत्र में प्रकाशित नहीं किया, पर तेरापंथी महासभा द्वारा प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र 'जैन भारती' के संपादक श्रीचंदजी रामपुरिया के उक्त दोनों लेखों को 'जैन भारती' में एक साथ प्रकाशित किया। इसके लिए परामानंदजी ने रामपुरियाजी को साधुवाद देते हुए लिखा–'प्रतिपक्ष की विस्तृत आलोचना को अपने पत्र में पूरा स्थान देकर अपनी उदार हृदयता का परिचय दिया है।'

तेरापंथ के सिद्धांतों को लेकर हुई आलोचना प्रत्यालोचना को पढ़कर मैंने अनुभव किया कि इन्हें समझने-समझाने के लिए युगीन भाषा में एक ग्रंथ की अपेक्षा है। इस अपेक्षा की पूर्ति के लिए महाप्रज्ञ ने हिन्दी में 'भिक्षु विचार दर्शन' लिखा। इसके बाद तेरापंथ के सिद्धांतों को लेकर होने वाली छिछले स्तर की आलोचना कम हो गई।

जैन परम्परा और सिद्धांतों के बारे में महाप्रज्ञ ने एक बृहद् ग्रंथ लिखा–'जैन दर्शन : मनन और मीमांसा।' उसे पढकर दिगम्बर पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री ने कहा–'आपकी पूरी पुस्तक मैंने ध्यान से पढ़ी है। इसमें श्वेताम्बर-दिगम्बर आदि परम्परा भेद के बारे में लिखने की सब बातें लिखी गई हैं, किन्तु एक भी पंक्ति अखरने वाली नहीं है।' असाम्प्रदायिक या समन्वय-प्रधान दृष्टि का विकास होने पर ही इस प्रकार का निर्विवाद साहित्य सृजन संभव बन पाता है।

भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी का प्रसंग था। महावीर के विषय में आयोजित गोष्ठियों में उनके जीवन और दर्शन पर खुली चर्चा चली। जैन-अजैन अनेक विद्वान् ऐसे थे, जो प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर भगवान् महावीर को जानना समझना चाहते थे। इसके लिए आधुनिक-शैली में समग्रता से लिखी गई पुस्तक की मांग आई। महाप्रज्ञ ने 'श्रमण महावीर' नाम से एक पुस्तक लिखी। पुस्तक लिखते समय हर क्षण असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण को सामने रखा गया। जैसा लक्ष्य था, वैसी पुस्तक बन गई। विद्वानों ने उसको पढ़ा। उनकी टिप्पणी थी–'अब तक भगवान् महावीर के संबंध में लिखी गई पुस्तकों में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक यह है।' सर्वश्रेष्ठ होने के कारण उस पुस्तक को जैन-समाज की सर्वमान्य पुस्तक का स्थान मिलना निश्चित था। किन्तु उसके लेखक एक तेरापंथी मुनि हैं, यह सांप्रदायिक दृष्टिकोण आड़े आ गया। साहित्य की एक अमूल्य धरोहर उचित मूल्यांकन के अभाव में पूरे जैन समाज की सम्पत्ति नहीं बन पाई।

ध्यान की विधि का आविर्भाव

मैंने कुछ लोगों के मुंह से ध्यान योग की चर्चा सुनी। उसके साथ यह भी सुना कि जैन धर्म में ध्यान की कोई पद्धति नहीं है। यह बात मुझे अखरी। मैंने महाप्रज्ञ से कहा–'आने वाले युग में साहित्य से भी अधिक प्रभावी ध्यान होगा, ऐसा प्रतीत हो रहा है। जैन परम्परा में ध्यान की अनेक विधियां रही हैं, पर वर्तमान में वे लुप्त-सी हो रही हैं। जैन धर्म के वर्चस्व को सुरक्षित रखने के लिये उन विधियों का आविर्भाव आवश्यक है। यह काम तुम्हें करना है।'

ध्यान के तत्त्वों की खोज करने के लिए महाप्रज्ञ ने जैन आगमों का गम्भीर अध्ययन किया। इनकी खोजी दृष्टि ने आगमों में विकीर्ण ध्यान के तत्त्वों को पकड़ लिया। उनके आधार पर स्वयं ने अनेक प्रयोग किए, वैज्ञानिक दृष्टि से उनकी समीक्षा की। कई वर्षों का समय लगा, पर ध्यान की एक व्यवस्थित विधि प्रकाश में आ गई। प्रेक्षाध्यान के नाम से प्रसिद्ध इस विधि में उत्तरोत्तर विकास की नई संभावनाएं जुड़ रही हैं। आज यह एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में सम्मत हो रही है।

" तेरापंथ के सिद्धांतों को लेकर हुई आलोचना प्रत्यालोचना को पढ़कर मैंने अनुभव किया कि इन्हें समझने-समझाने के लिए युगीन भाषा में एक ग्रंथ की अपेक्षा है। इस अपेक्षा की पूर्ति के लिए महाप्रज्ञ ने हिन्दी में 'भिक्षु विचार दर्शन' लिखा। इसके बाद तेरापंथ के सिद्धांतों को लेकर होने वाली छिछले स्तर की आलोचना कम हो गई। "

एक समय था, जब आचार्य रजनीशजी के ध्यान की धूम मची हुई थी। पूना में उनका आश्रम था। देश-विदेश में अपने बढ़ते हुए प्रभाव का दुरुपयोग कर उन्होंने ध्यान के साथ 'सेक्स' को जोड़ दिया। उनकी पुस्तक 'संभोग से समाधि' चर्चा का विषय बनी, पर उसके प्रतिवाद में किसी ने कुछ नहीं कहा। मैंने महाप्रज्ञ से कहा–'भारत की आध्यात्मिक अवधारणाओं का इससे अधिक भद्दा मजाक और क्या होगा? जनता गुमराह हो रही है। समय पर इसे सही दृष्टि नहीं दी गई तो अनर्थ हो सकता है। तुम अपनी लेखनी चलाओ।' महाप्रज्ञ ने उस संदर्भ में दो लेख लिखे। वे लेख पूना से प्रकाशित होने वाले पत्र 'लोकसत्ता' में छपे। पाठकों की अच्छी प्रतिक्रिया रही। पर आचार्य रजनीश, जो स्वयं को भगवान् मानते थे, लेख पढ़कर विचलित हो गए। उनका मानसिक उद्वेलन इतना बढ़ा कि उन्होंने अपने भाषणों में महाप्रज्ञ पर व्यंग्यबाणों की गहरी बौछार की। एक भाई ने वह कैसेट मुझे सुनाकर पूछा–इस विषय में आपकी क्या टिप्पणी है? मैंने कहा–'ऐसी बातें कोई भगवान् ही बोल सकता हैं, हम नहीं बोल सकते। किसी की निन्दा करना या गाली-गलौज की भाषा में बोलना हमारी नीति नहीं है। सैद्धांतिक मतभेदों की समीक्षात्मक आलोचना को हम अनुचित नहीं मानते। ऐसी आलोचना करने और सुनने के लिये हम सदा तैयार रहते हैं।'

विकास के नए क्षितिज

तेरापंथ धर्मसंघ के सामने विकास की बहुआयामी योजनाएं हैं। हमारा धर्मसंघ संगठित, अनुशासित और व्यवस्थित धर्मसंघ है। हमारे काम में किसी-न-किसी रूप में चतुर्विध धर्मसंघ का योग रहता है। मैंने ५८ वर्षों तक एक आचार्य के रूप में संघ की सेवा की। इस अवधि में आचार्य महाप्रज्ञ, महाश्रमण मुनि मुदित और महाश्रमणी कनकप्रभा का मुझे सतत सहयोग मिलता रहा। अब महाप्रज्ञ संघ के आचार्य हैं। मेरा सान्निध्य उन्हें प्राप्त है ही, महाश्रमण और महाश्रमणी भी उनके कार्य में बराबर सहयोगी बनी रहेगी।

मैं बहुत बार कहता रहता हूं कि महाप्रज्ञ की प्रज्ञा जागृत है। ये अपने प्रज्ञाबल से संघ की मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए विकास के नए क्षितिज खोलते रहें। निकट भविष्य में करणीय कार्यों की दृष्टि में मैं कुछ बिंदु प्रस्तुत कर रहा हूं–

- जैन-दर्शन का तलस्पर्शी ज्ञान रखने वाले विद्वानों का निर्माण।
- जैन धर्म की वैज्ञानिकता को उजागर करना।
- शिक्षा के क्षेत्र में उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय को नई दिशा देना।
- अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करना।
- जैन धर्म को जनधर्म के रूप में व्यापक करना।

आचार्य पदाभिषेक के अभूतपूर्व और ऐतिहासिक अवसर पर मानवता की सेवा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को मैं पुष्ट करता हूं और यह आशा करता हूं कि 'आचार्य महाप्रज्ञ' तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्यों की यशस्वी परम्परा को निरन्तर गतिमान् बनाए रखेंगे।

महाप्रज्ञ का चयन क्यों?

(पूज्य गुरुदेव ने युवाचार्य के रूप में मेरा चयन क्यों किया? क्या दर्शन की गुत्थियों को सुलझाने में डूबा रहने वाला, एकान्त में ध्यान-साधना करने वाला संघ एवं समाज को कुशल नेतृत्व दे सकेगा? मेरी अवस्था को लेकर भी कुछ प्रश्न उठे। इन सवालों के जवाब आचार्यश्री द्वारा दिए गए एक साक्षात्कार में उपलब्ध हैं। आचार्यवर के इस विरल साक्षात्कार में जहां उत्तराधिकारी के चयन के मानक निर्दिष्ट है, वहीं करणीय कार्यों का दिशा-निर्देश भी है।)

प्रश्न–युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के निर्वाचन के लिए उनकी कौन-कौन-सी विशेषताएं आपको आकृष्ट कर सकीं?

उत्तर–उनकी अपनी अलग-अलग विशेषताएं हैं। मैं उन सबको कैसे बतला सकता हूं? मेरे साथ इनका सदा से ही अद्वैत रहा है। मैं नहीं समझता कि कौन-कौन-सी विशेषता का अंकन करूं और कौन-सी विशेषता छोड़ूं? किन्तु कुछ बातें रख देना आवश्यक समझता हूं।

पहली बात तो यह है कि इनका मेरे प्रति जो समर्पण भाव दीक्षा लेने के बाद हुआ और आज तक है, वह विलक्षण है। मैं स्वयं इसे बहुत कठिन बात मानता हूं। बचपन में समर्पण होना एक बात है, किन्तु बौद्धिक बनने के बाद, शिक्षित होने के बाद और बहुत बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद समर्पण भाव कठिन होता है। युवाचार्य तो अब बने हैं। किन्तु उससे पहले भी समाज में इनकी प्रतिष्ठा कम नहीं थी। अपने समाज में ही नहीं, सारे समाजों में इनकी प्रतिष्ठा थी। ऐसी स्थिति में भी इनका समर्पण भाव सदैव एक समान रहा। इनके इस समर्पण भाव ने मुझे बहुत आकृष्ट किया।

दूसरी बात यह है कि जिन-जिन क्षेत्रों में इन्होंने ज्यों-ज्यों विकास किया, फूल के साथ जैसे कांटा आता है, मेघ के साथ जैसे आंधी आती है और प्रकाश के साथ जैसे कज्जल आता है वैसे ही ज्ञान के विकास के साथ, प्रतिष्ठा के साथ अहं भी आता है। किन्तु विकास के साथ इनमें किसी भी प्रकार का अहंकार नहीं देखा। यह कोई कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। ये जितने निरहंकारी बचपन में थे, उतने ही विकास के समय रहे। मैं यह भी कह सकता हूं कि ये जैसे-जैसे विकास करते गए, वैसे-वैसे और अधिक विनम्र बनते गए।

तीसरी सबसे बड़ी विशेषता है चरित्र की। इस पद के लिए, इस गरिमापूर्ण पद के लिए जिस सर्वाधिक विशेषता का अंकन किया जाता है, वह है चरित्र संपन्नता। मैंने इनमें अक्षुण्ण चरित्र संपन्नता को पाया। शिक्षा, साहित्य, लेखन, वक्तृत्व आदि-आदि जितनी कलाएं हैं, जितने भी गुण हैं, वे सब साधु के लिए

“
जैसे फूल के साथ कांटा, मेघ के साथ आंधी और प्रकाश के साथ कज्जल आता है वैसे ही ज्ञान के विकास के साथ, प्रतिष्ठा के साथ अहं भी आता है। किन्तु विकास के साथ इनमें किसी भी प्रकार का अहंकार नहीं देखा। यह कोई कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। ये जितने निरहंकारी बचपन में थे, उतने ही विकास के समय रहे। मैं यह भी कह सकता हूं कि ये जैसे-जैसे विकास करते गए, वैसे-वैसे और अधिक विनम्र बनते गए।
”

एक तरफ हैं, केवल चरित्र संपन्नता दूसरी तरफ है। चरित्र संपन्नता सबसे बड़ी चीज है। मैं इसे बहुत महत्त्व देता हूं।

चौथी विशेषता यह है कि जब ये किसी गुरुतर दायित्व पर नहीं थे तो भी संघ की बहुत-सी गतिविधियों की आर्त-गवेषणा करते रहते थे। संघ का किस प्रकार विकास होना चाहिए, इस पर वे बराबर चिन्तन करते रहते थे और अपनी भावना मेरे सामने रखते थे। इससे भी यह अंकन करने का अवसर मिला कि जो व्यक्ति पहले से ही संघ-विकास के लिए इतना चिन्तन करता है, वह दायित्व देने के बाद, उस दिशा में और अधिक प्रयत्न करेगा। इन सब विशेषताओं को देखकर मैंने इन्हें दायित्व सौंपा। मैं ऐसा सोचता हूं कि मैंने यह निर्णय करके संघ का बहुत बड़ा हित किया है।

प्रश्न–लोग आपके इस निर्वाचन से बहुत प्रसन्न हैं। आपने जो पद प्रदान किया है, उससे भी अधिक लोग युवाचार्यश्री का मूल्यांकन करते हैं। किन्तु अवस्था को लेकर लोगों के मन में विचार आ सकता है। किसी युवक को अगर इस पद पर लाते तो शायद युवा-जगत् धर्म की ओर अधिक आकर्षित होता?

उत्तर–युवकत्व और वार्धक्य मात्र उम्र से सोचना एकांगी बात है। साठ वर्ष की अवस्था में एक ऐसा युवक हो सकता है, जो लाखों व्यक्तियों में पचीस-तीस वर्ष की अवस्था में भी नहीं हो सकते। युवकत्व का संबंध अवस्था से उतना नहीं, जितना कार्य से है, विचारों से है और क्षमता से है। मैं तो इन्हें इन सब चीजों की दृष्टि से वृद्ध नहीं मानता। इस अवस्था में भी आज ये जितना युवापीढ़ी को आकृष्ट कर रहे हैं, शायद हजारों युवक नहीं कर सकते हैं। जब मैं स्वयं अपने को युवक मानता हूं तो मुझसे सात वर्ष ये छोटे हैं, बूढ़ा कैसे मानूं? सभी दृष्टियों से मैं इन्हें किसी युवक से कम नहीं मानता।

प्रश्न–आपके प्रवचनों से लगा कि आपने बहुत थोड़े समय में ही यह निर्णय लिया और आकस्मिक रूप में ही घोषणा की। इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर–निर्णय करना एक बात है और क्या करना है, इसका चिन्तन करना दूसरी बात है। निर्णय मैंने बहुत पहले नहीं लिया, किन्तु मस्तिष्क में चिन्तन तो मेरा था ही। मेरे संघ में जितने साधु हैं, वे एक-एक मेरे से अज्ञात नहीं हैं, अपरिचित नहीं हैं। मैं सबको भलीभांति जानता हूं और तुलनात्मक दृष्टि से भी सबको देखता हूं। निर्णय मैंने आकस्मिक रूप से घोषित किया। किन्तु मेरे चिन्तन में, मेरे दिमाग में बहुत पहले से था। मैंने अपने प्रवचन में भी कहा था कि एकाधिक साधु मेरे सामने हैं। बल्कि मुझे कहना चाहिए कि साध्वियां भी ऐसी हैं, अगर मैं उनको अपना संपूर्ण दायित्व सौंप दूं तो बहुत अच्छे ढंग से आचार्य पद का दायित्व संभाल सकती हैं। यह हमारे धर्मसंघ के लिए गौरव की बात है। फिर भी उनकी तुलना में मैंने देखा तो सर्वाधिक योग्य इन्हें पाया, इसलिए मैंने इनका निर्वाचन किया।

प्रश्न–युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के माध्यम से आप विश्व को किस ओर गतिशील देखना चाहते हैं?

उत्तर–मैं विश्व से पहले आत्मा की बात करना चाहता हूं। मैं युवाचार्य महाप्रज्ञ को आत्मस्थ देखना चाहता हूं और ठियप्पा–स्थितप्रज्ञ के रूप में देखना चाहता हूं। इसके लिए इनको कुछ करना नहीं पड़ेगा। आज इनके भीतर से जो ऊर्जा निकल रही है, उससे हजार गुना अधिक निकलेगी और वह विश्व के लिए बहुत हितकारी बनेगी। अपने आपको छोड़कर विश्व की बात करना बेकार है। पहले व्यक्ति को स्वयं

आत्मस्थ बनना चाहिए और उसके बाद विश्व की बात करनी चाहिए। फिर भी जो एक तनावपूर्ण वातावरण है, एक बेचैनी और अशांति संसार में फैली हुई है, उसे मिटाने में भी इनके द्वारा बहुत बड़ा सहयोग मिलेगा। इनके माध्यम से मुझे काम करने का अवसर मिलेगा और मेरे माध्यम से इन्हें काम करने का मौका मिलेगा। मैं चाहता हूं कि विश्व में एक ऐसा वातावरण बने, आज जो अध्यात्म थोड़ा धूमिल हो रहा है, वह अध्यात्म विकास में आए और दूसरी बातें गौण हो जाएं। यह बात मैं इनके माध्यम से करना चाहता हूं। प्रेक्षाध्यान का एक ऐसा सक्षम माध्यम मिल गया है, जिसके द्वारा भी संसार के प्रबुद्ध मानस को शान्त और उन्नत देखना चाहता हूं।

प्रश्न–अपना उत्तरदायित्व सौंपने के बाद क्या आप ध्यान और योग की विशेष साधना में लगना चाहेंगे?

उत्तर–मैं ध्यान योग की साधना से अपने को अब भी अलग नहीं मानता हूं। वर्तमान में भी मैं ध्यान और योग की साधना में हूं और अगर मुझे विशेष अवकाश मिलेगा तो और भी अधिक समय लगाना चाहूंगा। वर्तमान में इनकी जो साधना चल रही है, मैं उसमें और अधिक गति देखना चाहता हूं। मैं अपने आपको अपने दायित्व से संलग्न रखकर इनको और अधिक अग्रसर करना चाहता हूं। वर्तमान में भी योग-साधना से उपेक्षित नहीं हूं। किन्तु इस विषय में इन्होंने जो एक अच्छी प्रक्रिया 'प्रेक्षाध्यान' अपनाई है, मैं अपने आपको गौण करके भी उस दिशा में इन्हें और अधिक गतिशील देखना चाहता हूं।

प्रश्न–युवाचार्यश्री की घोषणा का धर्मसंघ ने जिस उल्लास से स्वागत किया है, उसका आपके मानस पर क्या प्रतिबिम्ब है?

उत्तर–हमारे धर्म-संघ ने जिस हर्ष और उल्लास के साथ स्वागत किया है, वह मेरे लिए कोई नई बात नहीं है। यह बात मेरे चिन्तन से परे की नहीं है। मैं ऐसा सोचता ही था, ऐसा समझता ही था। जैसा मैंने सोचा था, वैसा ही हुआ है। इतना जरूर है कि हर कार्य में कुछ किन्तु परन्तु रहती है। सौ में एक व्यक्ति मिल ही जाता है कि जो अच्छे-से-अच्छे कार्य के बारे में कह सकता है कि ऐसा नहीं, ऐसा होता तो और ठीक होता। किन्तु मेरी इस घोषणा को, इस निर्वाचन को लेकर मैंने किन्तु-परन्तु भी नहीं सुनी। यह हमारे धर्म-संघ का सौभाग्य है। अपने धर्म-संघ के प्रति लोगों में जो अटूट निष्ठा है, उसे मैं बहुत बड़ी बात मानता हूं। मेरी इस घोषणा से धर्म-संघ की आयु बहुत बढ़ गई है और उसकी नींव पाताल में चली गई है, ऐसा लगता है। मेरा धर्म-संघ बहुत प्रसन्न है इसलिए मुझे भी बहुत प्रसन्नता है।

"
मैं युवाचार्य महाप्रज्ञ को आत्मस्थ देखना चाहता हूं और ठियप्पा–स्थितप्रज्ञ के रूप में देखना चाहता हूं। इसके लिए इनको कुछ करना नहीं पड़ेगा। आज इनके भीतर से जो ऊर्जा निकल रही है, उससे हजार गुना अधिक निकलेगी और वह विश्व के लिए बहुत हितकारी बनेगी।
"

अपूर्व अवसर : अपूर्व संवाद

(११ नवम्बर १९८८। कार्तिक शुक्ला द्वितीया, वि.सं. २०४५, श्रीडूंगरगढ़। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी का जन्मदिन। उस दिन मैं प्रातः साढ़े चार बजे गुरुदेव की सन्निधि में गया, जन्म दिवस पर मंगल भावनाएं समर्पित की। मंगलभावनाओं के समर्पण के साथ ही संवाद का क्रम शुरू हो गया। मेरे गुरुदेव के साथ अनेक प्रलंब वार्तालाप एवं संवाद हुए हैं किन्तु वे लिपिबद्ध नहीं हो पाए। गुरु शिष्य के इस संवाद को मुनि धनंजयकुमार ने संकलित कर लिया। इसलिए यह सुरक्षित रह गया। गुरु-शिष्य के इस संवाद में जितनी आत्मीयता है, उतनी ही मानवीय संवेदना है।)

मैं–आपके जन्म-दिवस पर मैं अपनी ओर से, समूचे संघ की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं अर्पित करता हूं। आपका जीवन संघ एवं मानव जाति के कल्याण में सदा लगा रहे, यही अभीप्सा है। आपके उज्ज्वल भविष्य में संघ का भविष्य निहित है, मानवता का भविष्य निहित है। इस शुभ अवसर पर हमारी शुभाशंसा है–आपका आगामी वर्ष आपके लिए और संघ के लिए श्रेयस्कर हो, कल्याणकारी हो। आपके संकल्प से उद्‌भूत योगक्षेम वर्ष संघ का रचनात्मक भविष्य बने।

आचार्यश्री–आज मेरे मन में योगक्षेम वर्ष ही घूम रहा है। हम दोनों का यह पूरा वर्ष इसकी सफलता को सुनिश्चित बनाने में समर्पित है। इस संकल्प की संपूर्ति ही हमारा मुख्य लक्ष्य है। हम मिलकर उसे कैसे सफल और सार्थक करें, यही चिन्तन मेरे मानस को मथ रहा है। यह वर्ष है–

योगक्षेममयोऽयं वर्षः, योगक्षेममयोऽयं हर्षः।
योगक्षेममय उत्कर्षः, योगक्षेममयः संस्पर्शः॥

योगक्षेम वर्ष का दायित्व बहुत बड़ा है, इसकी चिन्ता नहीं है। चिन्ता इस बात की है कि पूरे वर्ष के कार्यक्रम को कैसे व्यवस्थित चलाया जाए?

मैं–व्यवस्था को सारे पहलुओं से देखना होगा?

आचार्यश्री–इस बार सबकी गति, सबका चिन्तन और सबकी शक्ति एक ही दिशा में चल रही है, यह प्रसन्नता की बात है और यही इस वर्ष की सफलता का एक बहुत बड़ा आश्वासन है। योगक्षेम वर्ष में विसर्जन, जैन जीवन प्रणाली एवं राजनीति में शुद्धता के विषय में भी कुछ प्रयत्न किये जाने चाहिए।

मैं–तेरापंथ में नहीं, अन्य सम्प्रदाय के व्यक्तियों के मन में भी इसके प्रति एक अजीब आकर्षण है। अनेक विद्वान् उस अवसर पर अपनी सेवाएं देने के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं?

आचार्यश्री–पता नहीं क्या बात है, इस कार्य ने लोगों के मन में एक प्रगाढ़ विश्वास पैदा किया है, समाज में एक व्यापक हलचल पैदा की है।

मैं–योगक्षेम वर्ष का कार्य बहुत बड़ा है। इसका प्रयोग एक सीमा में हो रहा है। हमारे पास अनेकान्त जैसा सार्वभौम सिद्धान्त है, आश्चर्य है, हम उसे व्यापक नहीं बना सके?

आचार्यश्री–अनेकान्त के व्यापक न बनने का कारण जैन स्वयं हैं। हम इसको पूरा पकड़ नहीं पाए।

मैं–समणदीक्षा जैन धर्म के सिद्धान्तों को व्यापक बनाने में एक निमित्त बनी है।

आचार्यश्री–प्रबुद्ध वर्ग की दृष्टि में समणदीक्षा एक क्रांतिकारी कदम साबित हुआ है।

मैं–जो भी आचार्यश्री के संपर्क में आते हैं, बदल जाते हैं।

आचार्यश्री–उन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है, जिनके कारण कुछ क्षेत्रों में लोग संपर्क में नहीं आते।

मैं–यह वातावरण केवल थली, बीकानेर की एरिया तक ही है। इन क्षेत्रों में हमारे अनुयायी प्रचुर संख्या में हैं। यह भी एक कारण बना है दूसरे लोगों के न आने का।

आचार्यश्री–अणुव्रत को व्यापक बनाने का प्रयत्न किया जाए तो हम आम जनता तक पहुंच सकते हैं।

मैं–अणुव्रत आम आदमी के समीप पहुंचने का एक सफल उपक्रम है।

आचार्यश्री–हमें भिक्षा के लिए अन्य सम्प्रदाय के घरों में भी जाना चाहिए।

मैं–प्रवचन भी सार्वजनिक होने चाहिए।

आचार्यश्री–अणुव्रत के साथ-साथ विसर्जन के कार्यक्रम को व्यापक बनाना आवश्यक है। दान नहीं, विसर्जन का सूत्र समाज में परिव्याप्त हो।

मैं–विसर्जन अनेक समस्याओं का समाधान है। विसर्जन तेरापंथ के लिए नहीं है, किसी संस्थान विशेष के लिए नहीं है। उसका उद्देश्य अपने स्वामित्व का सीमाकरण है।

आचार्यश्री–विसर्जन एक ओर ममत्व में कमी लाने का उपाय है, तो दूसरी ओर वर्तमान समस्याओं का समाधान है।

मैं–स्वामित्व की सीमा का यह सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आचार्यश्री–जब तक विसर्जन का सूत्र तेरापंथ में लागू नहीं होगा, तब तक उसका असर व्यापक नहीं बनेगा।

मैं–लोग इसे संस्था के साथ जोड़ देते हैं। इसके व्यवस्था पक्ष को विशाल किया जाए तो.....।

आचार्यश्री–व्यवस्था को व्यापक रूप दिया जा सकता है।

मैं–व्यवस्था से मुक्त रखा जाए तो....।

आचार्यश्री–इसमें भी कोई बाधा नहीं लगती। राजा प्रदेशी ने पहले विसर्जन का त्याग किया था, फिर उसकी व्यवस्था की थी। विसर्जन है त्याग। व्यवस्था उसका उत्तरवर्ती पहलू है।

> “इस बार सबकी गति, सबका चिन्तन और सबकी शक्ति एक ही दिशा में चल रही है, यह प्रसन्नता की बात है और यही इस वर्ष की सफलता का एक बहुत बड़ा आश्वासन है।”

मैं–विसर्जन से व्यक्ति स्वयं लाभान्वित होता है। यदि विसर्जित राशि का उपयोग दूसरों के उत्थान के लिए होता है तो समाज भी लाभान्वित हो सकता है।

आचार्यश्री–कैसे?

मैं–शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाला योगदान पूरे समाज तक पहुंच जाता है।

आचार्यश्री–हम विसर्जन का संकल्प करवा सकते हैं, व्यवस्था की बात सोचना व्यक्ति पर निर्भर है।

मैं–हमारा संबंध त्याग से ही है।

आचार्यश्री–यदि एक क्षेत्र इस कार्यक्रम को अपनी सीमा में उठाए तो महत्त्वपूर्ण काम हो सकता है।

मैं–आर्थिक विषमता की समस्या को इससे एक समाधान मिल सकता है।

आचार्यश्री–यह विचार बहुत मजबूत बन रहा है।

मैं–लाडनूं में जो इन्टरनेशनल कान्फ्रेन्स हो रही है, उसमें भी यह एक मुद्दा बन सकता है। विश्व शान्ति के लिए जैसे अहिंसा आवश्यक है, वैसे ही स्वामित्व की सीमा एक महत्त्वपूर्ण घटक है।

आचार्यश्री–आज पदार्थ भी बहुत विस्तार पा रहा है। पता नहीं पदार्थों की यह दौड़ कहां पूरी होगी?

मैं–उपभोग के पदार्थों की यदि सीमा हो जाए तो पदार्थ-विस्तार पर रोक संभव बन सकती है।

आचार्यश्री–हमारे यहां एक सुन्दर परम्परा है। अनेक साधु-साध्वियों और हजारों श्रावक-श्राविकाओं के नियम हैं–हम इतने द्रव्यों, पदार्थों से अधिक नहीं खाएंगे। अब तक इस परम्परा को रूढ़ माना जाता रहा है। किन्तु इसकी मूल्यवत्ता इस वैज्ञानिक युग में अधिक बन गई है।

मैं–यह पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था, विकेन्द्रित उद्योग और विकेन्द्रित सत्ता–ये मूलतः महावीर के प्रयोग हैं।

आचार्यश्री–इनको आधार बनाकर जीवन-पद्धति का एक मॉडल तैयार हो सकता है।

मैं–यह व्यक्ति-निर्माण का एक अभियान बन सकता है। इससे स्वस्थ समाज के निर्माण को बल मिल सकता है, समाज-व्यवस्था मजबूत हो सकती है।

आचार्यश्री–जैन जीवन प्रणाली के एक प्रारूप को निश्चित करना आवश्यक है। चिन्तनपूर्वक इस कार्य को अंतिम रूप दिया जाना चाहिए। यदि योगक्षेम वर्ष में कुछ परिवार इस प्रणाली को अपना लें तो एक बहुत बड़े कार्य का प्रारंभ हो सकता है।

मैं–अणुव्रतियों के लिए भी एक निश्चित समाज-व्यवस्था अपेक्षित है।

आचार्यश्री–आज समाज का पूरा जीवन जोगी की जटा की भांति उलझ गया है। उसे कंघी से नहीं, उस्तरे से ही सुलझाना होगा।

लोकतंत्र का मूल आधार है चुनाव प्रणाली। आज वह भी देश में भ्रष्टाचार को फैलाने का एक प्रमुख माध्यम बन रही है। इससे भी समाज में अनेक प्रकार की उलझनें बढ़ी हैं, बढ़ रही हैं।

मैं–नेहरू ने प्रधानमंत्री बनते ही घोषणा की थी–भ्रष्टाचारी फांसी पर लटका दिए जाएंगे। किन्तु साल भर बाद उनका भी स्वर बदल गया। उन्होंने कहा–बड़ा कठिन है भ्रष्टाचार को मिटाना। इसे यकायक समाप्त नहीं किया जा सकता। आज भी भ्रष्टाचार का शोर बहुत है किन्तु उसे मिटाने के प्रयत्न नगण्य ही हैं।

आचार्यश्री–इस वर्ष हमारे करणीय कार्य हैं–● विसर्जन ● जैन जीवन प्रणाली ● राजनीति में शुद्धता।

इन तीनों के लिए इस वर्ष सघन प्रयत्न किया जाए। राजनीति में शुद्धता लाने के लिए प्रत्येक राज्य में पांच-पांच व्यक्तियों का चयन करना चाहिए। जो राजनीति में रचे-पचे हों, उसके छल-छद्म जानने वाले हों किन्तु स्वयं नैतिक एवं चरित्रनिष्ठ हों। वे एकजुट होकर इस काम के लिए आगे आएं तो स्वस्थ राजनीति का स्वर उभर सकता है।

मैं–अभी कुछ दिन पूर्व श्री सीताराम केसरी ने कहा था–आपके जैसे आचार्य ही इस कार्य को करने का बीड़ा उठा सकते हैं।

आचार्यश्री–सफलता-असफलता, प्रशंसा-अप्रशंसा की चिन्ता से मुक्त रहकर हमें इस कार्य में जुट जाना चाहिए।

“विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था, विकेन्द्रित उद्योग और विकेन्द्रित सत्ता–ये मूलतः महावीर के प्रयोग हैं। इनको आधार बनाकर जीवन-पद्धति का एक मॉडल तैयार हो सकता है। यह व्यक्ति-निर्माण का एक अभियान बन सकता है। इससे स्वस्थ समाज के निर्माण को बल मिल सकता है, समाज-व्यवस्था मजबूत हो सकती है।”

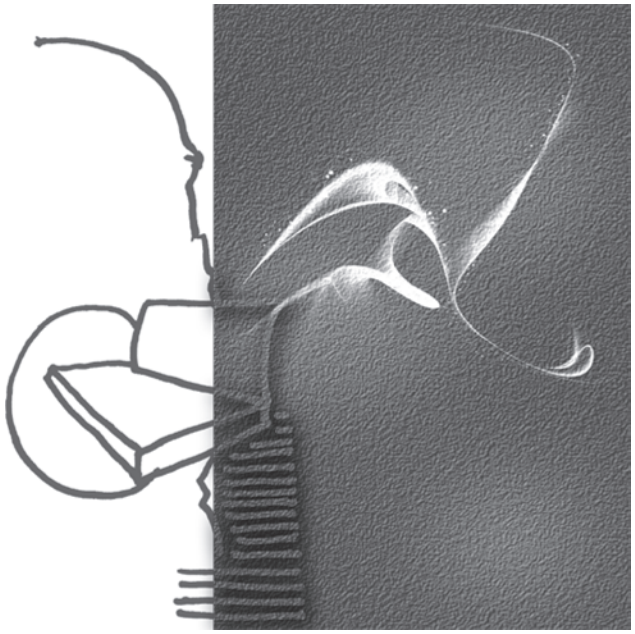

१६

आशीर्वचन

पूज्य गुरुदेव मेरी सृजन चेतना के महान् प्रेरणास्रोत थे। सृजन के संदर्भ में वे नई नई कल्पनाएं करते और उन कल्पनाओं को आकार देने का दायित्व मुझे सौंप देते। उनकी दृष्टि मेरी सृष्टि बन जाती। सृजन क्षेत्र में जो उन्मेष आए हैं, उनकी पृष्ठभूमि में आचार्यवर की दृष्टि और दिशादर्शन की मुख्य भूमिका रही।

आचार्यवर की प्रेरणा से मेरी सृजन-चेतना को विकास के नए क्षितिज मिले। साहित्य-सृजन मेरे जीवन का एक प्रमुख कर्म बन गया। चिन्तन, मनन और लेखन की धारा निर्बाध रूप से चलती रही। 'साहित्य' उसकी स्वाभाविक निष्पत्ति है। आचार्यवर ने न केवल मेरी वैचारिक-मनीषा को प्रोत्साहित किया, अनेक साहित्यिक-कृतियों पर आशीर्वचन प्रदान किए। गुरुदेव के इन आशीर्वचनों में दृष्टि, दिशा, प्रेरणा, मूल्यांकन और भविष्य की प्रकाश रश्मियां उपलब्ध हैं।

भिक्षु विचार दर्शन

'तेरापंथ द्विशताब्दी के अभिनंदन में साहित्य की सुन्दर साधना होनी चाहिए'–इस निर्णय के अनुसार जैन आगम-साहित्य की सजावट में हमारा साधु-संघ जुट गया। मूल आगमों का हिन्दी अनुवाद, टिप्पणियां, तुलनात्मक टिप्पण, प्राकृत-शब्दकोश आदि विविध प्रकार के कार्य चालू हैं। इस अवसर पर 'तेरापंथ के आचार्यों के जीवन-चरित्र', 'साधु-साध्वियों की जीवनियां' आदि-आदि विषयक अनेक प्रकार के साहित्य का सृजन भी हो रहा है।

बहुत दिनों से मेरा एक चिन्तन चल रहा था कि तेरापंथ द्विशताब्दी के अवसर पर 'आचार्य सन्त भीखणजी' के जीवन का दार्शनिक रूप जनता के सामने आना चाहिए। मैंने यह विचार शिष्य मुनि नथमल (वर्तमान में आचार्य महाप्रज्ञ) से कहा। उन्होंने उसी दिन से इसकी रूपरेखा अपने मन में तैयार कर ली और कलकत्ता-चातुर्मास के अन्तिम दिनों में मेरी इस भावना को मूर्तरूप देते हुए एक ग्रंथ लिख डाला।

ग्रंथ का नाम 'भिक्षु विचार दर्शन' (तेरापंथ-दर्शन) है। इसके सात अध्याय हैं–

१. व्यक्तित्व की झांकी २. प्रतिध्वनि ३. साध्य-साधन के विविध पहलू ४. मोक्ष धर्म का विशुद्ध रूप ५. क्षीर-नीर ६. संघ-व्यवस्था ७. अनुभूति के महान् स्रोत।

इन सातों अध्यायों में स्वामीजी के सिद्धान्तों, मन्तव्यों, विचारों एवं निष्कर्षों का खूब गहराई से प्रतिपादन किया गया है। लेखक की भाषा-शैली गम्भीर एवं दार्शनिक है, फिर भी स्वामीजी के विविध जीवन-प्रसंगों, तुलनात्मक चिन्तन एवं जीवन के व्यावहारिक पक्ष को जिस सरलता से रखा है, उससे भाषा की जटिलता सुगमता में परिणत हो गई है।

वास्तव में ही यह ग्रन्थ तेरापंथ-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखेगा। मैं समझता हूं कि ठीक मेरी भावना के अनुरूप ही यह ग्रंथ तैयार हुआ है। मेरा विश्वास है कि जहां यह बौद्धिक लोगों की ज्ञान-पिपासा को शांत करेगा, वहां स्वामीजी के सिद्धान्तों को सही समझने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

अन्त में, लेखक की लेखन-शक्ति, चिन्तन-शक्ति और मनन-शक्ति उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती रहे, यह मैं अन्तःकरण से कामना करता हूं।

फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी — **आचार्य तुलसी**

वि. संवत् २०१६

संबोधि

प्रागैतिहासिक काल की घटना है। जैन-धर्म के आदि-तीर्थंकर भगवान् ऋषभ इस धरती पर थे। एक दिन उनके अट्ठानबे पुत्र मिलकर आए। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की–'भरत ने हम सबके राज्य छीन लिए हैं। हम अपना राज्य पाने की आशा लिए आपकी शरण में आए हैं।'

भगवान् ने कहा–'मैं तुम्हें वह राज्य तो नहीं दे सकता किन्तु ऐसा राज्य दे सकता हूं, जिसे कोई छीन न सके।'

पुत्रों ने पूछा–'वह राज्य क्या है?'

"भिक्षु विचार दर्शन में आचार्य भिक्षु के सिद्धान्तों, मन्तव्यों, विचारों एवं निष्कर्षों का खूब गहराई से प्रतिपादन किया गया है। लेखक की भाषा-शैली गम्भीर एवं दार्शनिक है, फिर भी स्वामीजी के विविध जीवन-प्रसंगों, तुलनात्मक चिन्तन एवं जीवन के व्यावहारिक पक्ष को जिस सरलता से रखा है, उससे भाषा की जटिलता सुगमता में परिणत हो गई है।"

भगवान् ने कहा–'वह राज्य है आत्मा की उपलब्धि।'

पुत्रों ने पूछा–'वह कैसे हो सकती है?'

तब भगवान् ने कहा–

संबुज्झह किं न बुज्झह, संबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हूवणमंति राइओ, णो सुलभं पुणरावि जीवियं॥

–'संबोधि को प्राप्त करो। तुम संबोधि को प्राप्त क्यों नहीं कर रहे हो? बीती रात लौटकर नहीं आती। यह मनुष्य जीवन भी बार-बार सुलभ नहीं है।

इस प्रकार जैन-धर्म के साथ संबोधि का प्रागैतिहासिक संबंध है। संबोधि क्या है? वह है–आत्म-मुक्ति का मार्ग। वे सब मार्ग जो हमें आत्मा की संपूर्ण स्वाधीनता की ओर ले जाते हैं, एक शब्द में 'संबोधि' कहलाते हैं। बोधि के तीन प्रकार हैं–

१. ज्ञान-बोधि २. दर्शन-बोधि ३. चारित्र-बोधि।

तीन प्रकार के बुद्ध होते हैं :

१. ज्ञान-बुद्ध २. दर्शन-बुद्ध ३. चारित्र-बुद्ध।

जैन दर्शन का यह अभिमत है कि हम कोरे ज्ञान से आत्म-मुक्ति को नहीं पा सकते, कोरे दर्शन और कोरे चारित्र से भी उसे नहीं पा सकते। उसकी प्राप्ति तीनों के समवाय से अर्थात् अविकल संबोधि से हो सकती है। जैन-धर्म वस्तुतः प्राचीन धर्म है। उसके बाईस तीर्थंकर प्रागैतिहासिक काल में हुए हैं। पार्श्व और महावीर ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। जैन-धर्म के मुख्य सिद्धांत हैं–

१. आत्मा है
२. उसका पुनर्जन्म होता है।
३. वह कर्म की कर्ता है।
४. वह कृत-कर्म के फल का भोक्ता है।
५. बंधन है और उसके हेतु हैं।
६. मोक्ष है और उसके हेतु हैं।

जैन दर्शन के अनुसार मुक्त जीव ही परमात्मा होते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार हर आत्मा में परमात्मा होने की क्षमता है। काल, स्वभाव, पुरुषार्थ आदि का उचित योग मिलने पर आत्मा परमात्मा हो जाती है, बंधन से मुक्त होकर अपने विशुद्ध रूप में प्रकट हो जाती है। जैन दर्शन आदि से अंत तक आध्यात्मिक दर्शन है। उसका समग्र चित्र आत्म-कर्तृत्व की रेखाओं से निर्मित है।

ईश्वर-कर्तृत्व की अपेक्षा आत्म-कर्तृत्व से हमारा निकट का संबंध है। हम अपने कर्तृत्व को इष्ट दिशा की ओर मोड़ सकते हैं। किन्तु उस कर्तृत्व को इष्ट दिशा की ओर नहीं मोड़ सकते जिसका हमसे सीधा संबंध नहीं है। इसलिए जीवन के निर्माण और विकास में आत्म-कर्तृत्व के सिद्धांत का बहुत बड़ा योग है। 'संबोधि' में आदि से अंत तक उसी का व्यावहारिक संकलन है।

इसका रचना-क्रम श्रीमद्भगवद्गीता जैसा है। योगिराज कृष्ण की तरह इसके उपदेशक तीर्थंकर महावीर हैं। 'संबोधि' का अर्जुन भंभासार श्रेणिक का पुत्र मेघकुमार है। इसकी संवादात्मक शैली शिक्षित और अल्प-शिक्षित सभी लोगों के लिए समान रूप से उपयोगी होगी।

धवल-समारोह पर 'मनोनुशासनम्' लोगों के सामने आया। उसमें जैन-दर्शन के आधार पर योग-प्रक्रिया का दिग्दर्शन कराया गया है। उसके प्रकाश में आने के बाद मुझे यह आवश्यकता प्रतीत हो रही थी कि उस प्रक्रिया को विस्तृत और विश्लेषणपूर्वक समझाने वाले किसी ग्रंथ की रचना अवश्य हो। 'संबोधि' को देख मेरी वह भावना बहुत अंशों में साकार हुई।

मुझे तब बहुत आश्चर्य हुआ, जब शिष्य मुनि नथमल ने मेरे बिना किसी पूर्व इंगित के यह कार्य सम्पन्न कर मेरे समक्ष रखा। यद्यपि उसके पश्चात् इसमें परिवर्तन-परिवर्द्धन भी किया गया किंतु प्रारंभ की 'संबोधि' स्वयं संबुद्ध ही थी।

संबोधि शब्द सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चारित्र को अपने में समेटे हुए है। सम्यग् के बिना ज्ञान अज्ञान बना रहता है और चारित्र के अभाव में ज्ञान और दर्शन निष्क्रिय रह जाते हैं। आत्म-दर्शन के लिए इन तीनों का समान और अपरिहार्य महत्त्व है। इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए इसका नाम 'संबोधि' रखा गया है।

लेखक ने अपनी प्रतिपादन-पद्धति में समयानुसार कितना परिवर्तन कर लिया है, यह इनके पिछले और वर्तमान साहित्य को देखने से ही पता लग जाता है। 'संबोधि' के पद जहां सरल और रोचक बन पड़े हैं, वहां उतनी ही सफलतापूर्वक गहराई में पैठे हैं। उनकी सरलता और मौलिकता का एक कारण यह भी है कि वे भगवान् महावीर की मूलभूत वाणी पर आधारित हैं। बहुत सारे पद्य तो अनूदित हैं पर उनका संयोजन सर्वथा नवीन शैली लिए हुए है। आशा है अध्यात्म-जिज्ञासु व्यक्तियों को यह ग्रंथ एक अच्छी खुराक देगा।

मुझे गौरव है कि मेरे साधु-समुदाय ने मौलिक साहित्य-सर्जन की दिशा में प्रगति की है और कर रहा है। मैं चाहता हूं कि लेखक अपनी साधना, चिंतन और अभिव्यक्ति में उत्तरोत्तर सफल हो।

—आचार्य तुलसी

२७ दिसंबर १९६२

जैन दर्शन : मनन और मीमांसा

धर्म का आधार है जीवन और दर्शन का आधार है साहित्य। वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ जीवनगत, आत्मगत, व्यक्तिगत और समूहगत हर तथ्य को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दे रहे हैं, अतः धर्म भी साहित्य का विषय बन रहा है। जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है और विश्व-धर्म बनने की योग्यता रखने वाला धर्म है। इस धर्म को अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य का परिवेश भी प्राप्त है, किन्तु जो है, वह आत्मतोष के लिए पर्याप्त नहीं है। भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण-शताब्दी इस कार्य के लिए प्रेरणा है। इस अवसर पर प्राचीन जैन साहित्य का व्यवस्थित संपादन और नये मौलिक साहित्य का निर्माण साहित्य-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम है। हमें अपनी सम्पूर्ण निष्ठा से इस दिशा में समर्पित होकर जैन शासन की सेवा में अपना योगदान करना चाहिए।

'जैन दर्शन : मनन और मीमांसा' इसी क्रम की एक शृंखला है जिसके लेखक ने जैन धर्म के समग्र तथ्यों को विस्तार से अभिव्यक्ति दी है। लेखन-कार्य में लेखक को अपनी आस्था के साथ तद्विषयक विशेष चिन्तन और मनन की अपेक्षा होती है। इसके अभाव में कोई भी लेखक अपने पाठकों को मननीय और मौलिक सामग्री नहीं दे सकता। प्रस्तुत पुस्तक का सृजन हमारे ही धर्मसंघ के एक साधनाशील मुनि

"'संबोधि' के पद जहां सरल और रोचक बन पड़े हैं, वहां उतनी ही सफलतापूर्वक गहराई में पैठे हैं। उनकी सरलता और मौलिकता का एक कारण यह भी है कि वे भगवान् महावीर की मूलभूत वाणी पर आधारित हैं। बहुत सारे पद्य तो अनूदित हैं पर उनका संयोजन सर्वथा नवीन शैली लिए हुए है।"

की लेखनी से हुआ है। अध्यवसायी मुनि नथमलजी जितने लेखक हैं, उससे भी अधिक योगाभ्यासी हैं। आत्म-साधना और ज्ञानाराधना के अनुपम योग से साहित्य-क्षेत्र में अच्छी गति की है और कर रहे हैं। मैं सोचता हूं मुनि नथमलजी साहित्य के क्षेत्र में नया कीर्तिमान स्थापित करें और सत्य-निरपेक्ष तथ्य-संकलन करने वालों के लिए एक आदर्श बनें। जैन धर्म के जिज्ञासु मनीषी इस पुस्तक का मनन कर साहित्यकार के सृजन को सार्थक करेंगे, इसी आशा के साथ।

हिसार — **आचार्य तुलसी**

२५ जुलाई, १९७३

भरतबाहुबलिमहाकाव्यम्

भरतबाहुबलिमहाकाव्यमत्यन्तमस्ति दुर्लभम्। अस्माकं संघे जयाचार्यसमयादेतत् प्राप्तमस्ति। मघवगणिनः प्रवचनसमयेऽस्य वाचनमकुर्वन्। तदानीं तेषां गभीरया गिरा वातावरणं प्रकम्पितमिवाऽजायत। जयाचार्यसमये हस्तलिखितादर्शानामन्वेषणं भृशं जातम्। क्वाऽपि काव्यस्यास्य प्रतिर्हस्तगता नाभूत्। केनापि मुनिना सङ्घाद् बहिर्गच्छता नीता तत्प्रतिः। तस्याः पत्रद्वयं मघवगणिनः पुस्तके स्थितमासीत्। तदाधारेण अन्वेषणं कृतम्। कालूगणिनः समये तस्याः साम्प्रतमुपलब्धानि पत्राणि लब्धानि। मयाऽपि तस्य काव्यस्य गवेषणा कृता। छोगमलजीचोपड़ाभिधेन तेरापंथिमहासभामंत्रिणा अन्विष्टमिदं प्रतिलिपिश्च कारिता। तां दृष्ट्वा मम मनसि महान् तोषो जातः। प्रतिलिपिकरणाय मम तत्परताऽभूत्। प्रयत्नपूर्वकं तां पूरयित्वा प्रतिलिपिः कृता मुनिनथमलेन। मन्त्रिमुनेरपि महान् रस आसीत् अस्मिन् काव्ये। पाठ्यक्रमेप्येतत् नियोजितम्। अस्मिन् निर्वाणशताब्दीसमये जैनविश्वभारतीसंस्थानप्रकाशनाधिकारिणा श्रीचंद्रेण प्रकाशनार्थं याचितमिदं काव्यम्। आगमप्रकाशनेन सार्द्धं अस्यापि प्रकाशनं कृतम्।

हिन्दी अनुवादस्य अपेक्षा मुनिदुलहराजेन पूरिता। अनुवादोऽपि सम्यक् कृतः। अस्य सम्पादने मुनिनथमलस्य योगः, अनुवादे मुनिदुलहराजस्य योगः। मुनिदुलहराजः अध्यवसायपरायणो विद्यते। स कार्यं तत्कालं निष्पन्नं कुरुते। श्रीचन्द्रस्य तृतीयो योगः। प्रकाशनमपि आकर्षकमस्ति। एतत् काव्यं जनताहस्ते समागतमिति मम मनसि महान् हर्षः, विदुषां समक्षे प्रस्तुतमस्तीति हृष्याम्यतितराम्। अस्मिन पुण्ये भगवतो महावीरस्य पञ्चविंशतितमे निर्वाणशताब्दीसमयेऽस्य प्रस्तुतीकरणं सर्वथा महत्वमञ्चति।

२५०० वीरनिर्वाणदिवसे, — **आचार्य तुलसी**

इन्द्रप्रस्थे।

जैन योग

आध्यात्मिक व्यक्ति सत्य का अन्वेषी होता है। वह अपने चारों ओर विकीर्ण सूक्ष्म सत्यों तथा अज्ञात रहस्यों को जानने के लिए चेतना के सूक्ष्मतम स्तरों से गुजरता है। सत्य को पाने से पहले वह अपनी खोज के लिए समर्पित होता है। अन्तश्चेतना की बेचैन अन्वेषणा में वह अपने आपको खो देता है। इससे उसकी चेतना के केन्द्र में एक व्यापक विस्फोट होता है और वह आत्म-साक्षात्कार के अनिर्वचनीय आनंद में डूब जाता है। उसकी समत्व प्रज्ञा जागृत हो जाती है। वह अज्ञात को ज्ञात कर यथार्थ के उस धरातल पर पहुंच जाता है, जहां सत्य को जाना नहीं जाता, जिया जाता है। इस स्थिति तक पहुंचने के लिए एक विशेष प्रक्रिया से गुजरना होता है, जो 'योग साधना' इन दो शब्दों में समा जाती है।

योग साधना वर्तमान युग की बहु-चर्चित और बहु-प्रयुक्त प्रक्रिया है। तेरापंथ धर्म-संघ में पिछले कई दशकों पूर्व इसका पुनर्मूल्यांकन हो चुका था, फिर भी 'जैन योग' के रूप में एक स्वतंत्र साधना पद्धति की व्यवस्थित प्रस्तुति हमारे पास नहीं थी।

मैंने सन् १९६२ उदयपुर चातुर्मास में मुनि नथमलजी से इस संबंध में गहरा अनुसंधान करने के लिए कहा। उनकी बचपन से ही यह वृत्ति रही है कि वे मेरे हर निर्देश के प्रति स्वाभाविक रूप से समर्पित रहते हैं। जब भी उनको किसी कार्य के लिए कहा जाता है, वे बिना ऊहापोह किए उसकी क्रियान्विति को प्राथमिकता देते हैं। साधना उनकी विशेष रुचि का विषय था। मेरे निर्देश का योग मिलने से वह अधिक पुष्ट हो गई। उनके अनुसंधान की विधा रही–शास्त्रों का दोहन, तथ्यों का समाकलन, पद्धति का निर्धारण, वैज्ञानिक तथ्यों के साथ तुलना, प्रयोग और अनुभव। इन सबके आधार पर एक परिष्कृत पद्धति का स्थिरीकरण हुआ, जो आज 'प्रेक्षाध्यान साधना' के नाम से प्रयुक्त हो रही है।

उस 'प्रेक्षाध्यान' की पूरी प्रक्रिया ही 'जैन योग' है। यह एक चिरंतन प्रश्न का समाधान है और है अंतर्यात्रा का सोपान। इसका प्रारम्भ होता है अस्तित्व बोध के आत्मलक्षी बिंदु से और अग्रिम बिंदुओं में है आभा-मंडल, कुण्डलिनी, चैतन्य केन्द्र आदि का शारीरिक, वैज्ञानिक तथा यौगिक दृष्टि से विश्लेषण। पद्धति और उपलब्धि की चर्चा के साथ इसके परिशिष्ट भाग में भगवान् महावीर के साधना प्रयोगों और आचारांग में उपलब्ध प्रेक्षाध्यान के तत्त्वों को समाविष्ट कर पुस्तक की उपयोगिता को और अधिक बढ़ा दिया गया है।

'जैन योग' स्वाध्याय की ही नहीं, प्रयोग की भी प्रक्रिया है। इसके पाठक अपने मन की जागरूकता, आत्मा की समता और चित्त की निर्मलता को उत्तरोत्तर विकसित करते हुए तनाव-मुक्त जीवन जीने में सफल हों, यही शुभाशंसा है।

१ अप्रैल १९७८ **आचार्य तुलसी**

घट घट दीप जले

दीप प्रकाश देता है किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में प्रकाश के इतने साधन विकसित हो गये हैं कि दीपक का अस्तित्व ही मिट रहा है। पर मैं समझता हूं कि दीप चाहे आकार में छोटा हो, प्रकाश कम देता हो, फिर भी वह प्रकाश का प्रतीक है, इसलिए महत्त्वपूर्ण है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने दीपक के महत्त्व को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि जब सूर्य अस्त होने लगा तब उसने सारे संसार को आह्वान कर पूछा–

के लोइवे मोर कार्य कहे संध्या रवि,
सुनिया जगत रहे निरुत्तर छवि,
माटीर प्रदीप छील से कोहिला स्वामी
जे टू कू साध्या कोरिव ता आमी॥

मैं जा रहा हूं। पीछे से मेरा काम कौन करेगा? इस प्रश्न के उत्तर में एक मौन सन्नाटा छा गया। कोई कुछ नहीं बोला। उस समय नन्हा-सा माटी का दीप खड़ा हुआ और बोला, 'मेरे में जितनी क्षमता है, आपका काम मैं करूंगा।'

छोटे से दीपक ने साहस किया और वह स्वयं जल-जलकर अंधकार का नाश करने लगा। घर-घर में मिट्टी के दीप जल उठे। सूर्य की अनुपस्थिति में भी संसार का काम चलता रहा।

"अध्यवसायी मुनि नथमलजी जितने लेखक हैं, उससे भी अधिक योगाभ्यासी हैं। आत्म-साधना और ज्ञानाराधना के अनुपम योग से साहित्य-क्षेत्र में अच्छी गति की है और कर रहे हैं। मैं सोचता हूं मुनि नथमलजी साहित्य के क्षेत्र में नया कीर्तिमान स्थापित करें और सत्य-निरपेक्ष तथ्य-संकलन करने वालों के लिए एक आदर्श बनें।"

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने सोचा कि घर-घर में जलने वाले ये दीप घट-घट में जल जाएं तो बाहरी अंधकार के साथ भीतर का अंधेरा भी समाप्त हो सकता है। इसी दृष्टि से उन्होंने एक उपक्रम किया और 'घट-घट दीप जले' नाम से वह जनता तक पहुंच रहा है। उसको पढ़ने वाले और उस पर मनन करने वाले पाएंगे कि हम विवेकानन्द को पढ़ रहे हैं और युग-बोध के साथ अपने जीवन की नई दिशा पा रहे हैं।

बात बहुत पुरानी है। दिल्ली में साहू शान्तिप्रसादजी जैन की कोठी में राष्ट्रकवि दिनकर आदि कुछ साहित्यकार मेरे सामने बैठे थे। साहित्य पर चर्चा चली। बातचीत के मध्य कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' खड़े हुए। महाप्रज्ञ की ओर संकेत करते हुए वे बोले–'आचार्यजी! आपके समाज ने हमको आधुनिक साहित्य दिया, इसकी हमें प्रसन्नता है पर इससे भी अधिक प्रसन्नता यह है कि आपने हमको एक विवेकानन्द दिया।'

विवेकानन्द ने अपने समय में साहित्य की जो धारा बहाई, उससे आज भी लोकजीवन अनुप्राणित हो रहा है। इसी प्रकार महाप्रज्ञ की साहित्य-धारा भी सतत प्रवहमान रहती हुई जन-जीवन को अनुप्राणित करती रहेगी। 'घट-घट दीप जले' उसी धारा की एक बूंद है। यह कृति अन्वर्थनामा होकर जन-जन के घट-घट में अध्यात्म का आलोक बिखेरती रहेगी, ऐसा विश्वास है।

२ अक्टूबर १९८०

आचार्य तुलसी

अमूर्त चिन्तन

मनुष्य की जीवन-शैली उसके चिन्तन पर निर्भर है। उसकी शरीर-संरचना, कार्यपद्धति और व्यक्तित्व की निर्मिति का आधार भी उसका चिन्तन है। वह जैसा सोचता है, वैसा बन जाता है। उसकी वृत्तियों, नीतियों और व्यवहारों पर भी उसके चिन्तन का प्रभाव रहता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक कार्ल सिमोंटोन के अनुसार पोजिटिव थिंकिंग के प्रभाव बहुत आश्चर्यकारक होते हैं। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि मनुष्य जो कुछ सोचे, पूरे मन से सोचे और समझपूर्वक सोचे। यह पूर्ण एवं सुविचारित सोच मनुष्य के व्यक्तित्व का बहुत बड़ा हिस्सा है।

विचारों के आधार पर व्यक्तित्व परिवर्तन की बात कोई माने, न माने, हम अपना अभिप्राय किसी पर थोपना नहीं चाहते। पर जिन लोगों को यह विश्वास न हो, वे युवाचार्य महाप्रज्ञ की अनुभूत कृति 'अमूर्त चिन्तन' पढ़ें और अपनी धारणाओं के जंगल को काटकर अनुभवों की नई पौध उगाएं।

आत्महीनता से उपजी कुंठाओं और विकृतियों को तोड़कर संतुलित जीवन जीने के लिए अनुप्रेक्षा और भावना का प्रयोग अमोघ सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक में यही सब कुछ रूपायित है। अपनी सुबोधता और वैज्ञानिकता के आधार पर यह पुस्तक किसी भी वर्ग की प्रबुद्ध पीढ़ी को आगे बढ़ाने में समर्थ है।

महाप्रज्ञजी का साहित्य उत्तरोत्तर अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। इस साहित्य के पाठक अपनी ज्ञान चेतना और अनुभव चेतना पर आए आवरण को तोड़कर अपने भीतर एक नए मनुष्य को जन्म देने में सफल हों, यही इस लोकप्रियता की सार्थकता है।

अणुव्रत भवन, नई दिल्ली

आचार्य तुलसी

११ जनवरी १९८८

अभ्युदय

योगक्षेम वर्ष का पूर्व अवसर। प्रज्ञा जागरण और व्यक्तित्व निर्माण का महान् लक्ष्य। लक्ष्य की पूर्ति के बहुआयामी साधन–प्रवचन, प्रशिक्षण और प्रयोग। प्रवचन के प्रत्येक विषय का पूर्व निर्धारण। अध्यात्म और विज्ञान को एक साथ समझने और जीने की अभीप्सा। समस्या एक ही थी–प्रशिक्षु व्यक्तियों के विभिन्न स्तर। एक ओर अध्यात्म तथा विज्ञान का क,ख,ग नहीं जानने वाले, दूसरी ओर अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों के जिज्ञासु। दोनों प्रकार के श्रोताओं को उनकी क्षमता के अनुरूप लाभान्वित करना कठिन प्रतीत हो रहा था। चिन्तन यहीं आकर अटक रहा था कि उनको किस शैली में कैसी सामग्री परोसी जाए? नए तथ्यों को नई रोशनी में देखने की जितनी प्रासंगिकता होती है, परम्परित मूल्यों की नए परिवेश में प्रस्तुति उतनी ही आवश्यक है।

न्यायशास्त्र का अध्ययन करते समय देहली दीपक न्याय और डमरुक मणि न्याय के बारे में पढ़ा था। दहलीज पर रखा हुआ दीपक कक्ष के भीतर और बाहर को एक साथ आलोकित कर देता है। डमरु का एक ही मनका उसे दोनों ओर से बजा देता है। इसी प्रकार वक्तृत्व कला में कुशल वाग्मी अपनी प्रवचनधाराओं से जन-साधारण और विद्वान्–दोनों को अभिस्नात कर सकते हैं, यदि उनमें पूरी ग्रहणशीलता हो।

योगक्षेम वर्ष की पहली उपलब्धि है–प्रवचन की ऐसी शैली का आविष्कार, जो न सरल है और न जटिल है, जिसमें उच्चस्तरीय ज्ञान की न्यूनता नहीं है और प्राथमिक ज्ञान का अभाव नहीं है, जो निश्चय का स्पर्श करने वाली है तो व्यवहार के शिखर को छूने वाली भी है। इस शैली को आविष्कृत या स्वीकृत करने का श्रेय है 'युवाचार्य महाप्रज्ञ' को।

योगक्षेम वर्ष की प्रवचनमाला उक्त वैशिष्ट्य से अनुप्राणित है। जैन आगमों के आधार पर समायोजित यह प्रवचनमाला वैज्ञानिक व्याख्या के कारण सहज गम्य और आकर्षक बन गई है। इसमें शाश्वत और सामायिक सत्यों का अद्भुत समावेश है। इसकी उपयोगिता योगक्षेम वर्ष के बाद भी रहेगी, इस बात को ध्यान में रखकर प्रज्ञापर्व समारोह समिति ने महाप्रज्ञ के प्रवचनों को जनार्पित करने का संकल्प संजोया। 'अभ्युदय' उसका पहला पुष्प है।

जिन लोगों ने प्रवचन सुने हैं और जिन्होंने नहीं सुने हैं, उन सबको योगक्षेम यात्रा का यह पाथेय मंजिल की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता रहेगा और उनकी चेतना के बंद द्वारों को खोलकर प्रकाश से भर देगा, ऐसा विश्वास है।

५ अगस्त १९८९ **आचार्य तुलसी**

लाडनूं

चित्त और मन

मनुष्य का शरीर अनेक रहस्यों का पिण्ड है। चेतना-संवलित शरीर और अधिक रहस्यमय है। उन रहस्यों को खोलने का प्रयास चल रहा है। कुछ खुले हैं, कुछ अधिक गहरे हुए हैं। मन भी मनुष्य के शरीर तंत्र का एक अंग है। इसे समझना बहुत कठिन है। इसके अनेक रूप हैं। कब यह अपने एक रूप को बदलकर दूसरा परिधान पहन लेता है, कुछ पता ही नहीं चलता। मन क्या है? चित्त-वृत्तियों की अनेकरूपता मन को

"योगक्षेम वर्ष की पहली उपलब्धि है–प्रवचन की ऐसी शैली का आविष्कार, जो न सरल है और न जटिल है, जिसमें उच्चस्तरीय ज्ञान की न्यूनता नहीं है और प्राथमिक ज्ञान का अभाव नहीं है, जो निश्चय का स्पर्श करने वाली है तो व्यवहार के शिखर को छूने वाली भी है। इस शैली को आविष्कृत या स्वीकृत करने का श्रेय है 'युवाचार्य महाप्रज्ञ' को।"

नए-नए रूप देती हैं अथवा मन की स्थिरता से चित्त का निरोध होता है? इस प्रकार के अनेक प्रश्न हैं, जो मन की जटिलता को प्रकट करते हैं।

युवाचार्य महाप्रज्ञ ने प्रस्तुत ग्रन्थ में चित्त और मन की विशद व्याख्या की है। विज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि से इसके स्वरूप को विश्लेषित किया है। वे कठिन से कठिन तत्त्व को सरलता से प्रस्तुति देने की कला में निष्णात हैं। अब तक जिस विषय को काफी जटिल समझा जा रहा था, उसे सहजता से बोधगम्य कराने का एक प्रयत्न है उनकी नई पुस्तक 'चित्त और मन'। अनेक दृष्टियों से चित्त और मन का विश्लेषण करने वाली यह पुस्तक प्रेक्षासाधकों के लिए तो उपयोगी है ही, पाठ्यक्रम में भी इसका उपयोग किया जाए तो इससे व्यापक लाभ उठाया जा सकता है।

८ जून १९९०

आचार्य तुलसी

राणावास

लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज

विश्व के किसी कोने में कोई भी समस्या पैदा होती है, वह पूरे विश्व को प्रभावित कर सकती है। व्यक्ति, समाज या राष्ट्र की समस्या का इतना प्रभाव हो सकता है तो उसके समाधान का प्रभाव क्यों नहीं होगा? समस्या की तरह समाधान भी देश और काल की सीमाओं में आबद्ध नहीं रहता। किन्तु वर्तमान युग की स्थिति कुछ विचित्र है। इस समय ऐसे व्यक्ति कम दिखाई देते हैं, जो समस्याओं से आहत होने के बजाय उनका समाधान खोज सकें और युग के प्रवाह को मोड़ सकें।

समस्या के दो रूप हैं–शाश्वत और युगीन। युगीन समस्याओं का समाधान युग के परिप्रेक्ष्य में ही खोजा जा सकता है। फिर चाहे वह समस्या लोकतंत्र की हो, धर्मनिरपेक्षता की हो, आर्थिक महत्त्वाकांक्षा की हो, सम्प्रदायवाद की हो, अमीरी-गरीबी की हो या सुविधावादी दृष्टिकोण की हो। हमारे धर्मसंघ में ऐसे प्रश्नों पर गम्भीर चिन्तन होता रहता है। आचार्य महाप्रज्ञ शाश्वत मूल्यों के बारे में जितना सोचते हैं, युगीन प्रश्नों के संदर्भ में भी कम नहीं सोचते। उनकी अन्तर्दृष्टि जागृत है। केवल अध्ययन के बल से नहीं, उन्होंने अपने प्रज्ञाबल से युगीन समस्याओं के अनेक समाधान खोजे हैं। खोज का सिलसिला जारी है। 'लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज' महाप्रज्ञ के ऐसे ही निबंधों का संकलन है। प्रस्तुत कृति अपने पाठकों की चेतना को झकझोरने, उनकी प्रज्ञा जगाने, तीसरी आंख खोलने और युगीन समस्याओं का समाधान खोजने में निमित्त बने, यही सृजन एवं संकलन में लगे क्षणों की सार्थकता है।

२२ सितम्बर १९९३

आचार्य तुलसी

नया मानव : नया विश्व

यह एक सचाई है कि आज का मानव पुराना पड़ गया, जीर्ण-शीर्ण हो गया। पुराने और जीर्ण-शीर्ण मकान की मरम्मत की जाती है अन्यथा वह किसी भी समय खतरा पैदा कर सकता है। पुराना मानव भी कभी-कभी खतरनाक बन जाता है। इसलिए नए मानव की कल्पना हृदयग्राही और आकर्षक है। मानव नया होगा तो विश्व अपने आप नया हो जाएगा। 'नया मानव' सुधार या रूपान्तरण से नहीं बनेगा, उसका नए सिरे से निर्माण करना होगा। इस चिन्तन ने लोगों में जिज्ञासा जगाई कि वह नया मानव कैसा होगा?

मैंने आचार्य महाप्रज्ञ को नए मानव का मॉडल प्रस्तुत करने के लिए निर्देश दिया। निर्देश मिले और उसकी क्रियान्विति न हो, यह 'महाप्रज्ञ' के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। वे मुझे बार-बार कहते हैं–'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि'–आप मुझे जिस काम में नियुक्त करते हैं, मैं वही करता हूं। नियोक्ता और प्रयोक्ता का यह एक दुर्लभ योग है। तीन सप्ताह की प्रवचन माला उसी नियोजन की निष्पत्ति है। 'नया मानव : नया विश्व' पुस्तक को एक मॉडल का रूप माना जा सकता है।

नए मानव की आचार संहिता अहिंसा की आचार संहिता है। अहिंसा की आचार संहिता अणुव्रत की आचार संहिता है। अणुव्रत की आचार संहिता ही नए मानव की आचार संहिता हो सकती है। प्रेक्षा एक प्रयोग है मानव को उस आचार संहिता में ढालने का। जीवन विज्ञान एक प्रक्रिया है सिद्धान्त और प्रयोग के समन्वय की। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान के द्वारा नए मानव का निर्माण संभव है–प्रस्तुत पुस्तक का प्रतिपाद्य यही है।

कुछ लोग आचार्य महाप्रज्ञ को दूसरे विवेकानन्द के रूप में देखते हैं। मेरे मन में विवेकानन्द के प्रति बहुत ऊंचे भाव हैं। फिर भी मैं चाहता हूं कि महाप्रज्ञ को महाप्रज्ञ ही रहने दें। महाप्रज्ञ शब्द अपने आपमें इतना गरिमापूर्ण है कि इसके लिए किसी दूसरी उपमा की अपेक्षा नहीं है। महाप्रज्ञ ने अपनी प्रज्ञा से नए मानव और नए विश्व का जो मॉडल प्रस्तुत किया है, उसके अनुरूप मानव का निर्माण करने की दिशाएं खुलें, यही इस प्रयोग या पुस्तक की मूल्यवत्ता है।

गणाधिपति तुलसी

अध्यात्म साधना केन्द्र
छतरपुर रोड, महरौली
नयी दिल्ली-११००३०
१ अगस्त १९९४

महावीर का अर्थशास्त्र

ईस्वी सन् १९८७, अमेरिका का होनोलूलू शहर। हवाई विश्वविद्यालय शान्ति संस्थान एवं डे वोन सा बौद्ध मंदिर के संयुक्त तत्त्वावधान में संगोष्ठी का आयोजन। संगोष्ठी का विषय था–'बौद्ध परिप्रेक्ष्य में शान्ति'। पन्द्रह देशों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति। हवाई विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. ग्लेन डी. पेज के विशेष आमंत्रण पर हमारे प्रतिनिधियों का एक दल वहां पहुंचा। संगोष्ठी में एक प्रश्न आया कि अपरिग्रह के बारे में महावीर ने कुछ कहा हो, ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस संदर्भ में महावीर की क्या अवधारणा रही है? वहां उपस्थित विद्वानों में अधिसंख्य बौद्ध विद्वान् थे। संभवतः महावीर के दर्शन से वे पूरे परिचित नहीं थे। उस समय हमारे एक प्रतिनिधि जैन तत्त्वचर्चा विशारद श्री मोतीलाल एच. रांका खड़े होकर बोले–'महावीर ने अपरिग्रह के बारे मे बहुत कुछ कहा है। उनका एक दृष्टिकोण यह रहा है–'असंविभागी न हु तस्स मोक्खो–जो अर्थ संविभाग नहीं करता, विसर्जन नहीं करता, वह मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता।'

इस एक सूत्र से बौद्ध विद्वान् बहुत संतुष्ट हुए। सौका विश्वविद्यालय टोक्यो (जापान) के जो प्रतिनिधि वहां उपस्थित थे, वे हमारे प्रतिनिधि दल को विशेष आग्रह के साथ जापान ले गए और वहां अनेक गोष्ठियों में जैन दर्शन के संबंध में अनेक विचार सुने। मैंने जब से यह बात सुनी, मन में आया कि

> "आचार्य महाप्रज्ञ शाश्वत मूल्यों के बारे में जितना सोचते हैं, युगीन प्रश्नों के संदर्भ में भी कम नहीं सोचते। उनकी अन्तर्दृष्टि जागृत है। केवल अध्ययन के बल से नहीं, उन्होंने अपने प्रज्ञाबल से युगीन समस्याओं के अनेक समाधान खोजे हैं।"

परिग्रह और अपरिग्रह के विषय में महावीर की अवधारणा पर अध्ययन होना चाहिए। इस वर्ष अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान पर इक्कीस दिवसीय प्रवचनमाला के बाद आचार्य महाप्रज्ञजी से कहा–महावीर के दर्शन पर अर्थशास्त्रीय दृष्टि से भी एक प्रवचनमाला का आयोजन किया जाए।

संसार में अनेक अर्थशास्त्री हैं। वे अपनी दृष्टि से अर्थशास्त्रीय अवधारणाओं को व्यापारी वर्ग और उपभोक्ता वर्ग तक पहुंचा रहे हैं। अर्थ के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थ मनुष्य के जीवन से भी अधिक मूल्यवान् बन रहा है। अर्थ का अर्जन, संग्रह, संरक्षण और भोग–यह चतुष्टयी संताप का कारण बन रही है। ऐसी स्थिति में महावीर की विचारधारा कुछ अंशों में भी त्राण बन सकी तो एक बड़ी उपलब्धि हो जाएगी। इस दृष्टि से प्रति सप्ताह दो-दो प्रवचन के क्रम से चार सप्ताह के प्रवचनों की निष्पत्ति है–महावीर का अर्थशास्त्र। पुस्तक का नाम अटपटा अवश्य है, पर इसमें विवेचित विषय अर्थ-शास्त्रीय अवधारणाओं में मील के पत्थर बन सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

अर्थशास्त्र की तरह राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि के बारे में महावीर की अवधारणाओं का प्रकाश संसार को मिले, इस ओर भी महाप्रज्ञजी को ध्यान देना है और अपने नए चिन्तन से जिज्ञासु लोगों को लाभान्वित करना है।

अध्यात्म साधना केन्द्र — **गणाधिपति तुलसी**

१३ सितम्बर १९९४

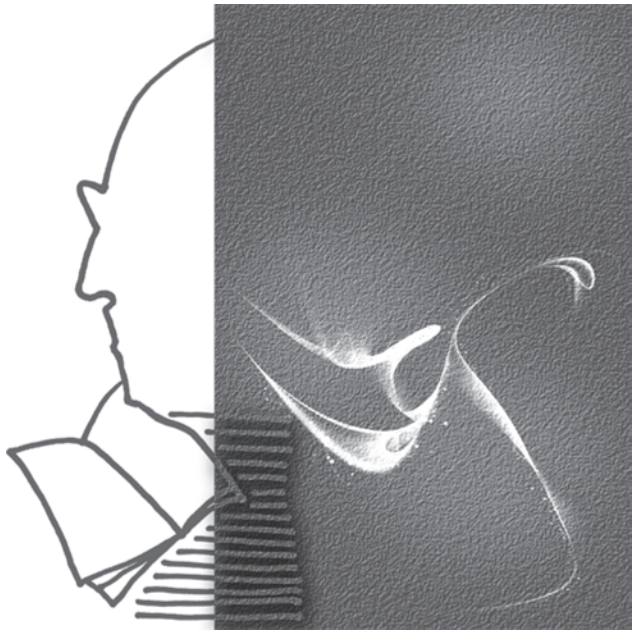

१७

महान् सौभाग्य-क्षण

पूज्य गुरुदेव के साथ चिन्तन-मंथन और विचार-यात्रा में मैं सदा सहभागी रहा। आचार्यवर की सृजन-यात्रा में मुझे अपने श्रम बिन्दु समर्पित करने का सौभाग्य मिला। मैंने भिक्षु न्यायकर्णिका और जैन सिद्धांत दीपिका का संपादन किया। मनोनुशासनम् की व्याख्या लिखी।

आचार्यवर की एक महान् कृति है श्रावक संबोध। उसका भाष्य लिखकर गुरुदेव द्वारा प्रारब्ध कार्य को संपन्न किया।

आचार्य तुलसी की अमर गाथा है–मेरा जीवन : मेरा दर्शन। इस आत्मकथा के पुरोवाक् का आलेखन मेरे लिए अत्यधिक संतुष्टि और आह्लाद का क्षण बना।

प्रस्तुत अध्याय में पूज्य गुरुदेव की कृतियों पर आलेखित संपादकीय, प्रस्तुति, पुरोवाक्, प्रस्तावना, आमुख आदि संकलित हैं। यह गुरु के महान् अवदानों के प्रति विनम्र भावांजलि है, अहोभाव और आंतरिक उल्लास की अभिव्यंजना है। गुरु के सारस्वत अवदानों से जुड़ना किसी शिष्य के लिए महान् सौभाग्य का क्षण होता है। ये सौभाग्य-क्षण मुझे विविध रूपों में जीवन भर मिलते रहे। प्रस्तुत अध्याय उसका एक निदर्शन है।

“गुरु के सारस्वत अवदानों से जुड़ना किसी शिष्य के लिए महान् सौभाग्य का क्षण होता है। ये सौभाग्य-क्षण मुझे विविध रूपों में जीवन भर मिलते रहे। प्रस्तुत अध्याय उसका एक निदर्शन है।”

सम्पादकीयम्

भिक्षु न्यायकर्णिका

आचार्यस्य नैसर्गिकं कर्तव्यमस्ति शिष्यगणाय दिशादर्शनम्। शिष्या विभिन्नरुचयो भवन्ति– केचिद्दर्शनप्रियाः, केचित्तर्कप्रवणाः, केचिद् योगाभ्याससन्निहितमतयः, केचिच्च संघविकासविहितरुचयः। तत्र सर्वेषां रुचिपोषः क्रियते, तेन सर्वेऽपि स्वाभिमतदिशायां संवर्धन्ते। एतत् संवर्धनाय मन्ये आचार्यवरेण ग्रन्थचतुष्टयी निर्मिता–दर्शनं जिज्ञासूनां कृते जैनसिद्धान्तदीपिका, तर्कं जिज्ञासूनां कृते भिक्षुन्यायकर्णिका, योगार्थिनां कृते मनोनुशासनम्, संघविकासार्थिनां कृते पञ्चसूत्रम्।

प्रस्तुतग्रन्थोस्ति भिक्षु न्यायकर्णिका। अस्माकं तेरापंथसंप्रदायस्य प्रथमाचार्याः नैसर्गिकीं तार्किकीं प्रतिभां संप्राप्ता आसन्, अतएव आचार्यवरेण तेषां स्मृतिसम्बन्धेनास्य ग्रन्थस्य नाम विहितं 'भिक्षुन्यायकर्णिका'।

आचार्यवर्याः भिक्षुस्वामिनो विचारसरणिं तार्किकपद्धत्या प्रसारितवन्तः। तेन भिक्षुस्वामिनो नैयायिकत्वमधुना विदुषां समक्षे प्रकटीभूतम्। एवमनेकैर्वर्त्मभिराचार्यवरेण परंपराप्राप्तं ऋणं संपूर्य आनृण्यमाप्तमिति मन्येऽहम्।

प्रस्तुग्रन्थे सरलपद्धत्या तर्कशास्त्रस्य निरूपणं कृतमस्ति। विद्यार्थिनां तर्कशास्त्रविषये स्यात् सुगमःप्रवेश इति मुख्यं लक्ष्यमत्रास्ति सन्निहितम्। अस्मिन् लक्ष्ये साफल्यमनुभूयते प्रतिपदम्।

आचार्यवर्येण तेरापंथसंघस्योन्नयनाय महान् प्रयत्नः कृतः। अनेकेषां साधुनां साध्वीनां चानेकासां विद्याजीवनमभून्निर्मितम्। मम निर्माणे आदित एव योऽप्रयत्नात्मकः प्रयत्नः कृतः स खलु मम नैसर्गिकसौभाग्यसंचयः।

प्रस्तुत ग्रन्थो विद्यार्थिनां महान् उपयोगी वर्तते। अस्य संपादनं चिरकालपेक्षितमिदानीं जायते। अस्य संपादने प्रतिसंशोधानादिकार्ये मुनिगुलाबचन्द्रेण मम यथेष्टं योगः कृतः।

अस्यानुवादः कृतोस्ति सहोदरीसम्बन्धमाप्तेन मंजुला-कनकप्रभाख्यानिश्चितेन साध्वीद्वयेन।

अस्माकं संघस्य निसर्गोऽयं यत् साधवः साध्व्यश्च भवन्ति कर्तव्यानुपालनप्रकृतलक्ष्याः। आचार्यवर्यस्य महान् प्रसादोऽयं सौकर्येण सर्वोपयोगी भविष्यतीति साधुवादार्हास्ते।

बल्लभ निकेतन, अणुव्रत ग्राम
बंगलोर-१
२ सितम्बर, १९६९

मुनिः नथमलः

जैन सिद्धांत दीपिका

आचार्यस्य नैसर्गिकं कर्तव्यमस्ति शिष्यगणाय दिशादर्शनम्। शिष्या विभिन्नरुचयो भवन्ति– केचिद्दर्शनप्रियाः, केचित्तर्कप्रवणाः, केचिद्योगाभ्याससन्निहितमतयः, केचिच्च संघविकासविहितरुचयः। तत्र सर्वेषां रुचिपोषः क्रियते, तेन सर्वेऽपि स्वाभिमतदिशायां संवर्धन्ते। एतत्संवर्धनाय मन्ये आचार्यवरेण

ग्रन्थचतुष्टयी निर्मिता–दर्शनं जिज्ञासूनां कृते जैनसिद्धान्तदीपिका, तर्कं जिज्ञासूनां कृते भिक्षुन्यायकर्णिका, योगार्थिनां कृते मनोनुशासनम्, संघविकासार्थिनां कृते पञ्चसूत्रम्।

प्रस्तुत ग्रन्थोस्ति जैनसिद्धान्तदीपिका। ग्रन्थनिर्माणप्रयोजनं खलु जैनसिद्धान्तनिरूपिततत्त्वप्रकाशेन नानाविश्ववर्तिरहस्योद्घाटनपुरस्सरमनेकेषामिन्द्रियातीतविषयाणां निर्णयीकरणं शृंखलाबद्धरूपेण द्रव्यतत्त्वाचारविधेर्व्यवस्थापनञ्च।

दार्शनिकानां लक्ष्यं सर्वेषामपि जडचेतनानां भावानां स्वरूपनिश्चितीकरणं मोक्षप्राप्तिश्च। दर्शनस्यायमेव सम्बन्धो जीवनेन सह सुतरां समुन्नेयः। यदिदं जीवनरहस्यमाविर्भावयति–जडचेतनयोः सम्बन्धं दर्शयति–अतीन्द्रियमप्यात्मानं चैतन्यलक्षणेन जडपदार्थात्पृथक्करोति, व्यवस्थावैषम्यं, नरपश्वादिरूपं, स्वास्थ्यवैषम्यं, ज्ञानवैषम्यमायुर्वैषम्यमैश्वर्यवैषम्यञ्चेति सर्वेषामपि वैषम्यानामुपनिषद्भूतं कारणं प्रकटीकरोति जडपदार्थानामप्यद्भुतकार्य्यकर्तृत्वं प्रादुष्कुरुते। जडेन सहात्मनो विसम्बन्धस्य प्रक्रियामुपदिशतीत्यादि। न खलु दर्शनाध्याययनमन्तरा उक्ता उक्तसमाना वा अपरेऽपि ग्रन्थयः सरला भवन्ति। दर्शनमेवैकमेतादृशं वस्तु विद्यते येनादृष्टा अपि पदार्थाः सम्यक् परिच्छिद्यन्ते। दर्शनं खलु तदेव येनादृष्टं सत्यं दृश्यते साक्षात्क्रियते वा।

यावन्नैषोऽपि निर्णयः स्यादहं कोऽस्मि–कुत आगतोऽस्मि क्व व्रजिस्यामि तावत् कथं स पुरुषो निर्णयेत् स्वजीवनस्योचितं पन्थानम्। कथञ्चायतिहिताय यतेत। कियत् प्रलम्बं भविष्यत्? किमु वर्तमानजीवनमात्रमेव? ततोऽपि पुरा पुनर्जन्मरूपं वा? यदि प्राचीन एव पक्षः समीचीनस्तदानीं न नामात्मविकासप्रश्नोऽपि महीयान्। यदि पुनरुदीचीनः पीनस्तदा पौद्गलिकसुखपिपासां व्युदास्य यथावकाशमात्मशुद्ध्यर्थं प्रयत्नकरणमपि स्यान्नितान्तमावश्यकम्। न केवलं पर्याप्नोति भौतिकसुखसमृद्धिरेवेति। एतदनुसारेणैव सामाजिकी राजनैतिकी व्यवस्था प्रवर्तेत। अतएव दर्शनाध्ययनमधिकरोति निःशेषानपि दृक्कोणान्।

न च सिद्धान्तस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्मं रहस्यमधिजिगमिषवोऽपि सहसैव तत्राविदिताशयसरणौ दर्शनमहामन्दिरे प्रवेष्टुं प्रभविष्णवः। स्यात्तेषामपेक्षणीयः प्रथप्रकाशी प्रदीप इव सज्ज्ञानज्योतिर्ज्वलितः कश्चिद् ग्रन्थः। सन्त्यनेकेऽपि तादृशा ग्रन्थाः परन्तु केचनातिकठिनाः केचिद् विशालकलेवराः केचिद् द्रव्यनिर्णायकाः केचन तत्त्वविवेचनपराः केचिच्च तत्राचाररहस्योद्बोधकाः। न खल्वत एव सौकर्यं संपद्यतेऽध्ययनरसिकानाम्। नाहं केवलं गुरुभक्त्येकरसिकतयैव, अपितु यथार्थमुल्लिखामि 'जैनसिद्धान्तदीपिका' सिद्धान्ततत्त्वे प्रविविक्षूणां तुलनातिरेको निधिरिति।

तनुकायतनेऽप्यमुष्मिन् शास्त्रे समुज्जीवन्ति प्रायोप्युपयोगिनो विषयाः। नवप्रकाशपरिच्छिन्नोऽयं ग्रन्थः। तत्र क्वचिद् द्रव्यविवेकः, क्वचित्तत्त्वमीमांसा, क्वचित्पुनराचाररहस्याविर्भावनम्।

भाषासारल्यं पाठसांक्षेप्यञ्चास्य सर्वतः प्रधानं लक्ष्यम्। तत एवेति निश्चितिपूर्वकमभिधातुं शक्यते–अयं हि विदुषां वैदग्धीविषयीभवन्नपि शैक्षाणामपि परमोपयोगीति तत्त्वम्।

आचार्यवर्येण तेरापंथसंघस्योन्नयनाय महान् प्रयत्नः कृतः। अनेकेषां साधूनां साध्वीनां चानेकासां विद्याजीवनमभून्निर्मितम्। मम निर्माणे आदित एव योऽप्रयत्नात्मकः प्रयत्नः कृतः स खलु मम नैसर्गिकसौभाग्यसंचयः।

अस्य संपादने प्रतिसंशोधनादिकार्ये च मुनिगुलाबचन्द्रेण मम यथेष्टं योगः कृतः। श्रावकवरकोठारीजयचन्द्रलालेनाऽपि अस्मिन् कार्ये अवधानपूर्वकं योगः कृतः।

"अस्याश्च सम्पादने निकायसचिवेन शिष्यवरमुनिनथमलेन 'तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सन्ना तन्निवेसणा' इत्यागमवाक्यानां साक्षात् चरितार्थीकरणसहज-संकल्पेन यः श्रमो व्यधायि स च नाभिनन्द्यते। तदभिनन्दने स्वाभिनन्दनप्रसक्तिः। गुरु-शिष्ययोः कथं चिदभिन्नत्वात् केवलमाशीर्वचन-प्रदानेनैव आश्वस्तो विश्वस्तश्च भवामि मनसि नितरां मोमुदीमि।"

अस्माकं संघस्य निसर्गोऽयं यत् साधवः भवन्ति कर्तव्यानुपालनप्रकृतलक्ष्याः। आचार्यवर्यस्य महान् प्रसादोऽयं सौकर्येण सर्वोपयोगी भविष्यतीति साधुवादार्हास्ते।

बल्लभ निकेतन
अणुव्रत ग्राम, बंगलोर-१
२ सितम्बर, १९६९

मुनिः नथमलः

आमुख

मनोनुशासनम्

प्रत्येक धर्म का अपना स्वतंत्र साध्य होता है और उसकी सिद्धि के लिए उसी के अनुकूल साधना-पद्धति होती है। महर्षि पतंजलि ने सांख्यदर्शन की साधना-पद्धति को व्यवस्थित रूप दिया और योग नाम से एक स्वतंत्र साधना-पद्धति विकसित हो गई। अब हर साधना-पद्धति योग नाम से अभिहित होती है। योग स्वयंसिद्ध नाम है। दूसरे धर्मों की साधना-पद्धति की जैन योग, बौद्ध योग–इस प्रकार पहचान की जाती है। किन्तु जैनों और बौद्धों की साधना-पद्धति की स्वतंत्र संज्ञा है। जैनों की साधना-पद्धति को मोक्षमार्ग और बौद्धों की साधना-पद्धति को विशुद्धिमार्ग कहा जाता है।

उपनिषद्-साहित्य में षडंग योग का उल्लेख मिलता है[१]–प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, तर्क और समाधि।

पातंजल योगदर्शन में अष्टांग योग का उल्लेख है[२]–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

बौद्ध साधना-पद्धति में आर्य अष्टांगिक मार्ग का उल्लेख है[३]–सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यग्-वाणी, सम्यग्-कर्म, सम्यग्-आजीविका, सम्यग्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति और सम्यक्-समाधि।

मार्ग चतुरंग है[४]–ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप।

ज्ञान से सत्य ज्ञात होता है। दर्शन से वह स्थिर होता है। चरित्र से असत्य का सम्पर्क विच्छिन्न होता है और तप से असत्य के संचित संस्कार क्षीण होते हैं।

चारों के समवाय से आत्मा असत्य से विच्छिन्न होकर अपने सत्य स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है।

साधना की समग्र पद्धति जिस मन्दिर की परिक्रमा करती है, उसका देवता है–मन। उसकी सिद्धि सबकी सिद्धि और उसकी असिद्धि सबकी असिद्धि होती है।

केशी स्वामी ने गौतम से पूछा–तुम शत्रुओं पर विजय कैसे प्राप्त करते हो?

---

१. मैत्रायणी उपनिषद्, ६/१८–प्राणायामः प्रत्याहारो ध्यानं धारणा तर्कः समाधिः षडंग इत्युच्यते योगः।
२. पातंजल योगदर्शन, २/२९–यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि।
३. संयुक्तनिकाय, ५/१०
४. उत्तराध्ययन, २८/२

गौतम ने कहा–भंते! मैं एक पर विजय प्राप्त करता हूं। उससे चार स्वयं विजित हो जाते हैं। उनके विजित होने पर पांच और विजित होते हैं। इस प्रकार दस पर विजय प्राप्त कर लेता हूं। इसका अर्थ यह होता है कि मैं सब शत्रुओं पर विजय पा लेता हूं।

केशी ने फिर पूछा–तुम शत्रु किसे समझते हो?

गौतम ने कहा–आत्मा, कषाय–क्रोध, मान, माया और लोभ–और पंचेन्द्रिय, ये दस शत्रु हैं। मैं इन पर विजय प्राप्त कर सुख से विचरता हूं।

यहां आत्मा का अर्थ मन है। इसे जीते बिना कषाय और इन्द्रिय पर विजय प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए 'मनोनुशासनम्' की अपने आप में सार्थकता है।

मन को अनुशासित करने के लिए शरीर, श्वास आदि को अनुशासित करना भी आवश्यक होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में मन तथा उसके लिए अन्य जितने भी अनुशासनीय हैं, उन सबके अनुशासन की प्रक्रिया निरूपित की गई है।

आचार्यश्री तुलसी महान् प्रेरणा-स्रोत हैं। वे स्वयं प्रकाशित और पर-प्रकाशी हैं। उन्होंने समय-समय पर ज्योति विकीर्ण की है।

तत्त्वज्ञान की अपेक्षा थी, तब आचार्यवर ने 'जैन सिद्धान्त दीपिका' की रचना की। वह तत्त्व जिज्ञासु व्यक्तियों के लिए बहुत ही प्रेरक बनी।

दृष्टि-परिष्कार के लिए आचार्यवर ने 'भिक्षुन्यायकर्णिका' की रचना की। न्यायशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए वह बहुत ही लाभप्रद हुई।

व्यवहार-परिष्कार के लिए आचार्यश्री ने 'पंचसूत्रम्' का प्रणयन किया। वैचारिक परिपक्वता और अनुशासित जीवन-पद्धति की उपलब्धि के लिए उसका अपना विशिष्ट मूल्य है।

आज सर्वाधिक अपेक्षा मन को अनुशासित करने की है। उसकी पूर्ति के लिए आचार्यश्री ने 'मनोनुशासनम्' का प्रणयन किया है। यह आकार में लघु है पर प्रकार में गुरु। इसमें योगशास्त्र की सर्वसाधारण द्वारा अग्राह्य सूक्ष्मताएं नहीं हैं। किन्तु जो हैं, वह अनुभवयोग्य और बहुजनसाध्य हैं। इस मानसिक शिथिलता के युग में मन को प्रबल बनाने की साधना-सामग्री प्रस्तुत कर आचार्यश्री ने मानव-जाति को बहुत ही उपकृत किया है। हमारी आशंसा है कि युग-युग तक हमें इस महान् ज्योति से ज्योति की रेखाएं प्राप्त हों।

'मनोनुशासनम्' का संक्षिप्त अनुवाद आचार्यवर के धवल समारोह के पुण्य पर्व (वि.सं. २०१८) पर प्रकाशित हो चुका था किन्तु उससे पाठक की दृष्टि स्पष्ट नहीं हो रही थी। अनेक लोगों की यह भावना थी कि इसे कुछ विस्तार से लिखा जाए। इस अपेक्षा को मैं स्वयं भी अनुभव करता था। आचार्यश्री भी इस ओर इंगित कर चुके थे किन्तु प्राप्त कार्यों की पूर्णता न होने तक यह कार्य निष्पन्न नहीं हो सका। आचार्यश्री ने इस कार्य के लिए समय की विशेष व्यवस्था की और यह कार्य सम्पन्न हो गया।

इस कार्य में मुनि गुलाबचन्द्र 'निर्मोही' मेरे सहयोगी रहे हैं। मैं लिखाता गया और वे लिखते गए। मैं बोला हूं, इतना कार्य मेरा है, शेष सब कार्य उन्होंने किया है। यदि ऐसा नहीं होता तो अन्य कार्यों की व्यस्तता में इसका निर्माण संभव नहीं था।

"मुनि नथमलजी ने इसकी विस्तृत व्याख्या लिखकर तथा इसे अपनी अनुभूति से आप्लावित कर बाल, युवा और वृद्ध–सब लोगों के लिए अधिक उपयोगी बना दिया है। बृहद् व्याख्या के बिना केवल सूत्र इतने जनोपयोगी नहीं हो सकते थे। मेरी प्रेरणा को उन्होंने मूर्त रूप दिया है। योग में उनकी सहज गति है। ज्ञान के अभ्यासी होने के कारण उनकी भाषा में बेधकता है। दर्शन के अभ्यासी होने के कारण दार्शनिक तत्त्वों को भी उन्होंने सहजगम्य बनाने का प्रयत्न किया है।"

मनोनुशासनम् की रचना के पश्चात् प्रेक्षाध्यान की पद्धति का निर्धारण किया गया। उसके प्रयोग चल रहे हैं। किन्तु ध्यान का विशिष्ट विकास चाहने वालों के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ और इसके परिशिष्ट अत्यधिक मननीय और अनुशीलनीय हैं।

आचार्यश्री का अपना ग्रन्थ अपनी ही आलोक-रेखा से अलोकित हो, यह उनके और मेरे–दोनों के लिए आनन्द का प्रसंग है।

अणुव्रत नगर
मोतीबाग, रायपुर (म.प्र.)
२१ जुलाई १९७०

मुनि नथमल

आचार्य तुलसी का संस्कृत साहित्य (भाग १)

पूज्यकालुगणिनः लीलामाकलयितुं नार्हामो वयम्। विचित्रमुप्तं बीजमुर्वरायां यज्जातं शतशाखि। शाखामधिकृत्य उद्भवन्ति प्रश्नाः–किमाचार्यतुलसी आसीत् सिद्धान्तविद्?

जैनसिद्धान्तदीपिकामवलोकामहे तदा सहजमेव उद्गिरति वाक्–आचार्यतुलसी आसीत् सिद्धान्तविद्।

यदा वयमवलोकामहे भिक्षुन्यायकर्णिकां तदा अदृष्टस्यापि प्रश्नस्य उत्तरमिदमुपलप्स्यतेऽस्माभिः–आचार्यतुलसी आसीत् न्यायविद् दार्शनिकश्च। यदा निरीक्षामहे मनोनुशासनं तदा सहजमनुयुज्यते–किमासीत् आचार्यतुलसी योगविद्याविशारदः?

कश्चित् पुरुषो भवति सिद्धान्तविद्, कश्चिच्च न्यायशास्त्रविद्, पुनश्च कश्चिद् योगमर्मविद्।

भगवद्महावीरस्तुतौ गीतम्–भगवान् आसीत् अनन्तचक्षुः, तस्य पन्थानमनुसरन् आचार्यतुलसी अपि आसीत् अनेकचक्षुः। दृष्टमनेकासु दिशासु उद्घाटिताश्च अनेकाः दिशः।

आचार्यवर्येण दृष्टं अद्य तत्त्वज्ञानस्य विकासोऽपेक्षितः, कृता जैनसिद्धान्तदीपिकायाः रचना। तत्त्वविद्यायाः क्षेत्रे एकस्य ग्रन्थस्यासीत् अपेक्षा, तस्याः पूर्तिर्जाता जैनसिद्धान्तदीपिकायाः विरचनात्।

एकदा सत्कड़िमुखर्जीमहोदयेन प्रोक्तम्–कोऽयमुपयोगः? नाहमद्यापि अस्य परिभाषां जाने।

तदुत्तरे दर्शितमेकं सूत्रं जैनसिद्धान्तदीपिकायाः–चेतनाव्यापारः उपयोगः।

तदानीममितानन्दानुभूतिरिति दृष्टं प्रत्यक्षं मया।

श्रीजैनसिद्धान्तदीपिकायाः निर्माणे तत्त्वार्थसूत्रस्य सूत्रशैली अस्ति अनुकृता। तथापि नास्ति तत्पुनरुक्तिमात्रमेव। अस्यां सन्ति अनेकाः नवाः नवाः परिभाषाः, नवानि च सूत्राणि। जैनसिद्धान्तमहालये प्रवेशद्वारमसौ इति वचनं न स्पृशति कांचिद् अतिशयोक्तिम्।

उपाध्याययशोविजयेन निर्मिता नयकर्णिका। अस्यामपि नयानां संक्षिप्तः परामर्शः। आचार्यतुलसीगणिना विरचिता भिक्षुन्यायकर्णिका। न्यायशास्त्रमस्ति तर्कप्रवणम्। आचार्यभिक्षुणा अभिनवस्य तर्कशास्त्रस्य शिलान्यासः कृतः। तद्ध्याने निधाय न्यायकर्णिकायाः प्रारम्भे भिक्षुरिति पदस्य संयोजना कृता।

योगविषये सुप्रसिद्धमस्ति महर्षिपतञ्जलेः योगदर्शनम्, सुव्यवस्थितं सर्वांगपरिपूर्णम्। बौद्धसाधनापद्धतेः सुविदितोऽस्ति 'विसुद्धिमग्गो'। जैनसाधनापद्धतेः सुव्यवस्थितमासीद् ध्यानाध्ययनम्। केनापि कारणेन तदस्ति

विलुप्तं सम्प्रति। उत्तरकाले अनेकजैनाचार्यैरनेके ग्रन्था विनिर्मिताः, किन्तु तेषु जैनागमेभ्योप्यधिकोऽस्ति प्रभावो मध्यवर्तिग्रन्थानाम्। कथं आगमपद्धतिमनुसृत्य कस्यचिद् योगग्रन्थस्य निर्माणं भवेदिति चिन्तयान्दोलायमानमासीत् चेतः।

धवलसमारोहस्यावसरः समायातः। आचार्यवर्यस्य मनसि एका वार्ता वेदनेव संवृत्ता–अस्माकं संघे यथा अध्ययनस्य विकासो जायमानोऽस्ति तथा साधनाया विकासो नास्ति सम्पद्यमानः, इत्यस्ति विकासस्य एकांगित्वम्। यथा-यथा ज्ञानं वर्धते, तथा-तथा ध्यानमपि वर्धेत, तदा भवेत् परिपूर्णता। अनेकवारमनेन चिन्तनेन आलोडितं विलोडितं च मनः।

बीदासरस्य चातुर्मासिकं प्रवासं समाप्य आचार्यवर्यः श्रीडूंगरगढनगरं प्रस्थितवान्। एकदा प्रोक्तं आचार्यवर्येण–'साधनापद्धतेरेकः सुव्यवस्थितः ग्रन्थः विरचितो भवेदसौ भविष्यति धवलसमारोहस्य प्रेरणा।' तत्कालमेव प्रवृत्तिरारब्धा। स्वल्पेन समयेन ग्रन्थः सम्पन्नः। शब्दानुशासनम्, काव्यानुशासनम् इति अनुशासनपरम्परामनुसृत्य तस्य नामापि विहितं मनोनुशासनम्।

धर्मोऽस्ति द्विविधः संवरो निर्जरा च। प्रथमो निरोधात्मकः द्वितीयश्च शोधनात्मकः। एतां द्विविधां पद्धतिमासृत्य सञ्जातास्य रचना। सूक्ष्मेक्षिकया वीक्षमाणा ध्यानाभ्यस्तचेतसो जनाः स्वयं ज्ञास्यन्ति अस्याभिनवां ध्यानपद्धतिम्।

लघुकायेऽपि ग्रन्थे बहु अस्ति समायोजितम्। प्राचीनपद्धतेरनुसरणमस्ति यत्र तत्र। ग्रन्थाभ्यासपरायणाः स्वयमेव अनुभविष्यन्ति यदस्ति किञ्चिद् विशिष्टम्।

आचार्यवर्यस्य समग्रं साहित्यं पुनर्निरीक्षापूर्वकमस्ति सम्पाद्यमानम्। अस्यां शृंखलायाम् आचार्यवर्यस्य अविकलं संस्कृतसाहित्यमिहास्ति सन्निवेशितम्।

अस्मिन् कार्ये साध्वीप्रमुखाकनकप्रभा सोद्योगं ससहायं ग्रन्थत्रयात्मकं प्रथमखण्डं निष्ठामनैषीत्। प्रसीदामो वयं अस्मद्गुरोरार्षवाणीं पाठकानां पुरस्तात् पुरस्कृतां समीक्ष्य। ते सर्वेऽपि साधुवादार्हा, येऽस्मिन् महामहिम्नि समायोजने सन्ति संप्रवृत्ताः।

जैनविश्वभारती, लाडनूं
१ सितम्बर २०००

आचार्यः महाप्रज्ञः

आचार्य तुलसी का संस्कृत साहित्य (भाग-२)

प्रस्तुतग्रन्थे आचार्यवर्याणां बाहुश्रुत्यं प्रादुर्भवति, ततोऽप्यधिकं किञ्चिद् अन्यदपि प्रादुर्भवति; यथा–श्रद्धा, भक्तिः, संवेदनशीलता, आत्मानुभूतिश्च।

यदा वयं जैनसिद्धान्तदीपिकामवलोकयामस्तदेति मतिर्भवति यद् आचार्यवर्या आसन् महान्तस्तत्त्ववेत्तारः। तत्त्वार्थसूत्रशैल्यां विरचितोऽयं ग्रन्थः न नवीनतामुपदर्शयति इति चिन्तनमपि स्यात्, किन्तु सूक्ष्मेक्षिकया वीक्षामहे तदा स्पष्टं भवति–वर्तमानयुगे ये केचित् प्रश्नाः प्रादुर्भूतास्तान् समाधातुम् एष ग्रन्थः काञ्चित्-काञ्चित् नवीनां परिभाषां विषयञ्च उपस्थाप्य सार्थकतां प्रमाणीकरोति।

भिक्षुन्यायकर्णिकाऽपि न्यायशास्त्रप्रवेशाय विरचिता। यः प्रश्नः जैनसिद्धान्तदीपिकारचनायामुपस्थितः स एव अत्रापि उपस्थितो भवति। समाधानमपि तदेव। आत्मसिद्ध्यर्थं सुविशदा पद्धतिरुपदर्शिताऽत्र।

"आज सर्वाधिक अपेक्षा मन को अनुशासित करने की है। उसकी पूर्ति के लिए आचार्यश्री ने 'मनोनुशासनम्' का प्रणयन किया है। यह आकार में लघु है पर प्रकार में गुरु। इसमें योगशास्त्र की सर्वसाधारण द्वारा अग्राह्य सूक्ष्मताएं नहीं हैं। किन्तु जो हैं, वे अनुभवयोग्य और बहुजनसाध्य हैं।"

इमौ द्वावपि ग्रन्थौ करुणानिष्यन्दभूतौ स्तः। विद्यार्थिनां साधूनां साध्वीनाञ्च सुखावबोधाय पूज्यपादैरनयो रचना व्यधायि। नैतद् ग्रन्थद्वयं विदुषां कृते समस्ति विरचितं, तथा एतद् वक्तव्यं नासंगतं भवति–विद्वान्सोऽपि अनयोः ग्रन्थयोरध्ययनेन अवश्यं लाभान्विता भवन्ति भविष्यन्ति च।

अस्य ग्रन्थद्वयस्य विषये पूर्वखण्डे लिखितं किञ्चित्। द्वितीयखण्डः श्रद्धा-भक्ति-करुणा-परितेन ग्रन्थद्वयविषये पुनर्लेखनं नासंगतम्। मनोनुशासनमपि न करुणामुद्रामतिव्रजति, तेन सोऽप्यत्र पुनः स्तुतिपथमुन्नेयः।

संघबद्धजीवने यावदस्ति संवेदनायाः मूल्यं तावदेव मूल्यमस्ति व्यवस्थायाः। आचार्यभिक्षुणा धर्मसंघो व्यवस्थां नीतः। तस्या अनुभवोऽपि सुखावहो जातः। तां व्यवस्थां व्यवस्थितरूपेण जनसमक्षमुपढौकयितुं सामर्थ्यमावहति पञ्चसूत्रम्। अस्मिन् ग्रन्थे व्यवस्थायाः अनुशासनस्य च सुदुर्लभमस्ति प्रतिपादनम्। प्राञ्जलभाषा, सरलाः श्लोकाः। तेषु गुम्फितमस्ति जटिलव्यवस्थानामपि सारल्यम्।

आचार्यवर्याणां संघहितार्थं पूर्णमासीत् समर्पणम्। तत्समर्पणं प्रत्यक्षमुज्जृम्भयति शिक्षाषण्णवति-कर्तव्यषट्त्रिंशिका-संघषट्त्रिंशिका-प्रभृतयो रचनाः। एषां रचनाया अभिप्रायोऽस्ति सम्पूर्णः धर्मसंघः स्यात् धर्मसंघाय समर्पितः संघनिष्ठश्च।

आचार्यवर्याणां नानारूपेषु एकरूपमस्ति भक्तस्य। तेषां भक्तिः श्रद्धाऽपि येन केनाऽपि नास्ति सहजा प्राप्या। सकलमपि स्तुतिप्रकरणमाविर्भावयति तेषां भक्तहृदयस्य कलनाम्। अस्य समर्थनं प्राप्यतेऽस्माभिः तद्विरचिते हिन्दीसाहित्येऽपि।

संघसमर्पितोऽपि जनः विचारस्वातन्त्र्यं सुरक्षितमाधातुमस्ति प्रत्यलः। प्रसंगोपात्तं तस्यैव प्रतिफलं विलसति।

प्रतिपादनस्य त्रयः प्रकाराः सन्ति–गद्यं, पद्यं चम्पूश्च। आचार्यवर्याणां संस्कृतसाहित्ये पद्यरचना विपुलमात्रायाम् उपलभ्यते। गद्यरचनाऽपि नास्ति सर्वथा अस्पृष्टा। यद् यद् गद्ये प्रोक्तं तन्नास्ति सर्वं संकलितम्। यतः पुरा ग्रहणसमर्थानां यन्त्राणां नामश्रवणमप्यासीत् दुर्लभम्। तथापि यत् किमप्यस्ति संकलितं तत्रापि दृश्यते भाषालालित्यं प्रतिपादनकौशलञ्च।

आचार्यवर्या अज्ञेयप्रकृतय आसन्। इदानींतनः क्षणो विद्यमानः, आगामिनि क्षणे ते किं चिकीर्षव इति कल्पनाऽपि सुदुष्कराऽस्ति। एकदा जयपुरे गोष्ठी समाहूता। आकस्मिकरूपेण आचार्यवर्याः स्ववक्तव्यं संस्कृतभाषायामकार्षुः। मन्येऽहं संस्कृतसाहित्ये तादृशो नैसर्गिको नीतिनिर्धारकः सन्देशो विरलोऽस्ति।

एवं सर्वेषु ग्रन्थेषु विन्यस्तोऽस्माभिः पल्लवग्राही दृष्टिकोणः। यदि विस्तरेण भवेत् किञ्चिद् वक्तव्यं तर्हि स्यात् स्वतन्त्रं ग्रन्थप्रणयः। विश्वासोऽस्माकं यदस्य ग्रन्थस्याध्ययनं न केवलं विद्यार्थिनामपितु विदुषामपि भविष्यति ज्ञानाभिवर्धनकरं श्रेयस्करमपि।

आचार्यवर्याणां सम्पूर्णसंस्कृतवाङ्मयस्य पारायणे कियन्तो नवनवा उन्मेषा भविष्यन्ति लब्धास्तान् स्वाध्यायप्रवणा एवानुभवगोचरान् करिष्यन्ति।

आचार्यवर्यस्य समग्रं साहित्यं पुनर्निरीक्षापूर्वकमस्ति सम्पाद्यमानम्। अस्यां शृंखलायाम् आचार्यवर्याणामविकलं संस्कृतसाहित्यमिहास्ति सन्निवेशितम्।

अस्मिन् कार्ये साध्वीप्रमुखाकनकप्रभा सोद्योगं ससहायमनेकग्रन्थात्मकं द्वितीयखण्डं निष्ठामनैषीत्। प्रसीदामो वयमस्मद्गुरोरार्षवाणीं पाठकानां पुरस्तात् पुरस्कृतां समीक्ष्य। ते सर्वेऽपि साधुवादार्हा येऽस्मिन् महामहिम्नि समायोजने सन्ति संप्रवृत्ताः।

जैनविश्वभारती, लाडनूं
१ नवम्बर, २०००

आचार्यः महाप्रज्ञः

मेरा जीवन : मेरा दर्शन (भाग १-८)

जीवन की अनेक व्याख्याएं हुई हैं पर अब तक भी उसके रहस्य अनावृत नहीं हुए हैं। वे असंख्य हैं। उन सबकी व्याख्या करना व्यक्ति की सामर्थ्य नहीं है।

आचार्य तुलसी ने जीवन के रहस्यों को समझने का प्रयत्न किया। अनेक रहस्यों के तल तक पहुंच पाए और अनुभव किया–जीवन का एक दर्शन जरूरी है। वह रहस्यों को देखने के लिए एक आलोक है। उसके आलोक में जीवन को समझना कुछ आसान हो जाता है।

आचार्य तुलसी ने कुछ दशकों तक अनुशास्ता का जीवन जीया। यदि वे कोरे अनुशास्ता होते तो शास्ता नहीं बन पाते। शास्ता बनने के लिए जरूरी है अनुशास्ता और अनुसंधाता का समन्वय। आचार्य तुलसी सत्य की शोध, अन्वेषण और अनुसंधान में निरंतर लगे रहे, इसीलिए रूढ़िवाद और उपयोगिता शून्य परम्परावाद उन्हें कभी अभिभूत नहीं कर पाया। वे एक परम्परा का अनुगमन कर रहे थे पर उसको सदा गतिशील बनाए रखा। वर्तमान के संदर्भ में अतीत को देखने-समझने का प्रयत्न किया, किन्तु वर्तमान पर अतीत का आवरण कभी नहीं डाला। उनके जीवन-दर्शन में पद-पद पर सत्य की जिज्ञासा और अनुसंधित्सा देखने को मिलेगी।

आचार्य तुलसी जितने तत्त्ववेत्ता थे, उतने ही व्यवहार में निष्णात थे। उन्होंने विश्व को तत्त्व की दृष्टि से देखा। समाज को व्यवहार की दृष्टि से देखा। उनके जीवन में निश्चय और व्यवहार का अपूर्व समन्वय था।

महापुरुष का जीवन घटना प्रधान होता है। आचार्य तुलसी के जीवन में घटना की एक शृंखला है। उनके आधार पर वे 'क्या खोया, क्या पाया' का लेखा-जोखा करते रहते थे।

संघर्ष महानता का उपादान है। उन्हें झेले बिना कोई भी व्यक्ति महान् नहीं बन सकता। आचार्य तुलसी की जन्मकुण्डली में प्रबल राजयोग, प्रबल अभ्युदय का योग है, वहां प्रबल संघर्ष का भी योग है। आचार्यवर ने दीर्घकाल तक संघर्षों का सामना किया और अपने पुरुषार्थ से सफलता अर्जित की।

विकास आचार्य तुलसी का सहचारी रहा। वे प्रयोगधर्मा थे। वे जीवन भर नए-नए प्रयोग करते रहे, विकास के नए आयाम खुलते रहे।

आचार्य तुलसी का जीवन-दर्शन अध्यात्म का जीवन-दर्शन है। इसीलिए उसमें मानवीय एकता का उन्मेष है, सार्वभौम या असाम्प्रदायिक धर्म की ज्योति है, धर्मक्रांति के प्रस्फोट हैं, युगीन समस्या का समाधान है।

आचार्य तुलसी युगप्रवर्तक युगपुरुष थे। उनके जीवन को त्रैकालिक सत्य के साथ-साथ युगीन सचाई के साथ भी देखना अधिक प्रासंगिक, अधिक हितकर और अधिक दिशासूचक होगा।

"आचार्य तुलसी का जीवन-दर्शन अध्यात्म का जीवन-दर्शन है। इसीलिए उसमें मानवीय एकता का उन्मेष है, सार्वभौम या असाम्प्रदायिक धर्म की ज्योति है, धर्मक्रांति के प्रस्फोट हैं, युगीन समस्या का समाधान है।"

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा 'तुलसी वाङ्मय' की ग्रन्थमाला का संपादन कर रही है। यह एक विशाल प्रयत्न है। इस प्रयत्न में उनकी सफलता युग की सफलता है। इस सफलता की संयोजना में जितनी साध्वियां सहभागी हैं, वे सब उस भूमिका के निर्माण में सहभागिता निभा रही हैं, जिसका आरोहण ऊर्ध्वारोहण का पथ प्रशस्त करता है।

अध्यात्म साधना केन्द्र — **आचार्य महाप्रज्ञ**
छतरपुर, महरोली, नई दिल्ली
१५ जुलाई १९९९

मेरा जीवन : मेरा दर्शन (भाग ९-११)

'विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति'—नश्वर पदार्थों को देखनेवाला द्रष्टा नहीं होता। द्रष्टा वह होता है, जो नश्वर पदार्थों के भीतर अनश्वर को देखता है। आचार्य तुलसी द्रष्टा थे। उन्होंने अशाश्वत में सदा शाश्वत का दर्शन किया। शाश्वत को देखनेवाला अशाश्वत के प्रति जितना न्यायोचित व्यवहार कर सकता है, वह केवल अशाश्वत को देखनेवाला नहीं कर सकता। आचार्यवर की जीवन-घटनाओं का अध्ययन करने वाला, निरीक्षण करने वाला हर व्यक्ति इस सचाई का साक्षात कर सकता है।

बीकानेर-चातुर्मास की संपन्नता का विहार अशाश्वत में शाश्वत को देखने का स्वयंभू साक्ष्य है। (१. मेरा जीवन : मेरा दर्शन, खंड २, पृ. ८२-८४) आचार्यवर की आंतरिक दृष्टि का एक महत्वपूर्ण निदर्शन है सर्वोदयी कार्यकर्ताओं का अणुव्रती बनने की प्रेरणा। यदि खादी ग्रामोद्योग आदि के साथ अणुव्रत की भावना अनुप्राणित होती तो ग्रामोद्योग का कार्यक्रम प्राणवान बन जाता। आचार्यश्री के हैदराबाद-प्रवास में ८ फरवरी १९७० के प्रातः आंधप्रदेशीय सर्वोदय सम्मेलन था। आचार्यश्री ने सर्वोदयी कार्यकर्ताओं को प्रतिक्रमण करने की प्रेरणा देते हुए कहा—'प्रतिक्रमण का अर्थ है अपने कार्यकलापों का सिंहावलोकन करना और जहां—कहीं गलती का अनुभव हो, वहां से पीछे हट जाना। संभव हो तो सर्वोदयी कार्यकर्ताओं को अणुव्रती बनकर काम आगे बढ़ाना चाहिए।'

आध्यात्मिक दृष्टि से व्यक्ति के आंतरिक विकास और चरित्र का मूल्यांकन होता है। व्यावहारिक दृष्टि से अर्थ और पदार्थ के आधार पर व्यक्ति का मूल्य आंका जाता है। आचार्यवर ने आध्यात्मिक दृष्टि से अगणित व्यक्तियों का मूल्यांकन किया। धनराजजी बैद (सुजानगढ़) का मूल्यांकन इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। आचार्यवर ने उनके बारे में लिखा—'वे असाधारण श्रद्धा के धनी थे। धर्मशासन और शासनपति के प्रति उनकी आस्था इतनी अटल थी कि कोई देव भी उन्हें उससे डिगा नहीं सकता था। उनके शरीर का संहनन बहुत मजबूत था। वे तपस्या प्रायः चौविहार करते थे। उन्होंने अपने जीवन में धर्म की सक्रिय साधना की। विकट परिस्थितियों में भी उन्होंने प्रामाणिकता का पूरा परिचय दिया। श्रमण संघ के लिए वे बड़े साताकारी थे। नियमों में बहुत अटल थे। आखिर उन्होंने निश्चिंतता के साथ समाधिमरण प्राप्त किया। मौत एक दिन सबको आती है पर वे अपने श्रावकोचित गुणों से अमर हो गए। उनके दिवंगत होने का समाचार सुनकर ऐसा लगा कि शासन में एक श्रावक की कमी हो गई।'

आचार्य तुलसी का जीवन एक महाकाव्य, महाग्रंथ और महाशास्त्र है। उसमें काव्य का लालित्य, ग्रंथ की गंभीरता और शास्त्र की व्याख्या, यह सब उपलब्ध है। उसे समझने के लिए चंचुपात और

पल्लवग्राही दृष्टि सफल नहीं होती। आचार्यवर विभिन्न प्रसंगों में लिखते हैं, प्रवचन करते हैं और बातचीत करते हैं तो उनके रूप विविध बन जाते हैं। उनकी शैली भी नानात्व की बन जाती है। एक व्यक्ति के इतने रूप पाठक के मन में प्रश्न पैदा करते हैं, कुतूहल पैदा करते हैं और शोध की भावना भी पैदा करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थमाला के एक खंड को पढ़कर आचार्य तुलसी के जीवन को नहीं समझा जा सकता। उनको समझने के लिए सबको एक साथ पढ़ना जरूरी है। एक साथ पढ़ने का तात्पर्य है, पौर्वापर्य की सम्बन्ध-योजना जरूरी है। आचार्य तुलसी का राजनेताओं से बहुत सम्पर्क रहा, पर वे किसी भी राजनैतिक दल से संपृक्त नहीं रहे। उन्होंने समाज को बहुत मोड़ दिए, पर किसी भी सामाजिक संस्था से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा। वे धनपतियों के बीच में रहे, पर धन का एक कण भी उन्हें कभी छू नहीं पाया। उनका आकिंचन्य सदा प्रशस्त रहा। वे अनेक दलों के बीच रहकर भी निर्दल रहे। उन्होंने कमल जैसा निर्लिप्त जीवन जिया। यही उनकी अध्यात्म-साधना का मर्म है। इस मर्म का प्रकाशन समग्रता से ही हो सकता है।

आचार्य तुलसी के बारे में लिखना दुस्तर है तो आचार्यश्री द्वारा लिखित वाङ्मय का संपादन करना भी दुस्तर है। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने इस दुष्कर कार्य को नैसर्गिक निष्ठा और अनवरत प्रयत्न के द्वारा संपादित किया है, दुर्लभ को सुलभ बनाने का प्रयत्न किया है। यह एक विशाल प्रयत्न है। इस प्रयत्न में उनकी सफलता युग की सफलता है। इस सफलता की संयोजना में जितनी साध्वियां सहभागी हैं, वे सब उस भूमिका के निर्माण में सहभागिता निभा रही है, जिसका आरोहण ऊर्ध्वारोहण का पथ प्रशस्त कर सकता है।

तेरापंथ भवन — आचार्य महाप्रज्ञ
सूरत, गुजरात
२५ अक्टूबर २००३

मेरा जीवन : मेरा दर्शन (भाग १२-१४)

आज का युग जीवन-दर्शन (applied phylosophy) का युग है। 'जो दर्शन केवल तत्त्व की चर्चा करे और जिसका जीवन से कोई सम्बन्ध न हो, उसकी उपयोगिता बौद्धिक स्तर पर हो सकती है, किन्तु जीवन की वेदी पर वह प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।' 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' इसी सचाई का ऊर्ध्वारोहण कर रहा है।

आचार्य तुलसी युगपुरुष थे और युग चेतना के संवाहक थे। उन्होंने दर्शन का जीवन जिया। इसलिए उनका जीवन-दर्शन पथदर्शक बन गया। निश्चय नय (वास्तविक सत्य) की दिशा में हम प्रस्थान कर सकते हैं, किन्तु वहां तक पहुंचने के लिए आवश्यक होता है व्यवहार का राजपथ। आचार्यवर दोनों का समीकरण कर चलते रहे।

आचार्य तुलसी तेरापंथ धर्मसंघ के अनुशास्ता थे। संगठन के अनुशास्ता के सामने सफलता का प्रश्न ध्रुवतारा बन सदा सामने रहता है। किसी ननुनच के बिना कहा जा सकता है कि आचार्यवर सफलता के शिखर तक पहुंचने में सफल हुए। उनकी सफलता का रहस्य है प्रकृति से सरलता, सरसता और वत्सलता, उन्हीं

> "आचार्य तुलसी द्रष्टा थे। उन्होंने अशाश्वत में सदा शाश्वत का दर्शन किया। शाश्वत को देखनेवाला अशाश्वत के प्रति जितना न्यायोचित व्यवहार कर सकता है, वह केवल अशाश्वत को देखनेवाला नहीं कर सकता।"

की भाषा में 'क्षमता, समता और ममता'। उनके जीवन में साक्षात दृष्ट हो रहा था कठोरता और मृदुता का समन्वय। उन्होंने सचाइयों के आधार पर जीवन जिया। इसलिए वे स्वयं त्रैकालिक सत्य के पुरोधा बन गए।

आचार्यवर ग्राहक बनकर कभी दुकान में नहीं गए। फिर भी उनमें ग्राहकता का गुण अभ्युदित हो गया। वे बहुत ग्रहणशील थे। जो भी अच्छी वस्तु सामने आती, उसे तत्काल ग्रहण कर लेते। केवल ग्रहण ही नहीं होता, उसका लिप्यंकन भी हो जाता। अनायास एक विशाल डायरी तैयार हो गई। कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत। आचार्यवर ने अपनी अंगुलियों से जिस पृष्ठ को परिस्पन्दित किया, उसके प्रकम्पन आज भी पाठक के मानस को प्रकम्पित कर सकते हैं।

'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' का मुख्य आधार डायरियां हैं। उनका लेखनकाल स्वल्प नहीं है। सन १९५० से १९९७ तक प्राय: डायरी का लेखन चला। आचार्यवर ने तथ्यों, वार्ताओं, घटनाओं, कार्यक्रमों और आयोजनों का बड़ी तन्मयता के साथ लेखन किया। उनमें शिक्षापदों का समावेश बहुत महत्त्वपूर्ण है। विषय-वर्गीकरण के साथ कभी इस पर कार्य किया जाएगा तो हो सकता है आश्चर्य।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' का संपादन कर रही हैं। इस संपादन का एक वैशिष्ट्य है। यह केवल डायरी का संपादन नहीं है, किन्तु इसमें डायरीगत विषयों से संबंध सामग्री के अनेक स्रोतों का मंथन किया गया है। इसलिए इसमें मूल आत्मा का स्पर्श भी है और परिधान का सौन्दर्य भी है। पाठक के लिए उतार-चढ़ाव से होने वाली संवेदनाओं का प्रकम्पन भी है। इस मंथन में अनेक साध्वियां सहभागी बनी हैं। आकार और प्रकार भिन्न-भिन्न हो सकता है, किन्तु श्रम के बिन्दु समरसता के नि:सृत हैं। एक व्यक्ति की प्रमुखता में होने वाला यह भगीरथ कार्य अनेक-अनेक पाठकों को आह्लादित करने वाला और तिमिर में प्रकाश देने वाला होगा।

२१ अक्टूबर २००५ **आचार्य महाप्रज्ञ**
अध्यात्म साधना केन्द्र
छतरपुर, महरौली, नई दिल्ली

मेरा जीवन : मेरा दर्शन (भाग १५-१७)

मैं और मेरे गुरु

एक अक्षर के अनन्त पर्याय होते हैं। यह आर्षवाणी की अभिव्यंजना है। मैंने आचार्य तुलसी की सन्निधि में रहकर इस सचाई का साक्षात्कार किया। मैंने देखा–उनकी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों–दोनों में एक संघर्ष हो रहा था। उन्होंने अपनी ज्ञानेन्द्रियों से बाह्य जगत के साथ सम्पर्क स्थापित किया और कर्मेन्द्रियों से नया सृजन किया, नई सृष्टि का निर्माण किया।

आचार्यवर पैरों से जितना चलते, उससे ज्यादा उनका कल्पना-मस्तिष्क चलता था। वे जो जैसा है, उसे उसी रूप में देखते, उसके अपरिवर्तनीय अंश में परिवर्तन नहीं करते और परिवर्तनीय के परिवर्तन में विलम्ब भी नहीं करते। ३ नवम्बर को कालीघाटी की यात्रा हो रही थी। घाटी की उच्चावच भूमि, ऊबड़-खाबड़ तल और खाइयों को देखा। कल्पना का एक उन्मेष हुआ। वह डायरी की पंक्तियों में उतर आया।

'यह घाटी भयंकर है और इसका नाम भी भयंकर है। इस नाम को सुनकर राही के मन में भय पैदा हो सकता है। इसका नाम बदल दिया जाए तो भय कुछ कम हो सकता है। इस चिन्तन के साथ हमने उसको

'अभय घाटी' कहकर पुकारा और उसकी भयंकरता को मिटा दिया। हमारे साथ चलने वाले कुछ लोगों ने उस बात को पकड़ा और अभयघाटी नाम का एक बोर्ड बनवाकर वहां लगा दिया।'

आचार्यवर के जीवन को एक कोण से नहीं देखा जा सकता। तेरापंथ के आचार्य का जीवन विचित्रताओं का संग्रहालय है। जो एक कक्ष में है, वह दूसरे कक्ष में नहीं है और जो दूसरे में है, वह तीसरे में नहीं है। एक कक्ष को देखनेवाले की जो धारणा बनती है, वह दूसरे कक्ष को देखने वाले से सर्वथा भिन्न होती है। इसलिए कुछ लोगों ने कहा–'आचार्यश्री केवल बड़े लोगों से बात करते हैं।' कुछ लोगों ने कहा–'आचार्यश्री छोटे-से-छोटे लोगों से बात करते हैं। साधारण लोगों और ग्रामीणों के बीच भी कितना समय बिताते हैं। 'पूरे संग्रहालय को देखनेवाले की जो धारणा होती है, वह एक कक्ष को देखने वालों की नहीं होती।

आचार्यवर ने डायरी में अपने जीवन को कहीं एक पक्ष की दृष्टि से अंकित किया है तो कहीं समग्र दृष्टि से भी अंकित किया है। कहीं अर्थवाद की झलक है तो कहीं यथार्थ की रेखाएं बहुत स्पष्ट हैं। आचार्यवर ने लिखा-'काम करने वालों के सामने बाधाएं आती हैं। इस सचाई को स्वीकार करते हुए मैंने कहा–मुझे भगवान महावीर से पुरुषार्थ का पाठ मिला है। मुझे पुरुषार्थ करना है, वह मैं करूंगा। जनता सुधरे या ना सुधरे, इस चिन्ता में दुबला होने की कोई जरूरत नहीं है। आज तक सारा संसार कभी सुधरा नहीं। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, मोहम्मद, ईसा आदि महापुरुष आए, किन्तु सारा संसार कभी नहीं सुधरा। फिर इस अदने तुलसी से सारा संसार सुधरेगा, अगर ऐसी कल्पना करता हूं तो वह निर्मूल होगी। मैं कभी ऐसी कल्पना में नहीं उलझता। मैं इस बात को मानकर चलता हूं कि जब तक संसार है, तब तक समस्या रहेगी। समस्या नहीं रहेगी तो संसार नहीं रहेगा। समस्या से हम क्यों घबराएं? हमारा दिल और दिमाग खुला रहना चाहिए।'

समस्या से विचलित न होना जीवन की सफलता का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। जीवन दर्शन में यह पाठ पाठक को यत्र-तत्र पढ़ने को मिलेगा। कुछ पंक्तियां इसका साक्ष्य दे रही हैं–'अब मौसम कड़ा आ गया। दिन में तेज धूप रहती है। हवा गर्म चलती है। वह लू का रूप ले रही है। श्रीडूंगरगढ़ से विहार करने का समय सामने है। विहार भी कच्चे रास्ते से करना है। करणीय सब कुछ करना है, होना भी है।'

आलोचना एक वातायन है। वहां बैठकर यात्रापथ और यात्री दोनों को देखा जा सकता है। सब यात्री समान गतिवाले नही होते। कुछ मंथर गति से चलते है, कुछ त्वरित गति से। कुछ मौन रहकर चलते हैं और कुछ उच्च स्वर में बोलते हुए चलते हैं।

कुछ लोगों की ओर से आलोचना आ रही थी कि व्यवस्था में पैसा बहुत लग रहा है। जो सिर्फ पैसे को देखते हैं, कार्य के मूल्य को नहीं देखते, उनके लिए यह आलोचना सही है। जो लोग कार्य का महत्त्व देखते है, उनकी दृष्टि में आलोचना स्वयं आलोच्य है। आचार्यवर आलोचना को अवांछनीय भी नहीं मानते और हर आलोचना को अक्षरशः स्वीकार करने के पक्षधर भी नहीं थे। आलोचना के विषय में आचार्यवर का यह मंतव्य उल्लेखनीय है–'जब कभी बड़े आयोजन होते हैं तो एक दिन के कार्यक्रम में पंडाल, मंच आदि की व्यवस्था में बीस-तीस हजार का व्यय हो जाता है। क्या यह अपव्यय कहलाएगा? इसे अपव्यय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अव्यवस्था में आदमी कैसे जी सकता है। सहज व्यवस्था में पैसा न लगे तो फिर पैसे का उपयोग ही क्या हो सकता है? फिर भी हर व्यवस्था में सादगी रहनी चाहिए।'

"आचार्यवर ने तथ्यों, वार्ताओं, घटनाओं, कार्यक्रमों और आयोजनों का बड़ी तन्मयता के साथ लेखन किया। उनमें शिक्षापदों का समावेश बहुत महत्त्वपूर्ण है। विषय-वर्गीकरण के साथ कभी इस पर कार्य किया जाएगा तो हो सकता है आश्चर्य।"

आचार्यवर की व्यापक दृष्टि अनुशासन, व्यवस्था, शिक्षा आदि अनेक दिशाओं को देखनेवाली दृष्टि थी। समाज गृहस्थों का समूह है। वह केवल धार्मिक आचरण से उन्नत नहीं होता। धर्माचरण के साथ-साथ उसे सामाजिक क्षेत्र में हाथ-पैर पसारने होते हैं। तेरापंथ समाज में विद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही थी और साथ-साथ कुछ स्थानों में समस्या भी बढ़ती जा रही थी। चूरू के विद्यालय को भी इसी कोटि में परिगणित किया जा सकता है। गलत व्यक्ति का नियोजन होता है, समस्या धनीभूत हो जाती है। सही व्यक्ति का नियोजन होता हैं,समस्या सुलझ जाती है। इस विषय में आचार्यवर का आह्लादपूर्ण दृष्टिकोण पथदर्शन कर रहा है। 'चूरू प्रवास में अनेक वर्षों से झमेले में फंसे हुए तेरापंथी स्कूल का नए तरीके से उद्धार हुआ। एक बार समाज की अक्षमता के कारण उसे सरकार को सौंपने की नौबत आ गई। किन्तु अब समाज ने ही स्कूल चलाने का निर्णय ले लिया। यह नई बात हुई । नौरतनमलजी सुराणा को स्कूल का भार सौंपा गया है। इससे समाज में नए उल्लास का संचार हो गया।'

आचार्यवर स्मृति, कल्पना, चिन्तन और भावना के अथाह सागर के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसका साक्ष्य है उनकी लेखनी ,विचार-ऊर्मि और व्यंजना का बिन्दु। साध्वीप्रमुखा ने उन बिन्दुओं को पत्रांकित करने का भगीरथ प्रयत्न किया है। यह अथाह की दिशा में जाने के लिए असीम आनंदानुभूति का विषय है।

आचार्यवर की आत्मा के अंतस में मैं रहा हूं। मैंने वचनातीत आनन्द की अनुभूति भी की है। किन्तु डायरी के कुछ पृष्ठ पढ़कर वह अनुभूति अलख अगम्य बन जाती है–'३० नवम्बर को प्रातः युवाचार्य महाप्रज्ञ ने राजसमन्द के लिए विहार किया। गांव के बाहर एक तिबारी और उसके पास एक चौकी। उस पर हम खड़े हुए। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने विहारोचित वंदना की, फिर खड़े हुए। मैंने उन्हें गले लगाया और कहा–'अब तुम्हारा अलग विहार करना अच्छा नहीं लग रहा है। हमनें कुछ दूर पहुंचाकर उन्हें विदा किया। राजसमन्द में तुलसी साधना शिखर पर शिविरों का आयोजन होने वाला है। एक शिविर राजकीय अध्यापकों का तथा दूसरा शिविर प्रशिक्षकों का होने जा रहा है। दोंनो शिविरों में महाप्रज्ञजी का निर्देशन रहेगा, इसलिए उनका वहां रहना आवश्यक हो गया।'

साध्वीप्रमुखा ने जीवन दर्शन के सम्पादन में सामुदायिक चेतना का उन्नयन किया है। आचार्यवर की लेखनी का अन्तस स्पर्श करते हुए उन्हें जिस आनन्द की अनुभूति हुई है, वह भी अनिर्वचनीय है। इस अनिर्वचनीय प्रकरण में जिनकी सहभागिता रही है, वे सब साधुवादार्ह हैं।

१३ अक्टूबर २००७ **आचार्य महाप्रज्ञ**
उदयपुर

मेरा जीवन : मेरा दर्शन (भाग १८-२०)

अमृतपुरुष की गाथा को लिखना लेखन और लेखक दोनों के लिए समस्या है। इस समस्या को किञ्चित्-किञ्चित् गुरुदेव ने सुलझा दिया। यदि वे डायरी नहीं लिखते तो उनके हृदय का स्पर्श संभव नहीं होता।

एक महासागर की ऊर्मियों की गणना कैसे हो सकती है? गुरुदेव तुलसी का हृदय किसी समुद्र से कम विशाल नहीं था। उसमें उठनेवाली ऊर्मियां भी असंख्य थीं। फिर भी एक शिशु जल में विद्यमान चन्द्रमा के बिम्ब को पकड़ने का प्रयत्न करता है, वैसा ही प्रयत्न गुरुदेव के जीवन को 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' की शब्द-संहति में बांधने का किया गया है।

गुरुदेव के महान व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके अन्तर्द्वन्द्वों को समझना जरूरी है। उनके बिना व्यक्तित्व को समग्रता से नहीं समझा जा सकता।

गुरुदेव संघ के अनुशास्ता थे। अनुशास्ता की पहली कसौटी है–संघ के हितों की गवेषणा। इस विषय को प्रदीप्त करनेवाले दो प्रसंग मननीय हैं।

'आजकल मैं प्रातः उठता हूं तो बड़ी निराशा से उठता हूं। क्या होगा? कैसे होगा? भविष्य में कैसा रहेगा? आदि विचारों का चक्र चलता रहता है। व्यक्ति की अपेक्षा संघ के बारे में अधिक चिन्तन उभरता रहता है। यह क्रम बहुत दिनों से चल रहा है। ऐसा क्यों होता है? मैं स्वयं ही समझ नहीं पा रहा हूं। कुछ समय बाद काफी अच्छे विचार आते हैं। प्रसन्नता रहती है।'

'मैं कई बार अपनी और अपने कार्यों की आलोचना/समीक्षा करता हूं। इससे यथार्थ को समझने का अवकाश मिलता है। जैनविश्वभारती पहुंचने के बाद हमने अनेक कार्य प्रारम्भ किए। इस समय प्रायः काम ठीक चल रहे हैं। इस सन्दर्भ में मेरी समीक्षा इस प्रकार है–हम बहुधंधी बन गए हैं। इसलिए हमारे कार्यों के सर्वांगपूर्ण होने में बाधा आ रही है। साधना, शिक्षा, साहित्य-सृजन, सम्पादन, व्यक्ति-निर्माण, अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान आदि प्रवृत्तियां हम चला रहे हैं। व्यक्ति सीमित हैं। सामग्री सीमित है। समय सीमित है। ऐसी स्थिति में सब कार्य समुचित ढंग से कैसे सम्पन्न हो पाएंगे? बार-बार ऐसा चिन्तन आता है, पर निर्णय कुछ भी नहीं कर पाते। किसको छोड़ें? किसको रखें? समस्या है, समाधान नहीं है। तब फिर नियति पर छोड़ देते हैं। यह भी ठीक नहीं हैं। क्योंकि हम नियतिवादी नहीं हैं। विचार विमर्शनीय है। देखते हैं, कब निर्णय कर पाते हैं।'

मंथन से नवनीत निकलता है। यह उक्ति पुरानी हो गई। फिर भी यह सचाई है कि मंथन से निकले हुए नवनीत में जो विशिष्टता होती है, वह मंथन के बिना निकले हुए नवनीत में नहीं होती। गुरुदेव ने अपने संघ और मानवजाति को जो स्निग्धता दी है, जो स्नेह दिया है, उसका अपना वैशिष्ट्य है। जीवन-दर्शन में उसकी प्रतिपल अनुभूति होती है।'

गुरुदेव व्यक्ति और संघ दोनों का जीवन जी रहे थे, व्यक्ति की अपेक्षा संघ का जीवन अधिक जी रहे थे। संघ की गरिमा कैसे बढ़े? उसमें संयम, वैराग्य, आचार और आचार की उच्चता का विकास कैसे हो? इस विषय का चिन्तन गुरुदेव करते, मैं भी साथ रहता और कभी-कभी गोष्ठी की आयोजना भी की जाती।

२ जनवरी को साधुओं की एक गोष्ठी आयोजित थी। उसमें चालीस वर्ष से ऊपर के सन्तों को आमंत्रित किया गया। गोष्ठी में चर्चा का विषय था–सुविधावाद पर नियंत्रण। नई चर्चा थी। अच्छा समर्थन मिला। इस चर्चा को और आगे बढ़ाना है। छोटी-छोटी और बड़ी गोष्ठियों में एक वातावरण बनाना है। हमारे संघ की यह सबसे अच्छी बात है कि हर प्रवृत्ति के प्रति जागरूकता है। विचार-मंथन चलता रहता है। एकदम सुषुप्ति नहीं है। बड़ा संघ है। गलतियां हो सकती हैं, पर उनको समर्थन नहीं मिलता।

५ जनवरी को रात्रि में पुनः सन्तों की एक गोष्ठी हुई। सन्तों ने लिखित रूप में अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्हें पढ़ा। उन पर विचार किया जा रहा है। चिन्तन का एक नया क्रम शुरू हुआ है। सबको सोचने का एक मौका मिला है। क्रम अच्छा चल रहा है। दिन में साध्वियों की पृच्छा चल रही है। एक-एक सिंघाड़े

"आचार्यवर की आत्मा के अंतस में मैं रहा हूं। मैंने वचनातीत आनन्द की अनुभूति भी की है। किन्तु डायरी के कुछ पृष्ठ पढ़कर वह अनुभूति अलख अगम्य बन जाती है।"

से की जा रही पूछताछ का निष्कर्ष यह है कि वृत्ति-सुधार का पक्ष दुर्बल है। सुधार पक्ष को प्रबल कैसे किया जाए, चिन्तन करना है।

६ जनवरी को रात्रि में छोटे संतों की गोष्ठी हुई। बार-बार प्रेरणा देने से चिन्तन बदलता है। उसमें स्थायित्व लाने की जरूरत है। इस दृष्टि से सुविधावाद को केन्द्र में रखकर कोई ऐसा कदम उठाना है, जिससे सबका ध्यान आकृष्ट हो। चिन्तन चल रहा है। सुविधावादी मनोवृत्ति समाज में भी हितकर नहीं है। साधु-समाज को तो उससे बचना ही चाहिए।'

दलसुख भाई मालवणिया कहते–'मैंने आचार्य तुलसी को प्रमत्त नहीं देखा।' गुरुदेव का अप्रमाद विश्रुत था। उनकी जागरूकता जितनी अपने प्रति थी, उतनी ही संघ की गतिविधियों के प्रति थी। कोई भी व्यक्ति संघ की गतिविधि और रीति-नीति के प्रतिकूल व्यवहार करता तो गुरुदेव उसे क्षमा नहीं करते। इस विषय में स्पष्ट निर्देश देते, सावचेत करते और संघ की रीति-नीति को समझने का सम्बोध देते।

इस विषय का एक प्रसंग है–'हमारे धर्मसंघ की यह नीति रही है कि धार्मिक अनुष्ठानों में आडम्बर और प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। तपस्या अपने-आपमें एक महान दर्शन है। जनता को उस दर्शन की अवगति मिले, इसके लिए लेख लिखा जा सकता हे, संवाद दिया जा सकता है, पर यह विज्ञापनबाजी कैसे चल पड़ी? दैनिक हिन्दुस्तान, राजस्थान पत्रिका आदि पत्रों में तपस्या के उपलक्ष्य में वह लम्बा-चौड़ा विज्ञापन कैसे छपा? यह दिखावे की वृत्ति हमारी परम्परा के अनुरूप नहीं है। हमारे साधु-साध्वियों को नहीं भूलना चाहिए कि वे कोई व्यक्ति नहीं हैं, एक धर्मसंघ के सदस्य हैं। वे ऐसे धर्मसंघ के सदस्य हैं, जहां केन्द्र की दृष्टि को सर्वोपरि माना जाता है। ऐसी स्थिति में केन्द्र की दृष्टि लिए बिना यह नया काम कैसे हुआ? इस प्रकार की प्रवृत्तियों का अनुकरण हुआ तो उसका क्या परिणाम आएगा?

गृहस्थ तपस्या करते हैं। उनके वरघोड़े निकालना आदि आडम्बरपूर्ण प्रवृत्तियां हमारे यहां मान्य नहीं हैं। क्या यह विज्ञापनबाजी प्रदर्शन का प्रतीक नहीं है। भविष्य में कहीं भी ऐसी गलती न हो, इस बात के लिए पूरे समाज को जागरूक रहना है।'

साध्वीप्रमुखा के श्रम की बूंदों से अभिषिक्त ग्रंथ की पंक्ति-पंक्ति पर एक अभिनव प्रकाश है। पाठक उसकी रश्मियों को संगृहीत कर अपने जीवन को आलोकमय बना सकता है।

साध्वीप्रमुखा ने 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' का सम्पादन कर जनता के मन को संतुष्टि दी है। इससे अधिक संतुष्टि और आह्लाद का अनुभव मुझे हो रहा है।

११ सितम्बर २००९ **आचार्य महाप्रज्ञ**

जैन विश्व भारती, लाडनूं

आचार्य तुलसी के पत्र

पत्र विचार का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, अंतस्तल और हृदय का भी प्रतिनिधित्व करता है। कभी-कभी वह साक्षात्कार से भी अधिक उपयोगी बन जाता है। पत्र के माध्यम से वह संदेश पहुंचता है, जो शायद साक्षात्कार में नहीं पहुंच पाता। इसलिए पत्र के संदेश को प्रत्यक्ष और परोक्ष–दोनों प्रणालियों से जोड़ा जा सकता है।

संदेश की क्षमता केवल अक्षर में ही नहीं है, अनक्षर में भी है। मेघदूत, पवनदूत–ये सब अनक्षर संदेश-वाहक हैं। आचार्य तुलसी ने अक्षर के माध्यम से संदेश भेजा है और वह शिष्य-वर्ग के अंतस्तल तक पहुंचा है। पत्र संकलन में अक्षरों का विन्यास है। वह स्थूल आवरण है। उस आवरण में छिपा हुआ है अंतरात्मा का स्पर्श। वह इस संकलन ग्रंथ का सर्वोत्तम पक्ष है। एक आचार्य अपने शिष्य वर्ग के प्रति कितना जागरूक होता है, शिष्य वर्ग की समस्या के प्रति कितना ध्यान देता है और किस प्रकार उसकी समस्या को समाहित करने का प्रयत्न करता है, उसका उदात्त चित्र प्रस्तुत संकलन में प्राप्त है।

आचार्य तुलसी ने लम्बे समय तक, छह-दशक तक धर्मशासन का नेतृत्व किया। प्रस्तुत संकलन में नेतृत्व की गरिमा को समझने और उसका मूल्यांकन करने की प्रचुर सामग्री है।

हिन्दी में पत्र साहित्य की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनसे यह विलक्षण होगी। विलक्षण इस अर्थ में है कि इसमें एक सीमा का दर्शन है। यह पत्राचार नहीं है, किन्तु केवल संदेश है और केवल शिष्य वर्ग के लिए है। गुरु और शिष्य के संबंधों का महाभाष्य है।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा गुरुदेव के साहित्य-संपादन का एक भगीरथ प्रयत्न कर रही है। उस प्रयत्न की एक गंगाधारा पत्र का संपादन है। उनके प्रयत्न में मानव-जाति के सौभाग्य का प्रत्यक्ष दर्शन है। इस कार्य में संलग्न अन्य सभी साध्वियों को साधुवाद।

अध्यात्म साधना केन्द्र
महरौली
नई दिल्ली
१ जून १९९९

आचार्य महाप्रज्ञ

आचार्य तुलसी के संदेश

सामाजिक सम्पर्क के लिए आदेश, निर्देश, उपदेश और सन्देश इन सबका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कभी सान्त्वना, कभी प्रेरणा, कभी उत्साहवर्धन और कभी संघीय अपेक्षा के लिए ये आवश्यक होते हैं।

आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ धर्मसंघ के महान अनुशास्ता थे। उन्हें अनुशासन का जितना अवसर मिला, उतना किसी पूर्वज आचार्य को नहीं मिला। साठ वर्ष के अनुशासनकाल में आचार्यवर ने अनेक आदेश, निर्देश, उपदेश और सन्देश दिए हैं। उन सबका प्रस्तुत ग्रन्थमाला में संग्रहण किया गया है।

तेरापंथ आचार्य-केन्द्रित धर्मसंघ है। केन्द्र में एक आचार्य हैं, इसलिए उनके सामने अनेक अपेक्षाएं, अनेक स्थितियां और अनेक समस्याएं आती रहती हैं। उन सबकी पूर्ति और समाधान करना आचार्य का अनिवार्य कर्तव्य हो जाता है। आचार्यप्रवर के सामने अनेक दायित्वपूर्ण कार्य थे। उनमें समय का नियोजन भी किया जाता था, फिर भी उन्होंने आदेश, निर्देश और सन्देश की कभी उपेक्षा नहीं की।

आगम साहित्य में दो नयों का निर्देश है–निश्चयनय और व्यवहारनय। आत्मशोधन के लिए निश्चयनय का आलम्बन लिया जाता है। आत्मशोधन की व्यवस्था के लिए संघबद्धता जरूरी है। उसके लिए जरूरी है

> “पत्र विचार का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, अंतस्तल और हृदय का भी प्रतिनिधित्व करता है। कभी-कभी वह साक्षात्कार से भी अधिक उपयोगी बन जाता है। पत्र के माध्यम से वह संदेश पहुंचता है, जो शायद साक्षात्कार में नहीं पहुंच पाता। इसलिए पत्र के संदेश को प्रत्यक्ष और परोक्ष–दोनों प्रणालियों से जोड़ा जा सकता है।”

व्यवहार नय का आलम्बन। आचार्य तुलसी निश्चय और व्यवहार के समन्वयकर्ता थे। उन्होंने अपने लिए निश्चयनय की साधना की। संघ और संगठन के लिए व्यवहार नय की साधना भी कम नहीं की। उसका स्वयंभू साक्ष्य है तीन खण्डों में प्रकाशित होने वाला प्रस्तुत ग्रन्थ।

संघीय व्यवस्था के लिए विधि और निषेध दोनों आवश्यक हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्ययन करने वाले को अनेक बार इसका अनुभव होगा।

प्रेरणा, सान्त्वना और चित्त समाधि के लिए जरूरी है–उपदेश और सन्देश। इनकी संख्या भी प्रस्तुत ग्रन्थ में कम नहीं है। संघ, संगठन और व्यवहार का अध्ययन करने वालों के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ एक संदर्भ ग्रन्थ के रूप में उपयोगी हो सकेगा।

आचार्यवर के सम्पूर्ण वाङ्मय को 'तुलसी वाङ्मय ग्रन्थमाला' के रूप में सम्पादित किया जा रहा है। इस गुरुतर कार्य का दायित्व साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को सौंपा गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ की सामग्री के संकलन में साध्वी जिनप्रभा और कल्पलता ने विशेष श्रम किया है। उनके साथ अन्य अनेक साध्वियों ने भी अपने समय को सार्थक बनाया है। वे सभी साध्वियां साधुवाद की पात्र हैं, जो इस महिमामय समायोजन में प्रवृत्त रही हैं।

तेरापंथ भवन — **आचार्य महाप्रज्ञ**

गंगाशहर

१ जनवरी २००१

प्रस्तावना

श्रावक-संबोध

एक बार साहू शान्तिप्रसाद जैन ने कहा–'आप लोग प्रवचन में प्रायः साधु के आचार की चर्चा करते हैं। उसे जानना ठीक है, किन्तु हमें उससे अधिक लाभ नहीं मिलता। हमारे सामने गृहस्थ धर्म अथवा श्रावकाचार की चर्चा अधिक होनी चाहिए।' उनके इस अनुरोध से एक आवश्यकता का अनुभव हुआ। उस पर ध्यान केन्द्रित किया गया। प्रवचन में भी समय-समय पर गृहस्थ धर्म की चर्चा होती रही। इस सन्दर्भ में पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने एक ग्रन्थ भी तैयार किया, जो 'गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का'–इस शीर्षक से मुद्रित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रावकाचार का आधुनिकतम ग्रन्थ है। इसका प्रारम्भ ऐतिहासिक घटना के साथ जुड़ा हुआ है। 'तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ, तं जहा–अगारधम्मं अणगारधम्मं च'[1]–भगवान महावीर ने दो प्रकार के धर्म–अगारधर्म (गृहस्थ धर्म) और अनगारधर्म (साधु धर्म) की प्ररूपणा की। यह सूत्र गृहस्थ धर्म की परम्परा में अद्भुत सूत्र है। गृहस्थ के लिए धर्म की आचार-संहिता जितनी स्पष्ट भगवान महावीर ने दी है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। गृहस्थ धर्म की आचार-संहिता बारह व्रतों के नाम से प्रसिद्ध है। ये बारह व्रत

१. श्रावक-संबोध (पूर्व भाग) १-५

ही श्रावकाचार या श्रावकधर्म के रूप में प्रख्यात रहे हैं। श्रावकाचार पर श्वेताम्बर और दिगम्बर–दोनों परम्पराओं में विपुल साहित्य रचा गया। 'उवासगदसाओ'[1] द्वादशांगी का सातवां अंग है। उसमें श्रावकधर्म का सांगोपांग वर्णन है।

श्वेताम्बर परम्परा में श्रावकाचार का वर्णन इन ग्रन्थों में उपलब्ध है–

१. तत्त्वार्थ सूत्र	उमास्वाति
२. आवश्यक निर्युक्ति	भद्रबाहु स्वामी
३. आवश्यक चूर्णि	जिनदासगणी
४. विशेषावश्यक भाष्य	जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण

आर, विलियम्स ने अपने ग्रन्थ 'जैन योग' में श्रावकाचार सम्बन्धी २९ ग्रन्थों की तालिका प्रस्तुत की है[2]–

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	काल
१. श्रावकप्रज्ञप्ति	उमास्वाति	५ वीं शताब्दी (?)
२. पंचाशक	हरिभद्र विरहाङ	
३. धर्मबिन्दु	हरिभद्र याकिनीपुत्र	
४. ललितविस्तर	हरिभद्र याकिनीपुत्र	
५. आवश्यकवृत्ति	हरिभद्र याकिनीपुत्र	
६. तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति	सिद्धसेनगणी	
७. श्रावकविधि	धनपाल	
८. नवप्रकरण वृत्ति सहित	देवगुप्त	
९. धर्मरत्नप्रकरण	शान्ति सूरि	
१०. उपासकदशा वृत्ति	अभयदेव	
११. पंचाशकवृत्ति	अभयदेव	
१२. प्रवचनसारोद्धार	नेमिचन्द्र	
१३. धर्मबिन्दुवृत्ति	मुनिचन्द्र	
१४. पंचाशकवृत्ति	यशोदेव	
१५. योगशास्त्र	हेमचन्द्र	
१६. प्रवचनसारोद्धारवृत्ति	सिद्धसेनसूरि	
१७. श्राद्धदिनकृत्य	देवेन्द्र	

१. ओवाइयं सूत्र ७५
२. जैन योग (अंग्रेजी) पृ. १

"भगवान महावीर ने दो प्रकार के धर्म–अगारधर्म (गृहस्थ धर्म) और अनगारधर्म (साधु धर्म) की प्ररूपणा की। यह सूत्र गृहस्थ धर्म की परम्परा में अद्भुत सूत्र है। गृहस्थ के लिए धर्म की आचार-संहिता जितनी स्पष्ट भगवान महावीर ने दी है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है।"

	ग्रन्थ	ग्रन्थकार
१८.	वन्द्रारुवृत्ति	देवेन्द्र
१९.	भाष्यत्रय	देवेन्द्र
२०.	श्राद्धजिकल्प	धर्मघोष
२१.	संग्रहाचार	धर्मघोष
२२.	चैत्यवन्दनाकुलक	जिनदत्त
२३.	पूजाप्रकरण	
२४.	विवेकविलास	जिनदत्त
२५.	आचारदिनकर	वर्धमान
२६.	आचारोपदेश	चारित्रसुन्दर
२७.	श्राद्धगुणश्रेणिसंग्रह	जिनमण्डन
२८.	श्राद्धविधि	रत्नशेखर
२९.	धर्मसंग्रहवृत्ति	यशोविजय

दिगम्बर परम्परा में भी श्रावकाचार के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए हैं। आर. विलियम्स ने अपनी पुस्तक में २७ ग्रन्थों का संकलन किया है। उनकी सूची निम्नलिखित है[1]–

	ग्रन्थ	ग्रन्थकार	समय
१.	चारित्रप्राभृत	कुन्दकुन्द	दूसरी शताब्दी (?)
२.	तत्त्वार्थसूत्र	उमास्वाति	तीसरी शताब्दी (?)
३.	द्वादशानुप्रेक्षा	कार्तिकेय	चौथी शताब्दी (?)
४.	रत्नकरण्डश्रावकाचार	समन्तभद्र	४५० (?)
५.	सर्वार्थसिद्धि	पूज्यपाद	छट्ठी शताब्दी (?)
६.	रत्नसार	-	आठवीं शताब्दी
७.	आदिपुराण	जिनसेन	नौवीं शताब्दी के अन्त में
८.	भावसंग्रह	देवसेन	दसवीं शताब्दी के प्रारंभ में
९.	यशस्तिलक	सोमदेव	९५९
१०.	सुभाषितरत्नसंदोह	अमितगति	९९३
११.	श्रावकाचार	अमितगति	९९३
१२.	चरित्रसार	चामुण्डराय	१०००

१. जैन योग (अंग्रेजी) पृ. १७

	ग्रन्थ	ग्रन्थकार	समय
१३.	पुरुषार्थसिद्धयुपाय	अमृतचन्द्र	ग्यारहवीं शताब्दी
१४.	श्रावकधर्मदोहक		ग्यारहवीं शताब्दी
१५.	श्रावकाचार	वसुनन्दि	११००
१६.	धर्मरसायन	पद्मनन्दि	बारहवीं शताब्दी (?)
१७.	सागारधर्मामृत	आशाधर	१२४०
१८.	श्रावकाचार	माघनन्दि	१२६०
१९.	श्रावकाचार	गुणभूषण	१३०० (?)
२०.	श्रावकाचार	पद्मनन्दि	पन्द्रहवीं शताब्दी (?)
२१.	भावसंग्रह	वामदेव	पन्द्रहवीं शताब्दी (?)
२२.	प्रश्नोत्तरश्रावकाचार	सकलकीर्ति	पन्द्रहवीं शताब्दी
२३.	धर्मसंग्रहश्रावकाचार	मेधावी	१५०४
२४.	धर्मपीयूषश्रावकाचार	ब्रह्मनेमिदत्त	१५३०
२५.	लाटी संहिता	राजमल्ल	१५८४
२६.	रत्नमाला	शिवकोटि	सतरहवीं शताब्दी (?)
२७.	त्रयवर्णिकाचार	सोमसेन	१६१०

आर. विलियम्स ने 'जैन योग' की बिब्लियोग्राफी में जिन ग्रन्थों की सूची दी है, उसमें कुछ ग्रन्थ ऊपर निर्दिष्ट दोनों तालिकाओं से अतिरिक्त भी हैं, जैसे–

अनगारधर्मामृत	
श्रावकधर्मपंचाशक	हरिभद्र
धर्मसंग्रह	मानविजय
धर्मरत्नप्रकरण	शान्तिसूरि
सिद्धान्तसारादिसंग्रह	शिवकोटि

श्रावकाचार की शृंखला में श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के आचार्यों द्वारा लिखित ग्रन्थों की जो तालिकाएं प्रस्तुत की गई हैं, वे ग्रन्थ संस्कृत और प्राकृत भाषा में निबद्ध है।[1] इस सन्दर्भ में राजस्थानी और हिन्दी की दो महत्त्वपूर्ण कृतियों का समावेश नहीं किया गया तो वह शृंखला अधूरी रहेगी। कालक्रम की दृष्टि से ये दोनों ग्रन्थ सद्यस्क हैं। इनका विवरण इस प्रकार है–

बारह व्रत की चौपई	आचार्य भिक्षु	अठारहवीं शताब्दी
श्रावक-संबोध	आचार्य तुलसी	बीसवीं शताब्दी

१. श्रावक-संबोध (पूर्व भाग) ३३-५७

"आचार्य तुलसी का 'श्रावक-संबोध' वर्तमान परिप्रेक्ष्य और समस्याओं के सन्दर्भ में लिखा गया है। इसलिए श्रावकाचार के विकास क्रम की दृष्टि से इसका तुलनात्मक अध्ययन होना बहुत जरूरी है। प्रस्तुत ग्रंथ संक्षिप्त है, किन्तु इसमें श्रावकाचार की पृष्ठभूमि और श्रावक के लिए चिन्तन की नई भूमिकाएं संलग्न हैं। इसलिए यह जितना सद्यस्क है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है।"

आचार्य तुलसी का 'श्रावक-संबोध' वर्तमान परिप्रेक्ष्य और समस्याओं के सन्दर्भ में लिखा गया है। इसलिए श्रावकाचार के विकास क्रम की दृष्टि से इसका तुलनात्मक अध्ययन होना बहुत जरूरी है। प्रस्तुत ग्रंथ संक्षिप्त है, किन्तु इसमें श्रावकाचार की पृष्ठभूमि और श्रावक के लिए चिन्तन की नई भूमिकाएं संदृब्ध हैं। इसलिए यह जितना सद्यस्क है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है।

विषयवस्तु

प्रस्तुत ग्रन्थ की विषयवस्तु अगार धर्म, गृहस्थ धर्म अथवा श्रावकाचार है। 'उवासगदसाओ में गृहस्थ धर्म का विशद वर्णन है।[१] दिगम्बर साहित्य में श्रावकाचार का प्रारम्भ श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं के आधार पर किया गया है। 'उवासगदसाओ' में बारह व्रतों की चर्चा के बाद आनन्द द्वारा प्रतिमा स्वीकार करने का उल्लेख है।[२] प्रतिमाओं का विस्तृत विवरण 'दशाश्रुतस्कन्ध' में उपलब्ध है।[३] व्रत सम्यक्त्वमूलक होते हैं, इसलिए ग्रन्थ के प्रारंभ में पृष्ठभूमि की प्रस्तुति के बाद सम्यग् दर्शन का वर्णन है। सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र इसका मूल प्रतिपाद्य विषय है। चारित्र के विस्तार में बारहव्रत, संलेखना, चार विश्राम, तीन मनोरथ और ग्यारह प्रतिमाओं का संकेत इसे आगम से संबद्ध करता है।[४]

समस्याओं में एक बड़ी समस्या है उपभोक्तावादी दृष्टिकोण की। इस दृष्टिकोण को बदलने के लिए पानी-बिजली के अपव्यय को रोकने का निर्देश है। प्रदूषण से बचने के लिए यात्रा को सीमित करने का संकेत है। संग्रह की मनोवृत्ति को नई दिशा देने की दृष्टि से विसर्जन का सूत्र दिया गया है। इन सूत्रों के माध्यम से आचार्यश्री ने श्रावक के १४ नियमों का नवीनीकरण कर नौ नियम सुझाए हैं। वे वर्तमान युग के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं–

खाद्यों की सीमा वस्त्रों का परिसीमन,
पानी-बिजली का हो न अपव्यय धीमन्!
यात्रा-परिमाण मौन प्रतिदिन स्वाध्यायी,
हर रोज विसर्जन अनासक्ति वरदायी।
हो सदा संघसेवा सविवेक सफाई,
प्रतिदिवस रहे इन नियमों की परछाई[५]॥

जीवनशैली के नौ सूत्रों का निदर्शन श्रावकाचार का उतना ही महत्त्वपूर्ण अंग है, जितना बारह व्रतों का विधान है। जीवनशैली बदले बिना व्रतों की साधना सहज नहीं हो सकती। श्रावक की पहचान उसकी जीवनशैली के आधार पर हो, यह ग्रन्थकार को अभीष्ट है। उन्होंने यह भी अपेक्षा की है कि जैन जीवनशैली जन-जन की जीवनशैली बने।

१. उवासगदसाओ, १/२४-४४
२. वही, १/६१-६३
३. दसाओ ६/८-१८
४. श्रावक-संबोध (पूर्व भाग) ३३-५७
५. श्रावक-संबोध (पूर्व भाग) ६२

जीवनशैली के नौ सूत्र निम्ननिर्दिष्ट हैं–

१. सम्यग् दर्शन
२. अनेकान्त
३. अहिंसा
४. समणसंस्कृति
५. इच्छापरिमाण
६. सम्यक् आजीविका
७. सम्यक् संस्कार
८. आहारशुद्धि व व्यसनमुक्ति
९. साधर्मिक वात्सल्य[1]

प्रस्तुत ग्रन्थ के अपर भाग की तुलना आचारांग के प्रारंभिक भाग की शैली से की जा सकती है। वहां जिज्ञासु व्यक्ति अपने बारे में जिज्ञासा करता हैं–'मैं कौन था? इस शरीर को छोड़कर भविष्य में क्या बनूंगा?[2]' यहां श्रावक अपने आपसे पूछता है–मैं क्या हूं? मैं कौन हूं? क्या है मेरी पहचान[3]? इसी सन्दर्भ में गति, जाति आदि सम्बन्धी जिज्ञासाओं के साथ तीसरे स्वर्ग के इन्द्र सनत्कुमार के सम्बन्ध में प्रश्नसप्तक उपस्थित किया गया है[4]। इन प्रश्नों के आलोक में भी श्रावक के आत्मचिन्तन की मूल्यवत्ता है। सन्तुलन की दिशा, श्रावक का दायित्व आदि ऐसे विषय हैं जो वर्तमान में निर्मीयमाण ग्रन्थ के लिए अनिवार्य माने जा सकते हैं[5]।

आगम युग के श्रावक और श्राविकाओं के जीवन का संग्रहण इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है[6]। श्रावक की चर्या का व्यवस्थित निरूपण करते हुए ग्रन्थकार ने अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान आदि का संकेत देकर इसमें श्रावकाचार के नवाचार का अन्तर्भाव किया है[7]। जैन संस्कार-विधि में व्यवहार-संपदा का एक सुन्दर चित्रण हुआ है[8]।

ग्रन्थ के अन्तिम भाग में आचार्यवर ने जिनशासन की परम्परा का संक्षिप्त किन्तु तटस्थ निदर्शन प्रस्तुत किया है[9]। ग्रन्थकार तेरापंथ के नवम आचार्य हैं, इसलिए ग्रन्थ-समाप्ति के परिपार्श्व में उन्होंने अपनी परम्परा के कुछ व्यक्तियों का भी नामोल्लेख किया है[10]।

श्रीमद् राजचन्द्र जैन परम्परा की श्रावक शृंखला में विशिष्ट श्रावक हुए हैं। आचार्यश्री ने उनका उल्लेख जिनमतमणि और अध्यात्म के परम प्रभावक के रूप में किया है। श्रावकत्व किसी सम्प्रदाय विशेष से जुड़ा नहीं होता। यह उल्लेख उदार मनोवृत्ति का एक स्फुलिंग है[11]।

१. श्रावक-संबोध (पूर्व भाग) ६५-७५
२. आयारो १/२
३. श्रावक-संबोध (पूर्वभाग) १
४. वही, २, ४, ५
५. वही, ९-१९
६. वही, २०-३२
७. श्रावक-संबोध (पूर्वभाग) ३३-४३
८. वही, ४४-४८
९. वही, ५१-५६
१०. वही, ५७-६८
११. वही, ७३

मैं और मेरे गुरु

"आचार-बोध, संस्कार-बोध, व्यवहार-बोध, तेरापंथ-बोध और श्रावक-संबोध–इन पांच बोध, प्रबोध और संबोध ग्रन्थों में साठ वर्ष के अनुभवों तथा ज्ञानराशि का एक समुच्चय हुआ है। पर्वतों को अपना समुच्चय करने में हजारों वर्ष लगते हैं। इस दशक में आचार्यवर द्वारा जो उच्चयन हुआ है वह विद्वानों के लिए शोध का विषय है, विद्यार्थियों के लिए संबोध का विषय है और सामान्य जनता के लिए मानसिक आह्लाद का विषय है।"

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ आकार में छोटा किन्तु प्रकार में बड़ा है। यह कृश शरीर में स्थूल आत्मा के निवास जैसा लग रहा है।

आचार्यश्री की साहित्य-रचना के अलग-अलग युग रहे हैं। एक युग में उन्होंने तत्त्वविद्या 'जैन सिद्धान्त दीपिका' जैसे ग्रन्थों की रचना की। एक युग में 'मनोनुशासनम्' जैसे योग ग्रन्थों का प्रणयन किया। एक युग में 'पंचसूत्रम्' जैसे अनुशासन ग्रन्थों का निर्माण किया। एक युग में जीवनवृत्तों की संरचना की। 'श्री कालूयशोविलास' से शुरू हुई जीवनवृत्तों की यात्रा को 'सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति' तक पहुंचकर भी विराम नहीं मिला था। कुछ और जीवनवृत्त लिखने की कल्पना भी आकार लेने लगी थी।

आचार्यश्री ने अपने जीवन के आखिरी दशक में रचना का एक नया दौर शुरू किया। आचार-बोध, संस्कार-बोध, व्यवहार-बोध, तेरापंथ-बोध और श्रावक-संबोध–इन पांच बोध, प्रबोध और संबोध ग्रन्थों का निर्माण हुआ। यहां यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि इन लघुकाय ग्रन्थों में साठ वर्ष के अनुभवों तथा ज्ञानराशि का एक समुच्चय हुआ है। पर्वतों को अपना समुच्चय करने में हजारों वर्ष लगते हैं। इस दशक में आचार्यवर द्वारा जो उच्चयन हुआ है वह विद्वानों के लिए शोध का विषय है, विद्यार्थियों के लिए संबोध का विषय है और सामान्य जनता के लिए मानसिक आह्लाद का विषय है।

इन रचनाओं में श्रावक-संबोध की रचना का एक विशिष्ट मूल्य है। वर्तमान में बारह व्रतों, प्रतिमाओं अथवा समग्र श्रावकाचार के प्रति उदासीनता की जो मनोवृत्ति पनप रही है, उसे बदलने में यह ग्रन्थ नई प्राणवायु का काम करेगा। इसके सम्पादन और प्रस्तुतीकरण में साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने बहुत परिश्रम किया है। वह श्रम ग्रंथ के हृदय को समझने में उपयोगी बनेगा।

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)
९ मार्च १९९८

आचार्य महाप्रज्ञ

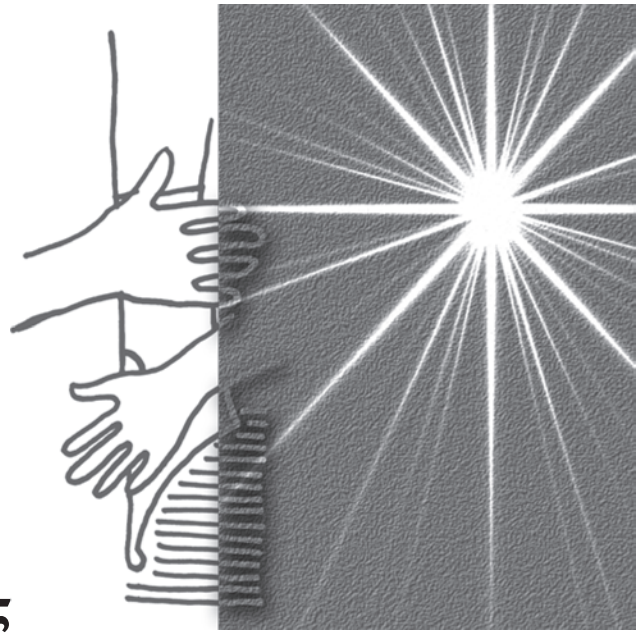

परिशिष्ट

१. नया दायित्व : नया प्रस्थान

आचार्य महाप्रज्ञ

हजारों-हजारों लोगों ने आश्चर्य के साथ सुना–'आचार्य तुलसी ने आचार्य पद का दायित्व अपने उत्तराधिकारी युवाचार्य में प्रतिष्ठित कर दिया है।' श्वास रोक कर सुना पर विश्वास नहीं हुआ। आचार्य युवाचार्य की नियुक्ति करता है, यह तेरापंथ की परम्परा है किन्तु आचार्य अपने अस्तित्व काल में अपने उत्तराधिकारी को आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित करे, यह अभिनव आलेख है। अनजाना, अनसुना और अनपढ़ा, इसलिए विश्वास न होना आश्चर्य नहीं है। टेलीफोन की हजारों घंटियां बजी और संवाद की सचाई को जानने की उत्सुकता बढ़ गई। आखिर जो हुआ, उसकी पुष्टि हो गई फिर भी मन में प्रश्न की तरंगें उठती रहीं। यह क्यों हुआ? किस अन्तःप्रेरणा ने आचार्यवर को ऐसा करने के लिए प्रेरित किया? इन प्रश्नों का उत्तर कोई दूसरा नहीं दे सकता। अनुमान हर कोई कर सकता है पर साक्षात् दर्शन वही करा सकता है, जिसने इस नए पथ पर अपने चरण बढ़ाए हैं।

“आचार्य युवाचार्य की नियुक्ति करता है, यह तेरापंथ की परम्परा है किन्तु आचार्य अपने अस्तित्व काल में अपने उत्तराधिकारी को आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित करे, यह अभिनव आलेख है।”

आचार्यश्री ने जो किया, वह अचिन्तित नहीं किया। विशेष उद्देश्य, विशेष हेतु और चिन्तन से किया है। उनके चिन्तन के सूत्र उन्हीं की भाषा में इस प्रकार हैं–

१. मैंने सोचा–तेरापंथ धर्मसंघ का कोई आचार्य इतने लम्बे समय (अट्ठावन वर्ष) तक शासन-सत्ता पर नहीं रहा। मैं सबसे अधिक रहा हूं। अब मुझे इससे निवृत्त होकर प्रायोगिक जीवन जीने का अभ्यास करना चाहिए।

२. जयाचार्य (तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य) ने शासन-सत्ता से निवृत्त रहने का प्रयोग किया था। उसमें और वर्तमान व्यवस्था में इतना अन्तर है कि जयाचार्य ने अपने युवाचार्य मघवा को एक प्रकार से आचार्य ही बना दिया। संघ की सारणा, वारणा, आलोयणा देना आदि कार्य वे ही करते। उससे कुछ नया करने की बात मेरे मन में आई। 'अकडं करिस्सामि'–जो नहीं किया, वह करूं, यह मेरी मनोवृत्ति है। इस ऋषि मनोवृत्ति का उल्लेख अश्वघोष ने इन शब्दों में किया है–

राज्ञां ऋषीणां चरितानि-तानि, कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः।

इस मनोवृत्ति ने मुझे प्रेरित किया–मैं अपने युवाचार्य को आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित करूं।

तेरापंथ के भाग्यविधाता आचार्य भिक्षु और भिक्षु शासन की परम्परा के अनुसार आचार्य अपने उत्तराधिकारी के रूप में युवाचार्य की नियुक्ति करते हैं और मैंने भी की है। पूर्ववर्ती किसी भी आचार्य ने अपने युवाचार्य को आचार्य के रूप में नहीं देखा। मैं इसे देखना चाहता हूं। इस चाह को मैंने आकार दे दिया।

३. मैंने सोचा–अस्सी वर्ष की अवस्था हो गई है। स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं है। विश्राम की अपेक्षा है। शासनसत्ता और अधिकार के बने रहने पर श्रम की अनिवार्यता होती ही है। श्रम कम करना है तो क्यों नहीं इस पद को युवाचार्य में प्रतिष्ठित कर दिया जाए।

४. मैंने सोचा–एक शिष्य आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होकर अपने गुरु के प्रति कितना विनम्र हो सकता है, उसका निदर्शन अकृतज्ञ मनोवृत्ति वाले युग के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। 'अणंतनाणोवगमोविसंतो'–इस आगमवाणी की सत्यता को प्रमाणित करना चाहिए।

५. मैंने सोचा–मेरे इस कार्य से युग को यह मार्गदर्शन मिल सकता है–एक समय सीमा के बाद पद, सत्ता, अधिकार आदि को किसी दूसरे में प्रतिष्ठित कर स्वयं को हलका जीवन जीना चाहिए।

६. एक कल्पना ने जन्म लिया–'मैंने धर्म को निर्विशेषण बना दिया। अणुव्रत धर्म है किन्तु जैन, बौद्ध, वैदिक आदि किसी विशेषण से जुड़ा हुआ नहीं है। निर्विशेषण धर्म का प्रवर्तक स्वयं निर्विशेषण क्यों नहीं बने? 'तुलसी' यह नाम जनता के मन में घुल गया है। अब उसे किसी विशेषण की पीठ पर बिठाने की जरूरत नहीं है।

७. मैंने सोचा–पद के बिना भी काम किया जा सकता है। इस धारणा का उज्जीवन होना चाहिए, जिससे कि पद के पीछे दौड़ने की मनोवृत्ति में अन्तर आए।

८. सत्ता और अधिकार पर रहा व्यक्ति मुक्त बात नहीं कह सकता। सत्ता से ऊपर उठा हुआ व्यक्ति निःसंकोच अपनी बात जनता के सामने प्रस्तुत कर सकता है।

९. आज जैन संप्रदायों में आचार्यों की बाढ़ आ रही है। कहीं शिष्य कम और आचार्य अधिक न हो जाएं। इस समस्या का समाधान है–पद की अपेक्षा साधना का आकर्षण अधिक बढ़े।

तेरापंथ धर्मसंघ संगठन और कार्यक्षेत्र की दृष्टि से बहुत विशाल संघ है। पूज्य गुरुदेव के नेतृत्व में समाज, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र को कुछ ऐसे कार्यक्रम दिए गए, जो व्यापक हैं, किसी संप्रदाय की सीमा में आबद्ध नहीं हैं। फलतः तेरापंथ के प्रशंसकों और समर्थकों की संख्या अनुयायी वर्ग की संख्या से बहुत अधिक बढ़ी है। गुणवत्ता की दृष्टि से इतने विशाल संघ के दायित्व को अपने शिष्य में वही प्रतिष्ठित कर सकता है, जिसकी चेतना महान्, आध्यात्मिक अनुभूति से ओत-प्रोत तथा द्वैत से अद्वैत की ओर गतिशील है।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार संप्रदाय बहुत उपयोगी, बहुत मूल्यवान् और शक्ति का स्रोत है, किंतु अहिंसा अथवा अध्यात्म का क्षेत्र संप्रदाय से बहुत विशाल है। संप्रदाय और धर्म एक नहीं है, यह मंत्र-वाक्य महावीर की वाणी में पढ़ा। आचार्य भिक्षु ने उस मंत्र को आगे बढ़ाया। मानव-मात्र के लिए धर्म का द्वार खोला। पूज्य गुरुदेव ने अणुव्रत के माध्यम से उस मंत्र को व्यापक बना दिया। आचार्य तुलसी : 'इन्सानियत का देवता', 'मानवता का मसीहा'–ये लोकमत संप्रदाय के पारदर्शन की प्रतिध्वनियां हैं।

पूज्य गुरुदेव ने निर्णय किया है कि अब वे अणुव्रत अनुशास्ता के रूप में अधिक काम करेंगे। हिंसा की समस्याओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित करेंगे। अहिंसा और शांति का क्षेत्र प्रमुख कार्यक्षेत्र होगा। गुरुदेव ने घोषणा की–'मैं अपनी साधना में लगूंगा, मानवता अथवा चरित्र विकास के लिए कार्य करूंगा।' इस घोषणा ने हमारे मानस को आंदोलित किया। अहिंसा और चरित्र विकास के लिए काम किया जाए, यह बहुत प्रसन्नता की बात है, किन्तु जिस तेरापंथ धर्मसंघ को छह दशक तक ज्योतिर्मय बनाया और बनाए रखा, वह कभी नहीं चाहता–ज्योति की एक भी रश्मि कम हो। मैंने और मेरे साथ पूरे धर्मसंघ ने अभ्यर्थना के स्वर में कहा–'गुरुदेव! हमारे धर्मसंघ को आपका संरक्षण, छत्रछाया और पथदर्शन बराबर मिलता रहे। इस हार्दिक अनुरोध को स्वीकार कर आप 'गणाधिपति' बने रहने की स्वीकृति दें।'

पूर्व न्यायाधीश श्री सोहनराज कोठारी ने ठीक लिखा है–'गुरुदेव ने सत्ता अपने उत्तराधिकारी में प्रतिष्ठित कर संरक्षण स्वीकार किया तब लगा–राष्ट्रपति राष्ट्रपिता बन गया, शासनाध्यक्ष संरक्षक बन गया।'

जैनेन्द्र, आचार्य कृपलानी, हरिभाऊ उपाध्याय आदि दिवंगत आत्माएं भी अपनी चिरपालित आकांक्षा की पूर्ति पर प्रसन्न हुई होंगी। जैनेन्द्रजी की आकांक्षा थी–'आचार्यश्री! आप तीर्थंकर बनें। तीर्थंकर बने बिना मानवता के हितों की संपूर्ति नहीं की जा सकती।' आचार्य कृपलानी, हरिभाऊ उपाध्याय आदि की आकांक्षा थी–'वर्तमान युग को अध्यात्म की सबसे अधिक जरूरत है। हमारी दृष्टि में आप अध्यात्म का नेतृत्व करने में सक्षम हैं इसलिए आप अपने संघ का दायित्व किसी शिष्य को सौंपकर विश्व हित के लिए अध्यात्म का नेतृत्व स्वीकार करें।'

पूज्य गुरुदेव ने अध्यात्म जगत् का नेतृत्व अपने हाथ में लेकर युगधारा को बदलने की दिशा में नई ऊर्जा का स्रोत उपलब्ध किया है। आपकी वाणी में वह ओज होगा, जिसे सुनने की उत्सुकता जन-जन के मन में होगी।

इस घटना का भविष्य उज्ज्वल होगा, उसके लिए आज भविष्यवाणी करना शीघ्रगामी प्रयत्न होगा। यह बड़े क्षेत्रों में काम करने वाले सभी लोगों के लिए एक प्रभावी बोधपाठ होगा, यह असंदिग्ध भाव से कहा जा सकता है।

"एक शिष्य आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होकर अपने गुरु के प्रति कितना विनम्र हो सकता है, उसका निदर्शन अकृतज्ञ मनोवृत्ति वाले युग के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। 'अणंतनाणो-वगमोविसंतो'–इस आगमवाणी की सत्यता को प्रमाणित करना चाहिए।"

२. विकास महोत्सव

अनुशासन और विकास–दोनों में साहचर्य का सम्बन्ध है। अनुशासन में विकास के बीज छिपे रहते हैं और विकास अनुशासन से प्राणवायु लेकर जीवित रहता है। तेरापंथ धर्मसंघ ने इस साहचर्य का सतत समादर किया है, अनुशासन और विकास का निरंतर मूल्यांकन किया है।

आचार्य भिक्षु ने एक आध्यात्मिक प्रासाद का निर्माण किया। उसकी पहली भूमिका है आचार और विचार की पवित्रता। दूसरी भूमिका है अहं और मम का विसर्जन। तीसरी भूमिका है अनुशासन और चौथी भूमिका है विकास। तेरापंथ के तीसरे आचार्य का युग विकास की भूमिका का युग माना जाता है। आचार्य भिक्षु और आचार्य भारीमालजी का शासनकाल पूर्ववर्ती तीन भूमिकाओं को सुदृढ़ बनाने का काल है। तृतीय आचार्य का शासनकाल चतुर्थ भूमिका के निर्माण का काल है–

साधु सतंतर आसरे हो जी दिख्या लीधी गणमांहि।
साध्वियां एक सौ सतसठ आसरै, ऋषराय बरतारा मांहि महाराज॥

साधु सतसठ आसरै, हो जी समणी एक सौ तंयाली उनमान।
सर्व दोय सौ दस रे आसरै, पेली परभव पोहतां जान महाराज॥

जयाचार्य के शासनकाल में विकास की गति तेज होती है। उन्होंने अनुशासन को प्राणवान् बनाए रखने के लिए वि.सं. १९२० में मर्यादा महोत्सव की स्थापना की। वह संघपुरुष के हृदय की धड़कन और उसके जीवन का श्वासोच्छ्वास बना। मर्यादा महोत्सव का निष्ठापत्र ही तेरापंथ की प्राण-प्रतिष्ठा है।

जयाचार्य के शासनकाल में साहित्य, कला, अध्ययन, वक्तृत्व, यात्रा, शिष्य-संपदा और अनेक क्षेत्रों में विकास के चरण आगे बढ़े, उनकी उत्तरवर्ती आचार्य-त्रयी ने विकास के चरणों का अनुगमन किया। अष्टम आचार्य कालूगणी ने विकास की गति को और अधिक तेज करने के लिए कुछ अभिनव दिशाएं खोलीं। गति में तीव्रता लाने का दायित्व अपने उत्तराधिकारी को सौंप दिया।

आचार्य तुलसी का शासन-काल विकास के ऊर्ध्वारोहण का काल है। विकास लक्ष्य-शून्य नहीं होता। लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने का नाम है विकास। लक्ष्य जितना महान् होता है, उतनी ही गति की संभावना रहती है।

• पूज्य गुरुदेव ने लक्ष्य बनाया–साधु-साध्वियों में शिक्षा का विकास होना चाहिए। एक दशक से अधिक समय इस कार्य की संपन्नता में लगा और हमारे पैर मंजिल तक पहुंच गए।

• लक्ष्य बना–धर्म को रूढ़िवाद के कठघरे से निकाल कर उसके सार्वभौम स्वरूप को जनता के सामने प्रस्तुत करना चाहिए। अणुव्रत आंदोलन का सूत्रपात हुआ। असाम्प्रदायिक धर्म की आचार संहिता ने जनमानस को आन्दोलित कर दिया।

• लक्ष्य बना–सार्वभौम धर्म की अवधारणा जन-जन तक पहुंचनी चाहिए। अणुव्रत यात्रा का दौर शुरू हुआ। राष्ट्र की आत्मा के साथ एकात्मकता का वातावरण बना।

● लक्ष्य बना–जैन विद्या, अनेकांत, अहिंसा और अपरिग्रह का सिद्धान्त साहित्य बनकर जनता तक पहुंचना चाहिए। अनेक लेखनियां अविराम गति से चलने लगीं। विपुल साहित्य के साथ-साथ अनेक पत्र-पत्रिकाएं अस्तित्व में आईं–जैन भारती, प्रेक्षाध्यान, युवादृष्टि, तुलसी प्रज्ञा, अणुव्रत, विज्ञप्ति आदि।

● लक्ष्य बना–आध्यात्मिक विकास आवश्यक है। धर्म में उपासना प्रमुख बनी हुई है। उसका विकल्प है–चरित्र का विकास। अणुव्रत आंदोलन उसकी संपूर्ति कर रहा है। किन्तु नैतिकता को भी सुदृढ़ आधार की जरूरत है। वह आधारभूमि बन सकता है अध्यात्म।

सम्प्रदाय, उपासना, क्रियाकाण्ड, इनमें मतभेद और विवाद हो सकते हैं। अध्यात्म अपनी अनुभूति है, स्वयं की चेतना का जागरण है, इसलिए वह सब विवादों से परे है। इस वैज्ञानिक युग में वही सर्वमान्य धर्म बन सकता है। आध्यात्मिक विकास के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रारंभ हुआ। वह अपनी आध्यात्मिकता के कारण सर्वमान्य हो रहा है।

● लक्ष्य बना–शिक्षा की प्रणाली सर्वांगीण होनी चाहिए। जीवन विज्ञान की योजना बनी। कार्यारम्भ हो गया। शिक्षा के क्षेत्र में उसका मूल्यांकन किया जा रहा है। दिल्ली, बोकारो जैसे क्षेत्रों में उसके प्रशिक्षण और प्रयोग सघन बन रहे हैं।

● लक्ष्य बना–अहिंसा का प्रशिक्षण होना चाहिए। केवल उपदेश और प्रचार से उसका विकास नहीं होता। अहिंसा प्रशिक्षण की प्रविधि तैयार की गई और यत्र-तत्र उसका प्रयोग भी किया गया।

● लक्ष्य बना–जैन विद्या के अध्ययन, शोध, अनुसंधान और प्रयोग का कार्य विधिवत् प्रारंभ होना चाहिए। चिन्तन का परिणाम आया। जैन विश्व भारती की स्थापना हुई। उसका उत्तर चरण है–जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)।

पूज्य गुरुदेव ने अनेक स्वप्न लिए। हर स्वप्न लक्ष्य बना और हर लक्ष्य ने अपनी पूर्ति के संसाधन जुटाए। फलस्वरूप ज्ञान, दर्शन और चारित्रोन्मुखी प्रवृत्तियों का विस्तार हुआ।

वि.सं. २०५० माघ शुक्ला सप्तमी (१८ फरवरी १९९४) के दिन अपने आचार्यपद का विसर्जन कर मुझे आचार्य पद पर नियुक्त किया। वि.सं. २०५१ का चातुर्मासिक प्रवास दिल्ली में हुआ। एक दिन गुरुदेव ने कहा–इस वर्ष मेरा पट्टोत्सव नहीं मनाया जाएगा। मैं अपने आचार्य पद का विसर्जन कर चुका हूं, फिर पट्टोत्सव क्यों मनाया जाए? गुरुदेव की यह बात हृदयंगम नहीं हुई। मेरी भावना थी–पट्टोत्सव पूर्ववत् मनाया जाए। किन्तु गुरुदेव का बार-बार उपरोध रहा–पट्टोत्सव न मनाया जाए। इस प्रतिवादी विचार से एक संवादिता का जन्म हुआ। मैंने निर्णय किया–पट्टोत्सव को नया रूप दिया जाए, जिससे गुरुदेव की भावना और हमारी भावना–दोनों के मिश्रण से नई प्रजाति बन जाए। वह संवादी प्रणाली है–विकास महोत्सव।

जैसे अनुशासन का प्रतीक पर्व है–मर्यादा-महोत्सव। वैसे ही विकास का प्रतीक पर्व है–विकास महोत्सव। पूज्य गुरुदेव ने एक से अधिक बार कहा–प्रवृत्तियों का विस्तार बहुत हो चुका है। अब इनका नियोजन होना जरूरी है। इस नियोजन की वार्ता और विकास महोत्सव की परिकल्पना से तेरापंथ विकास परिषद् का उद्भव हुआ। विकास महोत्सव के साथ तेरापंथ विकास परिषद् की कल्पना जुड़ गई। अमृत-संसद को भी नया रूप मिल गया।

तेरापंथ विकास परिषद् की नौ इकाइयां हैं। इनमें सारी प्रवृत्तियों का नियोजन किया गया है–

“
सम्प्रदाय, उपासना, क्रियाकाण्ड, इनमें मतभेद और विवाद हो सकते हैं। अध्यात्म अपनी अनुभूति है, स्वयं की चेतना का जागरण है, इसलिए वह सब विवादों से परे है। इस वैज्ञानिक युग में वही सर्वमान्य धर्म बन सकता है। आध्यात्मिक विकास के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रारंभ हुआ। वह अपनी आध्यात्मिकता के कारण सर्वमान्य हो रहा है।
”

इकाई	संबद्ध
१. तेरापंथ, जैनधर्म, जैनविद्या,	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
कर्मणा जैन, ऐतिहासिक स्मारक	अ. भा. तेरापंथ युवक परिषद्
	अ. भा. तेरापंथ महिला मंडल
	अ. भा. तेरापंथ स्मारक समिति
२. जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)	जैन विश्व भारती
३. अणुव्रत	अखिल भारतीय अणुव्रत समिति
	अखिल भारतीय अणुव्रत न्यास
	अणुव्रत विश्व भारती
प्रेक्षाध्यान	अध्यात्म साधना केन्द्र (दिल्ली)
	तुलसी अध्यात्म नीडम् (जैन विश्व भारती)
जीवन-विज्ञान	जीवन विज्ञान अकादमी (जैन विश्व भारती)
४. अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र	अणुविभा
	अणुव्रत इन्टरनेशनल
	अनेकान्त इन्टरनेशनल
५. साहित्य	आदर्श साहित्य संघ
	जैन विश्व भारती (प्रकाशन-प्रसार)
६. शिक्षा	जय तुलसी फाउंडेशन
७. जनसंपर्क, प्रसार	तेरापंथ विकास परिषद्
८. इतिहास	जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
९. समीक्षा	

प्रत्येक इकाई के एक या उससे अधिक नियोजक हैं। उन नियोजकों का समुदाय ही नियोजन मण्डल के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। अमृत-संसद भी उस विकास-परिषद् का एक अंग है।

पूज्य गुरुदेव ने आचार्य पद का दायित्व संभाला तब तेरापंथ की एक संस्था थी–श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा। इन छह दशकों में प्रवृत्तियों के साथ संस्थाओं का भी विस्तार हुआ है। अन्य भी अनेक संस्थाएं हैं।

उन सबकी प्रवृत्तियां नियोजित हों, कार्य की पुनरावृत्ति न हो, इस दृष्टि से नियोजन के माध्यम की अपेक्षा हुई और उसका माध्यम बना तेरापंथ विकास परिषद्।

पुरुषार्थ के चार प्रयोजन हैं–

१. अलब्ध को पाने की इच्छा
२. लब्ध की प्रयत्नपूर्वक रक्षा
३. रक्षित का सवंर्धन
४. संवर्द्धित का समुचित नियोजन।

हम असीम विकास की कल्पना को मूल्य नहीं देते। जो विकास मानव की समस्याओं को सुलझाने में सहयोगी न बने, मानवीय अस्तित्व के लिए खतरा बने, वह हमें इष्ट नहीं है। हमारा सीमा और सापेक्षता में विश्वास है। विकासमूलक प्रवृत्तियों के नियोजन का तात्पर्य यही है कि ऊंचाई के साथ गहराई भी बढ़े। छितरा हुआ जल भूमि की आर्द्रता के लिए उपयोगी हो सकता है, किन्तु उससे बिजली पैदा नहीं की जा सकती, उस पर जलपोत भी नहीं चल सकते। थाली में जल है। उसमें चिड़िया नहा सकती है, किन्तु नौका नहीं चल सकती।

तेरापंथ धर्मसंघ हमारे विकास का मूल आधार है। आचार्य भिक्षु ने जो विचार, सिद्धान्त, दृष्टिकोण और अनुशासन दिया, उसकी ऊंचाई और गहराई दोनों बढ़े, यह तेरापंथ विकास परिषद् की केन्द्रीय पीठ है। उसके आधार पर ही हम इस सार्वभौम कार्यक्रम का निर्देशन और संचालन कर सकते हैं।

विकास की गति में दो बड़े विघ्न हैं–१. अहं, २. एकांगी दृष्टिकोण।

हमें समर्पण का मंत्र मिला है और अनेकान्त का दर्शन मिला है। समर्पण सत्य के प्रति, सिद्धान्त के प्रति, अनुशासन के प्रति, संघ और संघपति के प्रति। अहं के विघ्न का विनाशक है समर्पण। अनेकान्त पूर्वाग्रह के निवारण का अमोघ उपाय है।

हमारे विकास की दिशा है आध्यात्मिक उन्नयन। विकास के साधन हैं मस्तिष्कीय प्रशिक्षण और हृदय परिवर्तन। विकास की सीमा है साधन-शुद्धि का विचार।

तेरापंथ धर्मसंघ के पास मर्यादा महोत्सव का दीप और विकास महोत्सव का चक्षु विद्यमान है। हम इन दोनों का उपयोग करें, सत्य को देखें और उसके सहारे आगे बढ़ें।

मेरी प्रत्येक सृजनात्मक प्रवृत्ति, रचनात्मक दृष्टिकोण और कल्पना पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा का इतिहास है। विकास महोत्सव उन्हीं की अक्षत प्रेरणा का प्रसाद है। यह हमारे धर्मसंघ की प्रगति के लिए ज्योति-स्तम्भ बनेगा।

“
हम असीम विकास की कल्पना को मूल्य नहीं देते। जो विकास मानव की समस्याओं को सुलझाने में सहयोगी न बने, मानवीय अस्तित्व के लिए खतरा बने, वह हमें इष्ट नहीं है। हमारा सीमा और सापेक्षता में विश्वास है।
”

विकास महोत्सव : आधार-पत्र

‘धर्म-शासन की शक्ति का उन्नयन हो, यह गण के प्रत्येक सदस्य का पवित्र मनोरथ होना चाहिए। शक्ति का उन्नयन विकास की प्रक्रिया के द्वारा संभव है। उत्तरोत्तर विकास नहीं होता, तब शक्ति कुंठित हो जाती है, इसलिए विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलनी चाहिए। आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ का प्रवर्तन (वि. सं. १८१७, ईस्वी सन् १९६०) किया। उन्होंने विकास का बीज-वपन कर दिया। साहित्य के क्षेत्र में उनका अवदान निश्चित रूप से अविस्मरणीय है।’

अनुस्मृति है कि हेमराजजी स्वामी की दीक्षा (वि. सं. १८५३, ई. सन् १९७६) के पश्चात् संघ का चतुर्मुखी विकास शुरू हुआ। श्रीमज्जयाचार्य विकास के मेरुदण्ड बने। उन्होंने अनुशासन, मर्यादा, व्यवस्था, साहित्य आदि अनेक क्षेत्रों में विकास के कीर्तिमान स्थापित किए। मर्यादा-महोत्सव उनकी दूरदर्शी दृष्टि का परिणाम है।

प्रत्येक आचार्य ने अपने-अपने समय में विकास की कोई-न-कोई रेखा खींची। तेरापंथ के आधुनिक विकास के मंत्रदाता हैं–पूज्य कालूगणी। उन्होंने संस्कृत और प्राकृत विद्या का बीज-वपन कर तेरापंथ धर्मसंघ को मध्यकालीन जैन युग में प्रवेश करवा दिया तथा साथ-साथ आधुनिक युग में प्रवेश का द्वार खोल दिया।

विकास के शलाकापुरुष हैं–आचार्यश्री तुलसी। आचार्यवर ने शिक्षा, साहित्य, शोध, आगम-सम्पादन, अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवनविज्ञान, अहिंसा-प्रशिक्षण, विहारक्षेत्र-विस्तार, समण श्रेणी, विदेश-यात्रा आदि विकास के नए-नए आयाम उद्घाटित किए। आचार्यवर की सृजनात्मक प्रतिभा, कल्पना शक्ति और कर्मजा मति ने विकास का मार्ग प्रशस्त किया। हमारी विकास की गति निरन्तर आगे बढ़े, इसलिए विकास-महोत्सव की परिकल्पना की गई है।

आचार्यश्री तुलसी की अभिवंदना में भाद्रव शुक्ला नवमी का दिन विकास महोत्सव के रूप में मनाने का निश्चय किया गया है।

भाद्रव शुक्ला नवमी के दिन आचार्य तुलसी आचार्य-पद पर अभिषिक्त हुए। प्रतिवर्ष यह दिन 'पट्टोत्सव' के रूप में मनाया जाता है। वि. सं. २०५० माघ शुक्ला सप्तमी, मर्यादा-महोत्सव के दिन सुजानगढ़ में आचार्य-पद का दायित्व युवाचार्य महाप्रज्ञ में प्रतिष्ठित कर दिया। अतः अब 'पट्टोत्सव' विकास-महोत्सव के रूप में मनाया जाएगा।

विकास पत्र

अर्हं ॐ ऐं अर्हं। णमो अरहंताणं।

विकास महोत्सव : विक्रम संवत् २०५१, भा. शु. ६

विकास का आधार–

मर्यादा महोत्सव जैसे हमारी संघीय-व्यवस्था के लिए आधार-स्तम्भ है, वैसे ही विकास महोत्सव संघीय विकास के लिए आधार-स्तम्भ है।

तेरापंथ के विकास के मौलिक आधार हैं–

१. अनुशासन–एक आचार्य का नेतृत्व

२. अध्यात्म

३. अप्रमाद।

अनुशासन के बिना विकास की प्रक्रिया को सुनियोजित ढंग से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

विकास की दिशाएं–

आध्यात्मिक दृष्टि से विकास के पांच बिन्दु हैं–

१. ज्ञान

२. दर्शन

३. चारित्र

४. तप

५. वीर्य।

संघीय विकास के चार बिन्दु हैं–

१. पारस्परिक सौहार्द
२. सेवा
३. विहार-क्षेत्र की संवृद्धि
४. श्रावक समाज की सार-संभाल।

सार्वजनिक दृष्टि से विकास के पांच बिन्दु हैं–

१. जन-सम्पर्क
२. साहित्य
३. वकर्तृत्व
४. संगीत
५. कला।

विकास के साधन–

१. शिक्षा–अध्ययन-अध्यापन
२. स्वाध्याय
३. आगम अनुसंधान
४. अहिंसा प्रशिक्षण
५. अणुव्रत
६. प्रेक्षाध्यान
७. जीवन विज्ञान।

तेरापंथ धर्मसंघ में जैसे मर्यादा की अक्षुण्ण परम्परा है, वैसे विकास की भी अक्षुण्ण परम्परा रहे। आचार्य का कर्तव्य होगा कि इस परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखे। पूरे संघ का कर्तव्य है कि वह इस कार्य में संभागी रहे। विकास के तीन आयाम हैं–१. आगे बढ़ना, २. रुकना, ३. पीछे मुड़कर देखना, समीक्षा करना।

विधि और निषेध दोनों विकास के अंग हैं। प्रवर्तन और निवर्तन दोनों का समन्वय करके ही विकास की प्रक्रिया को स्वस्थ रखा जा सकता है। कोरी विधि उच्छृंखलता का रूप ले सकती है। कोरा निषेध रूढ़िवाद का रूप ले सकता है। इसलिए विधि और निषेध दोनों का समन्वित प्रयोग करना चाहिए। कोई भी समाज या संगठन विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाए बिना उपयोगी नहीं रह सकता। इस दृष्टि से विकास-महोत्सव की स्थापना की गई है। इससे धर्मसंघ तेजस्वी बना रहेगा।

विकास महोत्सव को प्रभावी बनाने के लिए विकास परिषद् की स्थापना की गई है। विकास परिषद् के सदस्य गत वर्ष के विकास का लेखा-जोखा तथा आगामी वर्ष के विकास की योजना विकास महोत्सव के अवसर पर प्रस्तुत करेंगे।

धर्मशासन की शक्ति का उन्नयन गण के प्रत्येक सदस्य का पवित्र मनोरथ होना चाहिए। साधुसंघ की जितनी भावात्मक उन्नति होगी, उतनी ही चित्त-समाधि, जितनी चित्त-समाधि उतनी ही विकास की गति त्वरित होगी।

हमारा विकास अनेकांत की पृष्ठभूमि पर हो, यह अपेक्षित है। अनेकांत का प्राणतत्त्व है–त्रिपदी।

उत्पाद व व्यय के आधार पर हम परिवर्तन को स्वीकार करें। ध्रौव्य के आधार पर हम स्थायित्व को स्वीकृति दें। विकास के लिए परिवर्तन और मौलिकता की सुरक्षा दोनों अनिवार्य हैं।

“हमारा विकास अनेकांत की पृष्ठभूमि पर हो, यह अपेक्षित है। अनेकांत का प्राणतत्त्व है–त्रिपदी। उत्पाद व व्यय के आधार पर हम परिवर्तन को स्वीकार करें। ध्रौव्य के आधार पर हम स्थायित्व को स्वीकृति दें। विकास के लिए परिवर्तन और मौलिकता की सुरक्षा दोनों अनिवार्य हैं।”

विकास के लिए आवश्यक है पुरातन और अधुनातन का समन्वय। सत्यपरक प्राचीन और सत्यपरक अर्वाचीन का सम्यक् उपयोग।

विस्तार और अपूर्णता से पूर्णता की दिशा में प्रस्थान–विकास की प्रक्रिया है।

विकास इन दिशाओं में चले–

१. संयम, त्याग, तपस्या, अध्यात्म।

२. स्वाध्याय, ध्यान, आत्म-निरीक्षण।

३. चित्त-समाधि, निर्जरार्थ-सेवा।

विकास महोत्सव तेरापंथ की प्रगति का प्रतीक बने।

गणाधिपति तुलसी आचार्य महाप्रज्ञ

विक्रम संवत् २०५१ भा. शु. ६
दिल्ली